गन्ध न मिली होती, तो एक वार फेल होकर ही आप उसकी कोशिशसे बाज आते। बार-बार यों जो तोड परिश्रम कर कानून की कितावें हर्गिज न रटते और सम्भव था कि उपेन्द्र भैया भी इतने दिनोंतक किसी स्कूलकी मास्टरी पाकर ही सन्तुष्ट हो गये होते।"

उपेन्द्र हंसने लगे, पर भूपतिका मुंह लाल हो गया। ईंटका जवाब मेशीन-गनसे दिया गया था। यह वात उपस्थित सभी लोग समझ गये।

क्रोध दबाकर भूपतिने कहा—"आपके साथ तर्क करना व्यर्थ है। आप शायद यह भी नहीं जानते, कि किसी चीज भलाई-बुराई कितनी तरहसे साबित हो सकती है।"

बातों ही बातोंमे सब लोग धीरे-धीरे सड़कके कि ख गये थे। सतीश खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर हँ, "भूपति बाबू माफ कीजिये। छः प्रकारके प्रमाणों और छत्तीश प्रकारके प्रत्यक्षों का चर्चा इस तेज धूपमे नहीं सही जायेगी। इससे अच्छा तो यह हो, कि आप शामके बाद बाबूजीकी बैठकमे पधारें। वहा आधी रात तक तर्क वितर्क कर सकते हैं। वहाँ नित्य ही प्रोफेसर नवीन बाबू, सदरआला गोविन्द बाबू और

क इसी तरहके विषयोंपर आधीरात तक वादानुवाद

। उसके बगलवाले कमरेम में रहता हूं। तर्क-

पेंच और दार्शनिक पैंतरेबाजीकी बातें सुनते

पकसे गये हैं। कानोंके साथ-साथ मेरे ऊपर

भी कुछ-कुछ रंग चढ़ने लगा है। पर असमयमे पककर और पृथ्वीपर टपककर मैं सियार-कुत्तोके पेटमे नहीं जाना चाहता, अतएव इस विषयको छोडकर यदि और कुछ कहना हो तो कहिये, नहीं तो आज्ञा दीजिये चलूं।"

सतीशके हाथ जोड़कर विदा मांगनेका ढंग देखकर सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े। भूपति बाबू जले हुए तो थे ही, सबकी सम्मिलित हसीने मानो ऊपरसे नमक डाल दिया। क्रोधके मारे बहसकी डोर हाथसे जाती रही और जो मुंहमें आया कह गये—"तो देखता हूं, आप ईश्वरको भी नहीं मानते।" बात बिल्कुल बे मौकेकी, और एकदम बच्चोंकी-सी हुई, जो भूपति बाबूको भी खटके बिना न रही।

सतीशने भूपतिके तमतमाये हुए चेहरेपर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली और फिर उपेन्द्रके मुखकी ओर देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ा। बोला,—"भैया, इस बार भूपति बाबू सही-सलामत ठिकानेपर पहुंच गये है। मेरे जैसे दस-बारह कुत्ते भी अब इनके पास नहीं फटक सकते।" भूपतिकी ओर देखकर बोला,—"शाबास, भूपति बाबू शाबास।" "चोर चोर" के खेलमें दौड़ा न जाये तो 'धूड़ी' छू लेना ही अच्छा है।"

इन तीखे व्यंग-बाणोंके आघातसे जलकर भूपति उठ खड़े हुए। उपेन्द्रने उनका हाथ पकड लिया, कहा,—"भूपति, तुम जरा ठहरो, मैं अभी इसे ठीक करता हूं। क्यों रे सतीश! धूड़ी छूना, ठिकाने पहुंचना इन बातोंका क्या मतलब? असलमें तेरी

प्रकृति जैसी संदिग्ध है, उससे यह संदेह होना बिलकुल स्वाभाविक है कि तू ईश्वर तकको नहीं मानता।"

सतीशने विस्मयका नाट्य दिखाते हुए कहा,—"हाय री मेरी किस्मत। मैं ईश्वरको नहीं मानता? जरूर मानता हूं। आधो रातको, जब नाटक थियेटरके अखाड़ेसे छुट्टी पाकर घर लौटता हूं तब मुझे कब्रिस्तानके पाससे होकर आना पड़ता है। कहीं कोई आदमी नहीं रहता। उस सुनसान कब्रिस्तानको राह पार करते समय मारे भयके मेरी छातीका खून जम सा जाता है। तुम भले आदमियोंको उसकी क्या खबर? हंसते क्या हो! भूत-प्रेत मानता हू और ईश्वर नहीं? भला यह सम्भव है?"

उसकी वातोंसे क्रुद्ध भूपति तक हंस पड़े। बोले—'सतीश बाबू, क्या भूतसे डरनेका अर्थ ईश्वरको स्वोकार करना है? क्या आपकी दृष्टिमे ये दोनों वातें एक ही है?"

सतीशने कहा,—"बिलकुल एक। पास-पास रख दीजिये, तो पहचान न पड़े। केवल मेरे ही लिये नहीं, आपके लिये भो, उपेन्द्र भैयाके लिये भी और जो शास्त्रकार हैं उनके लिये भो यही बात है। हां, जो दोनोंमे किसी एकको भो न माने, उसका तो कहना हो क्या है। लेकिन जहां एकको मान लिया, कि — ˜ . पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है। माननेके बाद

...र्त। दुःखमे, संकटमे, आपदमे, विपदमे कई

क. देखा है, वागिवतण्डा भी बहुत सुना है, पर

.. पहले था, वही अब भी है। छोटा-सा एक

निराकार ब्रह्म मानो या हाथपैरोंवाले तैंतीस करोड़ देवता मानो, चाहे कुछ भी करो, एकको मानते ही दूसरे भी आ उपस्थित होते हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानों सब एक जंजीरमे बंधे हुए हों। एकपर जोर डालो या एकको खींचो तो सबकी सब कड़ियां खिच आयेंगी। स्वर्ग-नरक आ जायेगा, लोक और परलोक आ जायेगा; अमर आत्मा भी आ जायगी, फिर तुम कब्रिस्तानके उपदेवताओंको धोका कैसे दोगे? कालीघाटके कंगालोंमेसे एकको चुपकेसे कुछ देकर क्या तुम अपना पिण्ड औरोसे छुड़ा सक्ते हो? पलभरमें अनगिनत कगले आकर घेर लेंगे। ऐसी हालतमे आप ही बताइये, भूतसे डरूं और ईश्वरको न मानूं क्या यह कभी सम्भव है, भूपति बाबू?"

यों कहते हुए उसने ऐसा मुंह बनाया, कि उसे देखकर सबके सब ठठाकर हंस पड़े। कुछ दूरपर खड़े दो छोटे-छोटे बच्चे भी जोरसे हंस पड़े। रविवारको उदास—फीकी दोपहरी इन सबकी हंसीसे गूंज उठी।

उपेन्द्रकी स्त्री सुरबालाका भेजा हुआ नौकर भी जो दूर खडा होकर इतनी देरसे अपने आप ही बड़बड़ा रहा था, मुंह फेरकर मुस्कुराने लगा।

कलहके जो बादल घिर आये थे, इस हंसीको आंधीमें वे ऐसे उड़े कि बिलकुल लापता हो गये।

सबके सब वार्तामे ऐसे मशगूल हो रहे थे कि किसीको पता तक नहीं चला कि दोपहर कब बीत गयी। उधर घरमे

नौकर-दाइयोंने मारे भूख प्यासके बहुत देरतक कुड़कुड़ाते रहनेके बाद अब चिल्ल पों मचानी शुरू कर दी। रसोइया महराज तो अब ऐसी नौकरीसे आज ही इस्तीफा देकर कहीं चले जानेको घोषणा खुले आम कर रहे हैं।

२

लगभग तीन महीने बादकी बात है। कलकत्तेके एक मकानमें एक दिन सवेरेके समय नींद टूटनेपर सतीशने बिछौने-पर इधर-उधर करवटें बदलते हुए एकाएक यह निश्चय कर डाला, कि आज स्कूल नहीं जाऊंगा। वह होमियोपैथिक स्कूलमें पढ़ता था। आज छुट्टी मनानेके इस संकल्पने उसके मनमें अमृतकी वर्षा की और क्षणभरमें उसके शिथिल शरीरको सबल बना दिया। वह प्रसन्नतासे उठ बैठा और चिलम भर लानेके लिये शोर करने लगा।

सावित्री घरमें आयी। वह थोड़ी ही दूरपर सहन पर बैठ गयी और हंसकर बोली,—"निन्द टूटी सरकार की?"

सावित्री इस मेशकी मजदूरनी है और मेशके सारे प्रबन्ध-की मालकिन भी। उसमें चोरीकी आदत न थी, [illegible] ये खर्चके [illegible] उसीके हाथमें रहते थे। एकहरा बदन था, रंग गोरा अङ्ग साचेमें ढले हुए-से थे। उम्र लगभग बाईस-तेईस [illegible]। लेकिन देखनेसे इससे भी कम उम्रकी थी। सावित्री साफ कपड़ा पहनती और दोनों

होंठ पान तम्बाकूके रससे दिन-रात रंगे रहते। वह हंसकर बातें करना तो जानती ही थी, हंसीका दाम भी समझती थी। घर गृहस्थीके सुखोंसे वञ्चित मेसके सभी रहनेवालोंपर उसका एक आन्तरिक स्नेह था—एक ममता थी। फिर भी कोई उसके कामोंकी प्रशंसा करता, तो कहती कि सेवा न करूं तो भला आप लोग मुझे क्यों रखने लगे? घर जाकर स्त्रियोंसे निन्दा करके कहेंगे कि मेसकी दासी ऐसी मिली है कि दोनों जून पेटभर खानेतकका इन्तजाम नहीं कर सकती। उस अपयशकी अपेक्षा तो यह परिश्रम ही अच्छा है।" कहकर हंसती हुई कामको चली जाती। मेसमें केवल सतीश ही उसका नाम लेकर पुकारता था। जब तब उसके साथ हंसी दिल्लगी करता और जीमें आता तो कभी कुछ इनाम भी दे देता था। उसका भी सतीशपर कुछ अधिक स्नेह था। इसीसे मेसके कामोंमें व्यस्त रहनेपर भी वह सदा अपनी एक आंख और एक कान इस सुगठित सुन्दर युवककी ओर लगाये रहती थी। मेसके सभी लोग यह जानते थे और कोई-कोई तो चुटकी भी लेता था। सावित्री कुछ जवाब न देती, मुस्कुराती हुई काममें चली जाती।

"हां नींद टूटी।" कहते हुए सतीशने तकियेके नीचेसे एक रुपया निकाल उसके आगे फेंक दिया। सावित्री रुपया उठाकर बोली,—"सवेरे सवेरे क्या लाना होगा?"

सतीशने कहा,—सन्देश! लेकिन मेरे लिये नहीं। अभी

* बंगालमें बननेवाली छेनेकी एक खास तरहकी मिठाई।

इसे रख लो, रातको घर जाते समय अपने बाबूके लिये खरीद कर लेती जाना।"

सावित्रीने क्रोधसे रुपया बिछौनेपर फेंक दिया,—"बोली रखे रहिये अपना रुपया। मेरे बाबू सन्देशके प्रेमी नहीं हैं।"

सतीशने फिर रुपयेको फेंककर गिडगिडाते हुए कहा,—"तुम्हें मेरे सरकी कसम, सावित्री, यह रुपया मुझे न लौटाओ। तुम रख लो। मैंने सचमुच तुम्हारे बाबूको सन्देश लानेके लिये दिया है।"

सावित्रीने मुंह बनाकर कहा,—जब तब आप औरतोंको तरह सरकी कसम देते रहते हैं, यह बड़ा जुलम करते हैं। मेरे कोई बाबू-साबू नहीं हैं, मेरे बाबू तो आप—आप लोग ही हैं।"

सतीशने हंसकर कहा,—"अच्छा, लाओ रुपया। लेकिन सच बताओ, मेरे सिवा और कोई बाबू तुम्हारा है या नहीं? यदि हो तो कहो, मैं उसका सिर खाऊं।"

सावित्री हंस पड़ीं। बोली,—"मेरे बाबू क्या आपको सौत जो उनका सिर खायंगे?"

सतीशने कहा,—"मैं उनका सिर खाता हूं या वे मेरा खाते हैं? बल्कि मैं तो उलटे उनको मिठाई खिलानेको तैयार हूं।"

सावित्रीने मुंह फेरकर हंसीको रोका और गम्भीर भावसे बोली—"नौकर-दाईके साथ इस तरहकी बात करनेसे उनका मन बढ़ जाता है। फिर वे मालिकके मुंह लग जाते हैं, भय

नहीं मानते। जरा सोच-समझ कर बात करनी चाहिये; नहीं तो लोग-बाग निन्दा करेंगे।" यह कहकर वह रुपया उठाकर घर से बाहर चली गयी। लेकिन तत्काल ही लौटकर बोली,—"आज इस वक्त क्या बनेगा? सावित्री जानती थी कि खाने-पीनेकी चीजके ये अच्छे पारखी हैं। इसलिये रोज सवेरे एक बार सतीशकी आज्ञा ले जाती और उसके अनुसार स्वयं मौजूद रहकर रसोइये महाराजसे सारा काम ठीक-ठीक कराया करती थी। इसी बीचमें नौकर चिलम भर कर दे गया था। सतीश फिर बिछौनेपर लेटकर बोला—जो तुम्हारी मर्जी, बनवाओ।"

सावित्रीने कहा—"देखती हूँ, कि बात-बातपर गुस्सा करना भी आपको आता है।"

सतीश दीवारकी ओर मुँह फेरकर सटकके नलमें दम लगाते हुए बोला—"मर्द हू; गुस्सा करना भी नहीं जानूँगा? लो मैं आज खाऊँगा ही नहीं।"

सावित्रीने कहा,—'मालूम होता है, कहीं दावतका रंग लगा आये हैं। चाहे जो हो, सतीश बाबू, आपको स्कूल जरूर जाना होगा। यह मैं अभीसे कहे देती हूँ।"

इस थोड़े समयमें ही नियमित रूपसे स्कूल जानेका काम फिर सतीशको भार-सा लगने लगा। उसने तरह-तरहके बहाने और कारण निकालकर स्कूलसे जान बचानेका सिलसिला शुरू कर दिया था। सावित्री ध्यान देकर इसे देख रही थी। आज

सतीशने कहा—"क्या तुम मेरी अभिभाविका बनायी गयी हो जो यों दबा रही हो? आज मैं "पदमेकं न गच्छामि'।"

सावित्री मुस्करायी, बोली—"न जाइये, न सही। स्नान करके भोजन तो कर लीजिये। आपके इस ठलुएपनसे नौकर-चाकरोंको भी तो कष्ट होता है। क्या यह आप नहीं देखते?"

सतीशने कहा—"वे कैसे नौकर-चाकर हैं, जो नौ बजते-न-बजते ही भूखसे तड़प उठते हैं? नहीं, मुझे यह मेस छोड़ना ही पड़ेगा। नहीं तो देखता हूं, कि जान न बचेगी।"

सावित्री हँस पड़ी, बोली—'तो मुझे भी बदलना पड़ेगा।" कहनेको तो कह डाला, लेकिन तुरत अपनी बातको दबाकर बोल उठी—"जबतक आप यहां हैं, तबतक तो आपको इस मेसके नियमोंको मानकर ही चलना पड़ेगा। स्कूल भी जाना होगा। चलिये, उठिये, देर हो रही है।" यह कहकर सतीशकी धोती और अंगोछा स्नान-घरमें रखनेके लिये वह जल्दीसे बाहर चली गयी।

सतीश नित्य नियमसे सन्ध्यावन्दन किया करता था। ...वह स्नान करके आया तो पूजाके आसन पर बैठकर देर ...ने लगा। सावित्री दो-तीन बार आकर देख गयी और दरवाजेके बाहरसे पुकार कर बोली—"इतनी देर क्यों कर रहे हैं? परोसी हुई रसोई ठंडी हो गयी। आपको स्कूल नहीं जाना पड़ेगा, मेहरबानी करके थोड़ा बहुत खाकर हम लोगोंको जानेकी फुर्सत दीजिये।"

सतीश पांच मिनट चुपचाप रहा, फिर उठकर बोला—"पूजा पाठके समय गोलमाल करनेसे क्या होता है जानती हो ?"

सावित्रीने कहा—"गङ्गाजलो और पंचपात्र सामने धरकर ढोंग रचनेसे क्या होता है, जानते हैं ?"

सतीशने तेवर बदलकर कहा—क्या मैं ढोंग रच रहा था ? कभी नहीं।"

सावित्री कुछ कहना चाहती थो, पर उसे वह चुपचाप निगल गयी। फिर बोली—"यह तो आप ही जानें। लेकिन और दिन तो आपको इतनी देर नहीं होती थी! आइये रसोई परोसी हुई है।" कहकर चली गयी।

आज जाड़ेकी मोठी धूपवाली दुपहरीमे मेसमें निर्जनता और सन्नाटेका राज्य था। मेसके रहनेवाले प्रायः सभी नौकरी करते है। वे आफिस चले गये है। रसोइया महाराज घूमने चले गये है। नौकर बिहारी सौदा खरीदने गया है। सावित्रीको भी आहट नहीं मिल रहो है। सतीशने पहले अपने कमरेमे दिवा-निद्राको झूठी चेष्टा की, फिर उठ बैठा ओर कुछ सोचने लगा। सिरहानेका जङ्गला बन्द था। उसने उसे खोलकर सामनेकी छतकी ओर देखा और तत्काल बन्द कर दिया। छतके एक किनारे सावित्री बाल सुखा रही थी और झुककर कोई किताब देख रही थी। जंगला बन्द होनेका शब्द सुनकर उसने फिर कर देखा! सिरपर आंचल डाल कर वह खड़ी हो गयी, दुबारा जो उसने देखा तो जंगला बन्द हो गया था। थोड़ी ही

देरमें वह अन्दर आकर बोली,—"बाबूजी, क्या आपने मुझे बुलाया है ?"

सतीशने कहा—"नहीं, बुलाया तो नहीं।"

सावित्री—'आपके पीनेको पानी लाऊँ—और पान भी ?'

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"लाओ।"

सावित्रीने पानी लाकर बिछौनेके पास रख दिया। उसने कमरेकी सब खिड़कियां और दरवाजोंको खोल दिया। इसके बाद सहन पर बैठते ही बोली—"जाऊं आपके लिये चिलम भर लाऊँ।

सतीशने पूछा,—"बिहारी कहां है ?"

"बाजार गया है।" कहकर सावित्री चली गयी। थोड़ी ही देरमें तम्बाकू भर लायी और सामने रख, खुले दरवाजेके सामने बैठकर हँसती हुई बोली—"आप आज बेकार ही घरमें बैठे रह गये।"

सतीश—"सच है। मेरा ढंग ही कुछ निराला है। इसीसे ा-कभी ऐसा न करनेसे तबीयत खराब हो जाती है। इसके ा मैं पूरा डाक्टर भी नहीं बनना चाहता। थोड़ा बहुत सीख- कर अपने घर लौट जाऊंगा। वहां बिना पैसे-कौड़ीका . दवाखाना खोल दूंगा। चिकित्साके अभावके कारण ाके कितने ही दरिद्र हैजेकी चपेटमें पड़कर चौपट हो जाते हैं। नको चिकित्सा करना ही मेरा उद्देश्य है।"

सावित्री बोली—"मालूम होता है, मुफ्तकी चिकित्सा करने-

के लिये अच्छी तरह डाक्टरी सीखनेकी जरूरत नहीं होती। क्या अच्छे डाक्टर केवल बड़े आदमियोंके लिये हैं? बेचारे गरीबोंके लिये नहीं? लेकिन आप यहासे जायेंगे कैसे? आपके चले जानेसे विपिन बाबू बडी मुश्किलमे पड जायेंगे।"

विपिन बाबूका नाम सुन, सतीशने लज्जित होकर कहा—वे क्यों मुश्किलमे पड़ेंगे? मेरे जैसे उनके बहुतेरे मित्र जुट जायेंगे। दूसरे, अब मैं वहा जाता भी तो नहीं।"

सावित्रीने आश्चर्यमे आकर कहा—"नहीं जाते, तो विपिन बाबूकी 'उनको' गाना-बजाना कौन सिखाता है?"

चिढ़कर, मुह बनाकर सतीशने कहा—"क्या मैं उसको गाना-बजाना सिखाता हू?"

सावित्रीने कहा—"मुझे क्या मालूम बाबू साहब, लोग तो ऐसी ही कहा करते हैं।"

सतीश—"कोई नहीं कहता, यह सब तुम्हारी मन-गढ़न्त बात है।"

सावित्री—"आप विपिन बाबूके मुसाहिब कहे जाते हैं। क्या यह भी मेरी मनगढन्त बात है?" यह बात सुनकर सतीश जल उठा। इसकी वजह थी। वह जानता था, कि यदि लोग विपिनके साथकी घनिष्ठताकी बात जान जायेंगे, तो वह सबकी नजरोंसे नीचे गिर जायेगा। कलकत्ता-निवासी विपिनकी सांसारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोदके अपर्याप्त साज-बाजके बीचमे प्रवासी सतीशका स्थान लोगोंकी दृष्टिमें

नीचे गिर ही जायेगा। सतीशका यह भीतरी उत्कण्ठित संशय सावित्रीकी तेज चोटसे एकदम उग्र मूर्ति धारण कर बाहर निकल पड़ा। दोनों आंखे लाल कर वह गरज उठा—"कौन मुझे उसका मुसाहिब बताता है? जरा मैं उसका नाम तो सुनूं?"

सावित्री मन-ही-मन हँसकर बोली,—"किसका नाम लूं बाबू साहेब! जाऊँ राखाल बाबूके बिछौने धूपमे डाल आऊं।"

सतीश—"बिछौने रहने दो, पहले नाम बतलाओ।"

सावित्रीने हँसकर कहा,—"कुमुदिनी।"

सतीशने विस्मित होकर कहा,—"उसे तुमने कैसे जाना?"

सावित्रीने कहा—"उन्होंने मुझे काम करनेके लिये बुला भेजा था।"

"तुम्हे? यह तो सरासर हिमाकत है! तुमने क्या कहा?"

"अभी कुछ जवाब नहीं दिया है। सोच रही हूं। तनख्वाह ज्यादा है और काम कम, इसीसे लोभ हो रहा है।"

सतीशकी आखोंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। उसने कहा—"समझ गया, यह सब विपिनकी साजिश है। ... नाम भी वह प्रायः लिया करता है।"

सावित्रीने हँसी रोककर कहा—"हां, लेते होंगे। मालूम होता है, मुझपर उनकी तबीयत आ गयी है।"

सतीशने सावित्रीके चेहरेकी ओर आंखें तरेरकर देखा और कहा—"अच्छा, तबीयत आनेका मजा चखाता हूं। एक सौ रुपये जुर्माना देनेके बादसे फिर किसीको हण्टर नहीं लगाया था।

देखता हूं, अबके फिर कुछ देना पड़ा। अच्छी बात है, तुम जाओ।"

सावित्री चली गयी। रखालके बिछौने धूपमे डालकर चट-पट लौटकर उसने खिड़कीके छेदसे देखा कि सतीशने कपड़े पहन लिये हैं। वह बक्स खोलकर सन्दूकसे एक मुट्ठा नोट निकालकर पाकेटमे डाल रहा है। सावित्री दोनों चौखटोंपर हाथ रख, रास्ता रोक, खडी होकर बोली—"कहां जा रहे हो?"

"काम है, जाने दो।"

"मैं भी सुनूॅ, क्या काम है? सतीशने क्रुद्ध होकर कहा,—"हटो।

सावित्री न हटी। हॅसकर बोली—"देखती हूं, भगवानने आपको किसी गुणसे वंचित नहीं रखा है। इसके पहले जुर्माना भी दे चुके है?"

सतीशने सिर्फ भौंहें टेढ़ी कीं। कुछ बोला नहीं।

सावित्रीने कहा—"मगर यह तो बड़ा अन्धेर है। मैं कहीं काम करूॅ, या न करूॅ, यह मेरी इच्छाकी बात है। आप इस बीचमे पड़कर क्यो किसीसे झगडना चाहते हैं?"

सतीशने कहा—"झगडा करूॅ, या न करूॅ यह मेरी खुशी की बात हैं। तुम राह क्यो रोकती हो?"

सावित्रीने हाथ जोडकर कहा—"जरा सब्र कीजिये, मैं आती हूं, तब जाइयेगा।"

जैसे ही सतीश आकर खाटपर बैठा, वैसे ही सावित्रीने

बाहर जाकर झटसे दरवाजेकी जञ्जीर चढ़ा दी। खिड़कीकी ओरसे कहती गयी, जबतक आपेमें नहीं आवेंगे, तबतक दरवाजा न खोलूंगी। नीचे जा रही हूं। यह कहकर वह सचमुच नीचे चली गयी। लाचार होकर सतीश कुछ देरतक चुप बैठा रहा, फिर कुरता खोलकर जमीन पर फेंक दिया और चित्त होकर चारपाईपर लेट रहा।

विपिनसे उसका परिचय प्रयागमें हुआ था। कलकत्ते आकर यह घनिष्ठता और भी बढ़ गयी थी और उसका यहां आना-जाना भी बेहिसाब बढ़ गया था। यह बात सतीश स्वयं भी समझता था। आज सावित्रीकी बातसे उसका वह अनुमान एकदम स्पष्ट हो गया। सतीशका मित्र और बड़ा आदमी समझ कर इस घरमें विपिनका यथेष्ट मान था। सतीशकी अनुपस्थितिमें भी उसके आदर सत्कारकी कमी न होती थी। यह भार स्वयं सतीशने सावित्रीको सौंपा था। उस आदर-सत्कार का उपयोग विपिन बाबू पूर्ण रूपसे किया करते थे, इसकी खबर [illegible]शको भी मिला करती थी। अपने मनकी इस सरल [illegible] के सामने विपिनकी उस ओछी प्रवृत्तिने गहरी कृतघ्नताके [illegible]में आज उसके हृदयको बेबसा दिया और सारे निमन्त्रण-[illegible], सौहार्द्र-घनिष्ठता सब कुछ पलभरमें उसके लिये हलाहलके समान हो गये। बाहरसे वह चुप-चाप पड़ा था सही किन्तु उसकी मर्मवेदना पिंजरेमें बन्द हिंस्र पशुकी भांति बार-बार उसके अन्तःकरणमें उछल-कूद मचा रही थी।

प्रायः घण्टेभर बाद लौटकर सावित्रीने खिडकीके बाहरसे धीरेसे पूछा—"बाबूजी शान्त हुए?" सतीशने कुछ उत्तर न दिया। दरवाजा खोल, सावित्री घरमे आकर खडी हो गयी, बोली—"भला बताइये तो, यह कैसा जुल्म है?"

सतीशने बिना किसी ओर देखे पूछा—"कैसा जुल्म?" सावित्रीने कहा—"सभी अपनी उन्नति चाहते हैं। मैं अगर कहीं कोई अच्छा काम पाऊं तो आप उसमे विघ्न क्यों डालते हैं?" सतीशने उदास भावसे कहा—"मैं क्यों विघ्न डालने लगा? तुम्हारी इच्छा होगी, तो क्या तुम बिना गये रहोगी?"

सावित्रीने कहा—"तब आप मेरे नये मालिकको मारने-पीटनेकी तैयारी क्यों कर रहे है?"

सतीश उठ बैठा, बोला—"यदि कोई तुम्हारी चीज उडा ले जाना चाहे, तो वैसी दशामे तुम क्या करोगी, सावित्री?"

"क्या मैं आपकी चीज हूं?" इतना कहनेके बाद सावित्री-के होठोपर एक मीठी मुस्कुराहट दौड गयी।

सतीशने शर्माकर कहा—"धत्! नहीं, मेरा यह मतलब नहीं, लेकिन . "

सावित्रीने कहा—"अब लेकिन . की जरूरत नहीं रही। मैं न जाऊंगी।" सतीशका कुर्ता जमीनपर पडा था। सावित्री-ने उठाकर पाकेटसे नोट निकाल लिये। सन्दूकमे ताली लगी हुई थी। नोटोको भीतर रख ताला बन्द कर तालीको अपनी रिंगमे पहनाती हुई सावित्री बोली—"इसे मैं अपने पास रखती

हूं। रुपयेकी जरूरत हो तो मांग लूंगी।" सतीशने कहा—"और चुरा लो तब ?" सावित्री मुस्कुरायी। आंचलमें बँधा हुआ तालियोंका गुच्छा झनसे पीठपर डालकर बोली—"मेरी चोरी आपको नहीं खलेगी।"

सतीश सावित्रीके मुंहकी ओर क्षणभर स्थिर दृष्टिसे देखता रहा। क्षण भरकी उस दृष्टिने उसके अन्तस्तलमें कौनसा चित्र अंकित कर दिया, यह वही जाने। चौंककर बोला—"सावित्री, तुम्हारा घर कहां है ?"

सावित्री—"बंगालमें।"

सतीश—"इससे ज्यादा नहीं बतलाओगी ?"

सावित्री—"नहीं।"

सतीश—"खैर, घर न बतलाओ, जाति तो बतलाओगी ?"

सावित्रीने हंसकर कहा—"वह जानकर ही क्या करेंगे ? मेरा बनाया भात तो आप खायेंगे नहीं ?"

सतीशने कुछ देर सोचकर कहा—"सम्भव तो नहीं है, पर दृढ़तासे बिलकुल ना भी नहीं कह सकता।" सावित्री अपने दोनों विशाल उज्ज्वल नेत्रोंको सतीशके मुखमण्डलपर गड़ाकर [illegible] रही, क्षण भर बाद ही वह हंस पड़ी। बच्चोंकी तरह सिर हिलाकर और कण्ठ-स्वरमें अकथनीय स्नेह और प्यार भरकर बोली—"ना नहीं कह सकते—क्यों ? जरा बतलाइये भी तो।" अकस्मात् सतीशके सिरपर भूत सवार हो गया। उसके हृदयके अन्दर खूनमें एक उबालसा आ गया। वह तत्काल गाढ़े स्वर-

मे बोल उठा—"सावित्री, यह तो नहीं जानता कि क्यों, लेकिन तुम खाना पका दो तो मेरे लिये यह कहना कठिन है कि नहीं खाऊंगा।"

'कठिन ? अच्छा, किसी दिन मौका आयेगा तो देखा जायगा। ओ हो ! राखाल बाबूका तकिया धूपमे डालना तो मैं भूल ही गयी थी।" यह कहती हुई वह कमरेसे बाहर चली गयी।

"एक बात सुनती जाओ, सावित्री !" कहकर सतीश सहसा सामनेकी ओर झुक पड़ा और हाथ बढ़ाकर उसके आंचलका एक छोर पकड लिया। सावित्री दोनो आखोंमे बिजली बरसाकर "राम-राम ! यह क्या कर रहे हैं ? मैं अभी आती हूं।" कहती हुई झटकेसे आचल छुड़ाकर वहांसे गायब हो गयी।

सहसा मानो एक अद्भुत काण्ड सा हो गया। सावित्रीका वह अकस्मात् डरकर भाग जाना, उसके दबे हुए गलेसे "आती हूं" कहना और आंखोसे वह दुधारी बिजली बरसाना—इन सबने एक साथ मिलकर वज्राग्निकी भाति सतीशकी सारी दुर्बुद्धिको क्षणभरमे जलाकर भस्म कर दिया। कुत्सित लज्जाकी फटकारसे उसका सारा शरीर बर्छोसे गधे हुए सपकी भाति मरोड़ खाने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो इस जीवन-मे वह अब सावित्रीको मुंह नहीं दिखा सकेगा। किसी कामसे वह फिर आ न जाये, इस डरसे वह उसी दिन एक चादर बंधे-

पर हाल आँधीकी तरह बाहर निकल पड़ा। तीन-चार सीढ़ी बाकी रहते सतीशने फिर ऊपरसे सावित्रीके गलेकी आवाज़ सुनी। वह रसोई-घरसे दौड़कर जोरसे पुकार रही थी—"बाबूजी, खा-पीकर ही घूमने जाइये, नहीं तो लौटनेमें देर होगी, तो सब नष्ट हो जायेगा।" लेकिन, सतीश सुनी-अनसुनी करता, दौड़ता-हाँफता बाहर चला गया।

दूसरे दिन जब सावित्री भोजनकी बात पूछने आयी, तब सतीशने धीरे धीरे कहा—"सावित्री, कुछ खयाल न करना।" सावित्रीने विस्मित स्वरमें पूछा—"क्या खयाल न करूँगी ?"

सतीश सिर झुकाकर चुप हो रहा। सावित्रीने मुस्कुराकर कहा—"वाह। आप कुछ बोलते भी नहीं। मुझे इतनी फुर्सत नहीं है। कहिये, क्या बनेगा ?"

सतीश—"मैं नहीं जानता। तुम्हारी जो इच्छा हो।"

सावित्री—"अच्छा" कहकर चली गयी। दूसरा प्रश्न नहीं किया। दो घंटे बाद लौटकर बोली—"कहिये, क्या समा-
है ? क्या आज भी 'पदमेकं न गच्छामि' करनेका
र है ?"

सतीश चुप रहा।

सावित्रीने कहा,—"कुछ खबर भी है, नौ बज चुके हैं।"

समय अधिक होनेकी बातपर सतीशने उद्विग्नता दिखाये बिना स्वाभाविक स्वरमें कहा—"बजने दो, मुझे अब अच्छा नहीं लगता।"

सावित्रीने रूखे स्वरमे कहा—"क्या अच्छा नहीं लगता—पढने जाना ?"

सतीश मन-ही-मन झुँझला रहा था, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका मुँह देखकर सावित्री समझ गयी और जरा देर चुप रहकर अपने चढ़े हुए स्वरको नरम करके बोली—"लिखना-पढना अच्छा नहीं लगता। अब अच्छा लगता है, शायद औरतोंका आचल पकडकर खींच-खांच करना ? जाइये स्कूल जाइये। व्यर्थ घरमे बैठकर ऊधम न मचाया कीजिये।" यद्यपि उससे तिरस्कारमे आन्तरिक स्नेह और एकान्त मंगलेच्छाके सिवा और कुछ भी नहीं था, तथापि बात बोलनेके विलक्षण ढंगने मानो सतीशके सारे शरीरमें एक जलन पैदा कर दी। मारे क्रोधके उसकी आंखे लाल हो गयीं, मुँह तमतमा उठा। बोला—"जो मनमे आता है, कह देती हो। देखता हूं, शोख बनानेसे केवल कुत्ता ही सिरपर नहीं चढ़ता, आदमीको भी समझा देना पड़ता है।"

अरे! यह गालियोंकी बौछार कैसी! सावित्री क्षण भर चुप रहकर कण्ठस्वरको और भी कोमल करके बोली—"जी हाँ, बाबू साहब, बात तो वैसी ही है नहीं तो आपको ही क्यों समझाना पडता कि यह भलेमानसोका आवास है, कुछ गोपियोंके साथ लीला करने और रास रचनेका स्थान—वृन्दावन—नहीं है ?' कहकर ही वह फौरन बाहर चली गयी। दुस्सह विस्मयसे सतीश स्तब्ध हो गया। सावित्री उसको इस तरह बेध सकती

है, इस बातको तो वह सोच भी नहीं सकता था। कुछ देरतक एक ही तरहसे बैठे रहकर अकस्मात् वह उठ खड़ा हुआ और ज्यों-त्यों स्नान-भोजनसे निवृत होकर पढ़नेके बहाने बाहर चला गया।

उस दिन, दिनभर उसका अपमानाहत क्षुब्ध चित्त उसकी प्रवृत्तिका शासन करता रहा और जितना ही वह अपने इस अचिन्त्य, अद्भुत व्यवहारका कोई उद्देश्य खोजकर नहीं निकाल सकता था, उतना ही उसके मनमें वह एक ही काण्ड बारम्बार चक्कर काटता था। उसने उसका आँचल क्यों पकड़ा था? उसे क्या कहना था? सावित्री इस तरह भाग न जाती, तो वह क्या कहता? क्या करता? उसका मर्यादाहीन क्रुद्ध अन्तःकरण निरन्तर इन कटु प्रश्नोंसे सावित्रीकी अपेक्षा भी अधिक निष्ठुरताके साथ उसको व्यथित करने लगा। इसी तरह दिनभर वह अपने अस्त्रसे आपही क्षत-विक्षत होकर शामको गंगा किनारे पहुंचा और किसी तरह मल्लाहोंके विनीत आक्रमणसे जी बचाकर निर्जीव मुर्देकी तरह एक पत्थरपर जा बैठा।

कल जब वह सावित्रीके सामने एकाएक मनकी दुर्बलता प्रकट हो जानेसे जिस लज्जासे अधीर होकर भागा था, तब उसमें कुछ मधुरता थी—और परोक्षमें रहकर किसीने मानों उसमें भाग भी लिया था। पर आज सावित्रीके तानेकी आगसे उस रसकी अन्तिम बूंदतक सूख गयी और निःसंग लज्जा एकदम शुष्क और कठिन होकर उसके हृदयमें जड़ जमाकर बैठ गयी।

उस दिन उसकी आत्म-मर्यादाने सिर्फ सिर झुकाया था, आज उसकी गर्दन टूट गयी और सबसे अधिक यह दुःख उसके मन को मसोसने लगा कि इस स्त्रीसे उसने इतने दिन जो हास-परिहास किये हैं, उन सबका आज बुरा मतलब निकाला जायेगा। कल सवेरेतक सचमुच उसके परिहासमे ठिठोलीके सिवा दूसरा अर्थ नहीं था। निर्जन दोपहरके उस दुर्व्यवहारके बाद यह बात तो अब मुँहमे लाने योग्य भी नहीं रही। सावित्री इस बातपर किसी तरह विश्वास न करेगी, कि तृष्णाकी आग बहुत दिनोंसे छिपी हुई नहीं थी। वह कहेगी कि उसके जी मे यही था। लेकिन उसके मनमे तो कुछ नहीं था। इस सत्यको समझानेका समय और सुयोग उसे कब मिलेगा? वह सदाचारी नहीं है, उसे इसकी विशेष लज्जा भी नहीं थी, लेकिन ढोंग को बदनामी वह कैसे सहेगा? उसने मन-ही-मन कहा, यदि वह चोर है, तो चोरकी भाति सेंध मारनेके औजारों सहित गिरफ्तार क्यो नहीं हुआ? सावित्री मन-ही-मन हँसकर कहेगी, यह बना हुआ साधु जटा-कमंडल पीठपर डालकर त्रिशूलसे सेंध लगा रहा था, पकड़ा गया। इस अपवादकी कल्पना उसे भूसोकी आगमे तिल-तिल करके जलाने लगी? इसी तरह सोचते-सोचते रात कितनी बीत गयी, इसका उसे ज्ञान न रहा। कब भाटा समाप्त होकर ज्वार का जल पैरोंमे लगा, कब कलकत्ते की सड़कें गैसकी रोशनीसे चमचमाने लगीं, कब सिरपर आकाश काला हुआ और नक्षत्र निकले—किसी बातकी उसे खबर न हुई। जब जाड़ेकी, गंगा-

तटकी तेज हवासे इसे ठंढक लगी और उस पारकी चटकलकी घड़ीमें बारह बज गये, तब चौंककर सतीश उठ खड़ा हुआ और घरकी ओर चल पडा। कुछ देरके लिये वह अपनी काल्पनिक आशंकाको भूल गया, लेकिन घर जितना ही पास आने लगा, उतनाही उसका मन छोटा होने लगा। अन्तमें गलीके पास आकर तो ऐसी हालत हो गयी, कि उसके पैर मानों उठाये नहीं उठते। धीरे-धीरे ज्यों-त्यों करके वह मेसके दरवाजेके सामने आकर चुप-चाप खड़ा हो गया। भीतर सन्नाटा था। यह नहीं जान पडा कि कोई जागता है। यद्यपि वह जानता था कि इतनी रातको सावित्री जरूर घर चली गयी होगी, फिर भी दरवाजा खटखटाने और पुकारनेका साहस नहीं हुआ। जी धडकने लगा कि फिर कहीं वही आकर दरवाजा न खोल दे। ठीक इसी समय किवाड़ आपसे आप खुल गये। क्षण भर सतीश बात न कर सका, फिर बोला—"कौन—बिहारी?"

'जी हां बाबूजी!"

'सब लोग खा-पी चुके।"

'हां, सब खा-पी चुके।"

'सावित्री चली गयी?'

'जी हां मुझे बैठनेको कहकर अभी गयी है।'

यह सुन मानो सतीशकी जानमें जान आयी। प्रसन्न मुख-दरवाजा बन्द करने को कहकर वह ऊपर चला गया। बिहारीने आकर पूछा—'बाबू आपका खाना ।"

"खाना पड़ा रहने दो बिहारी, मैं खा आया हूं।"

बिहारीने कहा—"आपके पीनेका पानी टेबुलपर रखा है।"

"अच्छा जाओ, तुम सोओ।" बिहारी चला गया। सतीश बिछौनेपर लेट गया और तत्काल उसे नींद आ गयी।

यह कलह हो जानेके बादसे सावित्रीका भी मन प्रसन्न नहीं था। सतीश की कटूक्ति का जवाब देना उचित नहीं हुआ, यह अनुताप उसको दोपहर तक सताता रहा। इससे उसने सोचा था. कि दिनमे किसी समय एकान्तमे क्षमा मांग लूंगी, इसी आशामें बाट देखते-देखते जब सन्ध्या बीत गयी, तब उसकी आशा आशङ्कामे परिवर्तित होने लगी। वह जानती थी कि कलकत्तेमे विपिनके यहां जानेके सिवा सतीशके लिये और कहीं ठौर नहीं है। अतः सबसे पहले उसे यह भय हुआ कि वह जरूर उसीके यहां गया होगा। धीरे धीरे रात बढ़ने लगी; पर सतीश नहीं आया। विपीनके सिवा वह और भी कहीं जा सकता है, ऐसा भाव भी उसके मनमे नहीं आया। संशय दृढ होकर जब विश्वासके रूपमे आ पहुंचा, तब उसको राह देखना भी क्रमशः सावित्रीके लिये असम्भव हो गया। वास्तवमे उसे घृणा मालूम होने लगी कि क्षमा मांगने के लिये वह ऐसे आदमीकी बाट देख रही है! इसीसे बिहारीको बैठने के लिये कहकर सावित्री बहुत रात हो जाने पर घर चली गयी। घर जाकर बिछौनेपर लेट तो रही, पर आंखोंमें नींद नहीं आयी। सारा शरीर एक अजीब बेचैनीसे सवेरेके लिये छटपटाने लगा।

कमरेकी छोटी टाइमपीस घन्टे-घन्टे बाद बजने लगी, सावित्री सारी रात उसका बजना सुनती रही। जब रात थोडी बाकी रह गयी, तब अंधेरा रहते ही, वह बिछौनेसे उठ बैठी। हाथ-मुंह धोकर बाहर चल पडी। रास्तेमे उस समय मारवाडी स्त्रिया दल बाधकर भजन गाती हुई गङ्गा-नहाने जा रही थी। उनकी ओर देखकर सावित्रीने मन-ही-मन कहा—"गङ्गा मैया, ऐसा करो कि वह कुशलसे हो!" साथ ही उसके दोनों होठ काप उठे और गर्म आसुओंसे उसकी दोनों आखें भर गयीं। इसी कल्पित आशङ्कामे वह सारे मनको डुबोकर बार-बार सतीशकी कुशल-कामना करती हुई रास्ते मे शीघ्रता से चलने लगी और मन ही-मन कहने लगी,—"जो जीमें आवे करे, लेकिन कुशलसे रहे।" मेसके दरवाजेपर आकर बहुत चिल्लाने पुकारनेके बाद बिहारीने दरवाजा खोलते ही खबर दी—"सतीश बाबू बहुत रात गये आये थे और कहींसे खाकर आये थे।" यह खबर सबसे पहले देनी चाहिये, यह बात वृद्ध बिहारी के ध्यानमें थी। सावित्री ऊपर जा रही थी, एकाएक रुक गयी ललाटको सिकुडाकर पूछा—"तो बाबूने खाया भी नहीं होगा?"

"उनका भोजन तो ज्यों-का-त्यों ढका हुआ रखा है।"

सावित्री 'हूं' करके ऊपर चली गयी। उसका दुश्चिन्ता-ग्रस्त मन निर्भय होते ही फिर ईर्षासे जल उठा। दूसरे दिन कुछ दिन चढ़नेपर सतीशकी नींद टूटी और नींद टूटतेही उसे

सावित्रीको याद आयी। ठीक उसी क्षण सावित्री भी उसके सामने आ खड़ी हुई। उसका चेहरा मानों दुःख, क्षोभ और उदासीके बादलोंसे ढँका हुआ था! उसके मुंहकी ओर केवल एक बार देखकर सतीशने सिर निचा कर लिया। जरा देर बाद सावित्रीने कहा—"पूछने आयी हूं, कि क्या भोजन बनेगा?"

सतीशने उसकी ओर देखे बिना कहा,—"रोज जो बनता है वही बने।"—"अच्छा" कहकर सावित्री जानेको तैयार हुई और फिर रुक गयी, बोली—"क्यों बाबू साहब, पढ़ने-लिखनेकी तरह क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नहीं लगता?"

सतीशने धीरेसे कहा—"मैं खा आया था।" भयसे उसने तो झूठी बात कह दी, लेकिन 'कहाँ' यह बात सावित्रीने घृणा-वश नहीं पूछी। थोडी देर चुप रहनेके बाद बोली,—"आज दो दिनसे आप भागे-भागे क्यों फिर रहे हैं? किसके डरसे? जरा सुनूँ तो। मेरे लिये यदि आपको तनिक भी कष्ट हो, तो आप मुझे फौरन जवाब दे सकते हैं।"

सतीशने सिर उठाकर कहा—'तुमने हमारा क्या बिगाड़ा है? इसके सिवा मैं तुम्हे जवाब देने न देनेका मालिक भी तो नहीं हूं। मेस एक मेरा ही तो नहीं है?"

सावित्रीने कहा—"अकेलेका होता तो शायद जवाब दे देते? खैर, मैं स्वयं चली जाती हू।" सतीशने जवाब नहीं दिया उसे मौन रहते देखकर सावित्री मन-ही-मन जलकर बोली—"मेरे जानेपर तो आप खुश रहेंगे? आपके पैर पड़ती हूं, सतीश

बाबू ! हाँ या ना कुछ तो कह दीजिये।" तो भी सतीश कुछ न बोला। क्योंकि सतीश जानता था कि इस घरमें सावित्रीने अपने लिये एक खास जगह बना ली है। इस तरह अकस्मात् उसके हट जानेसे कुछ भी छिपा न रहेगा। उस समय सारी बात कानों-कानों फैल जायेगी। इस भावी बातको एकदम निश्चित समझकर वह डर-सा गया। तनिक देर चुप रहकर मधुर कंठसे बोला—"मुझे माफ करो, सावित्री ! जबतक मैं यहां टिका हुआ हूं, कमसे कम तबतक तो तुम कहीं न जाओ।"

कोई और समय होता तो वह उसी दम क्षमा कर देती, किन्तु सतीशके सम्बन्धमें उसने एक जिस निराधार सन्देहको अपने मनमें स्थान दे रखा था, उसीके कारण उसकी मीठी बातोंको कपटपूर्ण समझ निर्दय बन गयी और उसीके गलेकी नकल करके तुरन्त बोल उठी—'आप इतनी नरमीयतसे माफी मांगकर दूधका धोया बनना क्यों चाहते हैं ? मुझ जैसी नीच स्त्रीका आंचल पकड़कर खींचना क्या आपके लिये आज नयी बात है, जो लाजसे या मरे जा रहे हैं ? इससे अच्छा तो यह होता, कि आप घर चले जाते। कलकत्तेमें रहकर व्यर्थ क्या खराब होंगे ? लिखना-पढ़ना आपके बूतेके बाहरकी बात है।"

जिस सतीशकी उग्र प्रकृति किसीकी भी परवाह नहीं करती थी, बात बरदाश्त करना जिसने किसी दिन सीखा ही नहीं था, वह आज इतने बड़े अपमानकी बात सुनकर भी चुप हो रहा ! उसका अपराधी मन उस भारवाही पशुके समान रास्तेपर पछड़-

कर गिर गया था, जिसपर बेहिसाब भार लाद दिया गया हो। इसीसे सावित्रीके बारम्बारके निष्ठुर आघातोंको चुपचाप सहनेके सिवा उसके पास कोई दूसरा चारा नहीं था। वह सिरतक न उठा सका, लेकिन सावित्रीको चेत हो आया। उसका दुस्साहस क्रोधको पार कर गया था, यह मानों उसके कानोंमें भी खटक गया, वह बड़ी देरतक चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे धीरे बाहर चली गयी।

३

आज सावित्री सारे काम-काज तो करती रही; पर उसके मनमे एक उत्कण्ठा दिनभर बनी रही। सतीश यदि कलकी तरह आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बातका उत्तर देता तो अच्छा था, लेकिन उसने कुछ भी नहीं कहा। गम्भीर, उदास मुखसे नित्यकी भांति भोजन कर पढ़ने चला गया और ठीक समयपर वापस आ, निस्तब्ध होकर घरमे बैठा रहा। आड़से सावित्री सब कुछ देखती रही, लेकिन कोई बहाना लेकर भी उसके कमरेमे जानेका उसे साहस नहीं हुआ। नित्य संध्यांके पहले वह अपने हाथोंसे उसका कमरा झाड़ बुहार आया करती थी, आज उसने बिहारीको भेज दिया। शामको रोशनी भी बिहारी ही जला गया।

नित्य इसी समय राखाल बाबूके कमरेमे शतरंजका अड्डा जमता है, आज भी जमा और रह-रहकर बात बात पर हँसीके

फौवारे छूटने लगे। सामनेकी खुली छतपर कोई न था। सावित्री-ने इधर-उधर देखा। अपने सारे संकोचको उसने जबर्दस्ती घसीटकर निकाल फेंका और दबे पावों सतीशके कमरेमें आकर खड़ी हो गयी। सतीश बिछौनेपर चित्त पड़ा हुआ मानों छतकी कड़ियां गिन रहा था। अब वह उठ बैठा, क्षणभर चुप रहकर सावित्रीने पूछा—"सन्ध्या-वन्दनका सामान ठीक कर दूं?"

सतीशने कहा—"कर दो।" फिर सावित्रीको चुप हो जाना पड़ा। लेकिन दो-चार पल बाद वह बोली—"भला सोचिये तो सही, लोग क्या कहेंगे?"

सतीशने कोई उत्तर नहीं दिया। सावित्रीने कहा—"आपने मुझे तो रहनेको कहा लेकिन आप स्वयं यह क्या कर रहे हैं?"

सतीशने गम्भीर भावसे कहा—"मैं क्या कर रहा हूं? कुछ भी तो नहीं—हां, केवल चुप हूं।"

सावित्रीने कहा—"यह चुप्पी ही तो बुरी है जब और कोई नहीं है, तब आपके चुप रहनेसे ही चर्चा चलेगी। क्या आप चाहते हैं?' क्षणभर स्थिर रहकर बोली—"जबर्दस्ती फन मोल लेनेकी कहावत क्यों चरितार्थ करना चाहते? कोई दोष नहीं, कोई बात नहीं, फिर अपराधीका स्वांग क्यों बनाये हुए हैं? इसीपर पांच आदमी कानाफूसी करेंगे, हंसी दिल्लगी उड़ावेंगे। हो सकता है, कि आप इसे सह लें पर मेरे लिये तो असम्भव है। मैं देखती हूं, मुझे यहांसे शीघ्र ही विदा होना पड़ेगा।'

सतीशने मन-ही-मन बेचैन-सा होकर कहा—"क्या सचमुच ही मैंने कोई अपराध नहीं किया ?"

सावित्रीने कहा—"नहीं—कुछ भी नहीं। तनिक सोचिये भी तो। आप ही मन साफ हो जायेगा। मेरे साथ आपने जो कुछ किया है, वह तो···" इतना कहकर सावित्री एकाएक रुक गयी। जैसे दौड़ता हुआ घोड़ा सहसा किसी गहरी खाईके किनारे पहुंचकर अपने दोनों पांव उठाकर प्राणोंको बाजी-सी बदकर अड़ जाता है, ठीक उसी तरह सावित्री की चलती हुई जीभ भी एकाएक अड़ गयी उसकी इस आकस्मिक निस्तब्धतासे विस्मित होकर सतीशके सिर उठाते ही आँखें चार हुईं। मारे लज्जाके सावित्री आपही मर-सी गयी। वह कहने चली थी कि उसकी जैसी स्त्रीके प्रति ऐसा अपराध करना कोई लज्जाका विषय नहीं—किन्तु मारे लज्जाके उसके बालतक सिहर उठे।

सतीश कुछ कहना चाहता था। सावित्रीने रोककर कहा—"चुप रहिये। जाने दीजिये। झूठ-मूठ तिलका ताड़ बनाकर कष्ट न उठाइये। अरे ओ बिहारी। बाबूकी पूजाकी जगह जरा जल्दीसे धो दे। मैं बड़ी देरसे आसन लिये खड़ी हूं।" बिहारी किसी कामसे इसी तरफ आ रहा था। तत्काल जल लाने वापस चला गया। सावित्रीने कुछ रूठकर कहा—'आपके रंग-ढंग और बात-व्यवहारोंसे दो दिनोंसे मैं कितनी परेशान हू, पर आपको एक बार मेरी इन हालतपर आँख उठाकर देखने तककी फुर्सत नहीं !"

फौवारे छूटने लगे। सामनेकी खुली छतपर कोई न था। सावित्रीने इधर-उधर देखा। अपने सारे संकोचको उसने जबर्दस्ती घसीटकर निकाल फेंका और दबे पावों सतीशके कमरेमें आकर खड़ी हो गयी। सतीश बिछौनेपर चित्त पड़ा हुआ मानों छतकी कड़ियां गिन रहा था। अब वह उठ बैठा, क्षणभर चुप रहकर सावित्रीने पूछा—"सन्ध्या-वन्दनका सामान ठीक कर दूं?"

सतीशने कहा—"कर दो।" फिर सावित्रीको चुप हो जाना पड़ा। लेकिन दो-चार पल बाद वह बोली—"भला सोचिये तो सही, लोग क्या कहेंगे?"

सतीशने कोई उत्तर नहीं दिया। सावित्रीने कहा—"आपने मुझे तो रहनेको कहा लेकिन आप स्वयं यह क्या कर रहे हैं?"

सतीशने गम्भीर भावसे कहा—"मैं क्या कर रहा हूं? कुछ भी तो नहीं—हां, केवल चुप हूं।"

सावित्रीने कहा—"यह चुप्पी ही तो बुरी है जब और कोई नहीं है, तब आपके चुप रहनेसे ही चर्चा चलेगी। क्या आप चाहते हैं?" क्षणभर स्थिर रहकर बोली—"जबर्दस्ती ... मोल लेनेकी कहावत क्यों चरितार्थ करना चाहते ...? कोई दोष नहीं, कोई बात नहीं, फिर अपराधीका स्वांग ...यों बनाये हुए हैं? इसीपर पांच आदमी कानाफूसी करेंगे, हंसी दिल्लगी उड़ावेंगे। हो सकता है, कि आप इसे सह लें पर मेरे लिये तो असम्भव है। मैं देखती हूं, मुझे यहांसे शीघ्र ही विदा होना पड़ेगा।"

सतीशने मन-ही-मन बेचैन-सा होकर कहा—"क्या सचमुच ही मैंने कोई अपराध नहीं किया ?"

सावित्रीने कहा—"नहीं—कुछ भी नहीं। तनिक सोचिये भी तो। आप ही मन साफ हो जायेगा। मेरे साथ आपने जो कुछ किया है, वह तो ·····" इतना कहकर सावित्री एकाएक रुक गयी। जैसे दौड़ता हुआ घोड़ा सहसा किसी गहरी खाईके किनारे पहुचकर अपने दोनों पांव उठाकर प्राणोंको बाजी-सी बदकर अड जाता है, ठीक उसी तरह सावित्री की चलती हुई जीभ भी एकाएक अड गयी उसकी इस आकस्मिक निरत-व्यतासे विस्मित होकर सतीशके सिर उठाते ही आँखें चार हुईं। मारे लज्जाके सावित्री आपही मर-सी गयी। वह कहने चली थी कि उसकी जैसी स्त्रीके प्रति ऐसा अपराध करना कोई लज्जाका विषय नहीं—किन्तु मारे लज्जाके उसके बालतक सिहर उठे!

सतीश कुछ कहना चाहता था। सावित्रीने रोककर कहा—"चुप रहिये। जाने दीजिये। झूठ-मूठ तिलका ताड़ बनाकर कष्ट न उठाइये। अरे ओ बिहारी! बाबूकी पूजाकी जगह जरा जल्दीसे धो दे। मैं बड़ी देरसे आसन लिये खड़ी हूं।" बिहारी किसी कामसे इसी तरफ आ रहा था। तत्काल जल लाने वापस चला गया। सावित्रीने कुछ रूठकर कहा—'आपके रंग-ढंग और बात-व्यवहारोंसे दो दिनोंसे मैं कितनी परेशान हूं, पर आपको एक बार मेरी इस हालतपर आंख उठाकर देखने तककी फुर्सत नहीं!"

उसकी इतनी शीघ्रतामे कही हुई इन बातोंको भली भाति समझनेका अवकाश सतीशको नहीं मिला। फिर उसकी भीतरी ग्लानि मानों साफ हो चली। उसके बाद ही क्षमा प्राप्त अपराधकी भाति उसने अनुतप्त स्वरमे कहा—"पर क्या मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, सावित्री ?"

सावित्रीने घबड़ाकर कहा—"आप समझते नहीं तो मैं कैसे समझाऊं ? सौ बार—हजार बार कहती हूं, कि आपके उस व्यवहारसे मेरा तनिक भी अपमान नहीं हुआ। कृपाकर आप ठिकाने आइये—मनको स्थिर कीजिये। बस, हाथ जोड़कर मैं आपसे यही विनय करती हूं।"

जवाबमें सतीश कुछ कहना ही चाहता था, किन्तु सावित्री भौंहोंके इशारेसे मना कर झट बोल उठी—"बिहारी, आ गया, ला।" बिहारी लोटेमे जल लाया था। सावित्रीने उससे लोटा लेकर कमरेका एक कोना अच्छी तरह धो, आंचलसे पोंछकर सतीशसे कहा—अच्छा, अब आप जाइये। हाथ-पैर धोइये और कपड़े बदलकर संध्या-वन्दन कर लीजिये। अर्घा और आचमनी उस ताकपर रखी है।" हाथमे दिया और बातों-से सतीशके हृदयके असह्य भारको एकदम हलका कर सावित्री बिहारीको साथ लेकर धीरे-धीरे बाहर चली गयी।

सतीशने स्वस्थ मनसे सन्ध्यावन्दन समाप्त कर उठते ही देखा कि इसी बीचमे कोई चुपचाप आसन बिछाकर भोजनकी थाली रख गया है। यद्यपि कमरेमे और कोई नहीं था, तो भी उसने

समझ लिया, कि वह अकेला नहीं है। आसनपर बैठकर उसने धीरे-धीरे कहा—"अभी इतना ज्यादा खा लूंगा तो फिर रातको न खा सकूंगा।" बाहरसे जवाब आया, "खानेकी जरूरत भी न होगी। विपिन बाबूके यहांका न्योता आया हुआ है।"

सतीश हंस पड़ा, बोला—"जाओ, तंग न करो। मैं कहीं न जा सकूंगा।" सावित्रीने आड़से कहा—"भला ऐसा भी होता है? बेचारे कह गये हैं, शायद कहीं जाना है, आप तो जानते ही होंगे। आपके न जानेसे सब किये-करायेपर पानी फिर जायेगा। शायद गाने-बजानेको ।"

'कुछ भी हो"—कहकर और उसकी बातोंपर कोई विशेष टीका-टिप्पणी न कर सतीश चुपचाप खाने लगा। खा-पीकर मुंह हाथ धो, सिरहाने बत्ती रख, चारपाईपर लेट भले विद्यार्थीकी तरह एक डाक्टरी पुस्तक हाथमें ले पन्ने उलटने लगा, किन्तु पढ़नेमें उनका मन न लग सका। उसका चिन्ता-रहित चित्त बन्धनमुक्त घोड़ेकी तरह प्रयोजन न रहनेपर भी जहां-तहां दौड़ने लगा।

उस समय ब्राह्मण देवताने रसोई घरमें चूल्हेपर चावल-दालकी हँडियां चढ़ा दी थीं और आप बिहारीसे गांजा मलवा रहे थे। राखाल बाबूके कमरेमें चौपड़के पासेकी खटखटाहटके साथ-साथ शोर-गुल बढ़ता जा रहा था। सतीशने पुकारा—"सावित्री!" सावित्री उस समय भी चौखटके बाहर बैठी हुई थी, बोली—"कहिये।"

उसकी इतनी शीघ्रतामें कही हुई इन बातोंको भली भांति समझनेका अवकाश सतीशको नहीं मिला। फिर उसकी भीतरी ग्लानि मानों साफ हो चली। उसके बाद ही क्षमा प्राप्त अपराधकी भांति उसने अनुतप्त स्वरमें कहा—"पर क्या मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, सावित्री ?"

सावित्रीने घबड़ाकर कहा—"आप समझते नहीं तो मैं कैसे समझाऊं ? सौ बार—हजार बार कहती हूं, कि आपके उस व्यवहारसे मेरा तनिक भी अपमान नहीं हुआ। कृपाकर आप ठिकाने आइये—मनको स्थिर कीजिये। बस, हाथ जोड़कर मैं आपसे यही विनय करती हूं।"

जवाबमें सतीश कुछ कहना ही चाहता था, किन्तु सावित्री भौंहोंके इशारेसे मना कर झट बोल उठी—"बिहारी, आ गया, ला।" बिहारी लोटेमें जल लाया था। सावित्रीने उससे लोटा लेकर कमरेका एक कोना अच्छी तरह धो, आंचलसे पोंछकर सतीशसे कहा—अच्छा, अब आप जाइये। हाथ-पैर धोइये और कपड़े बदलकर संध्या-वन्दन कर लीजिये। अर्घा और आचमनी उस ताकपर रखी है।" हाथसे दिखा और बातों-से सतीशके हृदयके असह्य भारको एकदम हल्का कर सावित्री बिहारीको साथ लेकर धीरे-धीरे बाहर चली गयी।

सतीशने स्वस्थ मनसे संध्यावन्दन समाप्त कर उठते ही देखा कि इसी बीचमें कोई चुपचाप आसन बिछाकर भोजनकी थाली रख गया है। यद्यपि कमरेमें और कोई नहीं था, तो भी उसने

समझ लिया, कि वह अकेला नहीं है। आसनपर बैठकर उसने धीरे-धीरे कहा—"अभी इतना ज्यादा खा लूंगा तो फिर रातको न खा सकूंगा।' बाहरसे जवाब आया, "खानेकी जरूरत भी न होगी। विपिन बाबूके यहांका न्योता आया हुआ है।"

सतीश हंस पड़ा, बोला—"जाओ, तंग न करो। मैं कहीं न जा सकूंगा।" सावित्रीने आड़से कहा—"भला ऐसा भी होता है? बेचारे कह गये हैं, शायद कहीं जाना है, आप तो जानते ही होंगे। आपके न जानेसे सब किये-करायेपर पानी फिर जायेगा। शायद गाने-बजानेकी ।"

'कुछ भी हो"—कहकर और उसकी बातोंपर कोई विशेष टीका-टिप्पणी न कर सतीश चुपचाप खाने लगा। खा-पीकर मुंह हाथ धो, सिरहाने बत्ती रख, चारपाईपर लेट भले विद्यार्थीकी तरह एक डाक्टरी पुस्तक हाथमे ले पन्ने उलटने लगा, किन्तु पढ़नेमे उनका मन न लग सका। उसका चिन्ता-रहित चित्त बन्धनमुक्त घोड़ेकी तरह प्रयोजन न रहनेपर भी जहां-तहां दौड़ने लगा।

उस समय ब्राह्मण देवताने रसोई घरमे चूल्हेपर चावल-दालकी हँडियां चढ़ा दी थीं और आप विहारीसे गांजा मलवा रहे थे। राखाल बाबूके कमरेमे चौपड़के पासेकी खटखटाहटके साथ-साथ शोर-गुल बढ़ता जा रहा था। सतीशने पुकारा—"सावित्री!" सावित्री उस समय भी चौखटके बाहर बैठी हुई थी, बोली—"कहिये।"

खड़ी हुई। एकने कहा—"यही तो सतीश बाबूका कमरा है।"

दूसरेने कहा—"नौकरने तो कहा था, कि बाबू कमरेमें ही हैं।"

पहलेने झुंझलाकर कहा—"कमरा तो अन्धेरा पड़ा है। भला कोई भलामानस शामको अन्धेरेमें बैठा रहता है? तुम भी बस—।"

दूसरेने जवाबमें उसके कानमें कुछ कहा, पाकेटसे दियासलाई ढूंढ़ निकाली और कांपते हुए हाथसे रोशनी जलाने लगा।

इधर बिछौनेपर सतीशके शरीरका खून पानी हो गया। वह सिरसे पैरतक पसीने होने लगा। इधर सावित्री मारे लज्जा और घृणाके काठ हो गयी।

दियासलाई जल उठी। 'अरे! यहां कौन बैठा है?"

पहला आदमी घरमें घुसकर ज्योंही दियासलाई जलानेलगा, त्योंही सावित्री उठ खड़ी हुई।

दूसरे आदमीने जरा हटकर पूछा—"सतीश बाबू कहां हैं?'

सावित्री चुपचाप बिछौनेकी तरफ इशारा करके बाहर चली गयी। उसके जाते ही दोनोंने ठठाकर हंसना शुरू कर दिया। उस हंसीका शब्द और अर्थ सावित्रीके कानोंमें जा खटका। सतीश कम्बलके भीतर बारम्बार अपने लिये मृत्यु ढुंढ़ाने लगा।

उन दोनोंने कम्बल खींचकर अलग फेंक दिया और सतीश-को जबर्दस्ती पकड़कर ले चले।

तबतक उनकी विकट हास्यध्वनि एकदम घरके बाहर

गयी, तबतक सावित्री एक अन्धेरे
फर इस तरह खड़ी रही, जैसे उसके

। कुछ भी मालूम न हो सका। रसोई
घरमें महाराज अभी गांजेका दम लगाना समाप्त कर बिहारीको यह समझा रहे थे कि वेदोंने किस प्रकार इसे मुक्ति देनेवाला बतलाया है और एक कमरेमें राखाल बाबूका दल इस बात को मीमांसा कर रहा था कि हड्डीका पासा आदमी की चिल्लाहट सुन सकता है या नहीं ?

रास्तेमें आकर तीनों एक गाडीपर बैठ गये। उनकी हंसी असह्य हो जानेपर सतीशने बहुत ही रूखे स्वरमें कहा—"या तो आप लोग चुप रहिये, नहीं तो मुझे माफ कीजिये, मैं उतर जाता हूं।"

उनकी बात सुन, एक तो "अच्छी बात है" कहकर बड़ी विकट आवाजमें हंस पडा और दूसरा अपने साथी को चुप रहनेके लिये डांट बताते हुए उससे भी जोरसे हंस उठा। इन शराबियोंको समझाना व्यर्थ समझकर सतीश निष्फल क्रोधसे खिडकीसे मुंह निकाल रास्तेकी ओर देखने लगा।

रातको अंधेरे बरामदेमें सावित्री चुपचाप बैठी थी। मालूम होता है, शामको जो लज्जा जनक घटना हो गयी थी, उसका मन अब भी उसकी आलोचना कर रहा था। इसी समय

बिहारी आकर खड़ा हुआ और बोला—"सब लोग खा-पी चुके। महाराज तुम्हें जलपान करनेको बुला रहे हैं।"

सावित्रीने सिर उठाकर खिन्न मनसे कहा—"बिहारी, आज मैं नहीं खाऊंगी।" बिहारी सावित्रीको स्नेहकी दृष्टिसे देखता था, वह उसे मानता भी था। चिन्तित होकर उसने पूछा—"खाओगी क्यों नहीं? तबीयत तो अच्छी है?"

"हां, तबीयत ठीक है, लेकिन खानेको जी नहीं चाहता। जाओ, तुमलोग खाओ-पीओ।"

बिहारीने कहा—"तो चलो, तुम्हें पहुचा आऊं।"

सावित्रीने कहा—"अच्छा, चलो। लेकिन हां, बिहारी, एक बात है, सतीश बाबू अभीतक लौटे नहीं हैं, तबतक तुम जगे रह सकोगे?"

बिहारीने कुछ चौंककर कहा—"मैं! लेकिन मेरी कमरमें तो आज फिर दर्दका रोग आ गया है।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

बिहारीने जरा सोचकर कहा—"अगर आज तुम महाराजको बुलाकर कह दो तो ।"

सावित्री बोल उठी—"नहीं, यह न होगा। बेचारे बाबाजीको इस जाड़ेमें तकलीफ न दूंगी।"

इच्छा न रहनेपर भी बिहारी कुछ देरतक चुप रहकर बोला—अच्छा, न सही, मैं ही रहूंगा। तो चलो, तुम्हें पहुंचा आऊं।"

सावित्री उठ खड़ी हुई, दो-एक कदम चलकर ठहर गयी, बोली—"बिहारी, रहने दो। तुम जाओ, खाओ। उसके बाद ही जाऊँगी।"

बिहारीके चले जानेपर सावित्री वापस आकर वहीं बैठ गयी और चुपचाप अन्धकारमय आकाशकी ओर देखने लगी। आज सतीशके सम्बन्धमें उसे बड़ी आशङ्का थी। उसे शराबियोंके हाथमें पड़ते उसने अपनी आँखों देखा था। इससे उसका मन घर जानेको तैयार न हो सका। जिस सतीशके व्यवहारोंके कारण सावित्रीने मन-ही मन अशेष अपमान और लाँछना सहनेके बाद आज सवेरेतक यही निश्चय कर रखा था कि अब मैं यहांका काम अवश्य छोड़ दूंगी, उसी सतीशकी अवश्यम्भावी दुर्गतिकी आशङ्का कर वह बेचैन-सी हो उठी। सतीशके सारे अपराधोंको भूले बिना और उसपर आनेवाली भावी विपत्तिका कोई रास्ता किये बिना वह घर जानेको किसी प्रकार तैयार न हो सकी। बिहारीके खा-पीकर आनेपर उसने कहा,—"बिहारी तुम जाओ, सो रहो, मैं यहीं रहती हूं।"

बिहारीने आश्चर्यसे पूछा,—"घर न जाओगी?"

'बाबूको लौट आने दो। क्या तब मुझे घर पहुंचाने न जा सकोगे?"

"क्यों नहीं? जरूर पहुंचा सकूंगा।"

"तो फिर यही ठीक है। मैं बैठी हूँ। तुम जाओ, सोओ।"

बिहारी खुश होकर चला गया। सावित्री एक चादर ओढ़कर बैठ

बिहारी आकर खड़ा हुआ और बोला—"सब लोग खा-पी चुके। महाराज तुम्हें जलपान करनेको बुला रहे हैं।"

सावित्रीने सिर उठाकर खिन्न मनसे कहा—"बिहारी, आज मैं नहीं खाऊँगी।" बिहारी सावित्रीको स्नेहकी दृष्टिसे देखता था, वह उसे मानता भी था। चिन्तित होकर उसने पूछा—"खाओगी क्यों नहीं? तबीयत तो अच्छी है?"

"हाँ, तबीयत ठीक है, लेकिन खानेको जी नहीं चाहता। जाओ, तुमलोग खाओ-पीओ।"

बिहारीने कहा—"तो चलो, तुम्हें पहुंचा आऊँ।"

सावित्रीने कहा—"अच्छा, चलो। लेकिन हाँ, बिहारी, एक बात है, सतीश बाबू अभीतक लौटे नहीं हैं, तबतक तुम जगे रह सकोगे?"

बिहारीने कुछ चौंककर कहा—"मैं! लेकिन मेरी कमरमें तो आज फिर दर्दका दौरा आ गया है।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

बिहारीने जरा सोचकर कहा—"अगर आज तुम महाराजको बुलाकर कह दो तो ।"

सावित्री बोल उठी—"नहीं, यह न होगा। बेचारे बाबाजीको इस जाड़ेमें तकलीफ न दूंगी।"

इच्छा न रहनेपर भी बिहारी कुछ देरतक चुप रहकर बोला—अच्छा, न सही, मैं ही रहूंगा। तो चलो, तुम्हें पहुंचा आऊँ!"

सावित्री उठ खड़ी हुई, दो-एक कदम चलकर ठहर गयी, बोली—"बिहारी, रहने दो। तुम जाओ, खाओ। उसके बाद ही जाऊंगी।"

बिहारीके चले जानेपर सावित्री वापस आकर वहीं बैठ गयी और चुपचाप अन्धकारमय आकाशकी ओर देखने लगी। आज सतीशके सम्बन्धमें उसे बड़ी आशङ्का थी। उसे शराबियोंके हाथमें पड़ते उसने अपनी आंखों देखा था। इससे उसका मन घर जानेको तैयार न हो सका। जिस सतीशके व्यवहारोंके कारण सावित्रीने मन-ही मन अशेष अपमान और लाञ्छना सहनेके बाद आज सवेरेतक यही निश्चय कर रखा था कि अब मैं यहांका काम अवश्य छोड़ दूंगी, उसी सतीशको अवश्यम्भावी दुर्गतिकी आशङ्का कर वह बेचैन-सी हो उठी। सतीशके सारे अपराधोंको भूले बिना और उसपर आनेवाली भावी विपत्तिका कोई रास्ता किये बिना वह घर जानेको किसी प्रकार तैयार न हो सकी। बिहारीके खा-पीकर आनेपर उसने कहा,—"बिहारी तुम जाओ, सो रहो, मैं यहीं रहती हूं।"

बिहारीने आश्चर्यसे पूछा,—"घर न जाओगी?"

'बाबूको लौट आने दो। क्या तब मुझे घर पहुंचाने न जा सकोगे?"

"क्यों नहीं? जरूर पहुंचा सकूँगा।"

"तो फिर यही ठीक है। मैं बैठी हूँ। तुम जाओ, सोओ।"

बिहारी खुश होकर चला गया। सावित्री एक चादर ओढ़कर बैठ

गयी। वे दोनों शराबी जो कुछ देख गये हैं, उसे अवश्य लोगोंके आगे गाते फिरेंगे। इसमें उसे लेशमात्र भी संशय नहीं था; और कोई भी इस घटनाका दूसरा अर्थ नहीं लगायेगा—इस बातमें भी उसे सन्देह नहीं रह गया। विपिनको वह जानती थी। वह इस बातको जरूर सुनेगा और जब उसका यहाँ आना जाना होता है तब यहाँके लोग भी यह बात जाने बिना न रहेंगे। इसके बाद फिर सतीश कौन-सा मुँह लेकर एक घड़ी भी यहाँ रह सकेगा! इस झूठे कलङ्ककी लज्जा वह कैसे सहेगा? संयोग-वश जो हुआ, वह तो हो ही गया; अपने विषयमें वह यहींतक सोचकर ठहर गयी। लेकिन बार-बार सोचकर भी सतीशके सम्बन्धमें उसकी अक्लने कुछ काम न किया।

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, फिर भी सतीशका पता नहीं। पास ही किसी पड़ोसीकी घड़ीमें टन-टन करके दो बज गये। सुनसान गहरी रातमें घड़ीकी आवाज साफ सुन पड़ी। छतसे ठंडी-ठंडी हवाका झोंका-सा आकर उसकी आँखोंको नींदसे दबाने लगा, तो भी वह दरवाजेपर कान लगाये जागती बैठी रही। जब रात बहुत थोड़ी बाकी रह गयी तब एक गाड़ीकी घड़घड़ाहट सुन, वह चौंककर उठ बैठी। उसे मालूम हुआ कि गाड़ी उसी दरवाजेपर आकर लगी है। सावित्री चुपचाप नीचे उतरी और सावधान होकर दरवाजेके पास आ खड़ी हुई। अगर कोई दूसरा ही हो, इस डरसे उसने सहसा द्वार खोलनेका साहस नहीं किया। देर होने लगी, किसीने दरवाजा नहीं

खटखटाया। जो गाड़ी आयी थी, वह भी वापस चली गयी। सहसा सावित्रीका हृदय आशङ्कासे भर गया, और तुरन्त सब दुविधा छोड़कर उसने फुर्तीसे किवाड़ खोल दिये। सतीश चौखटके सहारे बैठा क्या था—लुढ़का हुआ-सा पड़ा था। उसका चेहरा पीला पड़ रहा था, आखें मुंदी हुई थीं। उसके कपड़े कीचड़ और ललाटमें एक तरफ रक्तकी रेखा पासके गैसकी रोशनीमें स्पष्ट देखते ही सावित्री रो पड़ी। साथ-ही-साथ वह उसके सामने आ, घुटने टेक और दोनों हाथोंसे सतीशका मुंह ऊपर उठाकर, बोली,—"बाबूजी, ऊपर चलिये।"

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, मजेमें हूं।"

सावित्रीने आंखें पोंछकर कहा,—"कहीं चोट लगी है।"

"नहीं, मजेमें हूं। छोड़ दो मुझे।"

"यह तो रास्ता है, घरमें चलिये।"

सतीशने फिर सिर हिलाकर कहा,—"नहीं, न जाऊंगा, मजेमें हूं।"

सावित्रीने जरा कड़ी आवाजमें कहा,—"सुनते नहीं? उठिये, अन्दर चलिये।" फटकार सुनते ही सतीशकी लाल, विह्वल आखें खुलीं। वह कुछ देर देखता रहा, फिर उसकी ओर दोनों हाथ बढ़ाकर बोला, "चलो।" उसीके कन्धेका सहारा लेकर सतीश उठ खड़ा हुआ, उसीके सहारे बड़े कष्टसे, बड़ी देरमें झूमता-झामता अन्धेरी सीढ़ियोंसे, ऊपर कमरेमें आकर लेट गया।

लड़खड़ाती हुई जबानसे कहने लगा—"सावित्री! तुम्हारा ऋण मैं किसी जन्ममें न चुका सकूंगा।"

सावित्रीने कहा—"ठीक है, आप अब सोइये।"

सतीश फौरन उठ बैठा, बोला,—"क्या? सोऊं?—कभी नहीं।"

सावित्रीने फिर डांट बताते हुए कहा,—"फिर वही बात।"

सतीश लेट गया। क्षण भर चुप रहकर बोला,—"लेकिन तुम्हारा ऋण . ।"

सावित्री "अच्छा" कहकर उठी, लालटेन लाकर उसने घाव को धोकर पूछा—"कहां कैसे गिर पड़े?"

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, गिरा नहीं।"

सावित्री रुंधे हुए कण्ठसे बोली,—"फिर यदि किसी दिन आपने शराब पी, तो मैं आपके पैरोंतले सिर पटक कर जान दे दूंगी।"

सतीशने कहा—"अब कभी न पीऊंगा।"

"मुझे छूकर कसम खाइये" कहते हुए सावित्री अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया।

सतीशने अपने दोनों हाथोंमें उसका भीगा हुआ ठंडा हाथ लेकर कहा—"लो कसम खाता हूं, अब कभी न पीऊंगा।"

सावित्रीने हाथ खींच लिया, कहा—"याद रहेगा?"

"न रहे तो याद करा देना।"

"अच्छा, मैं जाती हूं, आप सोइये"—कहकर सावित्री

चुपचाप सावधानीसे किवाड़ बन्द कर बाहर आ खड़ी हुई। ठीक सामने आकाशमें शुक्रतारा चमक रहा था। उस ओर देख सावित्री दोनों हाथ जोड़; रो कर बोली—"देवता, तुम साक्षी रहना।"

रातका अंधेरा फीका होता जा रहा था, रास्तेमें बैलगाड़ी की घड़घड़ाहट और आटेकी मिलकी सीटी सुनाई देने लगी। सावित्री शीघ्रतासे नीचे उतर गयी और रसोईघरके एक कोनेमे चादर ओढ़कर लेट रही। लेटतेही उसके निद्राकुल नेत्र नींदसे मुंद गये।

४

दस बज चुके थे, येन केन प्रकारेण स्नान-संध्या-वन्दन समाप्त कर दिवाकरने रसोईघरके दरवाजेपर खड़े होकर कोमल कण्ठसे पुकारा—"अजी ओ महराजजी, जल्दीसे रसोई परोसो, बड़ी देर हो गयी।"

बगलमे ही भण्डार-घर था। उसका कण्ठ स्वर सुन उसकी बड़ी ममेरी बहिन महेश्वरी बाहर आ बोली, "दिवू! अरे भैया, मैं तेरी ही बाट जोह रही थी। एक बार ऊपर जाकर ठाकुरजीको पूजा तो कर आ। सब कुछ ठीक किया हुआ है, मेरे भैया, जा जरा भी देर न होगी।"

महेश्वरी इस घरकी बड़ी लड़की और मालिकन है। चार बरस हुए, विधवा हो गयी, तभीसे पिताके घर है। दिवाकर

ठिठक गया। क्षणभर चुप रहकर बोला—"नहीं बहनजी, पूजामें लग जानेसे मेरे कालेजका पहला घन्टा आज भी खराब जायेगा।"

महेश्वरीने हँसकर कहा—"अरे! तेरा पहला घन्टा नष्ट हो जायेगा, तो क्या ठाकुरजी पूजा नहीं पायेंगे?"

दिवाकरने पूछा—"पण्डितजी कहां गये? आज उनको क्या हुआ?"

महेश्वरीने कहा,—"वह बाबूजीके साथ चौसर खेल रहे हैं। न मालूम कब उठें, उनका क्या ठीक है?"

दिवाकर—"बहनजी, मंझले भैयासे कहो, आज उनकी कचहरी बन्द है।"

महेश्वरी—"वीरेन्द्रकी तबीयत कलसे ठीक नहीं है। वह आज नहायेगा भी नहीं, फिर पूजा कैसे करेगा?"

दिवाकर—"तो छोटे भैयासे कहो। वे बारह बजेके बाद कचहरी जाते हैं। अभी उन्हें बहुत देर है।"

महेश्वरीने झुंझलाकर कहा—"तेरी बच्चा कुछ समझमें नहीं आता। कल रातको उपेन्द्र थियेटर देखने गया था, अभी तक सोकर नहीं उठा है इतना समय हो गया न मुंह धोया है न चाय पी है। रातभर जागनेसे उसकी तबीयत क्या ठीक होगी? इसके सिवा वह कभी पूजा करता है, जो आज पूजा करने जायेगा?"

इधर महराजजी थाली परोसकर पुकार मचा रहे थे।

दिवाकरने कहा—"रोज ही कोई-न-कोई अडंगा खड़ा हो जाता है और मेरा पहला घण्टा नष्ट हो जाता है। मैं इम्तहान कैसे दूँगा ?"

महेश्वरीको क्रोध बढ़ता जा रहा था। बोली—"इम्तहान दिये बिना काम चल सकता है; लेकिन ठाकुरजीकी पूजा हुए बिना तो नहीं चल सकता। तुझसे बहस करनेकी फुर्सत मुझे नहीं है और भी काम हैं।"

रसोइयेने फिर पुकारकर कहा, दिवू बाबू, "आइये बैठिये। रसोई परोसी हुई है।"

महेश्वरीने फटकार कर कहा—"महराज, तुम्हें तनिक भी अक्ल नहीं। मैं उसे पूजा करने भेज रही हूं और तुम शोर मचा रहे हो खानेके लिये। उठा ले जाओ थाली—पूजा कर आनेपर देना।" यह कह वह भण्डार घरमें फिर चली गयी। दिवाकर कुछ देर क्षुब्ध भावसे खडा रहनेके बाद धीरे-धीरे ऊपर गया। वहां पूजाका सब सामान मौजूद था। घरमें शालग्राम-शिला स्थापित है। उनकी नित्य-पूजाके लिये एक पुजारीजी नियुक्त हैं। वे रहते भी इसी घरमें हैं। मालिक शिवप्रसाद बाबूकी तरह वे भी चौसर के पक्के शौकीन हैं। बाबू शिवप्रसादने कुछ दिन हुए नौकरीसे पेन्शन ले ली है और अपने बिहार प्रदेशके मकान-में रहने लगे हैं। सवेरे चाय पीनेके बादही पुजारीजीकी पुकार होती है। 'भोनू, जरा पुजारीजीको बुलाना। एक बाजी हो जाय।' फिर तो एक बाजी, दो बाजी होते-होते समय बीतता जाता

है—पुजारीजीको पूजाके लिये फुर्सत नहीं मिलती। इस कारण पहले महेश्वरी पूजाकी सुधि दिलानेके लिये आदमी भेजती थी, परन्तु वे "बस, अब हो गया, आता हूं—बस, एक बाजी और" इस प्रकार कहकर समय टालते जाते इससे पूजामे बहुत देर हो जाती, जिसका किसीको होश नहीं रहता था। आजकल पिताकी तबीयत अच्छी नहीं है, खेलमे लगे रहने से उनका जी बहला रहता है, यह सोचकर महेश्वरी पूजारीजीको नहीं बुलाती और दिवाकरसे ही नित्य-पूजा करा लिया करती थी।

दिवाकरको न तो सवेरे चाय पीनेका अभ्यास था और न उसे अवकाश ही रहता था। रोज सवेरे उसे नौकरके संग बाजार जाना पड़ता। आज बाजारसे लौटकर ज्यों-त्यों नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वह भोजन करने जा रहा था।

दिवाकर पूजा करने गया, लेकिन आसनपर बैठकर सोचने गा कि 'पराये घरमे रहनेका सुख यही है। यद्यपि भली भाति ाश संभालनेके बादसे वह इसी पराये घरमे है, और उसे कष्ट हनेकी आदत भी पड़ गयी है, तथापि मनुष्यकी जो वस्तु किसी भी दुःखसे नष्ट नहीं होती, वही भावी उन्नतिकी आशा चोट खाकर आज हृदयसे बाहर निकल, सिर उठाकर खड़ी हो गयी। मारे क्रोधके उसका वदन जल रहा था, उसने ठाकुरजीको सिंहासनसे उतारकर ठनसे ताम्बेकी थालीपर रख दिया और बिना मन्त्रके ही पानी डाल, गीले ठाकुरजीको ही उठाकर रख दिया। फूल, चन्दन और तुलसीदल देने या घण्टा बजानेके काम

तो उसके हाथ अभ्यासानुसार करते गये, लेकिन विद्वेषकी ज्वाला मे पड़ उसकी जिह्वा एक भी मन्त्र उच्चारित न कर सकी।

इसी प्रकार पूजाका अभिनय समाप्त कर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब उसके मनमें यह बात आयी, कि आज तो कुछ पूजा न हुई, फिर पूजा करनेको बैठूं या नहीं, जीमें यह दुविधा भी पैदा हुई, लेकिन साथ ही उसे स्मरण हो आया कि कालेजका पहला घण्टा अब बीता ही चाहता है। फिर किसी ओर न देख, झटपट सीढ़ियोंसे उतर आया। उसे सीधे बाहर जाते देख, महेश्वरीने भण्डार-घरसे पुकारकर कहा—"अरे खाया नहीं?"

"नहीं—अब वक्त नहीं है।"

महेश्वरीने कहा—"तो कालेजसे जरा जल्द ही लौट आना। महराज! देखना, दिवाकर बाबूका खाना हिफ़ाजत से रख देना।"

दिवाकर जवाब दिये बिना ही चला गया। बाहरके कमरेमें आकर कपड़े पहनते पहनते उसकी आंखें भर आयीं।

सामनेकी बैठकसे उस समय भी चौसरके खेलकी आवाज आ रही थी। अकस्मात् दरवाजे का खटखटाना सुन दिवाकरने पीछे घूमकर देखा, कि मजदूरिन खड़ी है। उसने झटपट आस्तीन के कोनेसे आंखें पोछकर पूछा—"क्या है?"

मजदूरिनने कहा—"छोटी बहू बुलाती हैं।"

"आता हूं, तुम चलो।"

है—पुजारीजीको पूजाके लिये फुर्सत नहीं मिलती। इस कारण पहले महेश्वरी पूजाकी सुधि दिलानेके लिये आदमी भेजती थी; परन्तु वे "वस, अव हो गया, आता हूं—वस, एक वाजी और" इस प्रकार कहकर समय टालते जाते इससे पूजामें वहुत देर हो जाती, जिसका किसीको होश नहीं रहता था। आजकल पिताकी तवीयत अच्छी नहीं है, खेलमे लगे रहने से उनका जी वहला रहता है, यह सोचकर महेश्वरी पूजारीजीको नहीं बुलाती और दिवाकरसे ही नित्य-पूजा करा लिया करती थी।

दिवाकरको न तो सवेरे चाय पीनेका अभ्यास था और न उसे अवकाश ही रहता था। रोज सवेरे उसे नौकरके संग वाजार जाना पड़ता। आज वाजारसे लौटकर ज्यों-त्यों नित्यकर्मसे नवृत होकर वह भोजन करने जा रहा था।

दिवाकर पूजा करने गया, लेकिन आसनपर बैठकर सोचने गा कि 'पराये घरमे रहनेका सुख यही है। यद्यपि भली भाति ाश संभालनेके वादसे वह इसी पराये घरमें है, और उसे कष्ट हनेकी आदत भी पड़ गयी है, तथापि मनुष्यकी जो वस्तु किसी भी दुःखसे नष्ट नहीं होती, वही भावी उन्नतिकी आशा चोट खाकर आज हृदयसे वाहर निकल, सिर उठाकर खडी हो गयी। मारे क्रोधके उसका वदन जल रहा था, उसने ठाकुरजीको सिंहासनसे उतारकर ठनसे ताम्वेकी थालीपर रख दिया और विना मन्त्रके ही पानी डाल, गीले ठाकुरजीको ही उठाकर रख दिया। फूल, चन्दन और तुलसीदल देने या घण्टा वजानेके काम

तो उसके हाथ अभ्यासानुसार करते गये, लेकिन विद्वेषकी ज्वाला मे पड़ उसकी जिह्वा एक भी मन्त्र उच्चारित न कर सकी।

इसी प्रकार पूजाका अभिनय समाप्त कर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब उसके मनमे यह बात आयी, कि आज तो कुछ पूजा न हुई, फिर पूजा करनेको बैठूं या नहीं, जीमें यह दुविधा भी पैदा हुई, लेकिन साथ ही उसे स्मरण हो आया कि कालेजका पहला घण्टा अब बीता ही चाहता है। फिर किसी ओर न देख, झटपट सीढ़ियोंसे उतर आया। उसे सीधे बाहर जाते देख, महेश्वरीने भण्डार-घरसे पुकारकर कहा—"अरे खाया नहीं?"

"नहीं—अब वक्त नहीं है।"

महेश्वरीने कहा—"तो कालेजसे जरा जल्द ही लौट आना। महराज! देखना, दिवाकर बाबूका खाना हिफाजत से रख देना।"

दिवाकर जवाब दिये बिना ही चला गया। बाहरके कमरेमे आकर कपड़े पहनते पहनते उसकी आँखें भर आयीं।

सामनेकी बैठकसे इस समय भी चौसरके खेलकी आवाज आ रही थी। अकस्मात् दरवाजे का खटखटाना सुन दिवाकरने पीछे घूमकर देखा कि सन्दूरिन खड़ी है। उसने झटपट आस्तीन के कोनेसे आँखें पोंछकर पूछा—'क्या है?"

सन्दूरिने कहा—"छोटी बहू बुलाती है।"

'आता हूँ, तुम चलो।'

दासीके चले जानेपर दिवाकरने छोटी टाइमपीसकी ओर देखा, जरा इधर-उधर कर बायें हाथकी किताबोंको टेबुलपर रख दिया, और कपड़ेसे फिर एक बार अच्छी तरह आंख पोंछकर भीतर गया।

दिवाकरको बुलावा भेजकर सुरबाला अपने कमरेके सामने ही खड़ी बाट देख रही थी। दिवाकर पास आकर बोला—"क्या है ?"

सुरबाला घूंघट डालकर बातें करती थी। सिरका कपड़ा जरा और संभालकर बोली—"भीतर आओ।" कहकर हाथसे दिखला दिया—सहनपर आसन बिछा था, एक कटोरा दूध और एक रकाबीमें दो-चार रसगुल्ले थे। दिवाकर बोली—"खा लो, तो कालेज जाओ।"

दिवाकर चुपचाप खाने बैठ गया।

पास ही खाटपर उसके छोटे भैया उपेन्द्रनाथ तब भी उनींदी आंखोंसे पड़े थे, दिवाकरके खाकर जाते ही सिर उठा, स्त्रीको पुकारकर बोले,—"क्या हो रहा है ?"

सुरबाला जूठे बरतन हटा जगह साफ कर रही थी चौंककर बोली—"एं! क्या तुम जाग रहे हो ?"

"दो घण्टेसे जगा पड़ा हूं। क्या कोई ग्यारह बजेतक सो सकता है ?"

सुरबालाने हंसकर कहा—'तुम सो सकते हो। नहीं तो, क्या इतनी देरतक तुम जागे पड़े रह सकते थे ?"

उपेन्द्रने कहा—"सब लोग नहीं, पर मैं पड़ा रह सकता हूं। इसका कारण है। संसारमें निद्राके समान सुखकर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। खैर, दिवाकर का—

सुरबालाने कहा—"वे भूखे ही कालेज जा रहे थे, इसीसे बुलाया था।"

"सबब?"

सुरबालाने कहा—"गुस्सा होना ही चाहिये। बेचारा सबेरे पर नहीं पाता—बाजार जाओ, लौटकर आओ तो ठाकुरजीकी पूजा करो। किसी दिन ग्यारह, किसी दिन बारह बज जाते हैं। आप ही कहिये, फिर वह कब पढ़ने जाये?"

उपेन्द्र—"बात भली भांति समझमें नहीं आयी। क्या पुजारीजी बीमार हैं?"

सुरबालाने कहा—"नहीं, बाबूजीके साथ बैठकर चौसर खेलते हैं। इसमें उनका क्या कसूर है? बाबूजीके बुलानेपर नाहीं कैसे कर सकते हैं?"

उपेन्द्रने कहा—"यह ठीक है लेकिन पहले तो वे ही नौकरके साथ सबेरे बाजार जाया करते थे।"

सुरबालाने कहा—"अपने शौकसे कुछ दिन गये थे। नहीं तो बराबर ठाकुरजीको ही जाना पड़ता है। उपेन्द्रने 'हूं" करके ज्योंही करवट बदलनेकी तैयारी की, त्योंही सुरबाला हंसकर बोल उठी, "अब यह क्या? फिर करवट क्यों बदलते हो?"

उपेन्द्र पांच मिनट और चुपचाप पड़े रहे। बादको उठकर विना कुछ बोले-चाले बाहर चले गये।

आज ठाकुरजीकी पूजा ठीकसे न हुई, यह सोचते-सोचते दिवाकर उदास मनसे धीरे-धीरे कालेज जा रहा था। घरमे जो घटना हो गयी थी, उससे भी बढ़कर उसे इस बातकी चिन्ता थी कि आज ठाकुरजीकी पूजा नहीं हुई। अनेक दिन अनेक असुविधाएँ होनेपर भी इस कार्य्य (भगवत्पूजा) का कभी मैंने अनादर नहीं किया।

इस कामसे कभी उसने जी नहीं चुराया था, न कभी चुराने को बात ही उसके मनमें आयी थी। खासकर इसी सबबसे वह आजकी बात याद करके दुःखित हो रहा था। यद्यपि युक्ति और ' द्वारा वह बारम्बार मनको समझाने लगा—भगवान किसी हो जगहमे तो आवद्ध नहीं है, इसलिये एक जगह भोग नहीं तो दूसरी जगह लगा होगा। फिर भी गृहदेवता ने ' नी नित्य-पूजा और भोग न पाकर अवश्य ही क्रोध किया ।‹ । उनके कोपकी आशङ्का उसके मनसे किसी तरह दूर न होती थी।

कालेज जाकर सुना कि प्रोफेसर साहबके बीमार पड़ जानेसे पहले घंटेमे क्लास नहीं बैठा, सुनकर दिवाकरको खुशी हुई। परीक्षाका दिन नजदीक आ जाने के कारण विद्यार्थियोंने हाजिरीके हिसाबके लिये कालेजके क्लर्कको परेशान कर डाला है। आज जब अन्यान्य विद्यार्थी इसी उद्देश्यसे आफिसके

कमरेकी ओर जाने लगे, तब दिवाकर भी तैयार हुआ। लेकिन आफिसके सामने आतेही ठाकुरजीकी पूजा न करनेकी बात याद आनेके साथ ही वह रुक गया।

एकने पूछा—"रुक क्यों गये ?"

दिवाकरने संक्षेपमें उत्तर दिया—"आज रहने दो।"

"क्यों, रहने दें ? चलो आज ही देख लें।"

"नहीं, रहने दो।" कहकर वह लौट गया। हाजिरीके सम्बन्धमें उसे मन-ही मन यथेष्ट सन्देह था, उस सन्देहकी मीमांसा करनेका साहस आज उसे किसी तरह नहीं हुआ।

भोजन न कर आनेपर भी उसे घर लौटनेकी जल्दी न थी। कई कारणोंसे आज उसे भूख नहीं थी। छुट्टीके बाद कालेजके फाटकपर आकर देखा कि बी० ए० क्लासके उसके साथी दूर खड़े वादानुवाद कर रहे हैं, दिवाकर दूसरी ओर मुँह फेरकर हट गया और सीधे गङ्गाजीका रास्ता लिया। टूटा हुआ पक्का घाट अस्थि पञ्जरकी तरह पड़ा था। एक दिन इसके शरीर था, रूप था, प्राण थे, जगह-जगह टूटी-फूटी ईंटोंके ढेर यही कह रहे थे। कब किसने बनवाया, कौन लोग आकर यहां बैठते, अथवा कौन स्नान करते थे। इसका कोई सबूत नहीं रह गया है। जाड़ेसे सिकुड़ी हुई गङ्गा इस घाटके निकटसे बिना विश्राम किये एक मनसे समुद्रकी ओर चली जा रही है। किनारेकी [illegible] ऊँचे हाथ सिर उठाये धूपकी गरमी और गङ्गाकी हवा सेवन कर रहे हैं। इसीके एक किनारे बबूलके [illegible]

उपेन्द्र पांच मिनट और चुपचाप पड़े रहे। वादको उठकर विना कुछ बोले-चाले वाहर चले गये।

आज ठाकुरजीकी पूजा ठीकसे न हुई, यह सोचते-सोचते दिवाकर उदास मनसे धीरे-धीरे कालेज जा रहा था। घरमें जो घटना हो गयी थी, उससे भी बढ़कर उसे इस वातकी चिन्ता थी कि आज ठाकुरजीकी पूजा नहीं हुई। अनेक दिन अनेक असुविधाएँ होनेपर भी इस कार्य्य (भगवत्पूजा) का कभी मैंने अनादर नहीं किया।

इस कामसे कभी उसने जी नहीं चुराया था, न कभी चुराने की वात ही उसके मनमें आयी थी। खासकर इसी सववसे वह आजकी वात याद करके दुःखित हो रहा था। यद्यपि युक्ति और तर्क द्वारा वह वारम्वार मनको समझाने लगा—भगवान किसी एक ही जगहमें तो आवद्ध नहीं हैं, इसलिये एक जगह भोग नहीं लगा तो दूसरी जगह लगा होगा। फिर भी गृहदेवता ने अपनी नित्य-पूजा और भोग न पाकर अवश्य ही क्रोध किया होगा। उनके कोपकी आशङ्का उसके मनसे किसी तरह दूर न होती थी।

कालेज जाकर सुना कि प्रोफेसर साहवके वीमार पड़ जानेसे पहले घंटेमें क्लास नहीं वैठा, सुनकर दिवाकरको खुशी हुई। परीक्षाका दिन नजदीक आ जाने के कारण विद्यार्थियोंने हाजिरीके हिसावके लिये कालेजके क्लर्कको परेशान कर डाला है। आज जव अन्यान्य विद्यार्थी इसी उद्देश्यसे आफिसके

कमरेकी ओर जाने लगे, तब दिवाकर भी तैयार हुआ। लेकिन आफिसके सामने आतेही ठाकुरजीकी पूजा न करनेकी बात याद आनेके साथ ही वह रुक गया।

एकने पूछा—"रुक क्यों गये ?"

दिवाकरने संक्षेपमें उत्तर दिया—"आज रहने दो।"

"क्यों, रहने दें ? चलो आज ही देख लें।"

"नहीं, रहने दो।" कहकर वह लौट गया। हाजिरीके सम्बन्धमें उसे मन-ही मन यथेष्ट सन्देह था, उस सन्देहकी मीमांसा करनेका साहस आज उसे किसी तरह नहीं हुआ।

भोजन न कर आनेपर भी उसे घर लौटनेकी जल्दी न थीं। कई कारणोंसे आज उसे भूख नहीं थी। छुट्टीके बाद कालेजके फाटकपर आकर देखा कि बी० ए० क्लासके उसके साथी दूर खड़े वादानुवाद कर रहे हैं, दिवाकर दूसरी ओर मुँह फेरकर हट गया और सीधे गङ्गाजीका रास्ता लिया। टूटा हुआ पक्का घाट अस्थि-पञ्जरकी तरह पड़ा था। एक दिन इसके शरीर था, रूप था, प्राण थे, जगह-जगह टूटी-फूटी ईंटोंके ढेर यही कह रहे थे। कब किसने बनवाया, कौन लोग आकर यहां बैठते, अथवा कौन स्नान करते थे। इसका कोई सबूत नहीं रह गया है। जाड़ेसे सिकुड़ी हुई गङ्गा उस घाटके निकटसे बिना विश्राम लिये एक गतिसे समुद्रकी ओर चली जा रही है। किनारेकी भूमिपर जौके बाल सिर उठाये धूपकी गरमी और गङ्गाकी हवा सेवन कर रहे हैं। उसीके एक किनारे बालूके तंग रास्तेसे

दिवाकर घाटपर आ खड़ा हुआ। एक तरफ ईंटोंके छोटेसे ढेरपर जूता उतारकर रख दिया। कुर्ता उतारकर उसे किताबोंके बंडलके नीचे दबा दिया, फिर जलमें पैठ, हाथ-मुंह धो, सिरपर गङ्गाजलके छींटे दे, भूखे गृहदेवताका स्मरण किया। आदिसे अन्ततक सब मन्त्रोंको सावधानीसे पढ़कर भगवानको अञ्जलि दे, प्रणामकर जब वह उठ खड़ा हुआ, तब उसके हृदयका भार बहुत कुछ हलका हो गया। कुर्ता, जूता पहन और किताबें उठा जब वह चला तब भी दिन कुछ बाकी था। उस समय भी स्त्रियां घाटके एक किनारे बैठी सिरमें सज्जी मल रही थीं।

५

सुरबालाके पिता ठेकेदारीके कामसे बहुत धन कमाकर अपने बक्सर वाले मकानमें रहते थे। उनके दो लड़कियां थीं। सुरबाला बड़ी थी, शची छोटी। अभी उसका विवाह नहीं हुआ था। वह बापके घर बक्सरमें ही रहती थी। पिताके यहां सुरबालाको लोग 'पशुराज' कहते थे। महल्ले-टोलेके अन्धे काने, कुत्ते, बिल्ली, विलायती चूहे, कबूतर, गौरैये आदि सैकड़ों जीव उसके आश्रयमें पले थे। किसीको उसने कभी आश्रयहीन नहीं किया। आज भी वे शचीकी देख-भालमें आनन्दसे जीवन बिता रहे हैं। सुरबालाके नामका रहस्य महेश्वरी जानती थी, यहां भी उसके नामका प्रचार हो गया था। जो पढ़े थे, वे संक्षेपमें

'पशु' कहते तथा नौकर-चाकरोंमे कोई पशु-बहू कहता तो कोई छोटी बहू कहता था।

गृहस्थीके काम-काजसे फुर्सत पाकर रातको जब सुरबाला शयन-गृहमे आयी तब उपेन्द्रने कहा—"पशु, तुम्हारे पिताजीने शचीके लिये कोई वर ठीक करनेको फिर तकाजेकी चिट्ठी लिखी है। जानती हो, शची तुमसे कितनी छोटी है ?"

सुरबालाने कहा—'क्या खूब! यह भी नहीं जानती ? मेरे बाद एक भाई हुआ था, वह साल-भरमें ही जाता रहा। उसके बाद शचीने जन्म लिया। वह मुझसे कोई छःसात बरस छोटी है।"

"इस हिसाबसे तो वह बारह-तेरह बरसकी होगी।"

"जरूर होगी! बीमार रहनेके कारण इतने दिन उसका विवाह नहीं किया गया। मेरी तरह लम्बे-लम्बे हाथ-पावोंवाली होती तो बड़ी आफत थी।"

उपेन्द्रने हँसकर कहा—"आफत कैसी ? तुम्हारे पिताजीको रुपयेकी तो कमी है नहीं। रुपया रहनेसे सभी काम आसानी-से हो जाते हैं। तुम्हारी बेर जैसे मैं आ फँसा था, वैसेही आ फंसनेवालोंकी संसारमे कमी नहीं है।"

सुरबाला बोल उठी—"क्या तुम पिताजीके रुपये देखकर फँसे थे ?"

उपेन्द्र—"प्रतिष्ठा तो तुम्हारे सामने न कहनेमें ही है, लेकिन झूठ कैसे कहा जाये ?"

सुरवाला—"पर यह वात तो सरासर झूठो ही है।"

उपेन्द्र—"कैसे ?"

सुरवाला—"कैसे क्या ? क्या झूठका भी कोई सबूत होता है ? तुम जब तब यह बात कहा करते हो, लेकिन तुम पिताजी-के रुपये देखकर नहीं गये। पिताजीके पास रुपये होते या न होते, तुम्हें जाना ही पड़ता। मैं जहां, जिस घरमें, जन्म लेती वहां तुम्हें जरूर जाना पडता—समझते हो ?"

उपेन्द्र गम्भीरताका ढोंग रचकर कहा—"हां, कुछ कुछ। लेकिन मान लो, अगर तुमने कायस्थके घर जन्म लिया होता तो ?"

सुरवाला खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली—"वाह ! क्या खूब ! कहीं ब्राह्मणके घरकी लड़की कायस्थके घर जन्म लेती है ? इसी अक्लके बिरतेपर वकालत करते हो ?"

उपेन्द्रने अधिकतर गंभीर होकर कहा—"बात तो ठीक ही कहती हो। इसीसे मालूम होता है, मेरी वकालत खूब नहीं चलती।"

सुरवाला अपनी वातसे आपही दुखी होकर सान्त्वनाके स्वरमें चटपट बोली—"चलेगी क्यों नहीं, खूब चलेगी। इतना ही है, कि कुछ विलम्ब होगा। हां; एक बात और है। तुम्हे ज्यादा वकालत चलानेकी जरूरत ही क्या है ?" हँसकर बोली—"बारहसे चारतक मेरे सामने हाजिर रहा करो, मैं तुम्हें पांच सौ रुपयेका ठिकाना कर दे सकती हूं। पिताजी मुझे हर

महीने ढाई सौ रुपये तो देते ही हैं, ढाई सौ उनसे और माँग लिया करूंगी।"

उपेन्द्रने कहा—"मान लो, मैंने कबूल कर लिया, लेकिन मुझे करना क्या पड़ेगा? बारहसे चारतक तुम्हारे सामने खड़ा रहना पड़ेगा?"

सुरबालाने कहा—"और नहीं तो क्या? हाँ, खड़े-खड़े थक जानेपर बैठनेकी इजाजत मिल जायेगी।"

उपेन्द्र—"और बैठे-बैठे थक जानेपर सोनेकी नहीं?"

सुरबाला मुस्कुराकर बोली—"नहीं, सोने नहीं पाओगे। बैठकर थक जानेपर फिर खड़ा होना पड़ेगा। हाकिमके सामने गुस्ताखी करोगे, तो फाइन भी होगा।"

उपेन्द्र—"फाइन न दे सकनेपर?"

सुरबाला—"कैद भुगतनी पड़ेगी। चारके बाद भी बाहर जानेको छुट्टी नहीं मिलेगी—समझे?"

उपेन्द्रने सिर हिलाकर कहा—"समझ गया। हाकिम जरा मिजाजका कड़ा है—नौकरी बनी रहे, तो गनीमत है।"

सुरबाला अपनी दोनों कोमल भुजाएँ स्वामीके गलेमें डालकर बोली—"अजी साहब, हाकिम सख्त-मिजाज नहीं है, बिलकुल ही सख्त नहीं है। नौकरी जरूर बनी रहेगी—न विश्वास हो तो एक दिनके लिये ही कर देखो। क्या हर्ज है?" क्षणभरके बाद सुरबालाने प्रेमालिंगनसे अपनेको छुड़ाकर पूछा—"पिताजीके पत्रका क्या उत्तर दोगे?"

उपेन्द्रने कहा—लिख दूंगा, खोजने-खाजनेकी जरूरत नहीं, वर आपसे आप चला आयेगा।"

"राम! राम! यह क्या कह रहे हो? उनसे हँसी करना क्या उचित होगा?"

"तो इतनी देर क्या तुम मुझसे हँसी नहीं कर रही थी?"

सुरबालाने शर्माते हुए कहा—"देखो, दिल्लगी नहीं करती थी, लेकिन पिताजीको यह बात लिखनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा विश्वास है, कि शचीके लिये वर ठीक हुआ-हवाया है और उसके सिवा उसके लिये दूसरा मार्ग भी नहीं है, लेकिन तुम्हारे मुँहसे वह बात सुनकर पिताजी नाराज होंगे।"

उपेन्द्रने हँसकर कहा—"हाँ, यह तो मैं भी जानता हूं, कि शचीके लिये वर ठीक है। उसे मैं तो जानता ही हूं, तुम भी जानती हो।"

सुरबालाने उत्सुक होकर पूछा—"अच्छा, बतलाओ तो सही, वह कौन है?"

उपेन्द्रने कहा—"अभी नहीं। सब बातें पक्की करके तुम्हें बतलाऊंगा।"

सुरबाला कुछ देर चुप रहकर बोली—"अच्छा, एक बात तुम्हें बता रखती हूं। शचीमें एक ऐब है, उसे छिपाकर वर ठीक करना उचित नहीं। उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

उपेन्द्रने चिन्तित होकर पूछा—"क्या ऐब है?"

सुरबाला बोली—"बताती हूं। मालूम होता है, पिताजीको

नीयत उसे छिपा रखनेकी है; नहीं तो वे स्वयं तुम्हें बतला देते। शची देखने, सुनने, लिखने, पढ़ने—सबमें अच्छी है, पिताजीके पास रुपये भी जरूर हैं, लेकिन शचीको क्या तुमने अच्छी तरह देखा नहीं है ?"

उपेन्द्रने कहा—"देखा तो जरूर है, पर अच्छी तरह देखनेकी हिम्मत……

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। पहले मेरी बात सुन लो, फिर जो जीमें आये, कहना। तुम्हें मालूम ही है, कि शची बचपनसे ही रोगिणी है। दो-तीन बार बड़ी-बड़ी बीमारियोंसे मरते-मरते बची है। एक बार वह अच्छी तो हुई, लेकिन उसका बायां पैर सूजकर पक गया। डाक्टरने चीरकर उसकी जान बचायी, लेकिन उसका यह पैर सीधा न हुआ। तभीसे जरा लगड़ाकर चलती है। डाक्टरका कहना है, कि बड़ी होनेपर यह दोष मिट भी सकता है लेकिन इस भरोसे कौन विवाह करनेको राजी होगा ? जो सचमुच लायक लड़का है, उसे लायक लड़की भी मिल जायेगी। जान-बूझकर वह शची-सी लडकी न ब्याहेगा और जो केवल रुपयोंके लोभमें पडकर विवाह करनेपर राजी होगा, वह नालायक ही होगा।"

उपेन्द्रने उसकी बातोंको बड़े ध्यानसे सुननेके बाद कहा—"मैंने शचीको बहुत बार देखा है, लेकिन किसी दिन लॅंगड़ाकर चलते तो नहीं देखा।"

सुरबालाने मीठी हंसी हंसकर कहा—"मर्दोंको तो कुछ

सुझाई नहीं पड़ता! लेकिन औरतोंकी आंख बचाना मुश्किल है। पलक मारते ही वे दोष परख लेती हैं।"

उपेन्द्रने कहा—"पर उसकी शादी तो किसी औरतसे नहीं होगी, जो औरतोंकी आंखोंका भय किया जाये?"

"यह क्या बात है। धोखा देकर विवाह करा देनेकी इच्छा हो तो अन्धी लड़की भी ब्याह दी जा सकती है, लेकिन पीछे?"

उपेन्द्र चुप रहा। वह कुछ सोच रहा था।

सुरबालाने फिर कहा—"गत बार दुर्गापूजाके समय हमारे यहां बक्सरमें ठीक ऐसी ही बात हुई थी। बुआ और मा दोनोंने कह दिया, कि ब्याहके पहले इन आलोचनाओंकी जरूरत नहीं। पीछे जमाईको समझाकर कह दिया जायेगा, सब ठीक हो जायेगा।"

उपेन्द्रने कहा—"ठीक है।"

"ठीक है? नहीं, यह ठीक नहीं है। मैं कहती हूं, कि सास ननदकी परवा न कर केवल जमाईकी परवा करनेसे ही काम नहीं चल सकता। शचीका जो पति होगा, वह उसे जरूर प्यार करेगा। लेकिन जरा-से दोषके लिये आरम्भमें ही यदि वह सास-ननद आदिकी आंखोंमें खटक जायेगी, तो फिर किसी दिन सुखसे घर-बार नहीं कर सकेगी, यह बात मेरे मनमें अच्छी तरह जमी हुई है।"

उपेन्द्रने कुछ देर चुप रहकर पूछा—"तो क्या तुम शचीका ऐसे घरमें विवाह करना चाहती हो, कि सास-ननद न हों?"

सुरबाला व्यग्र होकर बोली—"नहीं, राम-राम! यह तो बहुत ही अशुभ बात है। मैं ऐसा क्यों चाहूंगी ?"

उपेन्द्रने ऊबकर कहा—"तो फिर तुम चाहती क्या हो ? सास-ननद रहें, जान-सुनकर लंगड़ी-पगु लड़कीको घर लावें, प्यार करें, ऐसा हो जावे तो काम बहुत ही अच्छा हो। लेकिन तुमही बतलाओ, ऐसा बेवकूफ कौन होगा, जो जान-बूझकर अपने लड़केका किसी कानी-खोड़ी लड़कीसे विवाह करावेगा ?"

सुरबाला चुप हो रही, कुछ देर बाद धीरेसे बोली—"लेकिन तुम तो कहते थे, कि वर ठीक कर रखा है ?"

उपेन्द्रने कहा—"हां।"

सुरबालाने पूछा—"उसे यह बात नहीं बताओगे ?"

उपेन्द्रने कहा—"न बतलानेमें भी कोई हानि नहीं है।"

सुरबालाने उत्कण्ठित होकर पूछा—"लेकिन अन्तमें कोई बखेडा खड़ा हो तब ?"

उपेन्द्रने कहा—"नहीं होगा। कारण, दिवाकर तुम्हारी बहिन के दोषोंकी उपेक्षा न कर सकेगा, तुम और दीदी भी शचीको बुरी आखों न देखोगी।"

यह बात सुनकर सुरबाला अवाक् हो गयी। कुछ देरतक चुप रहकर बोली,—"उनके साथ ब्याह ?"

उपेन्द्रने कहा—"हां।"

"लेकिन पिताजी तो स्वीकार नहीं करेंगे।"

"क्यों ?"

"न उनके मां बाप हैं, न घर-द्वार—कुछ भी तो नहीं है।"

उपेन्द्रने संक्षेपमें कहा—"सब हैं, इसलिये कि मैं हूं।"

सुरबालाने कहा—"तब भी पिताजी मंजूर नहीं करेंगे।"

उपेन्द्रने जरा कड़ककर कहा—"और तुम भी मंजूर नहीं करोगी; शायद असल बात यही है।"

सुरबाला चुप हो रही।

उपेन्द्र भी कुछ देर चुप रहे, फिर अकस्मात् करवट बदलकर रूखे स्वरमें बोले—"अच्छा, बहुत रात हो गयी—अब सोओ।"

उस रातको सुरबाला बड़ी राततक जगती रही। एकाएक एक बार जब उसे निश्चय हो गया कि पति निश्चित सो रहे हैं, तब उसकी दोनों आंखें गर्म आंसुओंसे भर गयीं। स्वामीके असीम स्नेहमें उसे सन्देह नहीं था, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि सात-आठ वर्षोंके घनिष्ट मिलनसे भी उसने इस पुरुषकी थाह क्यों नहीं पायी? पहले पहल उसने बहुत बार सोचा था कि उसके स्वामी तुनुकमिजाज हैं। कब किस बातपर इन्हें क्रोध आ जाता है, इसका कोई निश्चय नहीं। लेकिन अन्तमें बहुत पूछ-तांछ करके उसने इतना जान लिया था कि उन्हें पूरी तरहसे समझनेकी शक्ति मुझमें किसी दिन हो या न हो, इनका कोई काम बेमतलब और अनिश्चित प्रकृतिके मनुष्योंका-सा नहीं है। खासकर इसलिये उसके भय और भावनाओंका अन्त न था। चोट खाकर वह जब-तब दुखी

हो जाती और कहती "भगवन्, जब ऐसा अच्छा भाग्य दिया, तब उसीके अनुसार चलनेकी बुद्धि भी क्यों न दी ?" आज भी वह मन-ही-मन इस बातकी जितनी ही आलोचना कर भीतर-ही भीतर इसका कारण ढूंढ़ने लगी, अपना कोई दोष न पाकर वह उतनी ही हताश होने लगी। किसी तरह यह बात उसकी समझमें न आयी, कि बहिनके सम्बन्धमें बहिनको यह आशङ्का किस कारणसे बुरी है ?

बाहर जाड़ेकी सुनसान लम्बी रात फैली हुई थी और मानो उसको समान टुकड़ोंमे बांटनेके लिये दूरपर सरकारी कचहरी का घन्टा एकके बाद दूसरेके क्रमसे बजने लगा।

६

दूसरे दिन दोपहरको जब महेश्वरी भोजन करने बैठी तब उपेन्द्रनाथ वहीं पहुंचे और पास ही बैठ गये। महेश्वरीने उन्हें देखकर कहा—"मझली बहू उपेन्द्रके लिये एक आसन तो ला दो।"

उपेन्द्रनाथने कहा—"आसन क्या होगा, जीजी, तुमसे एक बात पूछने आया हूं।"

सुननेके लिये महेश्वरी उसके मुंहकी ओर देखने लगी।

उपेन्द्रनाथने कहा—"परसों ससुरजीको शचीके लिये वर ढूंढ़नेके विषयमे एक जरूरी चीट्ठी आयी है। तुम उसके यहांकी जितनी बातें जानती हो, उतनी और कोई नहीं जानता। इसी-

लिये तुमसे पूछ रहा हूं, कि क्या शचीके शरीरमें कोई दोष भी है ?"

महेश्वरीके स्वामीने स्वास्थ्य खराब हो जानेपर अन्तिम चार-पांच वर्षों तक वक्सरमे ही प्रैक्टिस की थी। वहां रहते समय उन्होंने सुरबालाके पिताका ही एक मकान किरायेपर लिया था। वह उनके घरके बहुत ही पास था; इसीलिये दोनों परिवारोंमें खूब मेल-जोल बढ़ गया था। सुरबालाके विवाहका सम्बन्ध महेश्वरीने ही ठीक किया था। महेश्वरी कुछ कालतक उपेन्द्रकी ओर देखनेके बाद बोली—"पशु क्या कहती है ?"

"वह कहती है—शची लंगडी है।"

महेश्वरीने जरा हंसकर कहा—"लंगड़ी नहीं है। बचपनमे उसके पैरमे चीरा लगा था, इससे बायें पैरपर जरा जोर लगाकर चलती है। मैं समझती हूं, इतने दिन हो गये, अब बिलकुल अच्छी हो गयी होगी।"

"और तो कोई ऐब नहीं है ?"

"नहीं।"

"सुनता हूं, ससुरजीके पास बडा माल है—तुम क्या समझती हो जीजी ?"

"मेरा भी तो यही ख्याल है।"

अब उपेन्द्र जरा और नजदीक सरक आये और धीमी आवाजमे बोले—"जीजी, तुम्हें एक बात कहता हूं, आगे चलकर जब ये ही दोनों बहनें ससुरजीकी सारी सम्पत्तिकी अधि-

करिणो होगी, तब क्या हमे ऐसे अच्छे मौकेको हाथसे निकलने देना चाहिये ?"

महेश्वरीने हंसकर कहा—"हा, बात तो ठीक है, लेकिन इसका उपाय ?"

उपेन्द्रनाथने भी हंसकर कहा—"जोजो ! हँसीकी बात नहीं है। पशुको चिढ़ानेके लिये मैं यह बात नहीं कहता। मैं दिवूकी बात सोच रहा हूं।"

सुनते ही महेश्वरीका मुह सूखकर जरा-सा हो गया—उस पर एक कालिमा-सी दौड़ गयो। दिवाकर उसकी आंखोंमें कांटेको तरह चुभता था। उपेन्द्रने महेश्वरीके इस भावान्तरको देखा, फिर भी कहा-'हां, बतलाओ, तुम्हारी क्या राय है ?"

महेश्वरी सर नीचा किये सोचनेका स्वांग भरती हुई भात-दाल मिला रही थी, सिर उठा, चेहरेपर हंसी लाकर बोली—"अच्छा तो है।"

उपेन्द्रनाथने कहा—"केवल 'अच्छा' कह देनेसे तो काम नहीं चलेगा जोजी ! यह काम तो तुम्हारे ही किये हो सकता है। पशुका विवाह तुम्होंने कराया था, अब वह कहती है, उसको-सी भाग्यवती सभी हों। मेरा पूर्ण विश्वास है, तुम मिट्टी छुओगी, तो सोना निकल आयेगा।"

महेश्वरीने चिन्तित मुखसे कहा—"लेकिन शचीमे जरा-सा ऐब जो है ?"

उपेन्द्रने कहा—"उस ऐबके लिये ही तो मैं तुम्हें हाथ

डालनेको कहता हूं। तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे सब दोष-दुर्गुण हवा हो जायेंगे।"

उपेन्द्रकी बातोंसे महेश्वरीका चित्त नरम पड़ता जा रहा था। बोली—"लेकिन उपेन्द्र, दिवाकरका मिजाज मेरी समझमें नहीं आता। अपना होते हुए भी वह बिगाना-सा मालूम होता है। इसीसे डर लगता है कि उस जरासे ऐबके लिए अन्तमें कहीं अशान्ति न मचे। दूसरी बात, दिवाकर क्या इस विवाहको स्वीकार करेगा?"

"न करनेकी वजह? इस संसारमें उसका अपना तो कोई भी नहीं है। जिसे संसारमें सब कुछ अपने ही हाथों करना और गढ़ना हो, इसके सिवा, जिसके लिये कोई दूसरा उपाय भी न हो, उसके लिये यह मौका छोड़ना पागलपन ही नहीं, बल्कि पाप है।"

महेश्वरी हंसने लगी। बोली—"उपेन्द्र, यह तुम्हारी वकालत नहीं है कि केवल मुवक्किलके रुपयोंपर नजर रख चारो ओरसे मुंह फेर लोगे। पसन्द-नापसन्द भी तो कोई चीज है।"

उपेन्द्रने कहा—'है, तो रहने दो। जो उन बातोंको लेकर इधर-उधर करते फिरते हैं, उनकी बात छोड़ो। हम लोगोंको पसन्द नापसन्दकी खींचातानीसे क्या मतलब? इसके अतिरिक्त शची जैसी लड़की जिसे पसन्द न हो, उसका तो विवाह करना ही असम्भव है।"

उपेन्द्रकी व्यग्रता महेश्वरीको कौतुक सी जान पड़ी। बोली—

"मालूम होता है, आज वह कालेज नहीं गया, एक बार उसे पूछ देखो, उसकी क्या राय है? मेरी समझमें वह अपने कमरे-मे ही है।"

"है? कौन, अरे भुत्तू? जरा दिवू बाबूको बुलाना, कहना, जीजी बुलाती हैं।"

दिवाकरके आते ही उपेन्द्रनाथ बोल उठे—"दिवू, तेरे विवाहकी बातचीत पक्की हो गयी। परीक्षा पूरी होते ही दिन ठीक कर लिया जायेगा। जीजी! पण्डितजीको पत्रा देखनेको कहना और पिताजीको पूछकर एक बार उनकी भी राय ले लेना। शचीके साथ विवाहकी बात सुनकर वे अवश्य ही प्रसन्न होंगे। तू भकुआ-सा मुँह बाये खड़ा क्या है? तेरी छोटी भाभीकी छोटी बहिन—शची। उसे देखा है या नहीं नहीं देखा है! खैर, शचीको देखनेकी जरूरत भी नहीं है। अभी-अभी मैं जीजीसे कह रहा था कि वैसी लड़कीको जो पसन्द न करे वह व्याह ही न करे। हाँ, बचपनमें उसके बाँयें पैरमें चीरा लगा था, इसीसे शायद उसपर जोर देकर चलती थी। मैं अभी-अभी जीजीसे कहने जा रहा था, कि यह जरा-सा ऐब, जरा-सी त्रुटि दिवाकर अपना होकर भी यदि बर्दाश्त न कर सका, तो दूसरा कौन करेगा? इसके सिवा छोटे-मोटे ऐबोंपर ध्यान देना तो उच्च शिक्षाका फल नहीं है। वह तो निरी नीचता है! संसारमें कोई भी चीज बिल्कुल निर्दोष—सम्पूर्णतः निष्कलङ्क नहीं मिल सकती। ऐसी चीजको आशामें बैठे रहना पागलपन है,

दिवू इसे समझता है और जीजी, दूसरी बात तुमसे क्या कहूं, दिवाकरके साथ शचीके व्याहकी बात सुनकर सुरवालाके आनन्दकी सीमा न रहेगी। तेरा समय नष्ट तो नहीं हो रहा है दिवू! अच्छा, अब तू जा। मैं ससुरजीको एक चिट्ठी लिख देता हूं।" कहकर उपेन्द्रनाथ उठे और महेश्वरीको आंख दबाकर उसे राजी करनेका इशारा करके चले गये।

महेश्वरी मुँह नीचा करके कौर उठाने लगी और दिवाकर सन्नाटेमें आकर खड़ा रह गया। आँधी जैसे खड़-पात, धूल-बालू सबको उडा ले जाती है; वैसे ही उपेन्द्रनाथ भी सारी बाधाओं और विघ्नोंको अपनी इच्छाके अनुसार उड़ा ले गये। दोनों जने निस्तब्ध भावसे यही सोचने लगे। जब बहुत देरतक कोई बात न चली तब दिवाकरने धीरे-धीरे कहा—"जीजी, यह बात क्या है?"

महेश्वरी उसकी ओर आंखें फेरे बिना बोली—"सब तो सुन ही चुके हो?"

दिवाकरने पूछा—"इतनी जल्दी क्या है?"

महेश्वरीने कहा—"शचीके विवाहकी उम्र बीती जा रही है और आगामी वर्ष अच्छी सायत नहीं मिलती है।"

इसके बाद दिवाकरको कोई बात न सूझी, लेकिन ख्याल आया कि इस समय उपेन्द्रनाथ पत्र लिख रहे होंगे और थोड़ी ही देर बाद इस जरूरी चिट्ठीको लेकर कोई नौकर डाकखाने दौड़ जायेगा। उसके जीवनका संकल्प था कि वह कभी विवाह

न करेगा। यह संकल्प यों ही अकारण समयके एक थपेड़ेमें वह जायेगा?—यह सोचते ही उसका जी वेचैन हो उठा और वह उपेन्द्रनाथके कमरेकी ओर चला। कमरेमें जातेही सुरवाला अपने अप्रसन्न मुँहपर घूँघट डाल, अलमारीके पास सरक गयी। उपेन्द्रनाथ कलम-कागज लिये टेबुलके पास बैठे थे, सिर उठाकर पूछा—"क्या है?"

दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसपर अच्छी तरह सोचने-विचारनेका समय भी उसे नहीं मिला था और उधर अलमारीके पास आँचलका कोना भी दिखाई दे रहा था। वह चुपचाप खड़ा हो गया।

उपेन्द्रनाथने कहा—"क्यों भाई, क्या है?"

दिवाकर कुछ बोला नहीं, उसने अलमारीकी ओर नजर डाली। उपेन्द्रने इस इशारेको देखकर भी अनदेखा कर दिया और कहा—"दिवू! जो कहना हो, जल्द कह डालो।"

दिवाकर नजदीक आकर मृदु स्वरमें बोला—"इतनी जल्दी क्या पड़ी है?"

उपेन्द्रनाथने कहा—"नहीं, जल्दी तो नहीं है। अब भी कमसे कम दो महीनेका समय है। तुम्हारा इम्तहान हो जानेपर........

"तो फिर आज ही पत्र लिखनेकी क्या जरूरत है? कुछ दिन बाद लिखनेसे भी तो काम चल सकता है।"

"चल सकता है, लेकिन मुझे यह बतलाओ, कि कुछ दिन बाद लिखनेसे कोई विशेष लाभ होगा?"

दिवाकरने धीरे-धीरे कहा—"सोच-विचारकर कोई काम करना उचित है।"

उपेन्द्रने कहा—"इसमें क्या शक है? लेकिन तुम विवाहकी बातका सोच-विचार करोगे, तो तुम्हारी परीक्षाका सोच-विचार क्या मैं करूंगा?"

"लेकिन इतनी बड़ी जिम्मेदारी उठानेके पहले··

"बुद्धिमानकी तरह कुछ कहना जरूरी समझते हो? अच्छा, उस कुर्सीपर बैठो, जरा सुनूँ तो सही, कि क्या सोचना-विचारना चाहते हो?"

दिवाकरको जवाब न सूझा।

उपेन्द्रनाथने कहा—"दिवाकर, देखो, चाहे जिस चीजको ले लो, अन्ततक विचारकर देखना मनुष्यकी शक्ति-सामर्थ्यके परे है। कोई कितना ही बुद्धिमान्—विद्वान् क्यों न हो, अन्तिम फल उसे भगवानके हाथसे ही लेना पड़ेगा। लेकिन पहले जितनी बात सोचकर देखनेकी होती है, उसमें आध घंटेसे अधिक समय नहीं लगता। तुम कुछ दिनका समय क्यों ाहते हो?"

दिवाकरने सिर उठाकर कहा—"क्या सभी इतनी जल्दी ोच सकते हैं?'

"सोच सकते हैं, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि ऊट-पटांग भावनाओंका कोई अन्त नहीं होता और मीमांसा भी नहीं होती—दो चार दिनकी तो बात ही क्या है, दो-चार वर्षमें

भी तै नहीं हो पाती। लेकिन इस विषयमें स्थूल रूपसे जो कुछ लोग विचार करते हैं, वह यही है कि प्रतिपालन कर सकेंगे या नहीं। परन्तु शचीसे विवाह करनेपर तुम्हें वह चिन्ता करनेका कभी अवसर ही प्राप्त न होगा। दूसरी बात पसन्द-नापसन्दकी है। अलबत्ता उसकी मीमांसा एकको छोड़कर दूसरा नहीं कर सकता। तो क्या तुम यही बात सोच रहे हो?"

शचीके रूपके इशारेसे दिवाकर बहुत शर्माया। वह झट बोल उठा—"नहीं-नहीं, कभी नहीं।"

"तब तो ठीक ही है, क्योंकि यह सवाल चाहे जितना व्यर्थ और सारशून्य क्यों न हो, इसे एकदम उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। आरम्भमें ही रूपकी जो बात आ पड़ती है, वह आदमीके बाहर-भीतर एक ऐसा जादूसा डाल देती है कि उसकी भलाई-बुराईका सावधानीसे निरूपण करना ही खास काम हो जाता है। परन्तु दरअसल वह कुछ भी नहीं है। जिस चीजको न पाकर लोग ज़िन्दगीभर हाय हाय करते हैं, वह आड़मे ही रह जाती है। पसन्द करनेकी जो सार वस्तु है, जिसकी प्राप्तिके बिना संसार विफल हो जाता है, उसपर तो वश चलता नहीं, इसीसे बिना विचारे, बिना जाँचे ईश्वरकी दुहाई देकर लोग ग्रहण कर लेते हैं, और, जिस चीजका कोई मूल्य नहीं, जो दो चार दिनमे ही नष्ट हो सकती है, आँखें उठाते ही जिसके दोष-गुणोंका पता लग जाता है, उसकी जाँच-पडताल एवं परीक्षाकी सीमा नहीं रहती। दीवाकर, यदि साढ़े पन्द्रह आनेकी ओरसे आखें बन्द

कर सकते हो तो बाकी दो पैसोंके लिये बड़ोंका विरोध न करो! बल्कि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वलसे उज्ज्वलतर हो। इस बातको सदा याद रखना कि दुनियामें आदमीके लिये बाहरी सुन्दरता ही सब कुछ नहीं है। अथवा केवल सौंदर्य चर्चा ही विवाहका उद्देश्य नहीं है।"

दिवाकर सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। उपेन्द्रनाथ भी थोड़ी देर चुप रहकर अन्तमें बोले—"अच्छा, अब तुम जाओ।

दिवाकरने सिर झुकाकर आहिस्तेसे कहा—भैया, मेरा जी नहीं चाहता, मुझे क्षमा करो। वह बड़े आदमीकी लड़की है।"

इस आकस्मिक उत्तरने जरा देरके लिये उपेन्द्रनाथको सन्नाटे में डाल दिया। वे अल्पभाषी दिवाकरकी बातका गुरुत्व समझते थे। साथ ही किसी विषयमें असफल होना भी उनके स्वभावके विरुद्ध था। कागज-कलमको एक ओर हटाकर वे बोले—"जी नहीं चाहता है, तो न चाहे। यह बतलाओ कि बड़े आदमीकी लड़कीने क्या कसूर किया है?"

दिवाकरने कहा—"नहीं, कसूरकी बात नहीं, मुझे अपनी ीवीका ख्याल है।

उपेन्द्रनाथने कहा—"इसका मतलब यह होता है, कि गरीब की लड़की तुम्हारी जितनी श्रद्धा-भक्ति करेगी, धनीकी लड़की उतनी नहीं करेगी। लेकिन मैं तुमसे पूछता हूं, कि तुम स्त्रीसे सम्मान और भक्तिकी कितनी उम्मीद रखते हो? हां अगर तुम्हें इस बातकी जिद हो कि विवाह करोगे ही नहीं, तो

बात दूसरी है, लेकिन निरे असंगत और निर्मूल दोषभार दूसरेके कन्धोपर डालकर अपनी दरिद्रताका हवाला देना उचित नहीं। अपने यहाके पुराण-इतिहासोंको तुमने देखा है। उनमें सीता, सावित्री आदि सती-साध्वी स्त्रियोंकी जो कथाएं हैं, वे राजा-रजवाड़ोंके घरकी लड़कियां होनेपर भी किसी दरिद्र घरकी लड़की की अपेक्षा गुणोंमें कम न थीं। बड़े घरकी लड़कियोंके विरुद्ध जो दोषारोपण साधारणतः होता है, उसे बिना विचारे मान लेनेकी मैं तो कोई वजह नहीं देखता।"

दिवाकरके सिवा सुरबाला भी बड़े ध्यानपूर्वक आड़से ये बातें सुन रही थी। उसके आंचलपर नजर जाते ही उपेन्द्र-नाथ बोल उठे—"यहां भी एक बड़े घरकी बेटी है, यदि इसका आधा रूप और गुण लेकर भी शची आवे, तो कोई भी पति अपनेको सौभाग्यशाली समझ सकता है।" कुछ देर चुप रहकर वे फिर बोले—"तुम कहते हो, जी नहीं चाहता। बचपनमें पाठशाला जानेको भी तो तुम्हारा जी नहीं चाहता था। किसी-किसीकी धर्म-कर्ममें भी रुचि नहीं होती, जन्मभूमिपर भी किसी-किसीकी अश्रद्धा होती है, इसके लिये क्या हमें इन रुचियोंका गुलाम हो जाना चाहिये?"

इसी समय सहसा अलमारीके पीछे चूड़ियोंकी झनझनाहटसे चकित होकर दिवाकर उठ खड़ा हुआ और क्षण भर न जाने उसने क्या सोचा, सुरबालाके पास आकर बोला—"भाभीजी, यदि तुम्हें आपत्ति न हो, तो मैं भैयासे पत्र लिखनेको कह दूं।"

सुरबाला तन्मय होकर स्वामीकी बातें सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्तिकी तरंगमें पड़कर वह अपनी सारी इच्छाओं, समस्त कामनाओं और सम्पूर्ण स्वतन्त्रता को बहाकर स्वामीकी इच्छाके चरणोंमे डाल बार-बार आत्मसमर्पण कर रही थी। उसने कुछ भी निश्चय न किया। किन्तु आंचलसे आंखें पोंछ, स्वामीका ध्यान करके एकान्त चित्तसे बोली—"उन्होंने किसी दिन असत्य नहीं कहा है। मैं कहती हूं, दिवाकर बाबू तुम्हारा कल्याण होगा और मुझे भी बड़ी खुशी होगी।"

दिवाकरने उपेन्द्रनाथके मुँहकी ओर देखा। खुली खिड़कियोंसे खूब उजाला आकर उनके चेहरे पर पड रहा था। उस चेहरेपर उद्वेगका नाम न था, दुश्चिन्ताका चिह्नतक न था—वह अत्यन्त पवित्र और मंगलमय दीखता था।

"आप जो उचित समझें, करें। मेरा समय नष्ट हो रहा है। मैं जाता हूं। कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया। उसके चले जानेपर सुरबाला आकर सामने रखी हुई आराम-कुर्सीपर गयी। दोनों डबडबायी हुई आंखें स्वामीकी ओर उठाकर बोली—"मुझे भी माफ करो, मैंने भूल की थी। तुम जो ..न चाहते हो, उसीमे शचीका कल्याण होगा। दिवाकरकी ...ति मुझे भी माफ करना। उपेन्द्र पत्रको समाप्त करनेवाले ही थे कि सिर उठाकर हंसते हुए बोले—"अच्छा।"

अब दिवाकर केवल अपने विवाहकी ही बात सोचने लगा।

शची कैसी है, वह क्या करता है, क्या सोचती है, क्या पढ़ती है, इससे विवाह होनेपर वह कैसा व्यवहार करेगी, यही सब उसकी चिन्ताका विषय है। रातकी पढ़ाई-लिखाईमे तो और भी अधिक बाधा पड़ने लगी। आज उसका मन मतवाला हो गया। साथ ही जैसे मतवाला अपनी कल्पनाओंको अधिकता के कारण स्पष्ट एवं क्रमबद्ध रूपसे कुछ भी सोच नहीं सकता, वैसे ही उसका मन भी स्पष्ट रूपसे कोई बात निश्चित न कर आकाश-कुसुमोंकी माला गूंथता हुआ यहां-वहां भटकने लगा और कोई भी काम न कर सका।

परीक्षाका भय कोड़े लगा-लगा कर जितनी ही बार उसके मनको पढनेमे लगाता, उतनी ही बार वह उचट-उचट कर एक दूसरा ही स्वप्न देखने लग जाता। बहुत देरतक दिवाकर इस विद्रोही मनके पीछे-पीछे फीरकर भी उसे ठीक रास्तेपर न ला सका, तब पछताने लगा कि समय व्यर्थ चला जा रहा है। लेकिन यह कैसा विचित्र अभूतपूर्व परिवर्तन है! किस चीजके नशेने उसे इस तरह पागल बना दिया?—इसके कारण की खोज करते ही जो बात उसके मनमे आयी, अत्यन्त लज्जाके साथ दिवाकरने उसका प्रतिवाद कर दृढ़ताके साथ कहा,—"यह मैं बिल्कुल नहीं चाहता, इससे मुझको बड़ी घृणा है। यदि किसी पूजनीयका मन और मान रखना ही होगा तो बिल्कुल उदासीनकी भांति रखूंगा।" यह कहकर दूने आग्रहके साथ उसने जोर-जोरसे पढ़ना आरम्भ कर दिया, लेकिन

आज मनको वशमें रखना कठिन-सा हो गया। वह जिस खेल-को बीचमें छोड़ आया है, जिन आकाश-कुसुमोंकी आधी माला गूंथकर फेंक रखी है और विवश होकर पाठ रट रहा है, उसे पूरा करनेके लिये पल-पलपर अवसर ढूंढने लगा। इसके सिवा कल्पनाकी जिस वसन्त-वायुने अभी इसकी देहको केवल स्पर्श-मात्र किया है, वह स्पर्श भी कितना मधुर है! उसके चारों ओर जो प्राकृतिक सौन्दर्य विराज रहा था, इच्छासे हो या अनिच्छा-से, उसका आभास उसकी आंखोंमें लग हो चुका है। अहा! वह कितना सुन्दर है! सूर्यकी ओर मुंह उठाकर आखें बन्द करने-पर भी जिस प्रकार तरह-तरहके रंगोंके रूपमें आलोकका संचार होता है उसी प्रकार सबक याद करनेकी एकान्त चेष्टाके भीतरसे भी स्पष्ट माधुर्यकी अनुभूति उसकी सारी देहमें धीरे-धीरे व्याप्त होने लगी। उसका कण्ठस्वर मन्दसे भी मन्दतर और दृष्टि क्षीणसे भी क्षीणतर होने लगी और इन सब धर-पकड़ और लड़-झगड़में अकस्मात एक बार वह स्वयं ही इस नये खेलमें मस्त हो गया। उसकी आंखोंके सामने हजारों रोशनी, कानके पास बेढब बाजे-गाजेकी आवाज और मनमें किसी विवाहका विराट समारोह-सा अवतीर्ण हो आया और इस ठाट-बाटकी बरातमें अपनेको ही दूल्हेके रूपमें देखकर उसके शरीरमें पुलकावली छा गयी! इसके बाद, अबतक जो कुछ उसने सुना था, जो कुछ देखा था, वह सब बायस्कोप की तरह विचीत्र वर्णोंमें बड़ी तेजीके साथ इसके मनके भीतर एक ओरसे दौड़

कर आया और दूसरी ओर चला गया। कहीं भी वह स्थिर न रह सका। वह कुछ भी निश्चय न कर सका। वह निस्तब्ध भावसे बैठ गया और उसका मन एक अद्भुत स्वप्न-समुद्रमें डूबने उतराने लगा। सामने किताबों का ढेर पड़ा था। सिरपर किरासन तेलका उज्ज्वल आलोक था। सामनेकी घड़ीका कांटा उंगली उठाकर उसे सचेत करनेकी व्यर्थ चेष्टा करने लगा। बहुत देर यों ही बैठे रहनेके बाद एक बार सहसा दिवाकर अपने सारे शरीरमे किसी आकस्मिक वेदनाका अनुभव करके सम्भल गया। उसकी कल्पना उसे एक बड़े परिवारके बीच सुदृढ़ बन्धनोंसे बांधकर चली गयी थी। सचेत होते ही वह उत्तेजित होकर अस्फुट स्वरमे बोल उठा—"अब मैं कर ही क्या सकता हूं ? अब तो मुझे भी औरोंकी तरह हजारों बन्धनो मे बंधकर साधारण जीवन बिताना पड़ेगा ! आह ! उसमें न कोई विशेषत्व रहेगा न महत्व। छोटे भैया मुझे मिट्टीमे मिला देंगे। किन्तु ऐसे स्वतन्त्र मुक्त जीवनको व्यर्थ क्यों जाने दूं, कहकर वह उठा और उपेन्द्रनाथ के विरुद्ध कोई बड़ी कठोर प्रतीज्ञा करनेको तैयार हुआ; परन्तु जीभपर—उस प्रतिज्ञाके शब्द आते ही उसका विचारस्रोत सहसा रुक गया। उसे सुरबालाका स्मरण आया। दण्डकवनमें रावणकी बगलमें लक्ष्मी-स्वरूपिणी सीतादेवीको देखकर जटायुने जैसे उसके रथको निगलनेका संकल्प छोड़कर मृत्युका आलिंगन किया था, वैसे ही आज सुरबालाके सुन्दर मुखड़े और आशीर्वादकी ओटमे रहकर उपेन्द्रनाथकी इच्छाने दिवाकरको

परास्त कर दिया। उपेन्द्रनाथके विरुद्ध वह कठोर प्रतिज्ञा न कर सका। इसके बाद बड़ी राततक उसने उसी एक बातको बहुत घुमा-फिराकर सोचा-विचारा, पर कोई चारा न देख, एक लम्बी-सी सास भर, अपने निष्कण्टक, मुक्त जीवनको मायाको अन्तमें छोड़कर वह आंखे पोंछकर उठ खड़ा हुआ और "आज यहींतक रहे" कहकर खुली हुई पोथीको बन्द कर, रोशनी धीमी कर बिछौनेपर लेट गया। उसको अपनी बातें न जाने कहाँ रफूचक्कर हो गयीं। केवल सुरबालाका मुख और आशीर्वचन याद आने लगे। इसके पहले अनेक बार उसने यह मुख देखा है, इस मुखकी बात सुनी है, पर आजकी घटनाओंको मन-ही-मन आलोचना कर वह उठ बैठा और हाथ जोड़कर सुरबालाके चरणोंमे बारम्बार प्रणाम करने लगा। दिवाकरने हृदयसे इस बातका अनुभव किया कि स्वामीपर उसके पूर्ण विश्वासकी शक्तिने ही देवताके आदेशकी भांति उसको मति और जीवनगतिको दूसरी ओर फेर दिया है। सहसा उसे आशा हुई कि उसकी भी गृहिणी ऐसी ही लक्ष्मी होगी, इसी तरह देखेगी, इसी तरह बातें करेगी। बात करते समय सुरबालाके ओठ क्यों कांप उठे थे, आंखोंमे जल क्यों भर आया था, मुँहपर एक दिव्य आभा क्यों झलक उठी थी, इन बातोंकी वह जितनी ही आलोचना करने लगा, सभी विषय सूर्यके प्रकाशकी भांति उतने ही उज्ज्वल होकर प्रकाशित होने लगे। संस्कृत और अंगरेजी साहित्य तथा काव्योंमे इन भावोंकी अनेक बातें इसके

पहले उसे रटनी पड़ी थीं, उनके अधिकांश भाव उसके लिये अस्पष्ट थे, ठीक समझमे न आते थे, अब वेही बाते एक-एक कर याद आने लगीं और उनकी सुस्पष्टता और माधुर्यने उसे मोहित कर डाला। इसी प्रकार कल्पना-सूत्रके सहारे वह कब अपने स्वतन्त्र विचारको सीमा पार गया, कब समस्त नर-नारियों के सुख-दुःखके इतिहासमे मग्न होकर पढ़े हुए काव्यों और साहित्यकी आलोचना करता हुआ सो गया, इसका उसे कुछ पता न था।

७

विपिनके न्योतेसे लौटनेके दूसरे दिन प्याससे सूखा कण्ठ लेकर सतीशचन्द्रकी जब आंख खुली, तब दस बजे थे। कमरेका दरवाजा उस समय भी बन्द था। आज सवेरेसे ही आकाशसे सूर्यकी बेतरह तेज किरणे बरस रही थीं। उस प्रखर तापसे सभी खिड़की-दरवाजे गरम हो गये थे और यह बन्द कमरा किस तरह तप रहा था, इसका पता स्वयं सतीशको न होनेपर भी उसका सारा शरीर इसका प्रमाण दे रहा था। सारा बिछौना पसीनेसे तर हो गया था और सारी अन्तःइन्द्रियां तृष्णासे व्याकुल होकर हाहाकार मचा रही थी। देह और मनकी ऐसी विचित्रावस्था लिये हुए सतीशचन्द्र सचेत हो उठ बैठा और व्यस्त होकर सिरकी तरफका जंगला खोलते ही कड़ाकेकी धूपकी लपट उसके मुँह और शरीरपर पड़ी और पल भरमे

मदनको भस्म करनेवाले क्रुद्ध महादेवके तृतीय नेत्रसे निकलने-वाली प्रचण्ड अग्निराशिकी भांति दग्ध कर गयीं।

सारी रात ऊधम मचाकर दस बजे नींद टूटनेकी ग्लानिको पीकर सतीश "बिहारी, बिहारी। करके चिल्लाने लगा। बिहारी दौड़कर आया।

शतीश बोला—"जल्दी एक गिलास जल तो ला।"

बिहारीने पूछा—"तम्बाकू नहीं?"

"नहीं, जल ला।"

"नहाइयेगा नहीं?"

"अभी नहीं, तू पहले जल ला।"

बिहारी फिर भी नहीं गया, बोला—"सन्ध्या-वन्दन.. "

सन्ध्याके नामसे सतीश जल उठा। डांटकर बोला,—"पाजी कहींका, तुझे इन बातोंसे क्या मतलब? जा, पानी ला।" डाटे जानेपर बिहारी नीचे जल लाने चला गया। रसोई-घरके बरामदे मे बैठकर सावित्री सुपारी काट रही थी, मुस्कराकर पूछा—"सतीश बाबू तम्बाकू मागते हैं?"

बिहारीने मुँह बनाकर कहा—"नहीं, पानी मांगते हैं।"

"न स्नान किया, न सन्ध्यावन्दन—पानी क्या होगा?"

बिहारीने झुंझलाकर कहा—"मुझे क्या मालूम? हुकम हुआ 'पानी लाओ', ले जा रहा हू।"

सावित्री सुपारी-सरौता रखकर उठ खड़ी हुई, बोली—"लाओ मैं ही ले जाऊँ। तुम थोड़ीसी बर्फ खरीद लाओ।"

बिहारी पैसे लेकर बर्फ खरीदने गया।

सावित्रीने ऊपर जाकर कहा—"जाइये स्नान कर आइये, मैं तबतक सन्ध्याके लिये चौका लगा रखती हूं।"

सतीशने मन-ही-मन बहुत झुंझलाकर कहा—"बिहारी कहाँ गया ?"

सावित्रीने हँसी रोककर कहा—"वह बर्फ लाने गया है। बाबू साहब, अपराध करके दण्ड भुगतना चाहिये। इससे प्रायश्चित्त हो जाता है। आप सन्ध्या-वन्दनके बिना क्या किसी दिन जल पीते हैं, जो आज जलके लिये इतना हल्ला मचा रहे हैं ? जाइये, देर मत कीजिये।"

सावित्रीकी बातोंका प्रतिवाद करना निष्फल समझकर सतीश उठ खड़ा हुआ और तौलिया कन्धेपर डालकर स्नान करने गया। भोजनके बाद सतीश फिर एक बार सोनेकी तैयारीमें था। इतनेसे ही सावित्री आ पहुंची। सतीश इस तरह दीवारकी ओर मुंह फेरकर सो गया, मानो उसे देखा ही नहीं। सवित्रीने मन-ही-मन हंसकर कहा,—"जरा यह सुनने आयी हूं, कि रातकी बातें बाबूको याद हैं या नहीं।"

सतीशने कुछ जवाब नहीं दिया।

सावित्रीने कहा,—"अच्छा, नींद टूटनेपर मेहरबानी करके एक बार बुला लीजियेगा। याद करा दूंगी।" यह कह, किवाड़ बन्द कर चली गयी। सतीशको गत रात्रिकी सारी घटनाएं याद हों, यह सम्भव नहीं।

विपीन बाबूके जलसेसे वह कब, कैसे और किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, ये सारी बातें उसके मनमें विशृंखल और अस्पष्ट हो गयी थीं। यह नहीं, कि इस अस्पष्टताको स्पष्ट करनेकी उसकी बिल्कुल ही इच्छा न थी; बल्कि एक अनिश्चित, एक उद्देश्यहीन लज्जाकी आशङ्का उसको किसी तरह इस ओर आगे पैर बढ़ाने नहीं देती थी। पर शामको जो काण्ड उसने किया था, उसे वह भूल न सका था। वही अबतक उसकी धुंधली स्मृतिके मेघाच्छन्न आकाशमें शुक्रकी भांति चमक रहा था। परन्तु सावित्रीने जब उंगलीके इशारेसे दिखा दिया, कि उसकी अपेक्षा भी अधिक अनिष्टप्रद ग्रह बादलोंकि आड़में छिपे हुए हैं, तब तो उसकी आंखोंपरसे नींद उसी तरह लापता हो गयी, जिस तरह मरुभूमिकी जलधारा! कल शामको और कोई उपाय न सूझनेपर उसने झटसे दीपक बुझा दिया था, इसका फल क्या होगा, इस सम्बन्धमें मन-ही-मन वह अत्यन्त चिन्तित था। फिर भी उस घटनामें नीयतकी कोई खराबी नहीं थी। वह एक बुरी सायत थी, यह समझकर वह अपने मनको धैर्य दे रहा था और दोष न करनेमें सत्यका जो बल छिपा रहता है, वही बल उसके चिन्ताकुल चित्तको आश्रय दे रहा था। लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गयी, जिस अन्धकारमें मार्ग-निर्देश कर गयी, उसमें प्रवेश करनेकी

लेकिन अचेत होकर गिर पड़नेकी अभिज्ञता कहांसे लाता ? वह कैसे अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नहीं, कितने ही मतवालों को ऊधम मचाते उसने अपनी आखो देखा है। अब अपनी वेर किस कामको वह किस साहससे असंगत बताकर टाल देगा ? इससे उसके आगे सम्भव-असंभवकी समस्या जितनी ही जटिल होने लगी, उतनाही उसका पीड़ित मन सम्भव-असंभवके बीचमे एक लकीर खींच देनेके लिये उछल-कूद मचाने लगा। पुनः उसके मनमें आग भभक उठी, वह उठ बैठा और जिन्दगीमे शराब न छूनेकी फिर भी एक बार प्रतिज्ञा करके उसने प्रायश्चित किया। उसने खिड़की खोलकर पुकारा—"बिहारी!"

बिहारी राखाल बाबूके बिछौनेको धूपमे डाल रहा था, पुकार सुनकर आ उपस्थित हुआ। सतीशने कहा—"जा, तू अपना काम कर, सावित्रीको एक गिलास जल लानेको कह दे।"

बिहारीने कहा—"मै ही लाता हूं, वह इस समय पूजा कर रही है।"

सतीशने चकित होकर पूछा—"पूजा ?'

"जी हां, वह तो रोज करती है। एकादशीके रोज जलकी बूंद तक नहीं लेती। हमलोग कितना ही कहते है, लेकिन वह कभी न तो मछली खाती है और न कभी रातको भात ही खाती है। आखिर वह भले घरकी ही तो लडकी है।"

सतीशने और भी आश्चर्यमे आकर पूछा—"भले घरकी कैसी ?'

"हां, बाबू साहब, भले घरकी है। कहकर बिहारी जल लाने जा रहा था। सतीशने पुकारकर पूछा—"सावित्री रातको भात नहीं खाती, तो क्या खाती है?"

"क्या खायेगी, जलपानके लायक कुछ बच रहता है, तो वही खाकर पानी पी लेती है, नहीं तो योंही रह जाती है।"

"मेसका और कोई भी जानता है?"

बिहारीने कहा—"महराजजी जानते हैं, मैं जानता हूं और कोई नहीं जानता। उसने कहनेको मना कर दिया है।"

सतीशने कहा—"अच्छा जा, जल ला।"

बिहारी एक ही दो कदम आगे बढ़ा कि सतीशने फिर पुकारा—"सुनो—बिहारी!"

"जी हां!"

"तूने कैसे जाना कि वह भले घरकी है?"

"बाबू साहब, कैसे क्या जाना, मैं अच्छी तरह जानता हूं। बहुत ही अच्छे कुलकी लड़की है, केवल समयके फेरसे .."

"अच्छा-अच्छा, जा, जल ला।"

बिहारीके चले जानेपर सतीश बिछौनेपर औंधे मुंह पड़ रहा। सावित्रीको साधारण दासियोंकी श्रेणीमें समझनेमें उसके हृदयको चोट सी लगती थी, उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो सावित्रीको निम्न श्रेणीकी स्त्री माननेके लिये उसका मन गुप्त लाञ्छना और हीनताके बोझसे अपना सर आप

सका था। आज बिहारीके इस जरासे परिचयसे केवल उसे ही आनन्द और विस्मय न हुआ, बल्कि उसका सम्पूर्ण अन्तः-करण मानो किसी अपरिचित व्यक्तिके पसीनेसे भीगे बाहुपाशसे सहसा मुक्त होकर पवित्र हो गया! उसने बिहारीकी बात सोलह आने सत्य माननेमें जरा भी देर नहीं की।

जल लानेमें देर होने लगी। किसी कारणसे विलम्ब हो रहा होगा? यह सोचकर सतीश कुछ देरतक चुप रहा। फिर भी बिहारीका पता नहीं। प्यास उसे सताने लगी। उसने फिर बिहारीको एक बार बुलानेके इरादेसे उठते ही देखा कि जलका गिलास लिये सावित्री आ रही है। इस आचारपरायणा हत-भागिनीको आज उसने नयी निगाहसे देखा और उस पल-भरकी दृष्टिसे ही उसका हृदय करुणा और श्रद्धासे भर गया। पहले जो बात बोलनेमें उसकी जबान रुकती थी, आज नहीं रुकी। उसने हाथसे गिलास ले, सब जल पीकर उसे खाली कर दिया। गिलास धरतीपर रखकर बोला—"बहुत कुछ कहना है।"

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीशने कहा—"पहली बात है, मुझे माफ करना होगा।"

सावित्रीने शान्त कण्ठसे पूछा—"दूसरी बात?"

सतीशने कहा—'मैं कल कब और कैसे आया, बतलाना होगा।"

सावित्रीने जवाब दिया—"रातके तीसरे पहर गाड़ीसे आये।'

"उसके बाद?"

"आप तो सडकपरही सोनेकी तैयारी कर रहे थे।"

"अच्छा नहीं किया था। उठाकर कौन लाया ?"

"मैं।"

"और कौन था ? इतना वडा जड पदार्थ ऊपर कैसे लाया गया ?"

सावित्रीने हँसकर कहा—"डरिये नहीं, मेसके किसीको कुछ भी मालूम नहीं हो सका है।"

सतीशने दम लेकर कहा—"जानमें जान आयी। लेकिन तुम्हारे साथ किसी प्रकारका दुर्व्यवहार तो नहीं किया ?"

"नहीं।"

सतीशने वहुत ही खुश होकर कहा—"हां, तुम कौनसी वात याद दिलाना चाहती थी ?"

"आपकी प्रतिज्ञा—शपथ। आपने शपथ की थी, कि अव कभी शराव न पीऊंगा।"

"मैंने शपथ की है ? ऐसी दुर्वुद्धि मेरे मनमें क्योंकर उत्पन्न हुई ?"

"शायद मेरे कहनेसे हुई हो।"

सतीशने कण्ठस्वरको विनम्र करके कहा—"हां, सावित्री ! मुझे याद आ गया। तुम्हें छूकर शपथ की थी न ?"

सावित्री चुप हो रही।

सतीशने कहा—"यही होगा। लेकिन कल शामकी वात तुम्हें याद है ?"

इस बार सावित्री हंस पडी, सिर हिलाकर बोली—"है।"

"सम्भव है, लोगोंको वह बात मालूम हो जाये। इसको क्या तदबीर करनी चाहिये ?"

सावित्रीने सहसा गम्भीर होकर कहा—"यही कि आप या तो किसी दूसरे मेसमे या अपने घर चले जाइये।"

"और तुम ?"

सावित्रीके चेहरेपर किसी प्रकारकी उद्विग्नताका चिह्न न था। वह सहज, शान्त भावसे बोली—"मेरे लिये आप चिन्ता न करें। इस मेसवाले रखें अच्छा ही है, न रखें और कहीं काम कर लूँगी। जहा मजदूरी करूँगी, वहीं दो रोटी पाऊंगी। और कुछ कहना है ?"

सतीशका मन मानो पर्वतकी चोटीसे एकदम नीचे गिरकर चूर-चूर हो गया। उसके यहां रहने न रहनेमें सावित्रीका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है—इस विषयमे वह पूर्णतः तटस्थ है। उसने सिर हिलाकर बतलाया कि उसे और कुछ कहना नहीं है। कारण, सावित्रीके इस सुनिश्चित दो-टूक जवाबके बाद और कोइ प्रश्न उसकी जीभपर आया ही नहीं, यद्यपि पहले उसने न जाने कितनी ही बातें कहनेके लिये सोच रखी थी। सावित्री गिलास लेकर चली गयी। सतीश चुपचाप बैठा रहा।

हाय रे मनुष्यका मन ! यह काहेसे बनता है, काहेसे बिगड़ता, इसका कुछ पता नहीं चलता। यह किस हलकी-सी चोटसे छटपटाने लगता है और किस प्रचण्ड आघातको भी

हँसते हुए सह लेता है—इसका कोई हिसाब ही नहीं लगता और इसी मनको लेकर मनुष्य कितना घमण्ड करता है? जो मुट्ठीमें नहीं किया जा सकता, जो पहचाना तक नहीं जा सकता, कैसे उसे अपना कहा जा सकता है और कैसे उसे लेकर बेखटके घर बसाया जा सकता है!

सावित्रीको गये देर हो गई, तो भी सतीश ज्यों का त्यों बैठा रहा। उसका हृदय ठीक दुःख या शोकसे नहीं, मानो एक प्रकारकी ज्वालासे रह-रहकर जलने लगा। जिसे प्यार करूं वह यदि प्यार न करे, प्यारके बदले घृणा करे तो वह घृणा सही जा सकती है; परन्तु जिसके सम्बन्धमें यह विश्वास हो कि मुझे उसका प्रेम प्राप्त हो चुका है, वहाँ यदि ऐसी बात हो, तो उसका सहना बड़ा ही कठिन हो जाता है! पहली परिस्थिति व्यथा कर देती है, और दूसरी व्यथा भी देती है और अपमान भी करती है। इस व्यथाका प्रतिकार नहीं है, इस अपमानकी नालिश-फरियाद भी नहीं है। जिसके प्रेमकी आशा नहीं करते, वह यदि प्रेम नहीं करता, तो इसमें कहना ही क्या है? परन्तु जहां कहनेकी पूरी-पूरी गुंजाइस है, वहां किसी प्रतिकारके न होने और अपमानकी नालिशका मौका न पानेके कारण ही लाञ्छना इतनी अधिक चोट करती है। वेदनाका कारण ढूंढनेपर भी जब उसका पता नहीं चलता तब वह और भी असहनीय हो जाती है।

जो हो, सावित्रीके इस निश्चिन्त और सरल कर्त्तव्य-निर्वा-

णने केवल उसीके हृदयके मानचित्रको ही उद्घाटित नहीं किया, सने सतीशके हृदयके चित्रको भी बाहरके उजालेमें लाकर खड़ा र दिया। इन दोनों नक्शोंको मुकाबिलेमें रखकर वह स्तम्भित ो रहा। उसने निश्चित रूपसे समझा था कि सावित्री उसे ेम करती है, वह नहीं करता। लेकिन आज उसे मालूम हुआ, कि बात बिल्कुल उल्टी है यानी वह प्रेम करता है, सावित्री नहीं करती। इस घृणित बातको स्वीकार करते केवल लज्जासे ही उसका सर नीचा नहीं हुआ, बल्कि अपने मनकी इस नीच प्रवृत्तिसे उसे अपने ऊपर घृणा भी उत्पन्न हो आयी। निस्सन्देह उसकी पिछली रातकी करतूत लज्जाजनक थी, उसके जीवनमें ऐसी बहुतेरी रातोंकी बहुतसी लज्जाएँ इकट्ठी हो चुकी हैं सही, लेकिन इस नीचताकी तुलनामें वे सभी हलकी पड़ गयीं—फीकी जान पड़ी।

इस मेसमें तो अब एक दिन भी गुजर होनी मुश्किल है। इस बातको वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा कि यहाँ रहने न रहनेके सम्बन्धमें वह बिल्कुल उदासीन है। उसने यह कठोर प्रतिज्ञा कर डाली कि पीडाके भारी बोझसे चाहे उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाये, लेकिन वह किसी प्रकार इस नीचताको अपने मनमें बढावा देकर अपने आपको और भी गहरी खाईमें न ढकेलेगा।

दिन ढलने लगा था, पर भीतर बैठे हुए सतीशको इसका होश न था। सहसा मेसमें रहनेवालोंके अपने-अपने कामसे

लौटनेकी आहट पाकर वह चौंक उठा। खिड़कीसे झांककर उसने एक बार बाहर देखा और उठ खड़ा हुआ। झट एक कुर्ता पहन और चादर कन्धेपर डाल वह छिपकर चुपचाप बाहर चला गया। अभी हाथ-मुँह धोनेका प्रस्ताव लेकर सावित्री आ पहुंचेगी और खानेके लिये हठ करने लगेगी। आज उसे जरा भी भूख न थी। लेकिन सावित्री किसी तरह न मानेगी, अनुरोध करेगी, न हुआ तो दबाव डालेगी, अन्तमें दुखी होकर चली जायेगी। स्नेहके इन मौखिक आडम्बरोंसे अपने जीवनमें आज ही पहले पहल वह अपनेको वास्तविक घृणाके साथ दूर हटा ले गया।

रास्तेमें घूमते-फिरते समय संध्यासे कुछ पहले दर्जीपाड़ेकी की गलीके मोड़पर उसे पीछेसे किसी परिचित कण्ठकी आवाज सुनाई दी—"छोटे बाबू हैं क्या ?"

सतीशने फिरकर देखा, खड़ा हो गया, बोला—"कौन मोक्षदा ?"

मोक्षदा बहुत दिन पहले सतीशके पश्चिम प्रवेशवाले घरमें दासीका काम करती थी। छुट्टी लेकर कलकत्ते आयी था। फिर जा न सकी थी। बोली—हाँ बाबू, मैं ही हूं। छोटे बाबू, मेरी एक चिट्ठी पढ़ दीजियेगा ?"

सतीशने हँसकर कहा—"इतने बड़े शहरमें तुझे और कोई चिट्ठी पढ़नेवाला न मिला ? कहाँ है चिट्ठी, देखूँ।"

दासीने कहा—"चिट्ठी मेरे घरपर है; बाबू ! किसी अनजान

आदमीसे पढ़ाने की हिम्मत नहीं होती, न मालूम क्या लिखा हो। यों तो हमारे घरमें ही एक लड़की है, वह लिखना-पढ़ना जानती है, लेकिन उसे भी आज दो दिनसे नहीं देख पाती हूँ। इतनी रात गये घर लौटती है, कि समय ही नहीं रह जाता।"

सतीशने पूछा—"तुम्हारा घर कितनी दूर है?"

दासीने कहा—"यही तो—यहांसे थोड़ी ही दूर है। बड़ी सड़कसे उस किनारे एक गलीमें। बाबूजी, आप अपना ठिकाना बतला दीजिये, कल मैं ही किसीको साथ लेकर जाऊंगी और चिट्ठी पढ़ा लूंगी?"

सतीशने "अच्छा" कहकर अपना शोभा-बाजारका ठिकाना बतला दिया और किधरसे होकर कहां जाना पड़ता है, यह भी बता दिया। कुछ दूर जानेके बाद दासीने अकस्मात् एक जगह ठहरकर कहा—"कहनेकी हिम्मत तो नहीं होती, लेकिन बाबू, अगर एक बार आप पधारते, तो······मेरा घर यहांसे दूर नहीं है।"

सतीशने पलभर सोचनेके बाद कहा—"अच्छा, चलो।" आज मेसमें लौटनेकी बिलकुल ही इच्छा न थी। वह मनमें यह विचारकर ही घरसे निकला था, कि रातको देरतक इधर-उधर घूमता रहेगा, सावित्रीके घर चली जानेपर वह लौटेगा। अतः सहज ही राजी हो गया। दो गलियां पारकर एक कच्चे दोतल्ले मकानके सामने आकर खड़ा हो गया।

जरा ठहरिये, कहकर मोक्षदा भीतर गयी और तनिक देर

बाद मिट्टीके तेलकी एक डिबरी हाथमें लिये लौट आयी और सतीशको अपने साथ ऊपर ले गयी। ऊपर कोनेवाले कमरेमें दीवटपर दीपक जल रहा था। उस कमरेकी ओर इशारा करके विनय सहित बोली—"आप जरा बैठिये, मैं चिलम भर लाऊँ। भीतर जाकर इस छोटेसे कमरेकी सफाई देखकर सतीशके मनको शान्ति-सी मिली। एक ओर तख्तेपर खूब धोये-माँजे पीतल-काँसेके बर्तन चमक रहे थे और उसीकी बगलमें एक छोटी अर-गनीपर कुछ कपड़े करीनेसे टंगे हुए थे। दीवारमें ब्रैकेटपर एक टाइमपीस घड़ी रखी थी, जिसमे आठ बजे थे। सतीशने चौकठके बाहर जूते खोल दिये और भीतर चौकीपर बिछे हुए दूधके समान सफेद बिछौनेपर जाकर बैठ गया और कमरेके और-और सामानोंको देखने लगा। सबसे पहले उसकी नजर एक छोटी-सी अलमारीपर पडी। उसमे कुछ किताबें सजाकर रखी हुई थीं। सतीशने एक उठायी और पहला पन्ना उलटते ही देखा, अँगरेजी अक्षरोंमे 'भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय' लिखा हुआ है। वह किताब रखकर उसने और तीन-चार किताबें एक-एक कर उठायीं, सबमें एक ही नाम देख, पुस्तकोंको ठीक ठिकाने रख फिर आकर बिछौनेपर बैठ गया।

मोक्षदा फरशीदार हुक्केपर तम्बाकू भर लायी। सतीशने हाथमे हुक्का लेकर कहा—"तुम्हारा यह कमरा तो बहुत ही साफ-सुथरा है। जानेको जी नहीं चाहता।"

मोक्षदाने मुस्कराकर कहा—"जानेकी क्या जरूरत है?

बैठिये। लेकिन बाबू, यह कमरा मेरा नहीं है, एक दूसरी औरतका है।"

सतीशने पूछा—"वह कहाँ हैं ?"

मोक्षदाने कहा—"वह बाबू लोगोंके एक 'बासे' में काम करती है। लौटनेमें प्राय: बेचारीको रात हो जाती है। इसीसे घरकी कुञ्जी मेरे पास रहती है। वह मुझे मौसी कहती है।"

सतीशने कहा—"खैर, लेकिन भुवन बाबू कब आवेंगे ?"

दासीने चौंककर पूछा—"भुवन बाबू कौन ?"

"भुवनचन्द्र मुकर्जी, तुम नहीं पहचानतीं ?"

अकस्मात् दासीने भौंहें तानकर कहा—"ओ हो, हमारे मुकर्जी महाशय, नहीं-नहीं, अब वे क्यों आने लगे ?"

"क्यों, क्या उनकी मृत्यु हो चुकी है ?"

मोक्षदाने आँखोंमे गर्व भरकर कहा—"नहीं, मृत्यु नहीं हुई, लेकिन हो जाती, तो ही अच्छा था। वे ब्राह्मण हैं, वर्णमें गुरु हैं, हम लोगोंके मस्तकके मणि हैं। नारायणके समान हैं। उनके प्रति मैं कोइ द्वेष रखकर कोप-भाजन बनना नहीं चाहती, उनकी चरण-रज माथे चढ़ाती हूँ, लेकिन किसी दिन भेंट हो जाये, तो उनके मुँहपर गिनके तीन झाड़ू लगाऊँ तो मेरा नाम मोक्षदा !"

सतीश हँस पड़ा, बोला—"गुस्सेमे आकर ब्राह्मणको बिना भाव-भक्तिके न मार बैठना। भक्तिके साथ गिन-गिनकर मारोगी, तो कुछ पाप न होगा। लेकिन वे हैं कौन ?"

मोक्षदा तमक कर बोली—"बाबू साहब; उसको परिचय क्या दूँ ? वह ब्राह्मण नहीं, चमार है। इस बेचारी लड़कीको यहाँ छोड़ गया। भला यही अपने आदमीका काम है ? राम! राम! गलेमें फांसी लगाकर मर मिटनेको रस्सी भी जुटी ?"

सतीशने बड़े उत्सुकतासे पूछा—"वे हैं कौन ? उन्होंने क्या किया है ?"

एकाएक दरवाजेके बाहरसे जवाब आया—"उन्हें आप नहीं पहचानते। उनकी बात सुनकर आपको क्या लाभ होगा ?"

सतीश चौंक पड़ा।

मोक्षदाने मुँह फिराकर कहा—"सब्बो, तू कब आयी ?"

सावित्रीने कमरेमें पैर रखकर कहा—"चली ही आ रही हूँ मौसी! बाबू साहब कहाँ मिल गये ?"

मोक्षदाने कहा—"येही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री। आज दो दिन हुए, बहूजीके यहाँसे एक चिट्ठी आयी है। इसीसे मैंने कहा कि बाबू साहब दयाकर घर चलकर पढ़ दें।"

सावित्रीने कहा—"तो यह दया तुम्हारे कमरेमें न करके रे कमरेमे क्यों ?"

मोक्षदाने खिन्न होकर कहा—"गुस्सा क्यों करती है सब्बो, मेरी कोठरी तो भलेमानसोंके बैठनेके लायक नहीं है; इसीसे तेरे कमरेमे बैठाया है। ये बहुत बड़े ख्यानदानी रईस हैं। तुझे खुश होना चाहिये था न कि नाराज।"

सावित्रीने हँसकर कहा—"नाराज क्यों होऊंगी मौसी,

नाराजगीकी कोई बात नहीं है। लेकिन यों खाली-खाली दयाकी भीख लेना क्या ठीक है? बाबूजीको कुछ खिलाओ-पिलाओ भी। हाँ, ब्राह्मण देवता, कहिये कुछ खानेकी इच्छा है?"

सतीश बहुत संकुचित होकर बैठा था, सिर हिलाकर बोला—"नहीं।"

सावित्रीके प्रश्नके विचित्र ढङ्गसे मोक्षदा चकित हो गयी, बोली—"अरी सावित्री! यह बात करनेका कौनसा ढङ्ग है? बड़े आदमीके साथ क्या इसी तरह बातें की जाती हैं?"

सावित्रीने जबरदस्ती हँसी रोककर कहा—'मैंने कोई बुरी बात तो कही नहीं, मौसी! जाने दो, अब इच्छाकी बात न पूछूंगी। लेकिन तुम जाकर दूकानसे कुछ ले तो आओ। मैं तबतक जगह ठीक किये देती हूं।"

मोक्षदा अस्पष्ट स्वरमें बड़बड़ाती हुई जल्दी वहांसे चली गयी। उसके जाने पर सावित्रीने कहा—"कल रातसे ही अनशन चल रहा है, शामको किस तरह भाग निकले, इसका भी पता नहीं चला। अब उठिये, सन्ध्या-वन्दन करके कुछ भोजन कीजिये। उस अरगनीपर धुला हुआ कपड़ा टंगा है, पहिनकर मेरे साथ आइये, देर न कीजिये, उठिये।

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"मुझे भूख नहीं है।"

सावित्रीने कहा—"न सही, खाना जरूर पड़ेगा। पहला कारण यह है, कि आपको भूख नहीं है, इस बातको मैं नहीं मानती; दूसरा कारण ·····

सतीशने बड़ी रुखाईके साथ कहा—"दूसरा कारण कुछ नहीं, रहने दो, लेकिन पहला कारण बहुत ठीक है। तुम सभी बातोंमें जिद और जबरदस्ती करती हो। तुम्हारी इस जिदके सामने किसीका कुछ वस नहीं चलता।"

सावित्रीने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा—"फिर व्यर्थकी चेष्टा क्यों कर रहे हैं?"

सतीश और भी गम्भीर होकर कहा—"यह बात नहीं है सावित्री! आज मेरी चेष्टा व्यर्थ न होगी। या तो अपना दूसरा कारण बताओ, नहीं तो मैं तुम्हें सच कहता हूं, मैं कुछ भी न खाऊंगा।"

सतीशका ढङ्ग देखकर सावित्री हँसने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली—"मैं यह सोच रही हूँ, कि आज आप क्यों आये? आज मेरा जन्म-दिन है, इसीसे आज जब आपने इस नाचीज मजदूरिनका घर अपने चरणोंकी धूलिसे पवित्र किया है, तब आपको यों ही बिना खाये जाने न दूंगी।" इतना कहकर सावित्री रुक गयी। वह रुक तो गयी, पर अन्तस्थलकी व्यथा के कण्ठस्वरके मुक्त मार्गसे बाहर आकर सहसा इस तरह हो गयी कि थोड़ी देरके लिये सतीशकी सारी बोध-शक्ति हो रही। चतुर सावित्री पलभरमें यह अनुभव कर तके सिलसिलेको साधारण हँसीका रूप देकर, मुस्कराकर —"भगवानने आज सौभाग्यसे मेरा अतिथि बनाकर भेजा है, इसलिये आपको खाना भी पड़ेगा और दक्षिणा भी

लेनी पड़ेगी। देखती हूं, आज आपकी जाति-पाँति गयी।"

अबतक सतीश अपनी स्वभाविक अवस्था में आ गया था उसने पूछा—"क्या सचमुच ही आज तुम्हारा जन्म दिन है?"

सावित्री बोली—"हाँ।"

सतीशने कहा—"फिर जब ऐसे मौकेपर आज आ ही पहुँचा, हूं तब बाजारू मिठाई, पकवान या बासी पूरियाँ क्यों खाऊँ? दूसरे, मैं वह सब कभी खाता भी नहीं।"

सावित्री यह बात जानती थी। मन-ही-मन लज्जित होकर बोली—"आज तो रात हो गयी है।"

सतीशने कहा—"तो हर्ज ही क्या है? आज मेस लौटकर किसीकी झाड-झपट तो सुननी नहीं है, फिर ज्यादा रात होनेसे क्यों डरूँ? तुम चाहे जो कहो सावित्री, मैं वह सब नहीं खाऊँगा।

"मै तुमसे हार मानती हूँ।" कहकर सावित्री हँसकर उठ गयी।

सतीश बैठा था, लेट गया। इस छोटी कोठरी को और इस निर्मल स्वच्छ शय्याको छोड़कर जानेको उसका जी नहीं चाहता था। पर आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा बनाये रखकर बैठे रहनेका कोई अच्छा उपाय भी उसे न सूझता था। अब इस भोजन बनाने के विलम्बकी सम्भावनासे उसको मानो किसी आसन्न कर्त्तव्यके कठिन भारसे मुक्ति मिल गयी। वह गात्र-

तकियेको हाथोंसे जोरसे लपेटकर दीवाकरकी ओर मुँह कर चुप-चाप पड़ा रहा। जाते समय सावित्री बाहरसे साँकल चढ़ा गयी थी, यह सतीश जान गया था। इसके अलावा आजकी बातचीतमे 'तुम' के व्यवहारको भी उसने लक्ष्य किया था। एकान्त कमरे में ये दोनों नयी बातें जादूगर और उसकी छड़ीकी भाँति उनके मनमें अपूर्व इन्द्रजालकी रचना करने लगीं। आज ही दोपहरको प्रेमका सारा कूड़ा-करकट उसके मनसे मानों भाटें के खिंचाव मे पड़कर बाहर बह गया था; पर इस समय ज्वारके उलटे प्रवाह में पड़कर फिर सब उसके हृदय में आ-आकर जमने लगा। आज ही दोपहर को आत्माभिमानके आघातकी तीव्र ज्वालाने उसकी आंखोंमें उंगली गड़ाकर उसके मनकी नीच प्रवृतिको दिखा दिया था, उसकी आँखें खोल दी थी; पर उस ज्वालाके शान्त होने के साथ-साथ खुली हुई आखें आप-ही-आप मुंद गयीं। अपने हृदयकी इसी डांवाडोल परिस्थितिकी तरंगोंमें जब वह डूबता उतराता था, तभी उसे नींदकी एक हल्की झपकीसी आ गयी—आँखें जरा लग-सी गयीं। सहसा दरवाजा खुलनेके शब्दसे जगकर पीठ फेरकर उसने देखा कि सावित्री मोक्षदा को लेकर कमरेमें आ रही है। मोक्षदा ने चिट्ठी सतीशके हाथमें देकर कहा—"देखिये तो बाबूजी, बहूजीने क्या लिखा है?"

सतीशने जम्हाई लेते हुए कहा—"अभी उनके लौटने मे दो महीनेकी देर है।"

मोक्षदाने पूछा—"और कोई बात नहीं है ?"

सतीशने पत्र वापस करते हुए कहा—"नहीं, वैसी कोई खास बात नहीं है।"

"बाबू साहब, मेरे वेतनकी बात—"

"नहीं, यह तो उसमें नहीं है।"

रुपयेकी बात नहीं है, सुनकर मोक्षदा मन-ही-मन बहुत झुँझलायी और चिट्ठीके लिये हाथ फैलाकर बोली—हाँ, वह बात क्यों रहेगी ? दुनिया भरकी बेमतलब की बातें लिख मारी हैं—लाइये चिट्ठी। सावित्री, कल मुझे इसका जवाब लिख देना। हाँ, बाबूको खिलायेगी कब ? क्या अब भी खानेका समय नहीं हुआ ?"

सावित्रीने कहा—"ब्राह्मण देवता बिना सन्ध्या-वन्दन किये क्या यों ही खा लेंगे ?"

मोक्षदा झुँझलायी हुई तो थी ही और भी झुँझलाकर बोली—"वाह री तेरी अक्ल। ये क्या कोई पुरोहित जी हैं या पाधाजी, जो पूजा-पाठ करेंगे ?"

सतीशने हँसकर कहा—"क्यों मोक्षदा, क्या तुम भूल गयी, मैं तो सदा ही सन्ध्या-वन्दन किया करता हूँ।"

मोक्षदा झेंपकर बोली—"हाँ-हाँ ठीक है, मैं ही भूल रही थी।"

सावित्रीकी ओर देखकर बोली—"देख बेटी, जगह ठीक कर दे। तेरी कोठरी में तो सब ठीक ही है। उठ, अब देर न कर।"

यों कहती हुई मोक्षदा वहा से चली गयी।

घंटे भर बाद सतीशके भोजनके समय कोठरीमें कोई न था। अंधेरे बरामदेमेंसे मोक्षदा यह देखकर एकदम जल उठी। रसोईघरमें जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी है।

रुष्ट स्वरसे बोली—"अरी सावित्री! क्या तेरी अक्लपर आज सचमुच पत्थर पड़ गया है? क्या किसी भिखमंगे को को खिला रही है, कि जो मनमें आया थालीमें डाल आयी और आप यहां निश्चिन्त होकर बैठ रही?"

सावित्री कुछ सोच रही थी, चौंककर बोली—"आवश्यकता होगी को खुद ही मांग लेंगे।"

"ऐसी अक्ल न होती, तो आज तेरी यह हालत ही क्यों होती? क्यों तुझे यों परायी नौकरी करनी पडतीं? तू तो खुद दो-चार नौकर-चाकर रखती!"

सावित्रीने हँसकर कहा—"क्यों मौसी, इसमें दोष क्या है? मैं मेहनत-मजदूरी करके खाती हूँ, क्या यह भी लज्जाकी बात है?"

मोक्षदा जल उठी और बोली—बेशक! कौन कहता है कि इसमें लज्जाकी बात नहीं है? मेरी उम्रमें भले ही न हो, पर तेरी उम्रमें तो अवश्य है। खैर, अभी जा, बाबूको खाने दे आयी है ,ा जा, बैठकर खिला। किस्मत फिरते देर नहीं लगती।"

सावित्री चलनेको तैयार हुई, जरा ठिठकर बोली—"क्या बक रही हो मौसी, वे सुनते होंगे।"

मोक्षदाने तत्काल ही स्वरको धीमा कर कहा—"नहीं सुनेंगे, तू जा बेटी! तुझे एक बात और बताये देती हूँ। भगवानने जो

दो आँखें दी हैं, वे बन्द किये रहनेके लिये नहीं हैं, उन्हें खोले रहा कर। सोनेकी चेन और हीरेकी अंगूठी न देखकर किसी आदमी को मामूली मत समझ लिया कर।"

सावित्री "अच्छा" कहकर हँसती हुई जाने लगी। मोक्षदाने फिर पीछे से पुकारकर कहा—"सावित्री, सुन इधर आ।"

सावित्री घूमकर खडी हो गयी, बोली—"क्या?"

"ढाके की एक साड़ी निकाले देती हूं, पहनकर जा।"

सावित्रीने हँसी रोककर कहा—"मौसी, तुम निकालो मैं अभी आती हूं।"

सतीशका भोजन प्रायः समाप्त हो चला था।

सावित्रीने कमरे में प्रवेशकर पूछा—"आँख मूँदकर खा रहे हो क्या?"

सतीशने सिर उठाकर कहा—"नहीं तो।"

"पर में तो देखती हूं, तुम्हारी आँखोंपर नींदकी खुमारी नाच रही है।"

सचमुच उसे बड़े जोरोंकी नींद आ रही थी। गत रात्रिके उच्छृङ्खल अत्याचार आज असमय में ही उसकी आँखोंके ढकनों को दबाये हुए थे। उसने शर्माते हुए इसे स्वीकार किया, कहा—"हाँ बड़ी नींद आ रही है।"

सावित्रीने पूछा—"और कुछ चाहिये?"

सतीश झटपट बोल उठा—"नहीं, बस करो, कुछ नहीं चाहिये। मैं खा चुका।"

सावित्रीने बाहर पैरोंकी आहट सुनी और समझ गयी कि मोक्षदा आकर खड़ी है। उसे सुनानेकी गरजसे बोली—"बाबू, मुझे ढाके की एक बढ़िया साड़ी खरीद देनी होगी।"

उसने किसी दिन कुछ भी माँगा नहीं था। इसीसे इस बातका मतलब न समझ कर सतीशको कुछ विस्मय हुआ। उसे मोक्षदाके आनेका पता नहीं था, सिर उठाकर उसने पूछा—"सचमुच ?"

"और नहीं तो क्या—झूठ ?"

"पहनोगी कब ?

"आज अगर भगवानने पहननेका समय नहीं दिया है, तो क्या हुआ ? कभी वैसा समय नहीं आयेगा—ऐसी कोई बात नहीं। दूसरी बात यह है, कि मैं मेहनत-मजदूरी करके पेट पालती हूँ, इसका मौसीको बड़ा रंज है। इसीसे सोचती हूँ, कि अब मेहनत-मजदूरी न करके बैठी-बैठी खाऊँगी।"

सतीशने कहा—"अच्छी बात है !"

"पर इतनेसे ही तो काम न चलेगा। एक मजदूरनी भी मेरे ... रखनी पड़ेगी और यह सब आपको ही· ·" यह बात ...री भी न कर सकी कि उसे मुँहमें कपड़ा ठूसकर हंसीके दतन्द ...को रोकने की कोशिश करनी पड़ी।

मोक्षदा कुछ कच्ची गोटी तो थी नहीं। पलभरमें ही वह सारा मामला समझ गयी। घरके भीतर आकर बोली—"मालूम होता है, बाबू सावित्रीको जानते हैं। सावित्रीकी ओर घूमकर

बोली—"समझ गयी, मौसीके साथ यह चोंचलेबाजी ! जो हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है, खुशीकी बात है। पहले ही कह देनेमें क्या हर्ज था ?" कहती हुई वह धीरे-धीरे चली गयी।

भोजन समाप्तकर सतीश फिर एक बार बिछौनेपर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बी भरकर पान लायी। फरशीदार हुक्केमें उसने तम्बाकू भरकर सतीशके पास ला रखी और पैरोंके पास सहनपर बैठकर, जरा हँसकर चुपचाप सर नीचा कर लिया।

सतीशके हृदयमें आँधी बहने लगी। नाभीकी सारी नाड़ियां क्षण-क्षणमें सिकुड़ने और फैलने लगीं, रोंगटे खड़े हो गये। भीतर-ही-भीतर एक कँप-कँपी-सी दौड़ गयी। थोड़ी देरके लिये हुक्केमें दम लगानेकी भी मानों उसमें ताकत न रही। इसी तरह दो मिनट चुपचाप बीत जानेपर सावित्रीने सहसा सर उठाकर कहा—"रात अधिक हो गयी, घर न जाओगे ?"

सतीशने सूखे हुए कण्ठसे कहा—"जाऊँगा नहीं तो रहूंगा कहां ?"

"क्यों ? यहीं रहो। न जा सको, तो जानेकी जरूरत ही क्या है ? मौसी अभीतक जग रही है, मैं उसके साथ जाकर सो रहूंगी।" कहकर सावित्री सतीशका मुँह निहारती रही।

क्षणभरके लिये सतीश चुप रहा, लेकिन फिर तुरन्त प्रबल चेष्टासे अपनेको रोककर वह उठ खडा हुआ, बोला—"नहीं, चलता हूं।"

"अच्छी बात है, पर जरा और बैठो, कहकर सावित्री उठी, बाहरसे सतीशका जूता ले आयी और आँचलसे पैर पोंछकर जूतेका फीता बाँधती हुई धीरे-धीरे बोली—"मेसके लोग अगर जान जायें तो ?"

"कैसे जानेंगे ?"

"मैं ही अगर कह दूँ ।"

"कह क्या दोगी ? कोई बात भी हो ।"

सावित्रीने फिर मुस्कराकर कहा—"क्या कुछ भी नहीं है ? सच कहते हो ?"

सतीश चुप हो रहा ।

सावित्रीने मृदु कण्ठसे कहा—"यदि कुछ कहनेकी न होता, तो आज मैं तुम्हें कदापि न छोडती। अच्छा, तुम अब घर चले जाओ। लेकिन यह ओछी प्रवृत्ति—यह दुर्बुद्धि न छोड़ोगे, तो याद रखना, एक दिन सब बातें खोल दूंगी ।"

यह क्या मामला है ! इसका कुछ मतलब सतीशकी समझमे न आया। कुछ देरतक वह चुप रहा, फिर बोला—"कह , तो मेरा क्या बिगड़ेगा ? मेसवाले कुछ मेरे अभिभावक हैं नहीं ।"

सावित्रीने कहा—"यह मैं जानती हूँ लेकिन इस कामका र मेरी मौसी सहज ही ले लेगी, उसकी जीभको कैसे रोकोगे ?"

मोक्षदाका नाम सुन सतीश मन-ही-मन जरा डरा, तो भी बोला,—"रुपयोंसे ।"

सावित्रीने कहा—"बस ? इसस तो सिर्फ रुपयोंकी बरबादी होगी, काम कुछ न होगा। इसके सिवा मौसीको तो रुपयोंसे वश कर लोगे, लेकिन मुझे ? मुझे कैसे वशमें लाओगे ?"

सतीशके मुँहसे अनायास निकल पड़ा—"प्रेमसे।"

सावित्रीके होठोंपर बलपूर्वक रोकी हुई कठिन हँसीका आभास दिखाई दिया, बोली—"यह चौथी बार है।"

"मतलब ?"

'मतलब यह, कि इसके पहले भी और तीन महाशयोंने मुझे यही चीज देनी चाही थी।"

"और तुमने नहीं ली ?"

"नहीं, यह कूड़ा-करकट बटोर कर रखनेकी जगह मेरे पास नहीं है।

सतीश निश्चल होकर बैठा रहा। उसे दोपहरकी सब बातें याद हो आयी और साथ-ही-साथ प्रेम-नदीके ज्वार का जाना और भाटेका आना भी शुरू हो गया। सावित्रीकी बातोंको वह हँसी-मजाक न समझ सका। एकाएक बहुत ही रुखाईके साथ वह बोल उठा—"वे बेवकूफ थे। उन्हें ऐसी चीज देनेका प्रस्ताव करना चाहिये था, जिसे लेकर बक्समें रखनेमें किसीको दिक्कत न जान पड़ती। मैं भी कम बेवकूफ नहीं हूं; क्योंकि मैं भी यह बात प्रायः भूल गया था कि प्रेम तुम लोगोंके लिये बहुत ही निन्दा और घृणाकी वस्तु है। इस उम्रमें मुझे इतनी बड़ी भूल न करनी चाहिये थी। अच्छा, चलता हूं।"

ये बातें सावित्रीके हृदयमे वर्छीसी लगीं।

'तुम लोगोंके लिये'—कहकर सतीशने उसे किन लोगोंकी श्रेणीमे मिलाया, यह समझना सावित्रीके लिये बाकी न रहा। लेकिन हँसीको झगड़ेमे बदलते देखकर वह चुप हो गयी। पर सतीश चुप न रह सका, बोला—"शिकारी मछली फँसाकर जैसे ढील दे देकर, खेला-खेलाकर तमाशा देखता है, मालूम होता है, इतने दिन तुम भी मुझे फँसाकर वैसे ही मेरे हृदयसे खेलवाड कर रही थी! क्यों?"

सावित्री अब बरदाश्त न कर सकी। बिजलीकी तरह चमककर उठ खड़ी हुई, बोली—'तुम तो बन्सीमे फँसाते ही खींच लेनेके काबिल हो, तुम वैसी बडी मछली नहीं, जिसे खेलाकर, तमाशा देखा जाये।"

सतीशने ममताहीन व्यंग करके कहा—"ऐसी बात है?"

सावित्रीने कहा—"और नहीं तो क्या?" उसके होंट सिकुड़ गये। सतीशके मुँहकी ओर केवल एक बार तीव्र दृष्टि डालकर बोली—"चरित्रहीन, वेश्याके प्रति प्रेम दिखाकर तुम मेरे आगे प्रेमकी बड़ाई कर रहे हो? अभी यहा से चले जाओ, मेरे घरमे खड़े होकर मेरे अपमान न करो।"

इस अपमानसे सतीश और भी निर्दय हो गया। इस बार वह अत्यन्त कुत्सित व्यग कर बोला—"चरित्रहीन! लेकिन चाहे जो कुछ कहो सावित्री, माँ-बापने तुम्हारा नाम बहुत ही ठीक रखा था!"

सावित्री हटकर चौखट पकड़कर क्षणभर निश्चल खड़ी रही। बोली—"जाओ, उसका चेहरा उस समय बिलकुल पीला पड़ गया था।

सतीशने अपमान और क्रोधकी ज्वालामें उस ओर आंख उठाकर देखातक नहीं, बोला—"लेकिन जानेके पहले फिर एक-बार आंचलसे पैर न पोंछ दोगी या और कोई ढोंग न रचोगी? और कुछ·····

अकस्मात् दोनोंकी आंखें चार हुईं।

सावित्रि एक कदम आगे बढ़कर बोली—"तुम कसाईसे भी निष्ठुर हो। जाओ, तुम यहांसे चले जाओ, चले जाओ, तुम्हारे पैरो पडती हूँ, तुम चले जाओ, न जाओगे तो मैं सिर पटककर जान दे दूँगी—तुम जाओ।"

उसके कण्ठस्वरकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तीव्रतासे सतीश भय-भीत हो गया और विना कुछ बोले बाहर जाने लगा, लेकिन बरामदेके अन्ततक आकर उसे रुक जाना पड़ा। उधर अन्धकार इतना गहरा था कि उसे न तो सीढ़ियां सूझीं न निकलनेकी राह ही दिखाई दी। पाकेटमे हाथ डालकर देखा, तो दियासलाई नहीं थी। इस निरुपाय अवस्थामे पड़कर वह पाच मिनट तक खडा रहा। फिर उसे सावित्रीके घरकी ओर लौटना पडा। बाहरसे देखा, सावित्री चटाई पर औंधी पडी है। धीरे-धीरे पुकारा—"सावित्री!" सावित्रीकी कोई आवाज न आयी। फिर पुकारा; पर वह ज्योंकी त्यों पडी रही। सतीशने कमरेमें

आकर उसके सिरपर हाथ लगाया, झुककर देखा, कि आंखें बन्द हैं, मुँहमे उँगली डालकर उसने मालूम किया, कि वह मूर्च्छित हो गयी है। क्षणभर के लिये उसके मनमें एक भय और संकोच जरूर पैदा हुआ, लेकिन उसके बाद ही सावित्रीके अचेत शरीरको उठाकर उसने बिछौनेपर लिटा दिया और दुपट्टेका एक कोना घड़े के पानीमे भिगो, उसके मुँह और आंखोंपर छींटे देने और एक हाथमे पंखा लेकर झलने लगा। दो-तीन मिनटके बाद ही सावित्रीने आँखें खोली, सिरपरका सरका हुआ कपड़ा ठीक किया, करवट बदली औरबोली—

"अभीतक तुम गये नहीं ?"

सतीश चुपचाप पंखा झलता रहा।

सावित्री बिछौनेसे उठी, दीपक हाथमें लेकर बाहर चली आयी, बोली—"चलो, तुम्हें दरवाजा खोल दूं।"

इसके बाद चुपचाप रास्ता दिखाती हुई नीचे उतर गयी और दरवाजा खोलकर किनारे खड़ा हो गयी।

मूर्च्छित सावित्रीको उठाकर बिछौनेपर लिटानेके बादसे ही [illegible]ीश कुछ अनमना-सा हो रहा था। अब दरवाजेके बाहर [illegible]ते ही वह फिर अपनेमे आ गया और सिर उठाकर कुछ कहना ही चाहता था, कि सावित्री बोल उठी—"रहने दो, कुछ मत बोलो। अपने शरीरको तो तुम पहले ही नष्ट कर चुके हो, वह तो खैर किसी दिन जलकर भी भस्म हो जायेगा; परन्तु एक अस्पृश्य कुलटासे प्रेमकर भगवानके दिये हुए मनपर भी

कालिख न पोती। हो सके, तो कल तुम उस मेसको छोड़कर कहीं हट जाना और न हो सके, तो मैं अब वहाँ न जाऊंगी।" इतना कहकर सावित्रीने उत्तरकी कुछ प्रतीक्षा किये बिना ही जोरसे दरवाजा बन्द कर लिया।

८

सतीशकी अक्ल हैरान थी। सावित्री उसे निरन्तर क्यों खींचती है और निकट आनेपर क्यों ऐसा निष्ठुर आघात कर दूर हटा देती है? इस बातपर सारी रात विचार करते रहनेपर भी वह कोई स्पष्ट कारण निश्चित न कर सका, तब उसे सन्देह हुआ कि सावित्री पागल तो नहीं है? पिछली रातकी एक-एक बात अबतक उसकी हड्डियोंको मानो झनझना रही थी, इसीसे वह सवेरे ही उठकर बाहर चला गया और दूसरा मकान ठीक करके कुली बुलाकर अपना सामान उसके सिरपर लदवाने लगा। यह देखकर मेसके सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, सबसे अधिक आश्चर्य बिहारीको हुआ। उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा—"बाबू साहब, क्या घर जा रहे हैं?"

सतीशने उसकी मुट्ठीमें पाँच रुपये देकर कहा—"नहीं बिहारी, घर नहीं जाता, स्कूलके पास ही एक घर मिल गया है, वहीं जा रहा हूं।"

बिहारी क्षणभर चुप रहकर बोला—"लेकिन वह तो अब तक नहीं आयी।

सतीशने विना सिर उठाये ही कहा—"नहीं आयी ? अच्छा, तू मेरा सामान बांधकर ठीक कर दे, मैं तबतक राखाल बाबूसे एक बार मिल आऊं।"

इसके बाद डेरेका लेना-देना चुकानेके लिये वह राखाल बाबूके कमरेमें चला गया। कमरेमे कई आदमी थे, शायद वह उसके सम्बन्धमे आलोचना हो रही थी। कारण, उसको देखते ही सबके सब चुप हो गये। राखालने हंसनेकी चेष्टा करते हुए कहा—"सतीश बाबू आज एकाएक कहां चले ?"

सतीशने हाथके रुपये टेबुलके एक किनारे रखते हुए कहा—"एक दिन एकाएक आया था, आज एकाएक चला भी जा रहा हूं। शायद इन रुपयोंसे हिसाब पूरा पड़ा जायेगा, न पड़े तो मुझे कहला भेजियेगा, बाकी रुपये भी भिजवा दूंगा।"

राखालने कहा—"कहां कहलाया जायेगा ?"

'मेरे स्कूलके पतेसे एक कार्ड लिखकर डाल दीजियेगा मुझे मिल जायेगा। इतना कहकर सतीश उत्तरकी बाट देखे बिना ही बाहर चला गया। कमरेके भीतरसे एक दबी हुई हंसी का शब्द सतीशके कानोंतक पहुंचा।

बिहारी पास ही खड़ा था, कमरेमे आकर हाथकी छोटी पोटली किवाड़की आड़में रख, राखाल बाबूसे बोला—"बाबू साहब, हिसाब करके मेरा सत्रह दिनका वेतन चुका दीजिये, मुझे अभी बाबूजीके साथ जाना होगा।"

राखालने विस्मित और क्रुद्ध होकर पूछा—"तो यहां काम

कौन करेगा? जब तू चाहेगा, चला जायेगा? नौकरी है या खेल?"

बिहारीने कहा—"क्यों बाबू साहब, मुझे तो जाना ही पड़ेगा।"

राखालने मुँह लाल करके कहा—"इसका क्या मतलब? तुम्हें बाकायदे नोटिस देना पड़ेगा, कुछ खबर है?"

बिहारीने कहा—"बहुत अच्छा, किसी दिन फुर्सत मिलेगी, तो आकर दे जाऊँगा, अभी आप मेरी तलब तो चुका दीजिये, मुझे सब माल असबाब ठीक करना है।"

राखालने कोई जवाब नहीं दिया। उसने आँधी की तरह सतीशके कमरेमें घुसकर कहा—"सतीश बाबू, यह सब क्या कर रहे हैं?"

सतीश बिछौना बांध रहा था, उसने सिर उठाकर पूछा—"क्या कर रहा हूं?"

राखालने उद्धत भावसे कहा—"महाराजिन नहीं आयी। वह तो देखते हैं, पहले ही चली गयी, और अब बिहारीको भी आप ले जाना चाहते हैं? दोष करें आप और उसका दण्ड भोगें हम लोग?"

सतीशने विस्मित होकर कहा—"आपकी बात मेरी समझ में नहीं आयी।"

राखालने सुर चढ़ाकर कहा,—"समझमें क्यों आयेगी? न समझनेमें ही तो मजा है! अच्छा हुआ, जो आप स्वयं जा रहे

हैं, नहीं तो आपको किसी-न-किसी दिन हटाना ही पड़ता। खैर, आदमीमें कुछ तो भलमनसाहत होनी चाहिये ?"

सतीशकी दोनों आँखें जल उठीं, पास आकर बोला—"आप यह सब कह क्या रहे हैं ?"

ईर्ष्याकी आग राखालको जला रही थी, बोला—"ठीक ही कहता हूं और आप समझ भी ठीक ही रहे हैं, सतीश बाबू! हम लोगोंसे कोई बात छिपी नहीं है! खैर, आप यहांसे तशरीफ ले जाइये। बिना जाने हमने आस्तीनमें सांप पाल रखा था—उसीका यह नतीजा है कि तमाम तखड़-बखड हो गया!"

सतीशने राखालका एक हाथ पकड़ा और दबाकर कहा—"राखाल बाबू, यह सब आप क्या कह रहे हैं!"

राखालने जोरसे हाथ छुड़ाकर गरजकर कहा—जाइये जाइये! ढोंग न रचिये! अपना रास्ता नापिये।

बिहारीने कमरेमें आकर कहा—"बाबूजी, छोडिये इनकी बातोंको। इनकी जलनकी वजह इनके दर्दकी जगह मुझे अच्छी तरह मालूम है। मैं किसी दिन आपको सब बतलाऊंगा। आइये, हमलोग सामान ठीक कर लें।" राखाल पैर पटकता आ बाहर चला गया। सतीश चौकीपर बैठकर बोला—"बिहारी, आखिर यह सब मामला क्या है।"

बिहारीने कहा,—"बाबू, मैं आपके साथ चलूंगा यहां नहीं रहूंगा।

सतीशने आश्चर्यमें पड़कर कहा—"मेरे साथ ? तो यहांका

काम कौन करेगा ? बिहारीने अविचल दृढ़ताके साथ कहा—"जिसकी इच्छा हो करे, मैं तो आपके साथ ही चलूँगा। एक नौकरके बिना भला आपका काम कैसे चलेगा ?"

इतनी देर बाद सतीशने समझा कि मामला क्या है। क्षण-भर चुप रहकर उसने कहा—"बिहारी, पहले भी तो तू यह बात कह सकता था।"

बिहारीने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप सामान सहेज और बाँध-बूँधकर कुलीके सिरपर धरने लगा। अब उसके जानेमें कोई सन्देह नहीं रह गया।"

नये 'बासे' में आकर सतीश सोचने लगा—मैं ऐसा क्योंकर हो गया ? हर कोई मेरा अपमान करता है, यही नहीं, अपमान करके मजेमें बच भी निकलता है ? मेरा असाधारण शारीरिक बल जौ भर भी कम नहीं हुआ है ; फिर भी सिर उठाकर मैं किसीसे बात क्यों नहीं कर सकता ? क्यों मैं चुपचाप सर झुकाये सब सह लेता हूँ ? अपने मनकी यह शोचनीय दुर्बलता आज उसे बहुत खलने लगी और उससे भी अधिक खलने लगा यह दुःख कि किसीके अपमानोंका बदला लेनेकी हिम्मत उसे छोड़कर क्यों चली गयी ? राखालकी क्रुद्ध भाषा उस रातकी घटना की ही ओर इशारा कर रही थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। मनमें यह विचारकर सतीश शर्मसे धरतीमें गड़ा जाने लगा। विपिनके आदमियोंने उसे कैसे पकड़ा था, अन्धेरेमें वह किस तरह पड़ा हुआ था, उन अक्लमंदोंने कैसे

सारी चालाकी समझकर उसे ओढ़नेके नीचेसे निकाल लिया था, इत्यादि चित्ताकर्षक, दुर्लभ विवरणका, झूठ-सचके रसअलङ्कारसे सजाकर जो वर्णन किया गया होगा, सभी उपस्थित लोगोंने उसका किस प्रकार आनन्द, आग्रह और उच्च हास्यके साथ उपभोग किया होगा—इसकी आद्यन्त कल्पना करके उसका चेहरा ऐसा मर्मान्तिक और वीभत्स देख पड़ा, कि अकेले कमरेमें भी सतीशका सारा मुखमण्डल वेदनासे विवर्ण हो गया। उन्हीं लोगोंके सामने राखालने अपमानित करके विदा कर दिया और वह जबान तक न हिला सका! सावित्री जब यह बात सुनेगी, तो अपने मनमें क्या कहेगी?

किन्तु वह तो कुछ भी न कहेगी। वह तो चुपचाप स्तब्ध होकर सारी लाञ्छना सहेगी, कोई जवाब न देगी। उसका गर्व कितना प्रचण्ड है, यह बात तो वह निसंशय रूपसे समझ ही चुका था, आज उसका निरुपाय, व्यथित मुखड़ा भी मानस-नेत्रोंके आगे स्पष्ट दिखाई देने लगा। सतीशने मन ही मन सोचा, 'इसमें सन्देह नहीं कि मेरी ही मूर्खतासे यह आफत मची है, सहाया सावित्रीको वहीं छोड़ आना उचित नहीं हुआ, लेकिन उचित क्या होता यह बात भी उसकी समझमें न आयी, परन्तु क्या सावित्रीने ही उसे चले जानेके लिये नहीं कहा है? क्या उसने घमण्डके साथ यह बात नहीं कही कि इसमें यह कोई अपमान नहीं समझती।

बिहारीने आकर कहा—"बाबू आपके नहानेका समय हो

गया है।" उसका कण्ठस्वर आज किसी विशेष अर्थकी सूचना दे रहा था।

सतीश लज्जित होकर चटपट उठ खड़ा हुआ और अंगोछा कन्धेपर डालकर नहाने गया।

आह! जिस समय कलेजा टुकड़े-टुकड़े होकर कट-कटकर गिर रहा हो, उस समय भी संसारके छोटे-से-छोटे कामकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह स्कूल गया लेकिन क्लासमें न जा सका, इधर उधर बाहर घूम-घामकर घर लौट आते ही न मालूम किस निराशासे उसका सारा अन्तःकरण परिपूर्ण हो गया। इस नये कमरेमें सब चीजें यथास्थान रखने और सब कुछ सहेजनेमें बिहारीने यथेष्ट परिश्रम किया है, यह देखनेसे ही मालूम होता था, पर नये रंगरूट हाथोंकी प्रथम चेष्टा छिपती न थी, यह बात भीतर आते ही सतीशकी नजरोंमें खटक-सी गयी। बिहारी शरबत बना लाया, तमाकू भर दी और दूकानसे पानका दोना खरीद लाकर पास रख दिया। बूढ़ेकी इन सारी अनभ्यस्त चेष्टाओंपर सतीश मन-ही-मन हँसनेको तैयार हुआ; पर हँसीके बदले रुलाई आ गयी। उसने आँखें पोंछी। रातको बिछौनेपर लेटकर सतीश सोचने लगा, जो होना था, हो गया। इन सब बातोंको वह अब मनमें भी न आने देगा, लिखने-पढ़नेके लिये कलकत्ते आया था, वही लेकर रहेगा, न होगा तो घर लौट जायेगा। किन्तु उस मूर्छिता स्त्री का जो उत्तम स्पर्श लेकर वह चुपचाप घरके बाहर चला आया

था, उसकी आँख उसकी सारी संयम-चेष्टाको निरन्तर तिल-तिल करके गलाकर समाप्त करने लगी। बिहारी मन-ही मन सब समझ रहा था, लेकिन सान्त्वना देनेका साहस उसे न होता था। इसीसे वह मुँह लटकाये चुपचाप दरवाजेके बाहर बैठा था। लगभग दस बजनेका समय हो गया था, उसने धीरेसे पूछा—"बाबू साहब, बत्ती बुझा दूँ ?"

सतीशने कहा—"बुझा दे, लेकिन बिहारी तू कहाँ सोयेगा ?"

"यहीं रहूँगा, बाबू साहब। मैंने अपनी चटाई दरवाजेके सामने ही बिछायी है।"

सतीशने पूछा,—"इस मकानमें क्या नौकरोंके सोनेके लिये अलग कोई कमरा नहीं है ?"

बिहारीने कहा—"नीचे एक खाली कमरा है, लेकिन रातको आपको कोई जरूरत हो, इसलिये यहीं सोना ठीक है।"

सतीशने घबरायी हुई आवाज़में कहा—"नहीं-नहीं, तू नीचे जाकर सो रह। बूढ़ा आदमी ओसमें कहां रहेगा ?

"ओस कहाँ है बाबू साहब! कहकर बिहारी वहीं लिहाफ ओढ़कर सो रहा।

कुछ देर चुप रहकर सतीशने पूछा—"रात कितनी बीती होगी ?"

"ज्यादा नहीं हुई बाबू मेरी समझमें दस बजे होंगे।"

सतीश फिर चुप हो रहा। कुछ देर बाद मृदु कण्ठसे पूछा—"अच्छा, बिहारी! तुझे सावित्रीका घर मालूम है ?"

विहारी उठ बैठा, बोला—"जानता क्यों नहीं ? कितनी हो वार उसे रातको साथ जाकर पहुँचा आया हूं।"

सतीश फिर कुछ न बोल सका; लेकिन विहारीने कहा—"कहिये तो एक वार जाकर देख आऊँ ?"

सतीश घबराकर बोल उठा—"नहीं नहीं, तू कहां जायेगा ? बड़ी दूर है।"

विहारीने कहा,—"नहीं बाबु साहब, दूर कथा है ?"

सतीश सोचने लगा, कुछ बोला नहीं।

विहारीने कहा—"बाबूजी, अगर घंटे भरकी छुट्टी दीजिये तो देख आऊं। सवेरे कामपर भी नहीं आयी थी। मालूम होता है, बीमार हो गयी है।"

फिर भी सतीश बोला—"नहीं।"

विहारी मन-ही-मन बेचैन हो उठा। आज दिन भर अपनी आदतके अनुसार बातें करनेका मौका उसे नहीं मिला था; दूसरे बोलनेके लिये मसाला भी इतना अधिक मनमें आ इकट्ठा हुआ था, कि उसके कण्ठकी नसेंतक मानों अकुला उठी थीं। उसने फिर एक वार कहा—"नयी जगह नींद नहीं आती होगी, बाबूजी ! एक चिलम तमाकू भर दूं ?"

सतीशका मन दूसरी ओर लगा हुआ था, कुछ सुना नहीं। तो भी विहारी सिर ऊंचाकर बाट देखता रहा। अन्तमें हताश हो, सिरसे पैरतक ओढ़ना तान वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक समयपर सतीश स्कूल चला गया। दोपहर-

को बिहारी अपने जिम्मेका सब काम-काज पूरा कर नये बहाल किये गये पाड़ेजी महराजपर घरकी रखवालीका भार सौंप बाहर निकला और सत्रह दिनका बाकी वेतन लेनेके बहाने पुराने मेसपर जा पहुंचा। फिर भी उसे यह डर था, कि राखाल बाबू कहीं आफिस न चले गये हों। इसीसे जाते ही उसने नये नौकरसे खबर ली और रसोई घरके सामने आकर जोरसे पुकार कर कहा, "पा लागन"—महराजजी।

महराजजी गाजेकी चिलममें दम लगाकर दीवारका सहारा लिये, आखे बन्द किये ध्यान कर रहे थे, चौंक उठे, बोले—"जय हो!" फिर सिर सीधाकर आंखे खोल बोले—"कौन, बिहारी। आओ, आओ, बैठो।"

बिहारी पास आया, पैर छूकर बैठ गया। रसोइयेने अगोछेके कोनसे थोडासा गाजा खोल, बिहारीके हाथमें देकर पूछा,—"कहो, उस नये बासेमें भोजन कौन बनाता है?"

बिहारी उठा, हथेलीमे दो-चार बूंद जल डाल लौटकर बोला—"एक पछैया बाम्भन है—बिल्कुल बैल है।"

महराज खुश हो, सिर हिलाकर बोला—'विधाताने इन्हें बु क्यों नहीं दी, यही आश्चर्य है। इसके बाद अपने यहां नहा की जगहपर बहाल किये गये नये नौकरकी ओर इशारा करके बोला—"यहां भी कल एक बनमानुष पकड कर लाया गया है। उसकी अकलकी बात तुम्हें क्या बताऊं बिहारी। आज सबेरे उसे एक चिलम देकर मैंने उसकी अक्लकी थाह लेनेकी

ारजसे कहा,—इसे जरा चढ़ा तो लाना भैया।' कहनेसे तुम्हें यकीन नहीं होगा, इस उल्लूके पट्ठेने सारा गुड गोबर कर डाला। परतुम लोगोंको वहा कोई तकलीफ न होगी। सावित्री बडी होशियार और समझदार लडकी है; दो ही दिनमे वह सब कुछ सिखा-पढ़ाकर उस नये रसोइयेको पक्का कर देगी।

उसकी अपनी पन्द्रह आना विद्या भी इसी गुरुके पाससे सीखी हुई थी। इस बातको चुपचाप निगलकर चटपट बोला—"लेकिन कुछ भी हो बिहारी चौकी-बेलन थामना या कड़ाही-कलछी पकड़ना जान लेनेसे ही काम नहीं चलता। बाबू-भैयोंको खुश रखना, उनकी थालीमे भोजन परोसना, कुछ मामूली अक्लका काम नहीं है, यह काम ऐरे-गैरे नत्थू खैरेका किया नहीं हो सकता। लेकिन मेरा यहा अब गुजारा न होगा, तुम्हे पहलेसे हो कहे रखता हूं। तुम मेरा नाम लेकर सावित्रीसे कहना। वह तुरन्त कहेगी, जाओ बिहारी, ब्राह्मण देवताको बुला लाओ, कोई हर्ज नही दो रुपया महीना ज्यादा लगेगा तो लगे, सतीश बाबु भी नाहीं नहीं करेंगे। मै उनका मिजाज जानता हू। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणो गति.। मेरे दो रुपया ज्यादा पानेसे वह कहीं बुरी जगह ता जायेगा ही नहीं।" यह कह, महराज हँसने लगा।

बिहारी भौचक होकर उनकी बातें सुनता रहा, बोला—"लेकिन महराजजी सावित्री तो वहां नहीं है।"

महाराजने अविश्वासकी हसी हंसकर कहा—"अच्छा, नहीं-नहीं अन्तमें तू मेरा नाम लेकर कहना, उसके बाद जो होगा, मैं देख लूंगा ”

बिहारी बड़ा गम्भीर मुंह बनाकर, बायें हाथको मूल्यवान् वस्तुको दाहिने हाथकी हथेलीमे लेकर बोला--"कसम खाता हूं देवता, वह वहा नहीं जाती है।"

इतनी बड़ी कसमके बाद बाबाजी महराजका सन्देह दूर हो गया। वह अचम्भेमें आकर बोला—"बिहारी, तू कहता क्या है? वह तो यहां भी नहीं आती। फिर चौबीसों घन्टे राखाल बाबू बेचारे सतीश बाबूको जो ...अच्छा, तू जा, एक बार उसके घर जाकर उसे देख तो आ, उसके बाद मैं जरा राखाल बाबूसे बातें करूंगा। बिहारी, मुझे ऐसा-वैसा बाम्भन न समझना।"

उसके ब्राह्मणत्वपर बिहारीकी अगाध श्रद्धा थी, उसने गाजेकी चिलम ब्राह्मणके हाथमें थमाकर पूछा—"अच्छा, सतीश बाबू यहांसे गये क्यों? वे कहते हैं, स्कूल दूर पड़ता है—लेकिन मैं [illegible] हूं, कि बात कुछ और ही है।"

महराजने सावधानीसे चिलमपर आग चढ़ाते हुए कहा—'हा, दालमें कुछ काला जरूर है।" इसके बाद दोनोंने बारी-बारीसे दम लगाकर चिलम झाड़ दी। बिहारी [illegible] खड़ा हुआ और मुंह लटकाये सावित्रीके घरकी ओर च[illegible] उसे पूर्ण विश्वास था कि सावित्री बीमार पड़ गयी है।

सावित्रीके घरका सदर दरवाजा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अन्दर गया। प्रायः सभी कमरोंके दरवाजे बन्द थे। किरायेदार दिनकी नींद ले रहे थे। बिहारी धीरे-धीरे सावित्रीके कमरेके सामने आकर खड़ा हुआ ही था कि उसे काठ-सा मार गया! किवाड़का एक पल्ला बन्द था और दूसरा खुला। बिहारीने देखा, सावित्री जमीनपर चुपचाप बैठी है और पास ही चौकीपर विपिन शराब पिये हुए मतवाला बना हुआ पड़ा है। पांवकी आहटसे चकित हो, सावित्रीने मुँह फेरकर देखा। बिहारीको देखते ही क्षणभरके लिये उसका चेहरा मानो पीला पड़ गया। पर अपनेको सम्हालकर बाहर आकर जोरसे हँसकर बोली—"आओ बिहारी, बैठो।" उसे साथ लिये सावित्री रसोई घरके पास बरामदेमें आयी, चटाई बिछा दी और बड़े आदरसे बिठाकर आप पास ही पड़ी हुई बेंचपर बैठकर बोली—"सब लोग अच्छे हैं, बिहारी?" बिहारीने सिर हिलाकर बतलाया कि सभी अच्छे हैं। इसके बाद सावित्रीने और कोई बात नहीं पूछी। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक चलनेको तैयार होकर बोला—"जाता हूं। मुझे बहुत काम करने हैं।"

सावित्रीने सूखे हुए कण्ठसे पूछा—"अभी चले जाओगे? जरा बैठो न।"

बिहारी उठ खड़ा हुआ, बोला—"नहीं, जाता हूं।"

सावित्री उसके साथ सदर दरवाजेतक आयी, बोली—"बिहारी, बाबू लोग तो बहुत नाराज हुए होंगे।"

बिहारी पैर आगे बढ़ाता हुआ बोला—"मुझे क्या मालूम? हम लोग अब वहाँ नहीं रहते।"

सावित्रीने व्यग्र भावसे पूछा—"नहीं रहते? क्या मेस टूट गया?"

बिहारीने कहा—"नहीं, टूटा नहीं है। केवल सतीश बाबू मेस छोड़कर दूसरे मकानमें चले आये हैं। उनके साथ ही मैं भी चला आया हूँ।"

"तुम लोग वहाँसे क्यों चले गये बिहारी?"

"बहुत बातें हैं।" कहकर फिर बिहारी ज्योंही चलनेको तैयार हुआ, त्योंही सावित्रीने दोनों हाथोंसे उसका हाथ पकड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"बिहारी एक बार फिर तुम्हें थोड़ी देरके लिये बैठना होगा।"

बिहारीने दृढ़ताके साथ सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, मुझे अब और फ़ुर्सत नहीं है।"

"तो वादा करो, कि कल एक बार आओगे?"

बिहारीने पूर्ववत् दृढ़ताके साथ कहा—"नहीं।"

क्षणभरके लिये सावित्रीने उसके चेहरेकी ओर देखा और हाथ छोड़ दिया। दुःखसे उसका हृदय लबालब भर गया। वह गम्भीर भावसे बोली—"अच्छा, तो जाओ। जाकर उन्हें यहाँ-की बात बता देना।"

इस बातने बिहारीपर चोट की। उसने सिर उठाकर कहा—"वे तो तुम्हारी बात सुनना नहीं चाहते।"

"नहीं चाहते?"

"नहीं।"

सावित्री स्थिर भावसे कुछ तानेके स्वरमें, कुछ रूखी आवाजमें बोली—"अच्छा, अगर किसी दिन सुनना चाहें, तो कह देना।"

बिहारीने कहा—"मैं औरत नहीं हूँ और मेरे मनमें दया-माया भी परमात्माने दी है।" मैं उनसे कुछ न कह सकूँगा।" कहकर किसी नये प्रश्नकी प्रतीक्षा न कर वह उस छोटी-सी गलीसे निकल गया।

सावित्री वहीं चौखटपर स्तब्ध होकर बैठ गयी। उसके हृदयके बाहर-भीतर फिर एक बार आग धधक उठी!

आज सवेरे वह घरमें नहीं थी। कालीजीके दर्शन करने कालीघाट गयी थी। उसी बीचमें विपिन न जाने कहाँसे दो यारोंको साथ लिये, शराब पीये, मतवाला बना आ गया और मोक्षदाके हाथमें दो नोट थमा, सावित्रीके कमरेका ताला खुलवा कर बिछौनेपर बैठ गया। विपिनने रुपये देकर और भी शराब मँगायी, खुद पी, औरोंको भी पिलायी। पी-पाकर सभी मतवाले हो गये। सावित्रीको इन बातोंका कुछ भी पता नहीं था। बारह बजे उसने घरके अन्दर आकर देखा, कि इसी घरमें किरायेपर रहनेवाली और दो प्रौढ़ा स्त्रियां मतवाली होकर आपसमें गाली-गलौज कर रही हैं, और मोक्षदा सामनेके बरा-मदेमें एक तरफ चित पड़ी हुई बदमस्तीमें विकृत कण्ठसे

'विद्या-सुन्दर' के पद * खूब रस ले-लेकर गा रही है। घर भर में कहीं पकौड़ी-फुलौड़ी, कहीं दालमोठ, कहीं फूटे हुए अंडे, कहीं मछलीके काँटे और कहीं केकड़ेकी टाँग बिखरी पड़ी हैं—पैर धरने तककी जगह नहीं है। मोक्षदा सावित्रीको देखते ही अपने अङ्गच्युत वस्त्रको सम्हाल, उठ खड़ी हुई और दोनों हाथोंसे उसके गलेसे लिपटकर रोनीसी आवाजमें कहने लगी—'बेटी, जिसके ऐसे-ऐसे बाबू हों, उसको तकलीफ काहेकी? भला उसे दूसरेके घर नौकरी करनी चाहिये?—पर बेटी, मैं तेरी गरीब

उसके मुँहसे शराबकी तेज बदबू आ रही थी। असह्य घृणासे सावित्रीने उसे जोरसे दूर ढकेल दिया और बोली—"मौसी, तुम भी शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?"

धक्का खाकर मोक्षदा रोना बन्दकर, आखें लालकर चिल्ला उठी—"मतवाली? हाँ, अलबत्ता मतवाली! महल्ले-टोलेके लोगोंसे जाकर पूछ—वे कहेंगे कि मोक्षदा मतवाली है! अरी मेरा भी एक दिन था, जब मैं चौबीसों घण्टे शराबमें डूबी रहती थी। पर तू कलकी छोकड़ी यह सब क्या जानेगी।"

उसे यों चीखते-चिल्लाते देख, सावित्रीने शान्त करनेके अभिप्रायसे कहा—"लेकिन मौसी, तुम तो कभी पीती नहीं हो—आज क्यों यह शामत सवार हुई?"

---

* यह प्राचीन बँगला साहित्यकी एक अपूर्व काव्य रचना है—शृङ्गार रससे ओतप्रोत। —अनुवादक।

मोक्षदा और भी क्रुद्ध हो उठी, बोली—"क्यों ? क्या मुझे ाशा चढ़ा है ? मैं ऐसी-वैसी पीनेवाली नहीं हूँ ! मर जाऊँगी, ार बदहवास होकर पड़ी न रहूंगी और न पीने के लिये कभी ाथ ही पसारूंगी ! जाकर पूछ, अपने बाबूसे, जो एक गिलास ीकर औंधे मुँह पड़े हुए हैं ! आँचलमे दो नोट बाँध दिये हैं, तब गिलास छुआ है।" यह कहकर मोक्षदाने बड़े गर्वसे आँचल दिखाकर कहा—"जरासा कहते ही डकारने लगूँ, वह मोक्षदा मैं नहीं हूं।"

सावित्रीने चौंककर पूछा—"बाबू आये हैं क्या ?"

मोक्षदाने कहा—"नहीं तो यह सब काण्ड किया किसने ? लेकिन उनके कहते ही मैं क्यों पीने लगी ? आखिर इज्जत-आबरू भी तो कोई चीज है ?"

इतनेमे बरामदेके उस किनारे जो दो औरतें आपसमें लड़-झगड़ रही थीं, मोक्षदाकी आवाज ऊँची होते ही नजदीक आ खड़ी हुई। विधुने कहा—"अरी बहन, हम भी ताना समझती हैं और किसीसे कम इज्जत भी नहीं रखतीं ! लेकिन सावित्री ? वह तो अपनी लड़कीकी तरह है, उसके बाबू जब आरजू-मिन्नत करने लगे, तब हम पीनेको राजी हुईं, नहीं तो · ··"

उसकी बात समाप्त होनेके पहले ही मोक्षदा गरज उठी—"बलासे सावित्रीके बाबू हैं तो ! दमाद हैं तो क्या हुआ। पहले ही पूरे बीस रुपये आँचलमे बाँध लिये हैं, तब गिलास उठाया है—योंही नहीं"

ये बातें सुन-सुनकर सावित्री लज्जा और घृणासे मरी जा रही थी, बोली "ठहरो, मौसी! चुप रहो!"

मोक्षदाने कहा—"चुप क्यों रहूं? जो कुछ कहना है, मुँहपर कहूँगी। दुनिया जानती है, कि साफ-साफ बोलनेवालेको सब लोग मुँहफट कहते हैं।"

इस बार विधुने भी गला भारी करके कहा—"साफ कहना तू ही नहीं जानती हो! हम भी जानती हैं। दमादसे दो नोट पाकर तो शराब पी ली, तीन पाकर न जाने ...."

मोक्षदा उछलकर बोली—"छोटा मुँह बड़ी बात!"

इसके आगे वह न बोल सकी। सवित्रीने हाथसे उसका मुँह बन्द कर दिया और जबरदस्ती घसीट लाकर उसे कमरेमें डाल, जञ्जीर चढ़ा दी। वहींसे मोक्षदा गन्दी-गन्दी गालियाँ बकने लगी।

सावित्रीने लौटकर विधुके दोनों हाथ पकड़कर कहा—"मौसी, मुझे माफ करो, तुम लोग भी चुप रहो। सारा कसूर मेरा है।"

उसकी नम्र बातसे शान्त होकर वधुने कहा—"इसमें तेरा क्या कसूर है सावित्री! मोक्षदाको मैं अच्छी तरह जानती हूं। जरासी पीते ही वह नाच-नाचकर लड़ने-झगड़ने लगती है। यह तो उसकी आदत है। जा, तू अपने घरमें जा।" कहकर विधु अपनी साथिनका हाथ पकड़कर चली गयी।

सावित्री कठपुतलीकी तरह खड़ी रही। मारे घृणा, क्रोध

ओर क्षोभके उसे आत्महत्या कर लेनेकी इच्छा हो रही थी। सतीश इतना निर्लज्ज हो सकता है ? वह दिनदहाड़े ऐसी निर्लज्जता कर सकता है ? यह वह स्वप्नमें भी नहीं सोच सकती थी। इसीसे काल्पनिक नहीं, एक सच्ची पीड़ा उसके हृदयको तूफानी तरंगोंकी तरह उठा-उठाकर पटकने लगी। उसको ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका प्रियतम अकस्मात् उसकी आँखोंके सामने ही मर गया ! जिसे अभी दो दिन पहले कड़वी बाते कहकर. अपमानित कर विदा करनेको वह बाध्य हुई थी, वह जब इतनी असानीसे, इतने थोड़े समयमें, अपना सारा आत्मसमान विसर्जित कर ऐसा हीन, ऐसा निर्लज्ज बनकर लौट आया, तब भरोसा करने, विश्वास करनेकी उसके लिये संसारमें कोई भी बात नहीं रह गयी। उसकी दोनों आँखें जलने लगीं, एक बून्द भी जल न आया। उसका सर्वस्व उसका देवता, उसकी कल्पनाका स्वर्ग, उसके भ्रष्ट जीवनका ध्रुवतारा और उसके लोक-परलोक सब कुछ मानो पलभरमें इधर-उधर बिखरी हुई गन्दी चीजोंमें—जूठनके उस ढेरमें लोटने लगे। सावित्री जड़वत् खड़ी रही, घरकी ओर जानेके लिये उसके पाँव न उठे। उसे स्मरण हो आया. कि अभी उस दिन सतीशने उसे छूकर कसम खायी थी और आज ही जब वह उसे भूल कर अपनी प्रतिज्ञाको छोड कर मतवाला बनकर, उसके बिछौनेपर पड़ा हुआ है. तब उसके मुंहकी ओर वह कैसे देखेगी ?

इतनेमे नीचेसे घरकी मालकिनकी आवाज सुन पड़ी।

वह भी आज घरमें न थी। आते ही उसने मोक्षदा और विधुके झगड़ेका हाल सुना और उसके अलावा जो कुछ भी उसकी अनुपस्थितिमें हुआ था सब सुनकर गुस्सेसे तलमलाती हुई वह ऊपर आ रही थी। आकर चारों ओर ढेर-के-ढेर पत्ते, कांटे आदि देखकर चुप खड़ी रही। प्रयागमे जाकर मूंड़ मुड़ा आनेके बादसे उसके आचार-विचारका कोई अन्त न था। सावित्रीको उस अवस्थामें देखकर बोली—"क्यों री सावित्री, तुझे तो मैं बड़ी नेक समझती थी, भला बता तो सही, यह आज क्या अन्धेर मचाया गया है ?"

सावित्री संक्षेपमे बोली— 'मैं घरमे नहीं थी।"

घरकी मालकिनने कहा,—"अब तो है, अब इनको सबको कौन साफ करेगा ? मैं ? नहीं बेटी, सांचको आंच क्या, मेरे मकानमें यह सब अनाचार नहीं चलेगा। अपने-अपने कमरेमे बैठकर जिसका जो जी चाहे करे, मैं कहने न जाऊंगी, लेकिन घरभरमे ये सब दुराचार नहीं होने पायेंगे। जहा देखो, वहीं अँडे और हड्डियां पड़ी हुई हैं, कहीं पैर धरनेकी जगह नहीं। यह जूठन छूकर मैं जात-धर्म नहीं गंवाऊंगी।" यों कह, वह दीवारसे ़ी-सटी किसी-किसी तरह लांघती-फांदती हुई अपने कमरेमें चली गयी। सावित्रीसे और खड़ा न रहा गया! वह सारा जूठन साफ कर, सारे मकानको धो-पोंछकर फिर स्नान कर आयी और एक सूखे कपड़ेके लिये विवश होकर अपने कमरेमे गयी। भीतर जाकर बिछौनेकी ओर देखते ही वह मारे

डरके चीख उठी—"अरे! यह तो विपिन बाबू हैं!" शराबी गाढ़ी निद्रामे निमग्न था—बेहोश पड़ा रहा। बाहरके किसीने भी उसके चीखनेकी आवाज़ नहीं सुनी। सावित्री दो पैर पीछे हट गयी। उसका सारा शरीर कांपने लगा, और सिर चकराने लगा। मूर्च्छाका दौरा होनेके लक्षण देखकर वह दरवाजेकी आड़मे आ किवाड़पर सिर रख निर्जीवकी तरह बैठ रही।

कुछ देरके बाद हालत बदली, लेकिन फिर भी वह सिर उठाकर सीधी होकर न बैठ सकी। इसके पहले जिस क्षोभ और दुःखसे उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, जिसके निर्लज्ज आचरणकी लज्जासे उसे मरनेकी इच्छा हो रही थी, वह लज्जा सत्य नहीं है, यह सतीश नहीं है, एक दूसरा ही आदमी है, यह आंखोंसे देखकर भी, उसका वह क्षोभ, वह दुःख तिल भर भी इधर-उधर न हुआ; बल्कि उसका हृदय और भी भारी हो गया, अन्तःकरणमे मानो और भी अन्धेरा छा गया। बिछौनेकी ओर आंखें फेरकर देखनेका भी उसे साहस नहीं हुआ। उसकी दोनो आखोंसे आंसूकी बड़ी-बड़ी बून्दें टपकने लगीं।

आह! नारी-हृदयका प्रेम! इतने दुःखमे, इसी बीचमे कब उसने भीतर-ही-भीरत चुपचाप सतीशके सारे अपराध क्षमा कर दिये थे, कब उसकी सेवा करनेके लिये, उसे सुख पहुंचाने-की तृष्णासे वह आर्त्त हो गयी थी और कब उसे देखने, उससे बातें करनेकी सर्वग्रासी क्षुधासे उन्मत्त हो उठी थी, शायद

ये बातें उसकी अन्तरात्मा तकको न मालूम हो सकी थीं। अब उस ओरकी सब आशाओंपर सहसा पानी फिर जाते ही उसका मानो अस्तित्व ही एक दिशाहीन शून्यतामें डूब गया। ठीक इसी समय उसके दरवाजेके बाहर विहारी आकर खड़ा हुआ था और वह दरवाजेके पास ही बेसुध-सी होकर बैठी थी। दिन ढल चुका था, इसका उसे ध्यान न था। अभीतक एक बून्द जल भी उसके कण्ठमें नहीं गया, इसका भो उसे खयाल न था। लेकिन राह-चलतोंकी लोलुप दृष्टि पड़नेसे एक बार चौंककर, संकुचित होकर वह उठ खड़ी हुई और सारी दुर्बलताको दृढ़तासे मसलकर अपने कमरेमे बिछौनेके पास आ खड़ी हुई।

९

सतीशके चित्तमें दिन-रात आगकी लपटें उठने लगीं। इस बातको उसका मन अस्वीकार न कर सका। उस आगकी ज्वालासे निरन्तर जलते रहनेके कारण उसका इतना बड़ा बलिष्ठ शरीर भी म्लान होता जा रहा है, यह उसे साफ-साफ मालूम होने लगा और वह उद्विग्न हो उठा। विहारीको पुकार-कर कहा—"देखता हूं, कि एक बार और माल-असबाब बांधना पड़ेगा; आज शामकी गाडीसे घर चलनेका विचार है।"

विहारीने पूछा—"अपने देश चलेंगे, या पश्चिमके मकान-पर ?"

"पश्चिम ही जानेका विचार है" कहकर सतीश जरूरी

चीजें खरीद लानेके लिये उसके हाथमें कुछ रुपये देकर स्कूल चला गया।

बिहारीकी खुशीका ठिकाना न रहा। उसका मकान मेदिनीपुर जिलेमें है, वह कभी पश्चिमकी ओर नहीं गया था। आज उधर ही जाना होगा। बड़े उत्साहके साथ सब सामान सहेजने और गठरी-मोटरी बांधनेमें लग गया। पांडेने आकर खानेके लिये पुकारा। बिहारीने हँसकर कहा,—"महराज, तुम जाकर खा लो। मेरी रसोई एक तरफ रख दो, वक्त मिला तो देखा जायेगा, अभी तो मुझे मरनेकी भी फुर्सत नहीं है।" पांड़ेजी अपने मतलब भरकी बात सुन और समझकर चले गये। अन्तकी बात उनकी समझमे नहीं आयी और न उसे समझनेकी उन्हें जरूरत ही थी।

हाथका काम समाप्त करके बिहारी बाहर चला गया। बाजार जाना होगा। इसके सिवा पहलेवाले बासेमे जाकर कम-से-कम महराजसे मिल लेना जरूरी था। सावित्रीकी चिन्ताको तो उसने उसी दिन घृणासे दूर कर दिया था, आज भी उसकी बात वह मनमे नहीं लाया।

आज सवेरेसे ही सतीशका सिर दुखने लगा था। बारह बजनेके बाद वह बुखारसे चूर होकर लौट आया। बिहारी घरमे न था। वही तीन बजेके लगभग अपने ओढ़ने-बिछौनेका एक गट्ठर सिरपर लिये हुए पहुंचा। चारों ओर इन्फ्लुएंजाका प्रकोप फैला हुआ था, यह बात स्मरणकर सतीशको भय हुआ। दूसरे दिन

ज्वर और बढ़ा और सारे शरीरमें दर्द भी। संध्याके बाद सतीश ने चिन्तित मुखसे बिहारीसे पूछा—"यदि ज्वर जल्द न उतरा, तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न ?"

बिहारीने डबडबायी हुई आंखोंसे साहस देते हुए कहा—"डर क्या है बाबू !"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला—"सोच रहा हूँ बिहारी, कि एक बार सावित्रीको खबर क्यों न दी जाये ? मालूम होता है, डाक्टरको भी बुलाना होगा।"

चाहे जिस कारणसे हो, सावित्रीको बुलानेकी बिहारीकी बिलकुल इच्छा न थी, किन्तु उसने मनका भाव छिपाकर मधुर स्वरमें कहा—"अच्छा, जाता हूँ।"

तबसे सतीश बाट देखने लगा—धीरे-धीरे ज्वर कुछ उतरा, देहका दर्द भी आप ही आप घट गया। दो घण्टे बाद बिहारीके अकेले वापस आनेपर सतीश सशङ्कित नेत्रोंसे उसकी ओर केवल देखता रह गया।

बिहारीने कहा—"वह घरमें नहीं है, बाबूजी !"

"घरमें नहीं है ? तो एक बार उस मेसमें जाकर क्यों न खता आया ?"

बिहारीने कहा—"वह वहां अब नहीं जाती। तीन-चार दिनसे घर भी नहीं जाती। कहां गयी, कोई नहीं जानता।"

"उसकी मौसी भी नहीं जानती ?"

"नहीं, उससे भी कुछ कहकर नहीं गयी है।"

सतीश चुप हो रहा। विहारी कठिनाईसे आंखोंके आंसू रोक कर बाहर आ खड़ा हुआ। जो सावित्रीका इतिहास वह उसकी मौसीसे सुन आया था, और जिस बातपर वह स्वयं निःसंशय रूपसे विश्वास करता था, आज अपने इस रोगी मालिकके आगे वह उस बातको न खोल सका।

दूसरे दिन डाक्टर आया, दवा देकर चला गया। सतीशने दवाकी शीशी हाथमे लेकर जंगलेके बाहर फेंक दी। यह देख, बिहारी फिर एक बार आंसू रोककर सावित्रीकी खोजमे उसके घर पहुंचा। मोक्षदा भोजन बना रही थी। बिहारीने पूछा—"आज भी नहीं आयी?"

मोक्षदा हाथकी कलछी चमका कर चुल्हेकी आंचसे लाल आखें घुमाकर बोली—"नहीं, भाई नहीं। तुम्हें कितनी बार कहूंगी कि वह अब यहा न आयेगी। जब बुरे दिन थे, तब मौसी थी। अब तो उसके अच्छे दिन हैं!"

सतीशके पास लौटकर बिहारीने दबी हुई आवाजमें कहा—"आज भी सावित्री लौटकर नहीं आयी है!"

दो दिन बाद बिना दवा खाये ही सतीशका ज्वर जाता रहा। आज उसने भोजन भी किया। बिहारीको बुलाकर कहा—"बस आज ही रवाना हो जाना चाहिये।"

उसी दिन कलकत्तेसे वह घरके लिये रवाना हो गया।

———

१०

उपेन्द्रने सतीशके रूखे-सूखे और उदास चेहरेको ओर देखकर कहा—"तुम्हारा चेहरा ही डाक्टरी पढ़ाई की गवाही दे रहा है।"

सतीशने हँसकर कहा—"नहीं भैया, मेरा किया नहीं हुआ।"

उपेन्द्रने अचरजमें आकर पूछा—"क्या नहीं हुआ ?"

सतीशने लज्जित भावसे कहा—"डाक्टरीकी पढ़ाई मुझे बर्दाश्त न हुई।"

उपेन्द्रने स्निग्ध दृष्टिसे क्षणभर सतीशके उन्नत, सुन्दर शरीर की ओर देखकर कहा—"अच्छा ही हुआ। गांवमे जाकर व्यर्थ ही न जाने कितने जीवोंकी हत्या करते, उस पापसे भगवानने तुम्हें बचा लिया।

महीने भरके बाद एक दिन उपेन्द्रने सतीशको बुलाकर कहा—"सतीश, मेरे साथ एकबार कलकत्ते चलोगे ?"

सतीशने हाथ जोड़कर कहा—"मुझे माफ करो भैया! कलकत्ता बडा अच्छा शहर है, देखने लायक जगह है, सब कुछ ठीक, लेकिन मुझे वहां जानेको न कहो।"

सतीशने बात कुछ गम्भीरताके साथ नहीं कही थी, फिर भी उसके स्वरने उसकी दबी हुई व्यथाको छिपाना अस्वीकार कर दिया। उसकी नकली हँसी वेदनाकी विकृतिमे ऐसी रूपान्तरित होकर दिखाई दी, कि उपेन्द्रनाथ आश्चर्यमे पडकर

उसकी ओर देखने लगे। उन्हें निश्चय हो गया कि सतीश, वहां जाकर अवश्य कुछ कर आया है, उनसे छिपाता है। क्षणभरके बाद बोले—अच्छा, जाने दो। तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, मै अकेला ही चला जाऊँगा।"

उपेन्द्रके मनका भाव ताड़कर सतीशने कुण्ठित होकर पूछा—"कब जाओगे भैया ?"

'आज।"

"आज ही ? अच्छा, चलो, मैं भी चलूंगा।" कहकर सतीश अपने घर आया, कुछ ही देर बाद वह कलकत्ते जानेके लिये व्याकुल सा हो उठा, बोला,—"विहारी, फिर एक बार बिस्तर बांध लो; कलकत्ते चलना होगा।"

विहारीने कुछ चिन्तित होकर पूछा—"कब बाबू ?"

सतीशने हँसकर कहा—"कब क्या ? आज ही रातकी ट्रेनसे।"

"अच्छा।" कहकर विहारी मुँह लटकाकर चला गया।

सतीशने उसका अप्रसन्न मुख देख मन-ही-मन कहा—"यहां विहारी को कुछ काम-काज नहीं करना पड़ता है; इसीसे मेहनतके डरसे यह वहां जाना नहीं चाहता।" लेकिन, अन्तर्यामीने अन्तरिक्षमे कहा—"सतीश, तुम वृद्धके मनकी बात बिलकुल न-जान सके।"

इसी बीचमें एक दिन सतीशने बातों ही बातोमें विहारीसे कहा था—"अच्छा विहारी, अब तो सावित्री जरूर लौट आयी

होगी, किन्तु क्या तू बता सकता है कि तब कहा गयी थी ?"

बिहारीने संक्षेपमें कहा—"नहीं बाबूजी !"

चाहता तो वह बहुत सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्रीके मुँहपर वह अपने पुरुषत्वका घमंड करके चला आया था ; इसीलिये किसी समय भी वह उस गर्वको खर्व न कर सका।

जिस दिन कलकत्तेसे लौटकर सतीशने अपने कमरेमें आते ही हाथ जोड़कर भरे हुए गलेसे कहा था,—"भगवान् तुम जो करते हो कल्याणके लिये करते हो। उस दिन उसने सृष्टिकर्ताके कौन-से विशेष कार्यको स्मरण कर धन्यवादके ये शब्द कहे थे, यह बात पूछने पर शायद सतीश कुछ उत्तर न दे सकता। फिर भी कितने बड़े संकटके मुँहसे वह निरापद निकल आ सका है, कितने मजबूत जालकी फांसको कितने सहज में काटकर वह बच निकलनेमें समर्थ हुआ है, इसे उसका विवेक समझता था, और सौभाग्य को उसने कृतज्ञताके साथ ग्रहण न। भी चाहा था, किन्तु आह ! उसके अबोध मन ने उस ` आँख तक उठाकर देखना पसन्द न किया, वह तो औंधा पड़ा जार-जार रो रहा था। विवेकको ताड़ना पा, सतीश पहलेकी ही तरह अपने बचपनके बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर; नाटक-थियेटर, गान, वाद्य, अखाड़े आदिमें शरीक होकर अपने दिन बिताना चाहता था ; पर मनकी करुण

पुकार सुनतेही वह अधीर हो उठता और जी खोलकर किसी काममें योग न दे सकता था। आज सहसा कलकत्ते जानेकी बात सामने आते ही विद्रोही मनोवृत्ति-रूपिणी गृहलक्ष्मी, धूलि-शय्या छोड़कर उठ बैठी और आगेके भले-बुरेकी ओर ध्यान न दे पैर बढ़ाकर खड़ी हो गयी। उसी रातको कलकत्तेके लिये उपेन्द्र और सतीश डाक-गाड़ीके एक सेकेण्ड क्लासके डब्बेमें जा बैठे।

सीटी देकर गाड़ी छोड़ देनेपर उपेन्द्रनाथने जंगलेसे मुंह खींच लिया और बिछौनेपर चित पड़कर सो रहे, किन्तु सतीश जंगलेसे बाहर ही देखता रहा।

डाक-गाड़ी सब स्टेशनोंपर नहीं ठहरती। नदी, नाले, गांव रास्तोंको काटती हड़हड़ाती चली जा रही है, और उसकी चालकी तेजीपर मुहर लगानेके लिये ही शायद पासके पेड़-पौधे पलक मारते अदृश्य हुए जा रहे हैं। दूर—दिगन्तमें वृक्षों और बासोंने मिलकर अन्धकारकी एक काली टेढ़ी-मेढ़ी रेखासी खींच रखी है और उसके नीचे नदीकी शुभ्र जलरेखा, जंगलेके नीले कांचके भीतरसे दिखाई पड़ रही है। बाहर वृक्ष-लताओं, जंगल-झाड़ियों और बड़े-बड़े जलहीन गड्ढोंमें—सर्वत्र धुंधली, निःशब्द ज्योत्स्ना बिखरी हुई पड़ी है। सतीशकी आखोंमें जल भर आया। इस रास्तेसे वह कितनी ही बार आया-गया है, इस निस्तब्ध शान्त प्रकृतिको कितनी ही बार उसने इसी प्रकार म्लान ज्योत्स्नामें प्लावित देखा है;

किन्तु किसी दिन वह इस तरह उसकी आंखोंमें गड़ी नही थी। उसे जान पड़ने लगा, मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं और मृत हैं! कोई किसीके लिये व्याकुल नहीं, कोई किसीका मुँ ताकता हुआ बैठा नहीं है! सभी स्थिर, सभी उद्वेग शून्य, सभी अपने आप पूर्ण रूपमें विराजमान हैं—इस निर्विकार, उदासिनी धरित्रीकी ओर देखनेमें उसे क्लेशसा मालूम होने लगा। वह आंखें पोंछकर सरक आया और वेंचपर चित होकर सो रहा। लेकिन कुछ ही देर बाद ट्रङ्क खोल, एक बांसुरी निकाल उपेन्द्रको लक्ष्य कर धीरे-धीरे बोला—"गाड़ीकी आवाज अगर तुम्हारी नींदमे विघ्न नहीं डालती, तो बांसुरीका शब्द भी न डालेगा। मुझे नींद नहीं आती।" कहकर वह फिर एक बार खिड़कीके पास सरककर बैठ गया और बांसुरी बजाने लगा।

उपेन्द्र चुपचाप सोये रहे। भगवानने सतीशको गानेके कण्ठ और बजानेको हाथ दिये थे। इस विषयमे उन्होंने कृपणता नहीं की थी। बचपनसे आरम्भ करके उसने यही विद्या सीखी थी। सतीश बासुरी बजाने लगा—उस शुद्ध, सुन्दर, अनिर्वचनीय, संगीतको समझनेवाला कोई आदमी न था, पर बाहर आकाशका चांद मानो उसपर मुग्ध होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ चलने अगा और जमीनपर सोयी हुई ज्योत्स्नाकी नींद टूट गयी। धीरे-धीरे गाड़ीकी चाल धीमी पडी। मालूम हुआ, कि स्टेशन पास आ गया, उसने बासुरी रख दी।

उपेन्द्रनाथ जम्हाई लेकर उठ बैठ, बोले—"अगर कुछ सीखना ही होगा, तो बांसुरी बजाना ही सीखूगा। उस दिन तुम्हारा सितार बजाना सुनकर भूठ-मूठ एक सितार खरीद डाला—रुपया पानीमें फेंक दिया।"

सतीशने हँसकर कहा—"भैया, माफ करो, बस इतनेसे ही बांसुरी भी मत खरीद लेना। घरमें बैठकर बांसुरी सीखनेकी चेष्टा करनेसे महल्ले भरके लोग ऊब उठेंगे। उपेन्द्रनाथ लेश-मात्र भी कुण्ठित न हो, बोले—"अच्छी बात है, सीखूंगा तो तुम्हारे ही घर बैठकर सीखूँगा।"

दोनों जोरसे हंस पड़े।

दूसरे दिन दोपहरके लगभग गाड़ी हवड़े पहुंचनेपर उपेन्द्र-नाथने पूछा—"तुम कहाँ जाओगे?"

सतीशने आश्चर्यमें आकर कहा—"यह क्या? ले तुम आये और पूछते मुझसे हो कि मैं कहां जाऊँगा?"

"तो तुम्हारे जानेके लिये जगह नहीं है?"

"जगह क्यों नहीं है? जहाँ तुम—वहां मैं?"

इस सम्बन्धमें और कुछ बातचीत न हुई।

स्टेशनपर उतरते ही युरोपियन पोशाकमें एक बंगाली साहबने उपेन्द्रसे हाथ मिलाया। ये उपेन्द्रनाथके मित्र बैरिस्टर ज्योतिष राय हैं। तार पाकर लेने आये थे। बाहर उनकी गाड़ी खडी थी। जो थोड़ा सामान था, वह कुलीके गाड़ीपर चढ़ा देने पर तीनों आदमी भीतर जा बैठे। बिहारी कोच-बक्सपर बैठ

गया। कोचवानने गाड़ी हांकी और बहुत देर बाद, बहुत रास्ते और गलियोंको पारकर एक आलीशान मकानके सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। तीनों आदमी उतर पड़े।

११

संध्या होनेमें देर नहीं है। उपेन्द्रनाथ और सतीश पथरिया-घट्टेकी एक बड़ी तंग गलीके मोड़पर आ खड़े हुए।

उपेन्द्रनाथने कहा—"मैं समझता हूं, जरूर यही गली है।"

सतीशने सन्देह प्रकट किया—"इस गलीमें वे नहीं रह सकते, यह कदापि नहीं है। फटी दीवारके कोनेपर टीनका वह जो टुकड़ा लटक रहा है, संभव है, इसमें किसी दिन गलीका नाम लिखा हुआ हो, अब पढ़ा नहीं जाता। अच्छी तरह जाने बिना इस पतली गलीमें जाना बेकार है। यह गली मुझे तो पातालपुरीकी राह-सी जान पड़ती है।"

उपेन्द्रनाथने हँसकर कहा—"अच्छा, तो तुम यहीं रहो, मैं जाकर देख आता हू।"

सतीशने पहले बाधा देनेकी चेष्टाकी, फिर उपेन्द्रनाथके पीछे-चल पड़ा, बोला—"भैया, मेरे जैसा आवारः हाल भी सांझके यहां आनेका साहस नहीं करता, पर आप तो निस्संकोच भावसे चले जा रहे हैं।"

उपेन्द्रने हँसकर कहा—"सतीश, क्या अवारागर्दीमें उम्र बितानेवालोंमे भलेमानसोंसे ज्यादा हिम्मत होती है?"

सतीश उस बातका प्रतिवाद न कर अत्यन्त सावधानीसे रास्ता देख-देखकर चलने लगा। पैरोंके नीचे ही बदबूदार, कीचड़से भरी, खुली नाली थी। सतीशको पद-पदपर उसमें गिर पड़नेका भय हो रहा था। एक जगह जाकर गली बहुत ही तंग और अँधेरी हो गयी थी। सतीशने पीछेसे उपेन्द्रनाथके कपड़ेका कोना खींचकर कहा—"भैया, कर क्या रहे हो ? क्यों नाहक जान दे रहे हो ?"

उपेन्द्रनाथने हँसकर कहा—"अब मुझे ठीक याद आ गया। बस, एक ही मकानके बाद १३ नम्बरका मकान है। आठ बरस हुए, एक दिन, केवल एक बार यहाँ आया था, इसीसे पहले पहचान न सका था। अब याद आ गया, यही रास्ता है।"

सतीशने विश्वास नहीं किया। बोला—"रास्ता हो भी सकता है, लेकिन तुम्हारे-हमारे लिये नहीं। जिनके लिये यह रास्ता बना है, यदि उनमेंसे किसीके साथ हमे टकरानेकी नौबत आ गयी, तो खाहमखाह इस रातको भी हमें स्नान करना पड़ेगा। इस समय चलो लौट चलें।"

उपेन्द्रनाथने जवाब नहीं दिया, वे सतीशका हाथ पकड़कर खींच ले चले और जरा आगे बढ़कर एक मकानके सामने खड़े होकर बोले—"तुम सिगरेट पीते हो, जेबमे दियासलाई होगी, एक बार जलाकर देखो, कितने नम्बरका मकान है ?"

सतीशने दियासलाई जलाकर देखा और कहा—"अच्छी तरह पढ़ा नहीं गया, लेकिन दरवाजेपर खड़ीसे १३ नम्बर

लिखा है। मालूम होता है, तुम्हारी बात ही ठीक है। लेकिन मैं पूछता हू कि मकानका नम्बर १३ हो या ५३ यहाँ तुम्हें कौनसा काम है ?"

उपेन्द्रनाथ उत्तर न देकर पुकारने लगे—"हारान ! हारान-चन्द्र !!" ऊपर-नीचे बाहर-भीतर सर्वत्र अन्धेरा छाया हुआ था, कहीं किसीकी आहट न थी। सतीश भयभीत हो उठा। उपेन्द्र-नाथ फिर पुकारने लगे।

बड़ी देर बाद ऊपरका जँगला खुला और साथ ही किसी स्त्रीकी आवाज आयी—"कौन है ?"

उपेन्द्रनाथने कहा—"दरवाजा खोलनेको कह दीजिये। हारान भैया कहाँ हैं ?"

"आती हूं, जरा ठहरिये।"

दरवाजा खुलनेके शब्दके साथ-ही-साथ धीमी रोशनीकी रेखा मार्गमें पड़ी। उपेन्द्र किवाड़को दबा चौखटके अन्दर पैर रखते ही स्तम्भित हो रहे। द्वार खोलनेवाली मिट्टीके तेलकी डिबरी हाथमें लिये एक किनारे खड़ी है। सिरपर आंचलके यत्नपूर्वक बनाये हुए जूड़ेका एक भाग दिखाई दे रहा है। पड़ा कि उसका एक भी बाल इधर उधर नहीं हुआ है। , सुन्दर मुखपर, हाथकी रोशनीमें, दोनों भौंहोंके बीच एक बिन्दी जगमगा उठी और इसीके जरा नीचेकी ओर झुके हुए चञ्चल नेत्रोंसे जो बिजली दौड़ गयी, चारों ओरके उस घने अन्धकारमें उसकी अपूर्व ज्योतिने क्षण भरके लिये दोनोंको चौंका

दिया ! सतीशने साफ़ देखा कि होठोंके छोरोंपर हास्यकी रेखा संकोचके धक्केसे बारम्बार आकर लौट रही है। यह देख, उसने उपेन्द्रकी पीठको धीरेसे छू दिया। उपेन्द्रनाथके हृदयको ठेस-सी लगी। कुछ चौंककर, कुछ घबराकर उन्होंने पूछा—"हारान बाबू कहाँ हैं ?"

स्त्रीने कहा—"ऊपर हैं ! चल-फिर नहीं सकते। माँ भी सात-आठ दिनोंसे खाटपर पड़ी हैं, घरमें केवल मैं ही अच्छी हूं। आप ही उपेन्द्र बाबू हैं ? हम लोगोंको कल ही आपके आनेकी आशा थी, इसीसे तैयार न थी। रसोई-घरमें इधरकी आवाज जल्द नहीं पहुँचती, बहुत पुकारना पड़ता है। ऊपर आइये, बड़ी सर्दी है"—कहकर राह दिखा, वह सीढ़ियोंपर चढ़ने लगी। दो-तीन सीढ़ियां चढ़ मुंह फेर और हाथकी रोशनी नीची कर बोली—"देखियेगा, सीढ़ीकी बहुतसी ईंट खिसक गयी हैं।" उन्होंने देखते ही जान लिया कि बात ठीक है और सावधानीसे चढ़ने लगे।

दोतल्ला मकान था। पहले ऊपरी हिस्सेमें पाँच-छः कमरे थे, उनमेंसे दो तो गिर ही पड़े थे और एक आगामी वर्षामें गिरनेको तैयार था। शेष तीनमेंसे सामनेवाले कमरेमें तीनों जनोंने प्रवेश किया। अन्दर जाते ही उन्हें असमयमें रोगीके घर पहुंचनेका कुछ पछतावा हुआ। उस कमरेमें चूहे फटे-पुराने तोशक-तकियोंसे रूई निकाल सारे कमरेमें बखेर मौजसे दौड़ लगा रहे थे, एकाएक रोशनी और आदमियोंके आ पहुँचनेसे वे

इधर-उधर छिपने लगे। कमरेमें टूटो मेजें, कुर्सियां, चौकियां, पाटियां, फूटे कनस्टर, खाली शीशियां बोतलें और और भी न मालूम क्या-क्या चीजें चारों ओर बिखरी थीं।

उसीमें एक किनारे एक चौकी भी बिछी थी। फटे-पुराने गद्दे, तोशक और तकियोंको मोड़-मोड़कर जबरदस्ती एक किनारे समेट एक चटाई बिछाई थी। यह कमरा आये-गये मेहमानोंको बैठानेके लिये था।

स्त्रीने डिबरी दीवटपर रखकर कहा—"जरा ठहरिये, मैं खबर देती हूं।" उसके यह कहकर बाहर जाते ही सतीश जूते पहने हुए मेहमानोंके उस आसनपर उछलकर खड़ा हो गया।

उपेन्द्रनाथ संकोचसे बोल उठे—"ऐं! ऐ। यह क्या कर रहे हो?

सतीश फिसफिसाता हुआ बोला—"जान बचाऊँ कि शिष्टाचार देखूं? अरे भैया! देखते नहीं हो, पैरोंके पास रोशनी देखकर सांप-बिच्छू सभी जीव दौड़ पड़ेंगे।"

वहांकी अवस्था देख और सतीशकी बात सुन, उपेन्द्रनाथ भी झट उछलकर चौकीपर चढ़ गये।

उस चौकीपर दो आदमियोंके भी अच्छी तरह खड़े होनेको नहीं थी। वे दोनों अभी आपसमें खड़े होनेके लिये धक्कम-धुक्की कर ही रहे थे, कि इसी समय वह स्त्री लौट आयी और किवाड़के सामने खड़ी हो, खिलखिलाकर हँस पड़ी। इनके डर जानेकी बात वह समझ गयी थी। बोली—"यह मेरे

ससुरजीका बैठकखाना है, आप लोग इसकी यों बेइज्जती कर रहे हैं!"

उपेन्द्रनाथ सकुचाकर झटपट उतर पड़े और सतीशपर झुंझलाकर कहने लगे—"इसने ऐसा डरा दिया, कि·······"

पर सतीश न उतरा, वरन् विनयपूर्वक बोला,—"उपेन्द्र भैया, मैंने कुछ शौकसे भय नहीं दिखाया! मैं जानता हूं, कि मेरी विद्या चाणक्यके श्लोकोंतक ही सीमित है, अधिक नहीं है; लेकिन इतना मैंने जरूर सीखा है कि आत्मरक्षा सर्वप्रथम कर्म और सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उस स्त्रीकी ओर देखकर बोला—"अच्छा, आपही कहिये, आत्मरक्षाके लिये एक निरापद स्थान चुन लेना क्या अनुचित है? आपके ससुरजीकी बैठकका असम्मान करनेकी हमारी हिम्मत नहीं है, बल्कि यथेष्ट सम्मान करके ही आपके आश्रित प्रजाजनोंको स्वच्छन्द विचरनेके लिये सारी जगह छोड़, मैं सिर्फ इतनीसी जगहमे खड़ा हूं।"

तीनों ही हँस पड़े। इस हास-परिहासने इस दरिद्र गृहलक्ष्मीको व्यथित नहीं किया, बल्कि इसके भीतर जो सरलता और समवेदना छिपी हुई थी, यह युवती सहज ही उसे समझ गयी है, यह बात उसके हँसते हुए चेहरेको देखकर ही उपेन्द्र समझ गये। इससे उन्हें एक सन्तोष हुआ। उसके मुखकी ओर देख, वे मुसकुराकर बोले—"मैं समझता हूं, आपके सामने आपके प्रजाजन उसपर अत्याचार करनेकी हिम्मत कभी न करेंगे! अब वह नीचे उतर आये, तो कोई हर्ज नहीं।"

"कुछ भी नहीं" कह डिबरी हाथमें उठा, बधूने सतीशकी ओर देख, संसारको मोहित करनेवाली हँसी हँसकर कहा, - "अब निर्भय हो राजदर्शनको चलिये। प्रजाजन कुछ भी अत्याचार नहीं करेंगे।"

इस थोड़ेसे हास-परिहासने उस अपरिचिता नारीको परिचित बननेके रास्तेमें बहुत ही आगे बढ़ा दिया और तीनों ही व्यक्ति प्रसन्न मुखसे कमरेके बाहर निकले।

उपेन्द्र और सतीश हँसते हुए एक दूसरे कमरेमें जाते ही काँपकर खड़े हो गये। क्रोधी गुरुजीकी आकस्मिक चपत खाकर हँसते हुए बालकके मुंहका भाव जिस प्रकार सहसा बदल जाता है, इन दोनों आदमियोंकी हँसी भी उसी प्रकार क्षणभरमें लोप हो गयी और चेहरेपर स्याही दौड़ गयी।

थोड़ी ही देर बाद वह भाव दूर हो जानेपर खाटके समीप जाकर पुकारा—"हारान भैया।"

हारान मुर्देकी तरह पड़े थे, स्फुट स्वरसे बोले—"आओ भाई, आओ। अब उठा-बैठा भी नहीं जाता, तुम्हें तकलीफ दी।"

कहकर वे हाँफने लगे।

उपेन्द्रनाथ बिछौनेके एक किनारे बैठ गये। उनकी आँखोंमें आँसू भर आया और उनकी छातीकी हड्डियोंतकको कंपाकर एक लम्बी गाढ़ी साँस मानों कण्ठ तक आकर रुक गयी। बात करनेका साहस न हुआ—दाँतसे दाँत दबा, कठोर बन, बैठ रहे। सतीश एक बड़ी-सी सन्दूकपर चुपचाप बैठ गया।

मैले और फटे-पुराने बिछौनेके सिरहानेकी ओर मिट्टीका दीपक टिमटिमा रहा था, हारानकी मृतप्राय देह स्थिर पड़ी थी सूर्यके उत्ताप और मुक्त आकाशकी वायुसे वंचित इस कमरेकी नस-नसमे जो अन्धकार धंसा हुआ था, वह जाड़ेकी उस रातमें, दीयेका क्षीण प्रकाश पाकर मानों कोढ़की तरह उसकी दीवारोंपर फूट निकला था। दिन-रात बन्द रहनेवाले इस घरकी दूषित, बंधी हुई घिरी हुई, वायु आत्मघातीके मुखसे निकले हुए विषाक्त फेनकी ही भांति फैलकर मानों सबका दम बन्द किया चाहती थी। दरवाजेपर मानों यमके दूत खड़े थे। चारों ओर देख-देख कर सतीश बारम्बार कांपने लगा। उसे ऐसा जान पड़ता था, कि वह यदि चिल्लाकर बाहर न निकल भागेगा, तो उसकी जान नहीं बचेगी! यहां आदमी जीता कैसे रह सकता है? पास ही बहू खड़ी थी। उसकी ओर देखते ही वह और भी डर गया। उसका वह अतुल रूप कहां गया? वह हँसी कहां गयी? सतीशकी आखोंमें वह प्रेत लोककी पिशाचिनी-सी प्रतीत हुई। वह सोचने लगा, जिसके पतिकी यह दशा है, वह हँसती कैसे है, हँसी-मजाकमे भाग कैसे लेती है, बाल क्यों सँवारती है, जूडा क्यों बांधती है और बिन्दी क्यो लगाती है? कुछ देरके लिये उसका हृदय समग्र स्त्री-जातिके प्रति घृणासे भर गया।

इसी समय हारानने पुकारा—"किरण, उपेन्द्र आये हैं, यह मांको मालूम है?"

बहू पास आकर, झुककर धीरेसे बोली—"माँ सो रही हैं। डाक्टर साहब कह गये हैं, कि नींदमें उन्हें जगाया न जाये।"

हारानने मुँह विगाड़, चिल्लाकर कहा—"भाड़में जाये डाक्टर, तुम जाओ! माँसे कहो।"

उपेन्द्रनाथ पास ही बैठे सब कुछ सुन रहे थे, व्यस्त होकर बोल उठे,—"हारान भैया, आज रातको उन्हें जगानेकी क्या जरूरत है? कल सवेरे कह दिया जायेगा।"

उपेन्द्रनाथ समझ गये कि बहुत दिनोंतक बीमार रहनेसे हारानका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है। अतः उस निरपराध, सेवापरायणा स्त्रीके अकारण तिरस्कारसे व्यथाका अनुभव कर कुछ सान्त्वना दिलानेकी इच्छासे उन्होंने एक बार उसके मुँहकी ओर देखा; पर कुछ दिखाई न दिया। किरणमयीके झुके हुए मुखपर दीपकका प्रकाश नहीं पड़ा। कुछ देर तक योंही रह, वह तेजीसे घरके बाहर चली गयी। उपेन्द्रनाथ उदास होकर बैठे रहे और हारानचन्द्र हाँपने लगे। वह सुनसान कमरा सतीशको और भी भयङ्कर दीखने लगा। जरा देर बाद ही हारानने उपेन्द्रनाथको पास आनेका इशारा करते हुए अत्यन्त क्षीण कण्ठसे पूछा—सात-आठ बरसके बाद भेंट हुई है। इस बीचमें क्या एक बार भी तुम्हारा इधर आना नहीं हुआ?"

इस बीचमें बहुत बार उपेन्द्रनाथको कलकत्ते आना पड़ा था, लेकिन इस समय वे इसे स्वीकार न कर सके। बोले,—"भाई बीमारी क्या है?"

हारानने कहा—"बुखार, खांसी—यही सब। अब उसकी चर्चा व्यर्थ है, अन्तिम घड़ियां गिन रहा हूं।"

उधर सन्दूकपर बैठे सतीशने मन-ही-मन सिर हिलाया।

हारानने कहा—"मुझे भी तुम्हारी बात याद न पड़ी, समय पर याद आती तो काम बनता।" कुछ देर चुप रहकर फिर बोले—"काम क्या होता है? खैर, उन बातोंको जाने दो। हां, भाई! एक काम करो। मेरा दो हजारका जीवन-बीमा है और यह टूटा-फूटा मकान। तुम वकील हो, एक ऐसी लिखा-पढ़ी कर दो, कि जिसमें सब चीजें बिलकुल तुम्हारे हाथमें रहें। उसके बाद तुम रहे और मेरी मा।"

उपेन्द्रने कहा—"और तुम्हारी स्त्री?"

'मेरी स्त्री किरण? हा, वह तो है ही। उसके मां-बाप कोई जीवित नहीं है, उसे भी देखना।"

उपेन्द्रनाथ स्थिर नेत्रोंसे मुमूर्षुके मुखकी ओर देखते हुए सोचने लगे!

सतीशने जेब घड़ी निकाल खड़े होकर कहा,—"भैया, रातके दस बज चुके हैं, वहां वे लोग घबड़ाते होंगे।"

हारानने उसकी ओर देखकर कहा—"उपेन्द्र, ये कौन हैं?"

"मेरे मित्र हैं, साथ ही कलकत्ते आये हैं। तो भाई, इस समय विदा होता हूं, कल सवेरे फिर आऊंगा।"

"नहीं, कल नहीं, कागज तैयार करके परसों आओ। मेरे पास

जो कुछ है, उसके बारेमें मुझे जो कुछ कहना है, उसी दिन कह दूंगा, यहाँ कहाँ ठहरे हो ?"

"शहरमें एक मित्रके यहाँ।"

जानेके लिये तैयार होनेपर हारानने पुकारा—"किरण !"

उपेन्द्रनाथने झट रोककर कहा,—"भाई, रहने दो। सतीश-को जेबमें दियासलाई है। हमलोग मजेमें चले जायेंगे। वे काममें लगी होंगी ; क्यों तकलीफ दोगे ?"

इसपर हारानने क्या कहा—कुछ भी किसीकी समझमें न आया। किवाड़ खोलते ही सतीशको मालूम हुआ, जैसे कोई अन्धेरेमें जल्दीसे हट रहा हो। वह डरसे दो कदम पीछे हट गया।

उपेन्द्रनाथने पूछा—"क्या हुआ सतीश ?"

"कुछ नहीं, तुम आओ"—इतना कह, उपेन्द्रनाथका हाथ पकड़कर वह बाहर बरादेमे आ खड़ा हुआ। काली अन्धेरी रात थी। एक तो कृष्णपक्षके आकाशमें बादल छाये हुए थे, उसपर चारों ओरके ऊंचे मकानोंने उस अन्धकारको मानो जबरदस्ती नीचेकी तंग सीढ़ियोंपर और उस टूटे-फूटे खुले बरासदेके भीतर ठूस-ठूसकर भर दिया था। दोनों आदमियोंने टटो-लते हुए सीढ़ीके पास आते ही देखा, नीचे मिट्टीके तेलकी वही डिबरी लिये किरणमयी स्थिर होकर बैठी है। इनके आते ही खड़ी होकर बोली—"रोशनी दिखा रही हूं, सावधानीसे उतर आइये। आप ही लोगोंके लिये मैं यहाँ बैठी हूं।"

इस अन्धेरी ठंढी रातमें, इस कड़ी सर्दीमें, गीली जमीनपर अकेली उस बेचारी स्त्रीको अपनी प्रतीक्षामें बैठी देख और उसके आसन्न वैधव्यकी बात सोचकर उपेन्द्रनाथकी आंखोंमें आंसू भर आये।

सदर दरवाजा उस समय भी बन्द न हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश एकदमसे गलीमें आकर खड़ा हो गया; किन्तु उपेन्द्रनाथने पीछे मुड़कर देखा और वे खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि किरणमयी अपने दोनों सकरुण नेत्र उनके मुंहपर गड़ाकर एक अजीब ढंगसे खड़ी है। क्षणभरके लिये उपेन्द्रनाथ कर्त्तव्यविमूढ़ होकर निश्चल खड़े रहे।

किरणने पूछा—"उपेन्द्र बाबू, आप हमलोगोंके कौन हैं?"

उपेन्द्रको समझमें न आया कि इस प्रश्नका क्या उत्तर दे। उसने फिर समझाकर कहा—"आप क्या मेरे स्वामीके कोई सगे-सम्बन्धी होते हैं? इस घरमें आये इतने दिन हो गये, किसी दिन आपका नाम न तो उनसे सुना, न मासे ही सुना था; सिर्फ जिस दिन आपको चिट्ठी लिखी गयी थी, उसी दिन सुना था, इसीसे पूछ रही हूं।"

बाहरसे सतीशने पुकारा—"उपेन्द्र भैया, आओ भी!"

उपेन्द्रनाथने कहा—"नहीं, सम्बन्धी नहीं हूं, विशेष मित्र हूं। मेरे पिताजी जब नोआखालीमें थे, तब हारान भाईके पिता भी वहीं सरकारी स्कूलमें मास्टरी करते थे और मुझे घरपर भी पढ़ाते थे। हम दोनों बहुत दिन साथ पढ़ते रहे हैं।"

किरणमयीने जरा हंसकर कहा—"ओ—यह बात है! इसी लिये लिखा-पढ़ी है! अच्छा, उपेन्द्र बाबू! आप तो सब कुछ अपने नाम लिख लेंगे न?"

विलम्ब होते देखकर सतीश फिर दरवाजेके पास आया। उसने कहा—"हा यही तो तै हुआ है।"

हारानके कमरेसे बाहर निकलते समय कौन दरवाजेसे हट गया था, यह उसने पहले ही समझ लिया था।

बहूने सतीशकी ओर घूमकर देखा, कहा—"अच्छा, आप भी हैं। बहुत अच्छा। बहुत ठीक! इतने दिन इतनी तकलीफ सहकर भी ज्यों-त्यों दोनों वक्त दो मुट्ठी अन्न मिल जाता था—अब देखती हूं, कि भीख मांगनी होगी। अच्छी बात है, यही होगा, आप ही लोग सब कुछ ले लीजिये।"

उपेन्द्रनाथ स्तम्भित हो रहे!"

सतीशने जवाब दिया—"जिसकी चीज, वही अगर दे जाये तो इसमें किसी औरको कुछ बोलनेका अधिकार ही क्या है?"

किरणमयीकी दोनों आंखें आगकी तरह जल उठीं, बोली—'पर मुझे अधिकार है! मरते समय मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती। मेरे स्वामीकी भी यही दशा हुई है, लेकिन आप लोग लिखकर ले लेनेवाले कौन होते हैं?"

सतीश बिना किसी संकोचके तुरत बोल उठा—"यह तो नहीं मालूम, लेकिन हारान बाबूमें आज भी बुद्धि है, मेरी आत्मा इस बातकी गवाही दे रही है।"

किरणमयीने बड़े तानेसे जवाब दिया—"वाह री गवाही! क्या कहना है। लोग कहा करते हैं" " खैर, लोगोंकी बात जाने दीजिये।" उपेन्द्रनाथ की ओर देखकर बोली—"लेकिन मैं यह पूछती हूं कि मैं कैसे जानूं कि अन्तमें आप भीख न मँगावेंगे—कैसे विश्वास करूँ, कि धोखा नहीं देंगे?

इतनी वड़ी चोट अकस्मात् उपेन्द्रको असह्य मालूम हुई। वे कुछ कहा चाहते थे, लेकिन न कहकर चुपचाप अपनेको संभालने लगे।

सतीशने मृदु स्वरमे कहा—"अजी भाभीजी, आपको ये सब बातें जाननेकी जरूरत भी नहीं है।"

किरणमयी तुरन्त कोई जवाव न दे सकी। इस ताने भरे सम्बोधनकी ढिठाईसे वह चौंक पड़ी थी। कुछ देर चुप रहकर बोली—"जरूरत क्यों नहीं है?

सतीशने कहा—"नहीं। अपना अधिकार आप नष्ट न करती तो हारान वावूको, इतनी परेसानी ही क्यों उठानी पड़ती? इतनी रातको वेकारका टंटा न वढ़ाइये, ज़रा सोचकर देखिये।"

तेज़ कार्वोलिककी गन्धसे साँप जिस प्रकार अपना फैलाया हुआ फण वातकी वातमें समेट, चोट करनेके वजाय अपनी जान वचानेकी फिक्र करने लगता है, यह निरुपमा, यह लीलाकौशलमयी, तेजस्विनी युवती पलकभी मारते उसी प्रकार सिमट-सी गयी। सूखे मुखसे विह्वलकी भांति देखकर वोली—"जरा भी तो कि मेरे सम्बन्धमें उन्होंने क्या कहा है?"

उपेन्द्रनाथ अब चुप न रह सके। इस गर्विता नारीका सन्देह भरा तिरस्कार उन्हें बरछीकी तरह बेधते रहनेपर भी उनका उदार अन्तःकरण सतीशकी इस जासूसीके विरुद्ध बिगड़ खड़ा हुआ। वह अनुचित उत्तेजना भरकर कुछ गुप्त रहस्य खींच कर बाहर निकालनेको चेष्टा कर रहा था, यह उन्होंने समझ लिया। सतीशको रोककर किरणमयीसे बोले—"क्यों आप सतीशके पागलपनपर ध्यान देकर बेकार घबरा रही हैं! स्वामीके धनसे स्त्रीको वञ्चित करनेका अधिकार किसीको नहीं है। आप निश्चिन्त रहें। मेरी समझमें तो आप लोगोंके विशेष सुभीतेके विचारसे ही, हारान बाबूने लिखा-पढ़ीकी बात उठायी है, पर वे जो कुछ भी करेंगे, आपकी रजामन्दी लेकर करेंगे—इसके बिना तो कुछ होही नहीं सकता। रात बहुत हो गयी है। दरवाजा बन्द कीजिये। चलो, सतीश, देर न करो।" सतीशको ढकेल, गलीमें खड़े हो, मुस्कराकर किरणसे बोले,—"कल-परसोंतक फिर भेंट होगी। नमस्कार!"

१२

उस निर्जन गलीसे निकलकर दोनों जने किरायेकी एक गाड़ीमें बैठ गये और उसकी खिड़कियोंसे सड़कपर आने-जानेवालोंकी ओर चुपचाप देखने लगे। बातें करने लायक अवस्था दोनोंमें किसीके मनकी न थी। उपेन्द्र व्यथित चित्तसे सोचने लगा। कल ही घर लौट जाऊँगा। भला हो या बुरा, इस मामलेमें

मुझे हाथ डालनेकी जरूरत नहीं। केवल लौटनेके पहले यह देख आऊँगा कि हारान भाईका इलाज ठीक हो रहा है या नहीं। फिर कुछ नहीं—आठ बरसतक जो आदमी मनके बाहर पड़ा था, वह बाहर ही पड़ा रहेगा। यह कहकर देहपर उड़कर आ बैठनेवाले कीड़े-मकोड़ेकी तरह इस मोह बढ़ानेवाली चिन्ताको जोरसे दूर फेंककर उपेन्द्र गाड़ीके अन्दर ही एक बार हिल-डुल कर बैठे। सतीशकी ओर देखा, वह चीतपुर रोडके दोमंजिले मकानोंके अन्धेरे बरामदेको ओर देख रहा है। बोले,—"सतीश, एक चुरुट तो दो। बड़ी सर्दी है।"

सतीशने पाकेटसे चुरुट और सलाईकी डिब्बी निकालकर हाथमें दी और उसी तरह बाहरकी ओर देखता रहा, कुछ बोला नहीं।

उपेन्द्रने चुरुट सुलगाकर बारम्बार धुआँ फेंकते हुए सतीशको सुनाकर कहा—"भीतरका अन्धकार इस धुएँकी ही तरह उड़ जाये।"

सतीश हुंकारीतक न भर, पूर्ववत् बैठा रहा।

घड़घड़ाती हुई गाड़ी परिचित-अपरिचित राह, मकान, दूकान, बाजार पार करती हुई चलने लगी। चुरुट जलकर खाक हो गयी, उसका धुआँ शून्यमें विलीन हो गया। फिर भी दोनों आदमी दो तरफ बैठे ज्यों के-त्यों देखते रहे। उपेन्द्रने मनही-मन सोचा, सतीश जरूर येही सब बातें सोच रहा है और हो-न-हो कुछ निश्चय भी कर रहा है, नहीं तो वह इतनी देर

चुप रहनेवाला जीव नहीं है। परन्तु वह क्या सोच रहा है, इसका अनुमान करनेकी चेष्टा करनेपर उपेन्द्रनाथको शुरूसे आखिर तक सारी बातें याद आ गयीं। वे भीतर ही भीतर कांप उठे और मन-ही-मन बोले, "आह ! बेचारेके घरकी कैसी सोचनीय दशा हो रही है ?" उन्होंने वहाँ जो कुछ देखा सुना था, सबका एक-न-एक कारण स्थिर किया ; पर सतीश क्यों उस बेचारी अबलाके साथ इस तरह कमर कसकर लड़नेको तैयार हो गया—इसका कुछ भी कारण उन्हें ढूँढे न मिला। सतीश अशिक्षित है, पर नासमझ नहीं। सरस्वती देवीने अगर उसे धोखा दिया है, तो चाणक्य महाराजने उसको कसर निकाल दी है। उपेन्द्रनाथ यदि यह न जानते होते, तो उसके व्यवहारसे उतना दुख न मानते। मुमूर्षु हारानके बीलके प्रस्तावमें एक विचित्रता थी, एक विशेषता थी, इसीसे उपेन्द्र थोड़ी ही देरमें बहुत बातोंका निर्णय कर सके थे। लँगोटिया यारकी जीवन्मृत देहके पास बैठकर उन्होंने विचारा था, कि इन दोनों अनाथ अबलाओंका जन्मभर भरण-पोषण और रक्षणावेक्षण करूँगा। किसी अच्छेसे तीर्थ-स्थानमें एक छोटासा मकान ले लूँगा। वह पेड़-पौधोंसे घिरा हुआ शान्त आश्रमकी तरह होगा और उसके चारों ओर शिष्ट, सभ्य भले आदमियोंके आवास होंगे। गौओंकी सेवाकर, अतिथि-ब्राह्मणोंकी पूजाकर, व्रत-उपवास आदि कर इन दोनों स्त्रियोंके दिन जिस सुख-शान्तिके साथ बीतने लगें, उसका एक मधुर काल्पनिक चित्र उपेन्द्रने अपने मनमें अङ्कित

कर लिया। उस कल्पित चित्रके एक कोनेमें, पेड़-पौधोंकी आड़में उसने अनजानतेमें अपना भी चित्र अङ्कित कर दिया। इसी समय किरणमयी द्वारा आरोपित कुत्सित अभियोग और उसकी संयमतप्त क्रुद्ध श्वास-वायु बवंडरकी तरह उस चित्रके चिन्हतकको न जाने कहाँ उड़ा ले गयी! उपेन्द्रनाथ अब चुप न रह सके। पुकारकर बोले—"सतीश, क्या सोच रहे हो?"

सतीशने उपेन्द्रकी ओर देखकर कहा—"उपेन्द्र भैया, क्या सोच रहा हूं जानते हो? लड़कपनमें एक वंगला-उपन्यास पढ़ा था, उसीको सोच रहा हूं।"

उपेन्द्रने पूछा— कौनसा उपन्यास?"

सतीशने कहा -"नाम याद नहीं है, ग्रन्थकारका नाम भी याद नहीं आता। पर लेखक था कोई वडा नामी आदमी। उपन्यासकी एक घटनाकी ही वात मैं सोच रहा था वह वडी सुन्दर घटना है—वडी विचित्र!"

उपेन्द्र आश्चर्य चकित होकर उसकी ओर देखने लगे।

सतीशने मनको चोट पहुंचानेवाले स्वरमें कहा—"उपेन्द्र भैया, तुम तो जीवनभर अंगरेजी ही पढ़ते रहे, किसी दिन वङ्गलाकी ओर देखा तक नहीं, पर देशी भाषाओंमे भी ऐसी किताबें हैं, जिन्हें एक वार पढ़नेसे वहुत कुछ ज्ञान हो जाता है।" यह कह वह लम्वी साँस लेकर चुप हो रहा।

उपेन्द्रने झुंझलाकर कहा—"पहले तुम उस उपन्यासका

किस्सा तो बताओ, उसके बाद देखा जाय कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है।"

सतीश हँसा, बोला - "वादा करो कि नाराज न होगे ?"

"नहीं, तुम कहो।"

सतीशने कहा—"बड़ी सुन्दर कहानी है। एक बड़े जमींदार नावपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। एक दिन संध्या समय आसमानमे बादल घिर आये। जोरोंसे आँधी पानी भी शुरू हो गया। वे डरके मारे किनारे उतर गये। सामने ही एक बहुत बड़ा टूटा-फूटा मकान था। पानीसे बचनेके लिये उसीमें चले गये। उस मकानमे सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था—कहीं कोई आदमी नहीं था। सारे मकानमे घूमकर अन्तमें उन्होंने देखा कि एक कमरेमे दीया टिमटिमा रहा है और फटे बिछौनेपर एक मुमूर्षु आदमी पड़ा हुआ है और उसकी रूपवती स्त्री भूमिपर पड़ी रो रही है। उस स्त्रीने उस रातको एक भयङ्कर स्वप्न देखा था। अच्छा, उपेन्द्र भैया, तुम स्वप्न मानते हो ?"

उपेन्द्रने संक्षेपमे कहा—"नहीं। फिर ?"

सतीशने कहा—"उसके बाद वह उसी रातको चल बसा। जमींदारने उस रूपवती युवती विधवाको घर लाकर जबरदस्ती उससे विवाह कर लिया। चारों ओरसे धिक्कारकी वर्षा होने लगी और इसी दुःखसे उनकी प्रथमा स्त्रीने जहर खाकर आत्म-हत्या कर ली।'

कथानकके इस वर्णनसे उपेन्द्रने समझ लिया कि सतीश 'विषवृक्ष' की छोछालेदर कर रहा है और सतीशकी स्मृतिशक्तिका यह परिचय पाकर यदि कोई दूसरा समय होता, तो उपेन्द्र खूब हँसते, पर इस समय उन्हें हँसी न आयी। उपन्यासके इस कथानकका एक कुत्सित सत्य तेज तीरकी भाँति आकर उनकी छातीमें लगा। वे मन ही-मन बोले, यह तो सतीशकी स्मृति नहीं—यह उसकी आशङ्का है और यह आशङ्का क्या है, किस बातके आधारपर उसने 'विषवृक्ष' की डाल और पत्ते तोड़-मरोड़कर उसे अपने साँचेमे ढाल लिया है, यह बात सोचकर उपेन्द्र गम्भीर लज्जासे सङ्कुचित हो गये।

सतीशने अन्धेरेमे यह नहीं देखा कि उस समय उपेन्द्रका मुंह पीला पड़ गया है। सतीशने जलेपर नमक छिड़ककर फिर कहा—"खाई खोदकर मगर न बुलाओ, उपेन्द्र भैया!"

उपेन्द्रनाथ कोई उत्तर न दे सके। देरतक चुप बैठे रहकर धीरे-धीरे बोले—"उस उपन्यासकी बात रहने दो। किन्तु यह बतलाओ, कि तुम उपदेश क्या देना चाहते हो?"

सतीश हँस पड़ा। बोला—"बस देख लो, उपेन्द्र भैया, तुम नाराज हो गये। मैं तुम्हें उपदेश नहीं दे सकता—लेकिन पाँव पकड़कर तुमसे अनुरोध कर सकता हूं कि वहाँ तुम्हारे जानेकी जरूरत नहीं है, वे लोग भले आदमी नहीं जान पड़ते।"

"कौन लोग?"

सतीशने कहा—"भैया, नाराज मत होना, बहुवचनका प्रयोग

मैंने केवल शिष्टताके लिये किया है। मैं हारान बाबूकी बात नहीं कहता। वे भलाई-बुराईसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनकी मांको भी मैंने आंखोंसे देखा, मेरा इशारा तीसरे व्यक्तिकी ओर है।"

उपेन्द्र—"तीसरे व्यक्तिका क्या अपराध है? देखो सतीश तुम्हारे पिता यदि अपनी सारी सम्पत्ति किसी दूसरे आदमीको लिख देनेका विचार करें तो शायद तुम बहुत खुश न होगे?"

सतीश - "नहीं, उपेन्द्र भैया, आशिर्वाद करो कि पिताजीको ऐसा करनेकी कभी जरूरत हो न पड़े। मैं जानता हूं कि वे मुझे अच्छा नहीं समझते, मुझसे खुश भी नहीं रहते—मैं तो उनका अधम पुत्र हूं किन्तु अधम होकर भी मैं उनकी मृत्युके समय सज-धजकर, सिंगार-बनाव कर, आंखोंमें सुरमा लगाकर और ठाटसे बाल झाड़कर यों माथेपर बिन्दी नहीं लगा सकता। मैं बोलनेमें अगर कुछ ज्यादती कर रहा होऊं, तो माफ करना भैया, तुमने यदि एक बार भी आंखें खोलकर देखा होता, तो समझ जाते कि हारान बाबूका संकोच वहम नहीं; बल्कि वह उनकी बहुत ˇ ? चिन्ताओंका परिणाम था।

उपेन्द्रनाथ चुप होकर सोचने लगे कि हारान बाबूने कब . किस बातपर संकोच प्रकट किया? सतीशने कहा,— 'उपेन्द्र भैया, तुम यह न सोचो, कि हारान बाबू तुम्हें सब भार अर्पण करनेके समय अपनी स्त्रीकी बात ही भूल गये थे। अथवा लज्जासे कह नहीं सकते थे; बल्कि मेरा विश्वास है कि यदि

तुम स्वय जिक्र न करते, तो वे अपनी इच्छासे उनके विषयमें कुछ न कहते।"

उपेन्द्रनाथ मन-ही-मन वहुत खीजते रहनेपर भी अवतक चुपचाप उसकी वात सुन रहे थे, लेकिन परायी स्त्रीके सम्बन्धमें ऐसो सन्दिग्ध और कुत्सित कल्पनाएँ अव उनकी सहनशक्तिके वाहर हो गयी ! वे कठोर स्वरसे वोल उठे—"सतीश तुम यहाँ तक नीचे गिर गये हो, ऐसा मेरा खयाल नहीं था। जान पड़ता है, तुम वात समझनेमें भी वैसे ही हो।'

सतीश हँसा, वोला—"नीचे कैसे गिर गया ? वुराईको वुराई कहता हूं, इसी लिये ?"

उपेन्द्र—"भला हो या वुरा, तुम्हें उसकी चर्चा करनेका क्या अधिकार है ?"

सतीश—"अधिकार किसे कहते हैं ! वह अंग्रेजी वात है, वंगलामे उसका कुछ मतलव नहीं होता। हमारे समाजमें अधि-कार-अनधिकारका इतना सूक्ष्म विचार नहीं चलता। वहुतेरे लोग तो जेलके कैदीको चोर कहनेमे आपत्ति करते हैं, लेकिन उस वातको तो हर कोई मानकर नहीं चल सकता।"

उपेन्द्र—"वह दूसरी वात है। चोरी सावित करनेके वाद ही किसीको चोर कहा जाता है ; चोर जेल जाता है, किन्तु इसके सम्बन्धमे तुम्हें क्या सवूत मिला है ?'

सतीश—"विना प्रमाणके भी वहुतेरे आदमी विचारककी कृपासे जेलकी हवा खाते हैं। हम लोगोंकी समझमें जो वात नहीं

आती, उसे वे समझते हैं और हम-तुम जिस चीजको जलकी तरह साफ देखते हैं, वह विचारकके लिये कभी-कभी पहाड बन जाती है। आज तुम्हारे सम्बन्धमें भी यह बात घटित होती है। यह मत समझना, कि मैं गलत कह रहा हूं। इतनी बड़ी दुनिया आँखोंके सामने देखते रहनेपर भी बहुतोंको ईश्वरका प्रमाण ढूढ़ना पड़ता है और कितनोंको तो ढूढ़े भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। मैं जानता हूं कि तुम रुष्ट होगे, क्योंकि सदासे तुम भलोंके साथ मिलते रहे हो, भलोंको ही तुमने देखा है, और स्वयं भी भले ही बने रहे हो; किन्तु मेरी तरह यदि तुम भला-बुरा दोनों देख चुके होते और देखकर पक्के हो गये होते, तो मुझे इतनी बातें कहनेकी जरूरत न होती, तुम्हारी अपनी ही आंखें बहुत कुछ समझ लेतीं।"

उपेन्द्रनाथ कुछ देर चुप रहकर बोले,—"सब चीजें आंख तले पड़े, इसकी मुझे जरूरत नहीं है, और न पक्का होनेके लिये मैं तुम्हारी तरह नीच ही बन सकूंगा। अब इस प्रसङ्गको छोड़ो। लेकिन देखो, सतीश एक गाड़ी फाटकके भीतर आ पहुंची है। कच्चेका दाम क्या है, यह उस समय मालूम होगा, जब तुम और भी पक्के हो जाओगे।"

दूसरे दिन उठनेमें उपेन्द्रको देर हो गयी। सूर्य निकले बहुत देर हो चुकी है, यह बात खिड़कीसे आनेवाले उजालेकी ओर देखते ही उनकी समझमें आ गया। उपेन्द्रनाथ अकचका कर उठ बैठे। कमरेमें सतीश न था। "वह कहाँ गया है

बाहर बेहरा खड़ा था, आकर बोला,—"सतीश बाबू सामनेके बगीचेमे कुश्ती लड़ रहे हैं, नीचे चाय तैयार है, साहब आपकी राह देख रहे हैं।"

उपेन्द्र झटपट तैयार होकर नीचे उतरा। ज्योतिष हाथ पकड़कर टेबुलपर ले गया। वहीं उसकी बहन सरोजिनी भी अतिथियोंकी राह देख रही थी। उसने समाचारपत्र फेंककर हंसते हुए कहा—"कल रातका दस बजेतक हम आप लोगोंकी बाट देख रहे थे। अन्तमे मझले भैया बोले कि जरूर कोई हृदयहीन मित्र उन्हें रास्तेसे घसीट ले गया होगा और शायद आप लोग रातको नहीं लौट सकेंगे। कल रातको किस समय लौटे उपेन्द्र बाबू?"

उपेन्द्रने हंसकर कहा,—"ग्यारह बजे। एक जरूरी कामसे फस गया था, सबको तकलीफ दी।"

ज्योतिषने कहा—"यह हमे मालूम है। हमने यह नहीं सोचा था, कि तुम बेकार रास्तेमे फिर रहे होगे। सतीश बाबू कहां गये?"

बेहरेने आकर निवेदन किया—"सतीश बाबू उधर बागमें कुश्ती लड़ रहे हैं।" उन्हें खबर दे दी गयी है।"

बेहरेके चले जानेपर, ज्योतिषने उपेन्द्रकी ओर देखकर कहा—"कुश्ती कैसी! क्या वहां और भी कोई है?"

उपेन्द्रनाथने कहा—"मैं नहीं जानता। मेरी समझमे कुश्ती नहीं, किसी तरहकी कसरत होगी। उसे बचपनसे ही व्यायामका अभ्यास है। कुछ करता होगा।"

सरोजिनी कल दोपहरको म्युजियम (आजायबघर) देखने गयी थी। सन्ध्याके बाद घर लौटकर उसने सुना, कि उपेन्द्र बाबू अपने एक मित्रके साथ आये हैं। किन्तु उस समय वे लोग 'पथरियाघट्टे'की ओर चले गये थे। उसने पूछा—'उपेन्द्र बाबू, सतीश बाबू कौन हैं ? मैंने तो उन्हें नहीं देखा।"

उपेन्द्र—"कल जब हम लोग आये, तब आप मौजूद नहीं थीं। सतीश मेरा बचपनका मित्र है, यद्यपि उम्रमें बहुत छोटा—यह लो, आही गया।

सतीशने घरमें पैर रखा। वाह ! क्याही सुन्दर, सुगठित शरीर, है—उस समय भी उसके माथेपर पसीनेकी बूदें झलक रही थीं, सुन्दर, गोरे चेहरेपर व्यायामके कारण एक हल्की लालिमाकी झलक पड़कर उसे और भी सुन्दर बना रही थी। सरोजिनीने पलभर देखा और आंखें नीची कर लीं।

ज्योतिषने कहा—"बेहरा कह रहा था, आप कुश्ती लड़ रहे थे; कुश्ती लड़िये या चाहे जो कुछ कीजिये, आपकी देह देखकर मुझे रश्क होता है, शायद मेरे जैसे चार-पांच आदमी भी आपको नहीं पकड़ सकते।"

सतीशने मुस्कराकर कहा—"बिना इम्तहान लिये इतना बड़ा [illegible]। दूसरे, केवल शारीरिक शक्तिका मूल्य ही क्या है ? मुझमें और कोई शक्ति तो है नहीं।"

अन्तिम बातके साथ दुःखकी झलक मालूम हुई। सरोजिनीने प्यालोंमें चाय ढालते हुए अनुमान किया, शायद सतीश

ाबूकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। ज्योतिष बाबू तो पहले ी उपेन्द्रनाथसे सब किस्सा सुन चुके थे, वे चुपचाप रहे। इसी ीचमें चायके प्याले भरपूर हो गये। सतीशने उस ओर आँख उठाकर भी न देखा और एक टक दीवारपर टँगे हुए एक चित्रकी ओर देखता रहा।

ज्योतिषने कहा—"आइये, सतीश बाबू सब तैयार है।

सतीश निकट आ, मुस्कराकर बोला—"आप लोग आरम्भ कीजिये, मैं स्नान किये बिना कुछ नहीं खाता।"

ज्योतिष—"वाह-वाह। मुझे तो मालूम ही न था, तो जाइये, देर न कीजिये। बेहरा! ... ..."

सतीश—"नहीं, नहीं, आप जल्दी न करें। मैं अपने समयपर स्नान कर लूंगा; दूसरे मुझे सवेरे कुछ खानेकी आदत भी नहीं है। हाँ, मेरा दोपहरका भोजन मामूली आदमियोंसे कुछ अधिक होता है। चाय वगैरह फजूलकी चीजें खा-पीकर भूखको नष्ट करना मुझे पसन्द नहीं। आप लोग चाय पीते रहें, तबतक मैं यह हारमोनियम लेकर दो भजन गाता हूं।"

गानेकी बात सुनकर सरोजिनी प्रसन्न हुई। सिर उठाकर सहसा बोल उठी—"हां, जरूर गाइये।" लेकिन तत्काल ही झेंपकर उसने सिर झुका लिया। उसकी अपनी बात अपने ही कानोंमें असंगतसी जची। ज्योतिषने हँसकर कहा—"मेरी बहनको गाना मिल जाये तो और कुछ न चाहिये—"नहीं, नहीं, सतीश बाबू आप कुछ... ..."

उपेन्द्रनाथ अबतक चुप बैठे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे, बोल उठे—"नहीं नहा क्या ? वह बिना स्नान किये कभी कुछ नहीं खाता।"

"हम उसकी मान-मनौवी करते रहें और इधर चायके प्याले बर्फ हो जायँ, यह मुझे पसन्द नहीं। सतीश भाई, तू अपना भजन-वजन समाप्त कर ले, मुझे और भी काम करने हैं।" इतना कह उन्होंने चायका प्याला मुंहमें लगाया।

ज्योतिषको उपेन्द्रकी बात बहुत अच्छी लगी। वे मुस्कुराने लगे।

सतीश पास ही एक कुर्सीपर बैठ गया। इसके बाद फिर उसे गानेका उत्साह न रहा सरोजिनी अनमनी होकर चाय ढालने लगी।

उपेन्द्रने चाय पीते हुए कहा - "कहीं भी इसके मारे मुझे शांति नहीं मिलती। ऐसी निराली तबीयतका आदमी है कि कुछ-न-कुछ अड़ंगा खड़ा कर ही देता है। गनीमत समझो कि इसने सबेरे-सबेरे भजन गानेके बदले बांसुरी अलापनेका प्रस्ताव नहीं किया ?"

किसीको इस बातमें रत्तीभर भी सचाईका अनुभव न हुआ। सभी दिल्लगी समझकर हँसने लगे। चाय भी उड़ने लगी। इधर सतीशसे चुपचाप बैठा न रहा गया। वह उठा और घूम घूमकर दीवारोंपर लगी हुई तस्वीरें देखने लगा।

सन्ध्याके बाद एक बार सरोजिनीने धीरेसे उपेन्द्रनाथसे

कहा—"सवेरे आपने गाना नहीं सुनने दिया, यह आपने बड़ा अन्याय किया।"

उपेन्द्रनाथने कहा—"अच्छा, इस समय उसकी कसर निकल सकती है, सतीशको आने दो।"

ज्योतिषने कहा—"हां-हां, उपेन्द्र, इस सर्दीमें कहीं बाहर निकलनेको जी नहीं चाहता, कुछ गाना-बजाना हो तो बुरा क्या है? लेकिन सतीश बाबू कहां हैं, कहीं डाक्टरी करने तो नहीं गये?"

उपेन्द्रनाथने कहा—"हो सकता है। मैं समझता हूं, जान-पहचानवालोंसे मिलने गया होगा। सरोजिनीने चकित होकर पूछा—"सतीश बाबू डाक्टर हैं?"

उपेन्द्रने हँसकर कहा—"हां।"

ज्योतिषने कहा—"नहीं उपेन्द्र, सिर्फ स्कूलमें पढ़नेसे ही काम न चलेगा। किसी अच्छे होमियोपैथिक डाक्टरके साथ कुछ दिन रहे बिना व्यावहारिक ज्ञान नहीं होगा और ये भी तीसमार खां की तरह लोगोंकी जान लेते फिरेंगे। तुम कहो, तो मैं एक भलेमानस डाक्टरका साथ करा दे सकता हूं। लेकिन दोनोंकी आपसमें कहांतक पटरी बैठेगी, नहीं कह सकता, तुम जैसा सार्टिफिकेट दे रहे हो ।

उपेन्द्रनाथने कहा—"वे होशियार होंगे, तो जरूर पटरी बैठ जायेगी, नहीं तो सिर-फुडौवलको भी नौबत आ सकती है।"

सरोजिनी चकित होकर देखने लगी, ज्योतिषने कहा "नहीं, वे बहुत होशियार आदमी हैं।"

उपेन्द्रनाथने कहा—"तो ठीक है। उसे पहिचानकर उसके सारे गुण-दोषोंको समझकर जो उसके मनको वशमें कर लेगा, उसे बड़ी ही अच्छी चीज मिलेगी। लेकिन उसके मनको वशमें करना ही तो मुश्किल है। यह नहीं कि जटिल या दुर्बोध हो, बल्कि बड़ा सीधा—बड़ा साफ है। मेरे विचारसे मनकी इस सफाईके कारण ही लोग उसे समझनेमें गलती कर जाते हैं। मतान्तर होनेपर हम जहां सभ्यताकी दुहाई देते हैं और शिष्ट-भावसे, भलमनसाहतके लिहाजसे मनमुटाव पैदा करके, मनमें एक मैल रखके चुपचाप चले आते हैं, वहां वह हाथापाई कर पूर्णतः निपटारा करके ही आता है, मनको भारी करके नहीं लाता। बचपनसे उसे जानता हूं, कभी यह नहीं देखा, कि उसके मुंहसे एक बात निकलती हो और मनमें कुछ और ही हो। इसीसे तो मेरा उसपर इतना प्रेम है।"

ज्योतिष हंसने लगे, बोले—"इसीसे तो तुम शिकायत करते थे कि दस आदमियोंके बीच इसे लेकर जाना-आना ।...है।"

उस समय उपेन्द्रनाथका मन ज्योतिषकी ओर नहीं था। इसीसे उनकी बातें कानोंमें पहुंचनेपर भी हृदयमें न पहुंचीं। बाल-बन्धुके विरुद्ध कल रातका व्यवहार और कठोर भाषण उन्हें भीतर-ही भीतर मसोस रहा था, इसी लिये बातों की

बातोंमें उनका मन पिछले दिनकी स्मृतिके एक अत्यन्त गूढ़ प्रदेशमें प्रवेश कर गया था। किशोरावस्थाके छोटे-बड़े झगड़ोंमें, दूसरे महल्लेके समान या असमान उम्रवालोंसे हाथा-पाई, मार-पीट, वाद-विवाद तथा और भी कितनी ही कठिन परिस्थितियोंके समय सतीश अपना हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ शरीर लेकर उनका साथ दिया करता था। इन्हीं सब स्मृत और विस्मृत घटनावलियोंके बीचमें आकर उनका हृदय अत्यन्त अनुतप्त हो उठा। जब उपेन्द्रनाथने कहा—"इसीलिये तो मेरा उसपर इतना प्रेम है।" तब ज्योतिष और सरोजिनी दोनोंने चकित नेत्रोंसे उनकी ओर देखा। वे इस असम्बद्ध बातका ठीक-ठीक मतलब न समझ सके। पर दूसरे प्रश्नका भी समय न रहा। चुपचाप पर्दा हटाकर सतीशने भीतर प्रवेश किया। पहले ही सरोजिनीकी निगाह उसपर पड़ी। बडी खुशीसे स्वागत करके बोली—बड़ा अच्छा हुआ, सतीश बाबू आ गये।"

सतीशने चुपकेसे सबकी ओर देख मुस्कुराकर कहा—"मालूम होता है, मेरी ही बातें हो रही थीं। उपेन्द्र भैया मुझे अब किसीके सामने मुह दिखाने लायक भी न रखेंगे।" कहकर पास पडी एक गद्दीदार आराम-कुर्सीपर बैठने जा रहा था कि उपेन्द्रनाथने उंगलीसे हारमोनियम दिखाकर कहा, "जरा वहां जाकर बैठो, सरोजिनी अभी मुझे दोष दे रही थी, कि सिर्फ मेरे ही कारण उस समय गाना-बजाना नहीं हो सका।"

सतीश बताये हुए स्थानपर बैठकर बोला—"भैया, इस समय तो गाना न हो सकेगा, यह तो मेरे बांसुरी बजानेका वक्त है।"

उस रातको कुछ देरसे सभा भङ्ग होनेके बाद खाटपर लेट, सरोजिनी लम्बी सांस लेकर मन-ही-मन बोली, "वे यदि हमलोगोंके कोई अपने-सगे होते, तो उन्हींसे सीखती।" सरोजिनीको गाना सिखानेके लिये एक युक्तप्रदेशीय उस्तादजी नियुक्त थे। इनकी जगह सतीशको नियुक्त करनेके लिये वह भाँति-भाँतिके उपाय सोचती हुई सो गयी।

१३

उपेन्द्र और सतीशके चले जानेपर किरणमयी किवाड बन्द कर वहीं खड़ी हो गयी। अन्धेरेमें उनकी दोनों आँखे हिंस्र पशुकी भाँति जलने लगीं उसके जीमें आ रहा था कि झपट-कर किसीका कलेजा फाड डालू तो मुझे चैन पडे। हाथके दीपकको ऊँचाकर पागलकी-सी चेष्टा करती हुई बोली—"आग लगा देनेका उपाय होता, तो लगा देती। आग लगाकर जी चाहता, चल देती। हाय-हाय करके, चीख-चिल्ला करके बुड्ढी भीतर ही जल मरती, तभी ठीक होता। मेरे साथ वैर बांधनेका मौका ही न पाती।' इस जाड़ेकी रातमें भी उसके गोरे गालों और माथेपर पसीनेकी बूंदें निकल आयी थीं। हाथसे पोंछती हुई सहसा अपने आपको धिक्कार देकर बोल उठी—

'क्यों खबर देने गयी ? क्यों अपने ही हाथोंसे अपने पांवोंमें कुल्हाड़ी मारी ? लेकिन मैं जोरसे कह सकती हूं कि यह सब इसी बदकिस्मतीकी मारी बुड्ढीकी करतूत है। अपने लड़केके साथ राय-मशविरा कर उसीने यह जाल फैलाया है। मालिश-वाली सारी दवा यदि मैं पिला दे सकती, तो वह अपने कियेकी पूरी सजा पा जाती, लेकिन वह शैतानकी खाला पीने क्यों लगी !"

सतीशकी बातें बिच्छूके डङ्ककी भांति रह-रहकर उसे जलाने लगीं। इन दोनोंने कुछ बाते जरूर सुनी हैं, इसमें उसे तनिक भी सन्देह नहीं था, लेकिन कहांतक और क्या-क्या सुना है, यह ठीक निश्चय न कर सकनेके कारण वह और भी बेचैनी मह-सूस करने लगी। उसे मां-बेटेने मिलकर समझाया था, कि उपेन्द्रनाथ बड़े ही नेक आदमी हैं, उनके आ जानेके बाद फिर कोई कष्ट न रह जायगा। क्यों उसने इसपर विश्वास किया ? क्यो उसने अपने हाथों चिट्ठी लिखी ? उस अन्धेरे, गीले आंगनमें, एक किनारे खडी हुई इस क्रोधोन्मत्त नारीने इन लोगोंको झूठा, दगाबाज, कृतघ्न, राक्षस, पिशाच आदि कहकर कितनी ही तरहसे कोसा, फिर भी उसे सन्तोष न हुआ। क्रोध और विद्वेषने उसके हृदयमे जो तूफान खड़ा कर दिया है, उसका रत्ती भर भी हाल बताने योग्य भाषा जब उसे न मिली, तब वह सर्वान्तः-करणसे मनाने लगी कि वह अर्द्धमृत मनुष्य जल्दी इस संसारसे कूच कर जाये। "अभी यमराजके दूत आकर ····· इतना

कहते-कहते उसका गला कांप उठा! इस घने अन्धकार औ भयंकर सन्नाटेमें उसका अपने कण्ठ-स्वरका यह वीभत्स शब्द उसको अपनी देहमें ही कांटोंकी तरह गड़ने लगा। ऊपर आंख उठाते ही ऊपरवाली छतपर नजर पड़ी। वहां गमलेमें बहुत दिनोंसे खीजका एक छोटा-सा पौधा रखा हुआ था। उसकी पत्रशून्य दो शाखाओंने साक्षात् यमराजके हाथोंकी भांति उसे बुलानेका संकेत किया और ठीक उसी समय मानों उसे छतपर कोई चीज़ भी दिखाई दी। वह और किसी ओर दृष्टि न फेर सकी, धरतीपर दृष्टि गडाकर जल्दीसे ऊपर चली आयी और जोरसे धक्का दे, अपनी सासकी कोठरीका दरवाजा खोलकर झट उसके एक किनारे जाकर पड रही।

वीमार सास आज कुछ अच्छी थी। भूखके मारे उसे नींद न आती थी, इसीसे आंखे बन्द किये सवेरा होनेकी बाट जोह रही थी। चौंक पड़ी, बोली—"कौन? वहू? क्यों-क्यों? हारान कैसा है?"

वहूने रजाईसे मुंह निकाले बिना ही कहा—"मालूम नहीं अच्छे हैं।"

मालूम नहीं, अच्छे हैं—का क्या मतलव? तुम इस तरह क्यों कर रही हो?"

उसकी रोनी आवाज सुनकर किरण झटपट बोल उठी—"अच्छे हैं—अच्छे हैं। मैं डर गयी थी।

वीमार लड़केकी अमङ्गल आशङ्कासे पीड़ित हो, माता कुछ

ठी थी। ढीले-ढाले कपड़ोंको समेटते हुए उसने रुँधे हुए कण्ठसे पूछा—"तो फिर तुम ऐसी क्यों हो रही हो? बीमार लड़केको अकेला छोड़कर‥ "

किरण सासका आँचल खींचकर बोली—"मैं डर गयी थी, न मालूम क्या काला-काला-सा‥‥ "

सासमें अन्ततक सुननेका धैर्य न रहा। एक झटकेमें आँचल छुड़ाकर वह बेटेको देखनेके लिये काँपते हुए पैरोंसे बाहर निकल गयी। तब बहूने पूरी रजाईपर दखल जमाया, और सिरसे पैरतक ढककर सो रही।

दूसरे दिन सवेरे किरण चौकेमें बैठी तरकारी चीर रही थी। मजदूरिनने आकर कहा—"डाक्टर साहब आये हैं।"

किरणने सिर उठाये बिना ही कहा-"माजी, तो आज अच्छी हैं। जाकर उनसे कह दे।"

मजदूरिन कुछ चकित-सी हो गयी। कुछ देरतक देखनेके बाद बोली—'वे उस कोठरीमें बैठे हुए हैं।" उसके इस इशारेकी ओर जरा भी ध्यान न देकर उसने स्वाभाविक तौरसे कहा—"कोई तो उसकी दवा नहीं खाता, फिर न मालूम वह क्यों आता है? तू अपने कामको जा, वह आप ही चला जायेगा।" इस डाक्टरकी दवा किसी काममें नहीं आती। यह मजदूरिनके लिये नयी बात न थी। इसलिये इसपर कुछ कहनेकी जरूरत न थी। लेकिन वह क्यों आता है, यह सवाल एकबारगी नया था। वह अचम्भेमें आकर सोचने लगी कि कल शामको मैं

घर गयी थी; इसी वीचमें ऐसी क्या घटना हो गयी, कि डाक्‍रका इस घरमें आनातक अनावश्यक हो गया! तथापि ... हिम्मत बांधकर फिर एक बार कहा --"लाओ, न हो तरकारी मैं ही चीर देती हूं, तुम एक वार हो आओ न।"

किरणमयी सहसा बड़ी ही रुखाईसे बोली—'चल-चल अपने धन्धेमें लग। देखती हूं, किसी दिन रसोई भी वनाना चाहेगी।" इस आकस्मिक और विलकुल वेमतलबके रूखेपनसे मजदूरिनका मुंह जरा-सा हो गया। इस घरमें वह बहुत पुरानी न होनेपर भी, एकदम नयी नहीं थी। इसके पहले भी ऐसी अकारण रुखाईका परिचय उसने कितनी ही वार पाया है, लेकिन आजका ढङ्ग उसे कुछ निराला ही जान पड़ा। कोई और समय होता तो संभव है, वह भी क्रोध करती, लेकिन आज न बोली विस्मित रह गयी! जरा देर चुप खड़ी रहकर धीरेसे चली गयी। उस कोठरीके दरवाजेके पास आकर डाक्टरसे बोली-"बहूजी इस समय काममें लगी हुई हैं; इस समय आप जाइये।"

डाक्टर पैरोंके पास वेग रखकर चौकीपर उद्विग्न वैठा था बोला -"काममें लगनेका मतलब? मुझे भी तो काम है।"

मजदूरिनने कहा—'तो आपको रोकता कौन है?"

डाक्टर जरा झेंप गया बोला—"एक बार जाकर कह दो, कि मुझे एक जरूरी काम है।"

मजदूरिनने कहा—"डाक्टर साहब, आप समझते नहीं हैं

मैंने बहुत कहा, अब और नहीं कह सकती। आज आप चले जाइये।" कहकर वह चली गयी।

इस अपमान और लापरवाहीकी बातसे पहले तो डाक्टरको बड़ी चोट लगी, परन्तु तुरन्त ही किसी लज्जाजनक दुर्घटनाकी संभावना उसके मनमें उदय होते ही वह भीतरी व्यापार सुननेके लिये व्याकुल हो उठा। उसे बाट देखनेके लिये बैठे रहनेसे आपत्ति न थी, किन्तु कोई लौटकर न आया। खड़े-खड़े कितनी ही बातें सोचकर जानेके इरादेसे हैंडबेग उठाकर जब खड़ा हुआ और आंखें ऊपर उठायीं तब देखा कि द्वारके सामने ही किरणमयी मौजूद है। डाक्टरने क्रोधके आवेगको दबाकर शान्त स्वभावसे उदास मुँहसे कहा "हटो, बड़ी देर हो गयी, और भी बहुतसे रोगी रास्ता देखते होंगे—मांजी आज अच्छी हैं ?"

"अच्छी हैं"—कहकर किरणमयी रास्ता छोड़कर एक किनारे खड़ी हो गयी।

लेकिन डाक्टरके पैर नहीं उठे। फिर भी जो प्रसङ्ग एक बार बन्द हो गया, उसे उठानेका मौका न रहा।

किरणमयी मुस्कुराने लगी, बोली—"जाओ न।"

डाक्टरने सिर उठा, भौंहें सिकोड़कर कहा—"तो क्या तुम समझती हो, कि मैं जाना नहीं जानता !"

किरण—"मैं क्या पागल हूं कि ऐसा समझूँगी ? हां डाक्टर साहब, यह तो बताओ, कितने रोगी तुम्हारा रास्ता देखते होंगे ?"

इतना कहकर ही वह मुँह फेरकर हँसने लगी।

क्रुद्ध डाक्टरके जीमें एक वार आया, कि उसके गालोंपर मीठी चपत जड़कर जबान बन्द करदें। लेकिन यह सम्भव नहीं था। केवल बोला—"जाओ।"

किरण—"मैं कहा जाऊँ? घर मेरा है, इसलिये जाना तुम्हींको होगा।"

डाक्टर कलकत्तिया आदमी है, हजार गुस्सा आनेपर भी रोकना जानता है। "मैं ही जाता हूं"—कहकर जानेको तैयार होते ही किरणमयी दोनों चौखटपर हाथ रख दरवाजा रोककर बोली—"जाते तो हो लेकिन यह जानकर जाओ कि यही जाना अन्तिम जाना है।"

उसका कण्ठस्वर और उसके मुखका भाव एकाएक अजीब ढङ्गसे वदल गया। यह देखकर डाक्टरके मनमे खटका हुआ। ऊपरसे बोला—"हां, अन्तिम जाना है?"

किरणमयीने कहा "सचमुच अन्तिम जाना है। जब आ गये हो, तब साफ-साफ सब सुनते जाओ। अच्छा, यहां बैठो सब कुछ खुलासा बताती हूं।" कहकर किरणमयीने डाक्टरकी ..ग लेकर मेजपर रख दी और उगलीसे चौका दिखाकर ..—"भोजन बनाना है, अधिक फुर्सत नहीं है, संक्षेपमें ही कहती हूं, सुनो ...."

इतनेमे मजदूरिनने आकर सूचना दी कि दो बाबू आ रहे हैं, साथ-ही-साथ नीचे जूतोंकी आवाज सुनकर किरणमयी घबरा

उठी और व्याधासे डरी हुई हरिणीकी भांति उसी दम मजदूरिनको जोरसे ढकेलकर दौड़कर चली गयी। डाक्टर और मजदूरिन चकित होकर एक दूसरेका मुँह निहारने लगे।

जरा देर बाद ही जूतेका शब्द द्वारके पास आकर रुका। डाक्टरने देखा· दो अपरिचित भलेमानस हैं। दोनों भलेमानसोंने देखा, डाक्टर हैं। उसके कोटकी पाकेटसे हृदय-परीक्षाकी नलीने गर्दन बढ़ाकर उसका परिचय दे दिया। उपेन्द्रनाथ और सतीशने देखा कि डाक्टरका मुँह बहुत सूखा हुआ है। दुर्घटनाकी आशङ्कासे उपेन्द्रनाथने पूछा—"क्या हाल है डाक्टर साहब ?"

डाक्टर चुप। उसका मुँह और भी काला हो गया। उपेन्द्रनाथने अधिकतर शङ्कित होकर पूछा—"इस वक्त हारान बाबू कैसे हैं ?"

फिर भी डाक्टरने कुछ उत्तर न दिया, पागलकी भांति चुपचाप देखता रहा !

मजदूरिनने कहा—"जाइये न डाक्टर साहब, अब भी खड़े क्यों हैं ?

डाक्टरने व्यस्त हो, बेग उठाकर कहा—"मैं जाता हूं, मुझे बहुत काम है।" इतना कहकर ही वह उपेन्द्रनाथ और सतीशके बीचसे जल्दी-जल्दी नीचे उतर गया। और "महाजनो येन गतः स पंथा." का अनुसरण कर दासी भी ऐसी गुम हुई कि ढूँढे भी कहीं उसका पता न लगा।

उसी सुनसान ढहे-गिरे मकानके टूटे-फूटे बरामदेमें दिनके

लगभग नौ बजे उपेन्द्रनाथ और सतीश चुपचाप एक दूसरेका मुंह देखने लगे।

कुछ देर बाद सतीशने कहा—"उपेन्द्र भैया, हारान बाबूकी माँ पागल हैं क्या ?"

उपेन्द्रनाथने कहा –"वह हारानकी माँ नहीं हैं, और कोई है, मेरी समझमे मजदूरिन है। लेकिन यह मेरी समझमें नहीं आता, कि डाक्टर वैसे क्यों चला गया ?"

सतीशने कहा—"हाँ। जैसे कोई चोर हो और पकड़े जानेके डरसे भाग रहा हो।

उपेन्द्रनाथने उधर ध्यान न देकर कहा—"कहीं कोई दिखाई नहीं देता ! यही कमरा हारान बाबूका है न ?"

सतीशने कहा—"हाँ, चलो।"

उपेन्द्रनाथ—"सहसा भीतर जानेकी हिम्मत नहीं होती। मुझे भय हो रहा है, कि कुछ अनिष्ट न हुआ हो।"

सतीश—"ऐसा होता तो रोने-पीटनेके लिये लोग जमा हो जाते। यह बात नहीं है।"

इसी समय ऊपरमें बरामदेसे घूमकर बहूजी आती दीख पड़ी। . पड़ा, मानों वह अभी-अभी रो रही थीं, आँखें पोंछकर चली आ रही है। कल दीपकके प्रकाशमें जो मुख सुन्दर देख पड़ता था, आज दिनके समय सूर्यके प्रकाशमें स्पष्ट मालूम हो गया, कि ऐसा सौन्दर्य और कभी आँखोंके आगेसे नहीं गुजरा—न जीवित न चित्रित।

बहूने कहा—"आज भी हमलोग तैयार नहीं थीं ! सोचा था, कल आइयेगा।" सतीशकी ओर देखकर सहसा मुस्कुराकर बोली—"छोटे बाबू भी हैं !"

आज सतीशने सिर झुका लिया।

उपेन्द्रनाथने पूछा—"हारान बाबू कैसे हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"वही हालत है। चलिये, उस कमरेमें।"

हारानकी माँ अघोरमयी चारपाईके पास बैठी थी। उपेन्द्रनाथके प्रणाम करते ही वह रो पडी।

हारानने धीमे कण्ठसे मना किया—"माँ, चुप रहो।"

उपेन्द्रनाथ लज्जा और दुःखसे एक किनारे बैठ गये।

सतीश इधर-उधर ताक, मुँहपर गम्भीरता लानेकी यथासाध्य कोशिश कर उसी काठकी सन्दूकपर जा बैठा।

बहू कुछ देर खड़ी रहकर सतीशकी ओर आँखोंकी बिजली बरसाती हुई बाहर चली गयी, मानों साफ-साफ शब्दोंमें बता गयी कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह अच्छा नहीं है।

१४

सतीशने निश्चय किया कि वह डाक्टरी पढ़ना नहीं छोड़ेगा। इसीसे दूसरे दिन संध्या समय बिना किसीसे कुछ कहे-सुने बिहारीको साथ ले, अपने उसी घरमें आ डटा, जिसे छोड़कर वह देश लौट गया था। वह मकान उस समय भी खाली ही पड़ा था, मकान मालिकसे ६ महीनेके लिये लिखा लिया और पासके

हिन्दू-आश्रमसे एक रसोइयेको बुलाकर रख लिया और खुश होकर बाहर निकल पड़ा। विहारीसे बोला—"हम लोग कल ही चले आयेंगे क्यों विहारी !"

विहारीने सम्मति दे दी। राह चलते-चलते सतीशने कहा—विहारी, काम अच्छा नहीं हुआ। चाहे जो हो मेरे लिये उसने बहुत किया है, इसके सिवा एक तरहसे देखा, तो मेरे ही कारण उस बेचारीकी उस मेसको नौकरी गयी एक बार खबर लेनी चाहिये।"

विहारीने समझ लिया कि किसकी बात हो रही है—वह चुप हो रहा।

सतीश कहने लगा—"चाहे कोई हो, रास्तेका भीखमंगा भी यदि तकलीफमें हो, तो उसकी खबर लेनी चाहिये, नहीं तो मनुष्य-जन्म ही वृथा है। लेकिन मैं उसके घर न जाऊंगा और गलीमें भी नहीं, मोड़पर खड़ा रहूंगा, तू एक बार जाकर खबर ले आना, कि कष्टमें पड़ी है या नहीं ? कष्टमें तो जरूर ही पड़ी है, यह मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। अतः किसी ...ने उसे कुछ दे आना चाहिये।" विहारी चुपचाप पीछे-चलने लगा। सतीशने कहा—मुझे वह सब बातें न ...येगी, लेकिन तुझसे कुछ न छिपायेगी। समझना तो है न, ...!" पर विहारी कुछ न बोला। सावित्रीकी गलीके मोड़-... आकर सतीश ठहर गया। बोला—'देखना ज्यादा देर न करना।"

बिहारी गलीमें गया, सतीश पास ही चहलकदमी करने लगा। दूर हट जानेकी हिम्मत न हुई। शायद नासमझ बिहारी उसे न देख पाकर और कहीं चला जाये।

दस ही मिनट बाद बिहारी लौटकर बोला—"वह नहीं है!"

सतीशने उत्सुक होकर पूछा—"कब लौटेगी?" बिहारी बोला—"वह अब न लौटेगी। दो महीने हो गये, एक दिन भी नहीं आयी।"

सतीश गैसके खम्भेके सहारे खड़ा होकर भीषण कण्ठसे बोला—"झूठी बात है। तेरे साथ धोखा किया गया है!" बिहारीने दृढ़तासे सिर हिलाकर कहा—"नहीं बाबूजी, यह बात नहीं है। सचमुच ही अब वह वहाँ नहीं आती। घर छोड़कर चली गयी है।"

सतीश—"उसका माल-असबाब?"

बिहारी—"पड़ा है। और वैसा माल-असबाब ही कौनसा है कि जिसके लिये बड़ा मोह होगा?"

सतीश झुंझलाकर कहा—"पर वह तो गरीब औरत ही है, जो कुछ भी असबाब उसका था, उसकी क्या वह परवाह नहीं करती? तू तो बना-बनाया बेवकूफ है किसीसे सुनकर चला आया, कि अब वह नहीं आयेगी। भला बिहारी, यह कभी सम्भव है. कि वह लापता हो जाये और कोई उसकी खोज तक न करे? मैं पुलिसमें रिपोर्ट करूंगा।"

बिहारी चुपचाप खड़ा रहा।

सतीशने कहा—"मोक्षदा क्या कहती है ? क्या उसे मालूम नहीं है ? मैं नहीं मानता। वह जरूर जानती है, मैं अभी उसके पास जाता हूं।"

बिहारी व्यस्त होकर बोला—"आप न जाइये, बाबू साहब।"

"क्यों न जाऊं ? वे लोग छिपाते क्यों हैं ? मैं क्या किसीको खा जाऊंगा, कि मुझसे यह लुकाछिपी हो रही है ? मैं तुझसे कहे देता हूं कि चाहे जैसे हो, मैं उसका पता जरूर लगाऊंगा।

बिहारी डर गया। बोला—"इसमें उसकी मौसीका दोष नहीं है, बाबूजी, सावित्री अपनी खुशीसे घर छोड़कर चली गयी है, झगड़ा करके चली गयी है और किसीसे कुछ कह भी नहीं गयी है।"

सतीशने धमकाया—"फिर कहता है, कुछ कह नहीं गयी ? जरूर कह गयी है, अवश्य ही अपना पता बता गयी है।"

बिहारीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं बता गयी है। लेकिन है वह शहरमें ही।"

"कहां किस जगह है ? गधेकी तरह चुपचाप देखता क्या ? कहता क्यों नहीं, कि क्या हुआ है ?"

बिहारीने कुछ देर स्थिर रहनेके बाद कुछ सोचकर कहा—ापके मनमें दुःख होगा इसीसे, नहीं तो सब बातें सभी जानते —मैं भी जानता हूं।"

सतीश अधीर हो उठा, बोला—"कहता क्यों नहीं ? क्या जानता है।"

बिहारी फिर चुप रह गया। सतीश जोरसे चीख उठा, "हरामजादे, तेरे पैर पड़ता हूं, जल्द बता !

बिहारीने फौरन जमीनमें सिर रखकर जूतेकी धूल माथेपर लगाकर सिसकते हुए कहा—"बाबू, आपने मुझे नरकमें ढकेल दिया। जरा आड़मे चलिये, कहता हूं · · " कहकर अन्धेरी गलीमें जाकर एक किनारे खड़ा हो गया। सतीशने सामने खड़े होकर पूछा—' क्या ?"

बिहारीने सूखे कंठको गीला करके कहा—"सावित्रीकी मौसी समझती है, कि वह आपके पास है। लेकिन मैं जानता हूं, कि यह बात नहीं है।"

सतीश अधीर होकर बोला—"तू बड़ा पंडित है, यह मैं भी जानता हूं, आगे बता।"

"सब्र कीजिये, बाबूजी।" कहकर बिहारी एक बार और अच्छी तरह गला साफ करके बोला—"मुझे पूरी आशा हो रही है कि "

"क्या आशा हो रही है ?"

बिहारीने विवश होकर कह डाला—"वह वहीं गयी है, उन्हीं विपिन बाबूके पास · · · "

"किसके पास ? विपिनके · · "

"हाँ, बाबूजी, वहीं हॅय-हॅय !! वहां न बैठिये, नहाना पड़ेगा। दुनिया भरके लोग वहां····"

सतीशने बात सुनी-अनसुनी कर दी। उस ओरकी दीवार-

पर पीठ लगा सोया हो सूखे कण्ठसे पूछा—"तब उसकी मौसीने कैसे समझा, कि वह मेरे पास है ?"

विहारीने कहा—"सावित्रीने उस दिन विपिन बाबूको अपमानित करके निकाल दिया, साफ शब्दोंमें कह दिया, कि वह सतीश बाबूके सिवा और किसीके पास न जायेगी घरके लोगोंने आड़मेंसे झगड़ा सुना था।

सतीश उठ खड़ा हुआ। जैसे-तैसे होश ज़रा ठिकाने लाकर पूछा—"फिर तूने कैसे जाना, कि वह विपिन बाबूके पास गयी है ?"

विहारी कुछ न बोला।

सतीशने कहा—"बोल।"

विहारीने फिर एक बार इधर-उधर किया, सावित्रीके सामने उसने पौरुषका जो घमंड किया था, उसे भी याद किया। अन्तमें फिर एक बार थूक घोंटकर बोल उठा—"मैं अपनी आँखों देख आया हूं।" सतीश चुपचाप सुनने लगा। विहारी बोला—"हमलोगोंने जिस दिन घर बदला था, उसके दूसरे दिन दोपहरको . आया था। उस समय विपिन बाबू सावित्रीके बिस्तरपर - हुए थे।"

सतीशने बड़े जोरसे धमकाकर कहा—'झूठी बात है !"

विहारी चौंक उठा, बोला—"नहीं बाबूजी, सच कहता हूं।"

सतीशने उसके चेहरेपर तीव्र दृष्टि डाल, कुछ देर चुप रहकर पूछा—'सावित्री कहाँ थी ?'

"सावित्री उसी कमरेमें थी। बाहर निकल, चटाई बिछाकर उसने मुझे बैठाया। पूछने लगी, 'बाबू लोग नाराज़ हुए या नहीं? हम लोगोंने डेरा क्यों बदला?' ये ही सब बातें।"

"उसके बाद?"

"मैं खिसियाकर चला आया। उसी दिनसे वह उस बाबूके साथ चली गयी।"

"इतने दिन क्यों नहीं कहा?"

बिहारीने कुछ जवाब न दिया।

सतीशने पूछा,—"तूने अपनी आँखों देखा है या किसीसे सुना है?"

"नहीं बाबूजी, मैंने अपनी आँखों देखा है। अच्छी तरह आँखें खोलकर देखा है।"

"मेरे पैर छूकर कसम खा, अपनी आँखोंसे देखा है? देख, याद रखना, ब्राह्मणके पैर छूता है।"

बिहारीने तुरत झुककर सतीशके पैर छूकर कहा—"इस बातका स्मरण दिन-रात मेरे मनमें बना रहता है। मेरी अपनी आँखों देखी बात है।"

सतीश फिर कुछ देर चुप रहकर बोला,—"अच्छा, घर जा। उपेन्द्र भैयासे कहना, कि आज रातको मैं भवानीपुर जाऊँगा, लौट न सकूँगा।"

बिहारीको विश्वास नहीं हुआ, वह रोने लगा।

सतीश चकित होकर बोला—"यह क्या, रोता क्यों है?"

बिहारीने आँखें पोंछते हुए कहा—"बाबूजी, मैं आपके लड़केके समान हूं, मुझसे कुछ भी न छिपाइये। मैं भी साथ चलूँगा।"

सतीशने पूछा—"क्या?"

बिहारीने कहा—"बूढा जरूर हो गया हूं, लेकिन जातका अहीर हूं। एक लाठी हाथमें पानेपर पाँच छः का मुकाबिला आसानीसे कर सकता हूं। मैं मौकेपर जूझ सकता हू और आवश्यकता पडनेपर जानतक लड़ा सकता हूं।"

सतीशने शान्त भावसे कहा—"मैं क्या दंगा-फसाद करने जा रहा हूं?"

बिहारी बोला—"तो लौट जाऊं?"

"जा"—कहकर सतीश चला गया। बिहारी आखें पोंछता हुआ कुछ देरतक खडा रहकर चला गया।

बिहारीके दूसरी ओर जाते ही सतीश सीधे मैदानकी ओर तेजीसे चल पडा। निश्चय नहीं था कि कहां जायेगा लेकिन उसे ऐसा जान पडता था, मानों शीघ्र ही कहीं जाना होगा। इस बातको वह अच्छी तरह अनुभव कर रहा था कि उसके चेहरेपर एक भयङ्कर परिवर्त्तन हो गया है और वह परिवर्त्तन किसी परिचितको दिखाना उचित नहीं, क्योकि उसे देखते ही सम्भव है, वह डर जाये।

सुनसान मैदानमें वृक्षके नीचे एक बेञ्च पडी हुई थी। सतीश उसपर जाकर बैठ गया। वहांकी निर्जनताने उसे बहुत

कुछ शान्ति दी। उसपर विपत्तियोंका पहाड़ टूट पड़ा है, यह उसने दृढ़ताके साथ मान लिया था। अन्धेरेमें पेड़के नीचे बैठकर वह छुटकारेका उपाय खोजने लगा। पहले ही उसके मुंहसे निकला—करना क्या चाहिये ? यह प्रश्न कुछ देरतक अर्थहीन प्रलापकी तरह उसके कानोंमे चक्कर काटता रहा। अन्तमें उत्तर मिला, कुछ भी नहीं किया जा सकता।

पूछा—सावित्रीने ऐसा काम क्यों किया ?

जवाब मिला—उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिसके लिये उसके मत्थे नये सिरेसे दोष मढ़ा जाये।

प्रश्न—ऐसी भयङ्कर विश्वासघातकता उसने क्यों की ?

उत्तर—पहले यह बताओ कि उसने तुम्हें विश्वास ही कौनसा दिया था, जिसका उसने हनन किया है ?

सतीश कुछ बोल न सका। सचमुच उसने कोई मिथ्या आशा नहीं दिलायी थी। एक दिनके लिये भी उसने सतीशके साथ धोके-धड़ीका व्यवहार नहीं किया, कभी प्रलोभनतक नहीं दिया; बल्कि वार-वार सावधान किया है, हित-कामना की है और बहनसे भी अधिक स्नेह और यत्न किया है। उसने उस रातकी बात स्मरण की। रोगीके प्रति दया और हितकामनाका भाव हृदयमें होनेपर भी जिस प्रकार वैद्यको निष्ठुर कर्म करना पड़ता है, उसी प्रकार सावित्रीने निष्ठुर होकर उसे घरसे बाहर निकाल कर उसकी रक्षा की थी। कौन ऐसा कर सकता था ? कौन अपनी छातीपर वज्र रोककर उसे अक्षत रख सकता था ?

सतीशकी आँखें डबडबा आयीं, किन्तु उसका यह संशय किसी तरह दूर न हो सका कि इन प्रश्नोत्तरोंमें उमसे कहीं कोई ... ज़रूर हो रही है।

उसने फिर सवाल किया—परन्तु मैंने तो उसे प्रेमकी दृष्टिसे देखा है ?

उत्तर मिला—क्यों किया ? क्यों जान-बूझकर दलदलमें फँसने गये ?

प्रश्न किया—यह मालूम नहीं। कमल लेने जानेपर भी तो कीचड़ लगता है।

उत्तर मिला—यह तो पुरानी बात है— अब काममें नहीं आती। कमल लेकर घर लौटते समय मनुष्य कीचड़ धो लेता है। पर तुम्हारा कमल क्या है ? और यह कीचड़ तुम कहाँ धोकर घर जाते ?

मान लो, घर न लौटता।

उत्तर मिला—राम ! राम !! ऐसी बात जबानपर भी न लाना।

इसके बाद कुछ देरतक वह स्तब्ध हो सितारोंसे भरे काले आकाशकी ओर देखता रहा, फिर सहसा बोल उठा—मैंने तो उसकी आशा छोड़ दी रखी थी। उसे पाना भी नहीं चाहता लेकिन उसने मेरा इस प्रकार अपमान क्यों किया ? एक बार भी कुछ पूछा क्यों नहीं ? किस दुःखसे वह यह काम कर गयी ? रुपयेके लोभसे किया है, यह बात तो किसी तरह ध्यानमें नहीं आती। विपिन सरीखे अनाचारीको—शराबीको

ह मन-ही-मन प्यार करती थी, यह माननेको हृदय गवाही नहीं
ता। फिर क्यों ?

गङ्गाके ऊपरसे आने वाली ठंडी हवासे सतीशको जाड़ा लगने
लगा। ऊनी चादरसे शरीरको अच्छी तरह ढककर वह आँखें
बन्द कर वेञ्चपर लेट गया। लेटते ही उसके सामने सावित्रीका
मुखड़ा उज्ज्वल होकर खिल उठा! कहाँ? पतिता होनेका तो कोई
भी चिह्न इस मुखड़ेमें नहीं है! गर्वसे दीप्त, विवेकसे शान्त,
स्नेहसे स्निग्ध, परिणत यौवनके भारसे गंभीर, साथ ही रससे
चंचल— वह मुखड़ा, वह हँसी, वह दृष्टि, वह संयत परिहास,
सबसे बढ़कर उसकी वह अकृत्रिम सेवा। एक साथ ये सब चीजें
उसने अपनी जिन्दगीमें कभी देखी नहीं थीं। राखसे ढकी
हुई आगकी तरह उसके आवरणको लेकर खेलवाड़ करने
जानेपर जो आग भड़क उठी, उसकी ज्वालासे कैसे कहाँ
भागकर वह जान बचाये? जान बचाकर ही क्या करेगा?
उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। इन आँसुओंको
उसने रोकना न चाहा—इन आँसुओंको पोंछनेकी भी उसे इच्छा
न हुई। आसुओंमें इतनी मिठास है, इतनी सरसता है, इसका
आज पहले पहल अनुभव कर वह सुखी हुआ और जिसके कारण
इतने बड़े सुखका आस्वादन जीवनमें आज पहली बार करनेका
उसे अवसर मिला, उसके प्रति दोनों हाथ जोड़कर नक्षत्रभूषित,
दिगन्त विस्तृत आकाशकी ओर दोनों सजल नेत्रोंको स्थापित कर
उसने बारम्बार नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यों न हो, लेकिन इस बातपर वह पूर्ण विश्वास करता था कि भगवान हैं, उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, छोटे-बड़े सबको उसके सामने एक दिन जवाब देना पड़ेगा। आँखें पोंछकर वह उठ बैठा, मन-ही-मन बोला,— "भगवन्, किसके हाथ तुम कब क्या भेज देते हो, यह कोई कह नहीं सकता। आज तुम्हारी ही कृपासे सावित्री दाता है, मैं भिक्षुक हूं। अतएव वह भली है या बुरी, इसके फैसलेका भार और चाहे जिसे सौंपो, पर परमात्मन्! इस विचारका भार इस भिक्षुकपर न देना। मेरे हृदयसे सम्पूर्ण ज्वाला, सम्पूर्ण मिठास दूर कर दो—जो व्यक्ति दाताकी ही भाँति चुपचाप आँखोंकी ओट हो गया है, उसके प्रति मैं कृतघ्न न बनूं!"

सतीश फिर एक बार बेंचपर सो गया। किलेकी घड़ीमें दो बज गये। उसके थके हुए नेत्र धीरे-धीरे मुँद गये। झपकियाँ लेते हुए उसने कहा—"नहीं, किसी तरह नहीं। मैं कभी तुम्हारा विचार करने न बैठूंगा। आजसे केवल प्रार्थना करूँगा कि अच्छी रहो, सुखसे रहो।" इसके बाद वह सो गया।

उधर बैरिस्टर साहबके घरमें सन्ध्याके बाद, बैठकखानेमें सरोजिनी, ज्योतिष, उपेन्द्रनाथ तथा और भी एक नवयुवक बैठे थे। इनकी दाढ़ी-मोछें घुटी हुई थीं—शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ट था। इनका नाम शशांकमोहन है। ये भी विलायत हो आये हैं, अतः पूरे साहब हैं। थोड़े दिनसे सरोजिनीकी ओर झुके हैं और प्रेम प्रकट करनेका प्रयास पूर्ण रूपसे करते हैं वह

प्रयास कहाँतक सफलताकी ओर अग्रसर हो रहा है, यह विधाता ही जानता था। आज सतीशकी चर्चा चली थी। उपेन्द्रने उसको असाधारण शारीरिक बल और अद्भुत साहस-का परिचय देकर उसकी अपूर्व संगीत-साधनाका बखान करना शुरू किया। पास ही सोफेपर बैठी सरोजिनी बड़ी तन्मयतासे वे बातें सुन रही थी। इसी समय बिहारीने बैठकमें आकर सतीशके भवानीपुर चले जानेकी सूचना दी।

उपेन्द्रनाथने कुछ विस्मित होकर पूछा—"वहाँ उसका कौन रहता है?'

बिहारी संक्षेपमें 'मालूम नहीं' कहकर चला गया। सब लोग सतीशकी ही बाट देख रहे थे, इसी लिये सभी लोग निराश हुए। सरोजिनी अबतक झुककर, हाथोंपर गाल रखे बैठी थी। इस सूचनासे वह सीधी हो बैठी, एक लम्बी साँस भरकर बोल उठी—"तो अब क्या होगा?'

ज्योतिष उसकी ओर देख स्नेहपूर्वक हँसे?

परन्तु केवल शशांकमोहन निराश न हुए; बल्कि प्रसन्न होकर उन्होंने प्रस्ताव किया कि अब पतवार सरोजिनीके ही हाथमें दी जाये। सङ्गीतसुधाका रसास्वादन करनेमें वे कितने पटु थे, यह वे स्वयं जानते थे। हाँ, सरोजिनीके आपत्ति प्रकट करते ही वे बोल बैठे—"मैं तो कहता हूं कि पुरुषोंका गीत गाना ही अनुचित है। स्वभावतः उनका गला मोटा और भारी होता है; अतएव वे चाहे जितनी भी उत्तम शिक्षा पायें,

जितनी भी साधना करें, उनके गानमें वह लालित्य और माधुर्य आ ही नहीं सकता, जो स्त्रियोंके कण्ठस्वरमे होता है।"

यद्यपि और किसीने इस बातका प्रतिवाद नहीं किया, तथापि सरोजिनीसे चुप न रहा गया, वह बोली—"आपको भलेही पुरुषकण्ठमें माधुर्य न मिलता हो, परन्तु स्वरका मोटा होना कोई दोष नहीं है, यदि यही बात होती, तो हार्मोनियम और पियानोके शुरुके पर्दे मोटे और भारी क्यों बनते और लोग ही क्यों उन्हें खरीदते ?"

शशांकमोहनके पास इस बातका जवाब न था। फिर भी वे अपने गोरे मुंहको जरा लालकर न मालूम क्या कहने जा रहे थे, कि सरोजिनी एकाएक उठ खड़ी हुई, बोली—"मांसे कह आऊं—वह भोजनकी थाली लिये बैठी होगीं।"

उपेन्द्रनाथने चौंककर कहा—"ओ हो, मालूम होता है, उसका खाना-पीना मांजीके ही चौकेमे होता है ? शैतान।"

उपेन्द्रनाथके कथनमें आन्तरिक स्नेहके सिवा और कोई बात न थी और सतीश यदि उन्हें विशेष प्रिय न होता, तो उसे ऐसा शब्द निकाल भी न सकते, इस बातको सरोजिनी सम्पूर्ण रूपसे समझ गयी, हंसकर बोली—"यह आपकी जबरदस्ती है। उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचिके साथ न मिले, तो दोष आपका है, उनका नहीं। अच्छा, मांको कह आती हूं।" कहकर सरोजिनी तेजीसे अन्दर चली गयी।

उसके जाते ही शशांकमोहनने उपेन्द्रनाथकी ओर घूमकर कहा—"मेरी समझमें आपके मित्र महाशय सनातनी हैं।"

उपेन्द्रनाथने मुस्कुराकर कहा—ऐसा-वैसा नहीं, कट्टर सनातनी है। शायद पूजा-पाठ भी करता है।'

सतीश बीच-बीचमें छिपकर शराब पीता था यह वे नहीं जानते थे। शायद स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पनातक नहीं कर सकते थे।

शशांकमोहनने पूछा,—"वे करते क्या हैं?"

उपेन्द्रनाथ—"कुछ भी नहीं, और किसीको आशा भी नहीं है, कि किसी दिन वह कुछ करेगा।"

इस सम्वादसे शशांकमोहनके मनपरसे एक बोझ-सा उतर गया। वे प्रसन्न हो, हँसकर बोले,—"इसीपर?"

ज्योतिष अबतक चुप होकर सुन रहे थे। उपेन्द्रको लक्ष्य करके बोले—"उपेन्द्र, मुझे यह बात ठीक न जँची। शारीरिक उत्कर्षका क्या कुछ भी मूल्य नहीं है? इसके सिवा उनकी गानविद्यापर तो मैं एकदम मोहित हो गया हूं। जो कुछ उन्होंने किया है, उसके योग्य सम्मान या आदर यदि हमारे देशमें उन्हें न मिले तो निस्सन्देह यह दुःखकी बात है, पर इसमें दोष हमलोगोंका ही है—उनका नहीं।"

जिसे मुकदमेबाजीके कागजातकी छानबीन न करनी पड़े, जिसे अटर्नीके साथ ले-दे और उठा पटक न करनी पड़े, जिसे हाकिमोंकी फटकार न सुननी पड़े, यदि वह भी इन ललित

जितनी भी साधना करें, उनके गानमें वह लालित्य और माधुर्य आ ही नहीं सकता, जो स्त्रियोंके कण्ठस्वरमे होता है।"

यद्यपि और किसीने इस बातका प्रतिवाद नहीं किया, तथापि सरोजिनीसे चुप न रहा गया, वह बोली—"आपको भलेही पुरुषकण्ठमें माधुर्य न मिलता हो; परन्तु स्वरका मोटा होना कोई दोप नहीं है, यदि यही बात होती, तो हार्मोनियम और पियानोके शुरुके पर्दे मोटे और भारी क्यों बनते और लोग ही क्यों उन्हें खरीदते ?"

शशांकमोहनके पास इस बातका जवाब न था। फिर भी वे अपने गोरे मुंहको जरा लालकर न मालूम क्या कहने जा रहे थे, कि सरोजिनो एकाएक उठ खड़ी हुई, बोली—"मांसे कह आऊं—वह भोजनकी थाली लिये बैठी होगीं।"

उपेन्द्रनाथने चौंककर कहा—"ओ हो, मालूम होता है, उसका खाना-पीना मांजीके ही चौकेमे होता है ? शैतान।"

उपेन्द्रनाथके कथनमें आन्तरिक स्नेहके सिवा और कोई बात न थी और सतीश यदि उन्हें विशेष प्रिय न होता, तो मुंहसे ऐसा शब्द निकाल भी न सकते, इस बातको सरोजिनी सम्पूर्ण रूपसे समझ गयी, हंसकर बोली—"यह आपकी जबरदस्ती है। उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचिके साथ न मिले, तो दोप आपका है, उनका नहीं। अच्छा, मांको कह आती हूं।" कहकर सरोजिनी तेजीसे अन्दर चली गयी।

उसके जाते ही शशांकमोहनने उपेन्द्रनाथकी ओर घूमकर कहा—"मेरी समझमें आपके मित्र महाशय सनातनी हैं।"

उपेन्द्रनाथने मुस्कुराकर कहा—ऐसा-वेसा नहीं, कट्टर सनातनी है। शायद पूजा-पाठ भी करता है।'

सतीश वीच-वीचमे छिपकर शराव पीता था यह वे नहीं जानते थे। शायद स्वप्नमे भी इस वातकी कल्पनातक नहीं कर सकते थे।

शशाकमोहनने पूछा,—"वे करते क्या हैं?"

उपेन्द्रनाथ—"कुछ भी नहीं, और किसीको आशा भी नहीं है, कि किसी दिन वह कुछ करेगा।"

इस सम्वादसे शशाकमोहनके मनपरसे एक वोझ-सा उतर गया। वे प्रसन्न हो, हँसकर वोले,—"इसीपर?"

ज्योतिष अवतक चुप होकर सुन रहे थे। उपेन्द्रको लक्ष्य करके वोले—"उपेन्द्र, मुझे यह वात ठीक न जँची। शारीरिक उत्कर्षका क्या कुछ भी मूल्य नहीं है? इसके सिवा उनकी गानविद्यापर तो मैं एकदम मोहित हो गया हूं। जो कुछ उन्होंने किया है, उसके योग्य सम्मान या आदर यदि हमारे देशमे उन्हें न मिले तो निःसन्देह यह दुःखकी वात है, पर इसमें दोष हमलोगोका ही है—उनका नहीं।"

जिसे मुकदमेवाजीके कागजातकी छानवीन न करनी पड़े, जिसे अटर्नीके साथ ले-दे और उठा पटक न करनी पडे, जिसे हाकिमोंकी फटकार न सुननी पड़े, यदि वह भी इन ललित

कलाओंकी ओर ध्यान न दे, तब तो यह दुनियादारी बिलकुल नीरस दूकानदारी बन जाये। भई, सच तो यह है कि मुझे तुम्हारे इन मित्र महोदयको देखकर रश्क होता है। हां, इनके पिताकी आय कितनी है?"

इसी समय सरोजिनीने चुपचाप कमरेमें आकर अपने भाईकी कुरसीके सहारे खड़ी होकर पूछा "किसकी भैया?"

ज्योतिषने कहा—"सतीशके पिताकी।"

उपेन्द्रने कहा—'ठीक मालूम नहीं, पर मैं समझता हूं कि दो लाखसे कम न होगी।"

ज्योतिष दोनों आंखें फाड़कर बोल उठे--"दो लाख? तब तो राजा जान पड़ता है!"

उपेन्द्रनाथ—"नहीं, राजा नहीं—हां, एक पुराने बड़े जमींदार हैं। उसपर बुड्ढेने अपनी जिन्दगीमें बहुत बढ़ायी भी है।"

ज्योतिष कुर्सीपर लेट गये, एक लम्बी सांस लेकर बोले—"एकदमसे सौभाग्यदेवीका वर-पुत्र ही है? स्वास्थ्य, शक्ति, रूप ऐश्वर्य— मनुष्य जो कुछ चाहता है, सब एक साथ!"

उपेन्द्रनाथ हँसने लगे। अन्तमें बोले—"एक भयंकर दोष भी। दूसरेकी मुसीबतको जान बूझकर अपने सिर ले लेता है। स... डर लगता है कि कहीं किसीकी विपत्ति मोल लेकर जान गंवा दे। इसके सिवा तुम जो कुछ कहते हो, सभी ठीक है?"

ज्योतिष सीधे बैठकर बोले,—'जान न गँवा बैठे? इसके क्या मानी?'

उपेन्द्रनाथने कहा—"हां, असंभव नहीं है। पहले ऐसा कुछ काण्ड कर भी चुका है। क्रोध उसके शरीरमे जितना ही अधिक है, प्राणोंको ममता उतनी ही कम है। इस कलियुगमें रहकर भी जिसकी धारणा अन्याय, अत्याचारके सम्बन्धमें सत्ययुगकी सी होती है, और क्रुद्ध होनेपर जिसे भले बुरेका ज्ञान नहीं रहता, उसके जीवित रहने न रहनेपर मैं पूरा भरोसा नहीं रखता। सह सकना भी एक तरहकी क्षमता है। बिना बुलाये सहायता करनेका लोभ संभाल सकना भी कभी-कभी जरूरी होता है, इन बातोंको तो वह समझता ही नहीं है। वह मानो विलायतका पुराने जमानेका नाईट है, अब यहाँ बङ्गालमें आकर जन्मा है।

ज्योतिषने क्षणभर चुप रह हँसकर कहा—"चाहे जो कहो, लेकिन सुनकर श्रद्धा होती है।"

उपेन्द्रनाथने कहा—"और नहीं भी होती। संसारमें रहकर बहुतेरी छोटी-मोटी चीजोंकी ओरसे नजर हटा लेनी पड़ती है, अभीतक उसने यह सीखाही नहीं है। कभी सीख सकेगा या नहीं, पता नहीं यदि न सीख सका तो अन्तिम फल अच्छा न होगा-न अपना और न उसके कुटुम्ब या इष्ट-मित्रोंका।"

ज्योतिषने कहा—"तुम तो उनके अपने हो,—मित्र हो, तुम्हीं क्यों नहीं सिखाते?"

उपेन्द्रनाथके मुँह से हँसी निकल पड़ी, बोले—"मैं उसका मित्र जरूर हूं, लेकिन इस शिक्षाका भार ऐसे मित्रपर नहीं है।

जो सब मित्रोंसे बड़ा मित्र होगा, जो अन्य सभी इष्ट-मित्रोंसे बढ़कर अपना होगा, या तो वही उसे सिखा सकेगा अथवा वह सदा अशिक्षित ही रह जायेगा।"

सरोजिनी अबतक चुप बैठी सुन रही थी, अब मुँह फेरकर उसने जरा हँसीको छिपानेकी कोशिश की।

उपेन्द्रनाथने उकताकर कहा - "सतीशकी चर्चा आज यहीं तक। मुझे अब उठना पड़ेगा, दो पत्र लिखने हैं।"

ज्योतिषको भी जरूरी कागज-पत्र देखने थे, उन्हें भी बैठनेकी फुर्सत न थी। वे भी उठनेको तैयार थे। लेकिन सबसे पहले सरोजिनी ही उठ खड़ी हुई। उपेन्द्रनाथसे वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। किसीको विदाईका अभिवादन भी न किया—चुपचाप अन्यमनस्क सी हो, धीरे-धीरे बाहर चली गयी। आजकी सभा जैसी जमनेकी बात थी वैसी जम तो सकी ही नहीं, बल्कि भङ्ग हुई, उससे भी कहीं बढ़कर बुरी तरहसे।

उपेन्द्रनाथ न तो कुछ जानते थे और न वे कुछ जान ही के।

१५

तीक्ष्ण बुद्धिवाली किरणमयीने पतिकी बीमारीके समय कई दिनोंतक उपेन्द्रनाथके संग-साथ रहनेका मौका पाकर उन्हें पहचान लिया। इससे उनके द्वारा उसको न केवल स्वार्थ

हानिकी दुःखकर आशङ्का ही दूर हुई, बल्कि इस अपरिचितके लिये एक गम्भीर श्रद्धाके भावसे उसका हृदय सजल जलदका-सा बन गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नहीं था। ऐसे आदमीके संसर्गमें आनेकी किसी दिन उसने कल्पना भी न की थी। इसीसे इस थोड़े समयके परिचय मात्रसे उसने भविष्यका सारा सुख-दुःख इन्हींके हाथोंमें बेखटके सौंप दिया और निर्भय होकर दूसरेपर निर्भर करना क्या वस्तु है, इस बातका ज्ञान होते ही उसके बंधे हुए प्राणोंको मानों खुलकर मुक्त प्रकाश देखनेका एक अपूर्व अवसर मिला!

उपेद्रनाथ सवेरेसे राततक रहकर मौतके किनारे पहुंचे हुए मित्रकी सेवा करते रहे। इस सेवाका कुछ मूल्य न था। कारण, हारानके जीनेकी आशा बिल्कुल न थी—किन्तु इस सेवाने किरणमयीकी आंखोंमें अपने स्वामीकी उन मुट्ठीभर सूखी हड्डियोंको भी मूल्यवान् कर दिया। इस अर्द्धमृत देहपर ही वह बेतरह लुब्ध हो उठी। उसके आचार-व्यवहारोंमें यह होनेवाले इस आकस्मिक परिवर्तनको मृत्युके निकट पहुंचे हुए हारान बाबूने भी देखा। लड़कपनमे किरण पराये घरमे पाली-पोसी गयी और लडकपनमे ही उससे भी अधिक पराये स्वामीके घरमें आयी थी। सास अघोरमयीने कभी उसका लाड-प्यार नहीं किया, बल्कि जहांतक हो सका, उसे सताती रही। पतिने भी उसपर कभी प्रेम प्रकट नहीं किया। वे दिनमे स्कूलमे पढ़ाते और रातको स्वयं अध्ययन करते थे और अपनी

स्त्रीको भी पढ़ाया करते थे । विद्या-प्राप्तिके नशेने उन्हें ऐसा दबा लिया था, कि दोनोंमें गुरु-शिष्याके कठोर सम्बन्धके सिवा पति-पत्नीके मधुर सम्बन्धको विकसित होने या फूलने-फलने-का कुछ भी अवकाश न मिला। इसी प्रकार वह परमा सुन्दरी और तीक्ष्ण बुद्धवाली रमणी बालपन बिताकर परिपूर्ण यौवनके मध्यमें आ पहुंची थी—इसी प्रकार संसारके सौन्दर्य-माधुर्यसे निर्वासित होकर शुष्क बन गयी थी और इसी प्रकार स्नेह और प्रेमसे वञ्चित होकर ही वह नारीके श्रेष्ठ धर्मसे भी हाथ धो लेनेको तैयार हो बैठी थी । अघोरमयीको सब कुछ मालूम था । वह यह भी समझती थी कि उसकी सुन्दरी पतोहू आज-कल सतीत्वकी मर्यादाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगी है । किन्तु पुत्र मृत्यु-शय्यापर पड़ा था, विकट दुःखके दिन समीप थे, शायद इसीसे वह वधूके बेढंगे आचार-व्यवहारोंकी ओरसे बहुत अंशमें आँखें मूंद बैठी थी । जो डाक्टर हारानकी चिकित्सा करता था, वह किस आशासे दाम लिये बिना दवा-दारू और पथ्य देता था और क्यों ..के घरका प्रायः आधा खर्च भी देता था, यह उससे छिपा था, परन्तु बीमार लड़केकी चिकित्साके सामने और अपने ... एवं अभावोंके आगे किसी अन्यायको बड़े रूपमें ...का साहस उसमें न था, न शिक्षा ही थी। खासकर वह तोहू चाहती भी न थी । उसे यह विश्वास हो गया कि उपेन्द्र भो धीरे-धीरे इस जालमें फँस रहा है। उपेन्द्रके

मुक्तहस्त होकर रुपये खर्च करने तथा निरन्तर सेवा करनेके विषय मे वह सोचती थी कि उपेन्द्रका उद्देश्य बाल-बन्धुत्वकी सीमाको पार कर चुपकेसे एक और ही जगह मूल विस्तार कर रहा है। पर इसमे उसे आपत्ति भी न थी। कलसे उपेन्द्र क्यों नहीं आया, यही वात अघोरमयी अपने कमरेके बाहर बैठकर एक मैली-कुचैली फटी हुई रजाई ओढ़े सोच रही थी।

शीतकालका सूर्य उस समय भी डूबा न था, किन्तु इस घरके भीतरी भागमे, अन्धकारकी छाया पड़ चुकी थी। सूर्य भगवान् कब उगते और कब डूबते हैं, अच्छे दिनोंमे भी इस घरके लोग इसकी खबर नहीं रखते, आजकल दु:खके दिनोंमें तो उसके साथ प्राय: सारा सम्बन्ध ही विच्छिन्न हो गया था।

अघोरमयीने पुकारा—"बहू, दिया-बत्ती जलाकर एक बार यहाँ तो आना, कुछ कहना है।"

किरणमयी उसी कमरेमे काम कर रही थी, बोली—"माँ अभी शाम नहीं हुई, तुम्हारा बिछौना बिछाकर आती हूं।"

अघोरमयीने कहा—"क्या ? मेरा बिछौना ? वह तो सोनेके समय मैं आप ही बिछा लूंगी। नहीं-नहीं, तुम जाओ बहू दिये जला आओ, बैठो, जरा दम तो ले लो। दिन-रात मेहनत करते-करते तुम्हारी देह आधी रह गयी, उस ओर भी निगाह रखनी चाहिये।" यह कह और एक लम्बी साँस भरकर वह चुप हो रही। थोड़ी देर बाद जब बहू पास आकर बैठने लगी तो बोली—"पहले चिराग-बत्ती ..."

बहूने कुछ ऊबकर कहा,—"माँ तुम क्यो घबरा रही हो? शाम होनेमें अब भी बहुत देर है।"

अघोरमयीने कहा—"देर है तो होने दो, नीचे तो अन्धेरा हो गया है, जरा दिन रहते ही सीढ़ीका दीपक जला देना ठीक है। शायद अभी उपेन्द्र आ जाये, कलसे वह नहीं आया। क्यों बहू, अभी तक तुमने हाथ-मुंह नहीं धोया—न बाल सँवारे? देखती हूं, अबतक तुमने कुछ भी नहीं किया—क्या कर रही थी?"

सासके स्वरमें इस आकस्मिक ममतानुरोधका आभास पाकर चकित बहू क्षणभर उसके मुखकी ओर देखती रही; जरा हँसकर बोली—"माँ, इस समय किस दिन हाथ-मुंह धोती और कपड़े बदलती हूं? अभी तो मेरा रसोई घरका काम भी नहीं निबटा। उसके बाद ... . "

सास झंझलाकर बोल उठी—"बादका काम उसके बाद होगा, बहू, पहले मेरी बात मानो।"

बहू जानेके लिये खड़ी होकर बोली—"जाती हूं, दीये जला .। ˆ हूं, फिर तुम्हारे पास आकर बैठूगी।"

अघोरमयी खीझ उठी—"मेरे पास इस समय झूठमूठ बैठनेकी क्या जरूरत है? पहले काम देखना चाहिये की बेठना? बहू, दिन-दिन तुम न जाने कैसी होती जा रही हो।"

उसकी स्नेहपूर्ण फटकार एकाएक तीव्र तिरस्कारके रूपमें बदलते ही वे बातें कड़वी और रूखी होकर किरणमयीके कानोंमें

क्षुभ-सी गयीं। उसने भी क्रोधसे उत्तर दिया—"माँ, तुम्हीं लोगोंने तो मुझे ऐसा बनाया है। हर समय ऐसी उल्टी-पल्टी बातें करनेसे—सुनना चूल्हेमें जाये, वे समझमें भी तो नहीं आतीं। तुम्हारा मतलब क्या है, साफ साफ कहती क्यों नहीं?" कहकर एक सेकेण्ड भी जवाबके लिये न ठहरी, तेजीसे चली गयी। बहूके इस तरह जानेका तात्पर्य इस घरके सभी लोग जानते थे, अघोरमयीने भी समझ लिया।

किरणमयी नीचे- ऊपर दीये जलाकर जब अपनी सासकी कोठरीमें आयी तब सास रो रही थी। उसके आँसू किसी भी कारणसे उबल पड़ते थे।

किरणमयी ठिठककर खड़ी हो गयी, बोली—"माँ, तुम्हारी रामनामकी माला ला दूँ?"

रजाईके कोनेसे आँख पोंछकर भरे हुए कण्ठसे बोली—"ला दो।"

वह दीवारपर टँगी हुई झोली उतारकर सासके हाथमें देने गयी। सासने झोली न लेकर बहूका हाथ पकड़ लिया और "ज़रा बैठो, बेटी!"—कहकर उसका हाथ खींच, अपने पास बैठा; उसके मुँह और सिरपर हाथ फेर दिया, ठुड्डी चूमी और बहुत देरतक चुप होकर रोने लगी। किरणमयी अटल भावसे बैठी हुई स्नेहका यह अभिनय देखती रही।

कुछ देर बाद अघोरमयीने फिर एक बार चादरके कोनेसे आँख पोंछकर कहा—"शोक और तापसे मैं पागल हो गयी हूं,

मेरी जरा-जरासी बातपर तुम्हें इतना गुस्सा करना चाहिये ?"

किरणने अविचल भावसे कहा—"शोक और ताप केवल तुम्हींको तो नहीं है। मैं भी तो मनुष्य हूं, जब तुम इसे भूल जाती हो, तभी मुझे दुःख होता है, नही तो हजार बातें कहनेसे भी गुस्सा नहीं आता।"

अघोरमयीने आँखें पोंछते हुए कहा—"यह क्या मैं नहीं जानती बेटी! लेकिन एक-एककर मेरे सब चले गये, अब एक तुम्हीं मुझ अन्धीकी लकड़ी हो, तुम्हीं मेरी बेटी या बेटा सब कुछ हो। हारानका शोक सिर्फ, तुम्हारा मुँह देखकर ही सह सकूँगी—तुम्हें ही देखकर कलेजा पत्थरका कर सकूँगी।" इतना कह, वह फिर एक बार चादर आँखोंसे लगाकर रोने लगी; लेकिन किरण इस कपटसे न भूली। वह मन-ही-मन जलकर शान्तिपूर्वक स्थिर भावसे बोली—"तुमने तो अपने लिये यह बात सोच रखी है, लेकिन माँ, मैं कैसे बरदाश्त करूँगी, इसकी तुम्हें कोई फिक्र नहीं—और मैं यह भी कहती हूं अभी इन ।तोंकी जरूरत ही क्या है ? जब सचमुच ही वह बुरी ड़ी आ उपस्थित होगी, तब कलेजा कड़ा करनेके लिये ना समयकी कमी रहेगी ? पर अभीसे ऐसा सोचना क्या ीक है ?"

बहूकी बातें खूब मीठी न मालूम होनेपर भी उनमें कितना व्यंग छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान सकी। बल्कि

बोली—"अब समय आनेमें देर ही क्या है बेटी ! उपेन्द्रनाथ उस दिन जिस साहब डाक्टरको लाया था, वह भी अवस्था कुछ निराशाजनक ही बता गया। बहू, मैं तो केवल यही सोच रही हूं कि उपेन्द्र यदि इस समय न आ पहुंचता, तो हम लोगोंकी कैसी दुर्दशा होती ?"

बहूको चुपचाप सुनते देख, वह जरा उत्साहित होकर कहने लगी—"उसे बचपनसे ही जानती हूं। नोआखालीमें तो हारान और उपेन दोनों दो भाइयोंकी तरह ही मेरे पास आते-जाते थे, तभीसे वह मुझे मौसी कहता है। जैसे इसके बाप बड़े आदमी हैं, वैसा ही उनका यह लड़का भी बड़ा उदार है। उस दिन मुझे रोते देखकर बोला—मौसी मुझे हारान भैयाका छोटा भाई ही समझो, इससे ज्यादा मुझे कुछ नहीं कहना है। मैंने कहा,—बेटा, मुझे किसी तीर्थ-स्थानमे रख दो, जिसमें जितने दिन जीऊँ उतने दिन गङ्गाके किनारे ही रहूं और अन्तमें माता गङ्गाकी गोदमे जाकर अपने हारानके पास जा सकूँ।" वह और ज्यादा न बोल सकी, व्याकुल होकर रोने लगी। बहू चुपचाप बैठी थी, चुप ही रही। वह कुछ देर रोकर हृदयका बोझा हल्का कर अन्तमे आँखें पोंछ गम्भीर स्वरमे बोली—"रह-रहकर मनमे यही बात उठती है कि बहू, यदि उपेन्द्र न आता तो वहू, नीचे कोई पुकार रहा है क्या ?"

बहूने कहा,—"मजदूरिन नीचे बरतन मांज रही है, कोई आया होगा तो दर खोल देगी।" सासने बेचैन होकर कहा—

"नहीं-नहीं, बहू! तुम्ही जाओ। मजदूरिन जब काममें लगी रहती है, तब वह किसीकी कुछ सुनती नहीं है।"

किरणने बिना किसी प्रकारका उद्वेग प्रकाशित किये धीरेसे कहा—"मा, मुझे भी काम है, भोजन बनाना…"

अघोरमयी अकस्मात् जलकर बोली—"भोजन भागा नहीं जाता है, बेटी। तुम कुछ भी नहीं समझती? जिसके बिना…"

किरण खड़ी होकर बोली—"मुझे समझनेकी जरूरत नहीं है। सभी लोगोंके चले जानेपर भी यदि हमलोगोंके दिन कटे हैं, तो उपेन्द्र बाबूके बिना भी काम न रुकेगा।" कहकर वह रसोई घरकी ओर चली गयी।

अघोरमयी क्रोधसे कोई बात न कह सकी और जबतक वह आँखकी ओट न हुई, तबतक उसकी दोनों आँखें मानों आग बरसाकर उसे ढकेलकर विदा करती रहीं। इसके बाद वह बड़े क्रोधसे मजदूरिनको बार-बार पुकारने लगी। उसकी भी आहट न मिली। जाड़ेके डरसे सन्ध्याके पहले ही बड़ी झनाहटके साथ बर्तनोंका माँजना-धोना समाप्त कर रही थी, से अघोरमयीकी क्रोधभरी आवाज सुनाई न पड़ी। अघोरमयी ुद्ध होकर स्वयं उठी। कमरेका चिराग हाथमें ले, बरामदेके स आ, चिल्लाकर बोली - अरी, कानमें काक डाल लिया है ा? सुनती नहीं, उपेन्द्र बाबू घंटेभरसे बाहर खड़े-खड़े चिल्ला रहे हैं?"

यह चिल्लाहट मजदूरिनने सुनी और उपेन्द्रनाथका नाम सुन

झटपट गिरती-पड़ती दौड़कर किवाड़ खोल दिये। किन्तु कोई न आया। तब उसने बाहर सिर निकालकर अन्धेरेमें जितनी दूर दिख पड़ा, आखें फाड़कर देखा। जब कोई न देख पड़ा, तब लौटकर बोली—"नहीं मां जी, कोई भी तो नहीं है।"

अघोरमयी दीपक हाथमें लिये उद्विग्न हो कर बाट देख रही थी, अविश्वास करके बोली—"नहीं कैसे ? मैंने अपने कानोंसे उसकी आवाज सुनी है ? तूने एक बार गलीमे उतर कर क्यों नहीं देखा ?

दासीने कहा—"देखा तो पर कोई नहीं है।"

बात विश्वास करने योग्य न थी। उपेन्द्र कल नहीं आया क्या आज भी न आयेगा ? इसीसे झुंझलाकर अघोरमयी बोली—"तू जा, एक बार फिर अच्छी तरह देख आ, कोई है या नहीं ?"

बाहर अन्धेरी गलीमे दासी जाना नहीं चाहती थी। उसने भी झुंझलाकर जवाब दिया—"तुम भी कैसी बातें करती हो मांजी ? वे क्या आख-मिचौनी खेल रहे हैं कि अन्धेरी गलीमें जाकर टटोल कर देखना होगा ? कहकर वह अपना काम करने लगी।

अघोरमयी अपने कमरेमे जाकर चुपचाप बिछौनेपर पड रही। बीमार लड़केका हाल पूछनेका भी उत्साह उसमे न था। उसके मनमे बार-बार यही बात उठने लगी, उपेन्द्र कल नहीं आया, आज भी नहीं आया। नाना प्रकारके संभव-असंभव कारण

सोचती रही; पर उसके मनमें एक बार भी न आया कि वह कलकत्तेका रहनेवाला नहीं है, अन्यत्र उसके घर-द्वार, बाल-बच्चे हैं—वहां लौट जाना भी संभव है। सोचते-सोचते अकस्मात् उसके मनमें ख्याल आया कि नाराज़ तो नहीं हो गया? इस बातको मनमें दुहराते ही उसका अन्तःकरण आशङ्कासे भर गया। वहूके वर्तावकी वातके साथ मन-ही-मन अपनी इस नयी आशङ्काको जोड़कर उसने कहा—"ठीक है, यही बात है। वहू यदि अब ·······वह पड़ी न रह सकी। रसोई घरकी ओर चली।

किरणमयी जलते हुए चुल्हेकी ओर नज़र किये चुप मारे बैठी थी। जलती लकड़ियोंकी कुछ सफेद और कुछ लाल रोशनी उसके मुंहपर पड़ रही थी। सिर पर कपड़ा न था, आज उसने बाल भी नहीं बांधे थे—बिखरे बालोंको जैसे-तैसे लपेट लिया था, आंचल लटक रहा था।

अघोरमयी दरवाजेके सामने चुपचाप खडी रही। आज जो वस्तु उसकी आंखोंके आगे दिखाई दी, उसे सम्पूर्ण रूपसे ...मे विठा लेने की भी शक्ति उसमे न थी। जिस शात मुखड़े... आगकी दीप्ति विचित्र तरङ्गोंकी भांति थिरक रही थी, वह उसके तमाम ज्ञानके बाहरकी वस्तु थी। इस मुखड़ेमे कोई ऐब है या नहीं, इसकी आलोचना नहीं हो सकती। निष्कलङ्क-निर्दोष कहनेसे भी उस मुखड़ेका ठीक-ठीक वर्णन नहीं होता। यह मुखड़ा बड़ा ही सुन्दर है, ऐसा कहनेसे भी जी नहीं भरता—

यह तो मूर्तिमान् आश्चर्य है। इसे पहले कभी नहीं देखा—यह अपूर्व है। बड़ी देर तक देखनेके बाद लम्बी सांस भरकर मन-ही-मन बोली—"अहा! यह क्या मनुष्यका मुखड़ा है?"

सासके शब्दसे बहू चौंक उठी। देखा, सास खड़ी है। धीरेसे सिरका कपड़ा सम्हालकर बोली—"माँ, तुम यहा क्यों आयी हो?"

स्वर सुनकर उसे और भी चकाचौंध लग गयी, अपनी बहूके मुँहसे ऐसा शात, ऐसा करुण कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना था। झटसे बोली—"बेटी, तुम अकेली भोजन बना रही हो, इसीसे एक बार देखने आ गयी।"

बहूने उसके ओर एक पीढ़ा बढ़ा दिया और चूल्हेकी ओर नजर किये चुप साधे बैठी रही। उसके मनमे फिर झुंझलाहटने सिर उठाया। गन्ध जैसे वायुके सहारे फूलके बाहर आती है, और वायुके झकोरेसे उड़ जाती है, ठीक उसी तरह किरणमयी के उस समयका मनोभाव सासके आकस्मिक आगमनसे क्षण भरमे बाहर आकर कपट स्नेहकी आंधीसे उड़ गया। इसमें सच्चापन नहीं—केवल वञ्चना है, इस विषयमें उसे जरा भी सन्देह नहीं रह गया, पर बेमतलबकी बात बढाकर लड़ना-झगड़ना अब उसे अच्छा नहीं लगता था, इससे वह ऊबसी गयी थी थक गयी थी।

कुछ देर मौन रहकर अघोरमयीने कहा—"मजदूरिनको यहा भेजती जाऊं?"

सोचती रही; पर उसके मनमें एक बार भी न आया कि वह कलकत्ते का रहनेवाला नहीं है, अन्यत्र उसके घर-द्वार, बाल-बच्चे हैं—वहा लौट जाना भी संभव है। सोचते-सोचते अकस्मात् उसके मनमें ख्याल आया कि नाराज़ तो नहीं हो गया ? इस बातको मनमें दुहराते ही उसका अन्तःकरण आशङ्कासे भर गया। बहूके बर्तावकी बातके साथ मन-ही-मन अपनी इस नयी आशङ्काको जोड़कर उसने कहा—"ठीक है, यही बात है। बहू यदि अब ········वह पड़ी न रह सकी। रसोई घरकी ओर चली।

किरणमयी जलते हुए चुल्हेकी ओर नजर किये चुप मारे बैठी थी। जलती लकड़ियोंकी कुछ सफेद और कुछ लाल रोशनी उसके मुंहपर पड़ रही थी। सिर पर कपड़ा न था, आज उसने बाल भी नहीं बांधे थे—बिखरे बालोंको जैसे-तैसे लपेट लिया था, आंचल लटक रहा था।

अघोरमयी दरवाजेके सामने चुपचाप खड़ी रही। आज जो वस्तु उसकी आंखोंके आगे दिखाई दी, उसे सम्पूर्ण रूपसे हृदयमे बिठा लेने की भी शक्ति उसमे न थी। जिस शात मुखड़े-पर आगकी दीप्ति विचित्र तरङ्गोंकी भाँति थिरक रही थी, वह उसके तमाम ज्ञानके बाहरकी वस्तु थी। इस मुखड़ेमे कोई ऐब है या नहीं, इसकी आलोचना नहीं हो सकती। निष्कलङ्क-निर्दोष कहनेसे भी उस मुखड़ेका ठीक-ठीक वर्णन नहीं होता। यह मुखड़ा बड़ा ही सुन्दर है, ऐसा कहनेसे भी जी नहीं भरता—

यह तो मूर्तिमान् आश्चर्य है ! इसे पहले कभी नहीं देखा—यह अपूर्व है। बड़ी देर तक देखनेके बाद लम्बी सांस भरकर मन-ही-मन बोली—"अहा ! यह क्या मनुष्यका मुखड़ा है ?"

सासके शब्दसे बहू चौंक उठी। देखा, सास खड़ी है। धीरेसे सिरका कपड़ा सम्हालकर बोली—"माँ, तुम यहां क्यों आयी हो ?"

स्वर सुनकर उसे और भी चकाचौंध लग गयी, अपनी बहूके मुँहसे ऐसा शात, ऐसा करुण कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना था। झटसे बोली—"बेटी, तुम अकेली भोजन बना रही हो, इसीसे एक बार देखने आ गयी।"

बहूने उसके ओर एक पीढ़ा बढ़ा दिया और चूल्हेकी ओर नजर किये चुप साधे बैठी रही। उसके मनमें फिर झुंझलाहटने सिर उठाया। गन्ध जैसे वायुके सहारे फूलके बाहर आती है, और वायुके झकोरेसे उड़ जाती है, ठीक उसी तरह किरणमयी के उस समयका मनोभाव सासके आकस्मिक आगमनसे क्षण भरमें बाहर आकर कपट स्नेहकी आधीसे उड़ गया। इसमें सच्चापन नहीं—केवल वञ्चना है, इस विषयमें उसे जरा भी सन्देह नहीं रह गया, पर बेमतलबकी बात बढ़ाकर लड़ना-झगड़ना अब उसे अच्छा नहीं लगता था, इससे वह ऊबसी गयी थी थक गयी थी।

कुछ देर मौन रहकर अघोरमयीने कहा—"मजदूरिनको यहा भेजती जाऊं ?"

किरणमयीने अपने अन्दर मचे हुए विद्रोहको दबाकर शान्त भावसे कहा—"क्या जरूरत है मा! मैं रोज ही अकेली रहती हूं—कुछ डर नहीं लगता, बल्कि वे वहा अकेले हैं—कोई उनके पास जाकर बैठता, तो अच्छा होता।"

बीमार लड़केकी चर्चासे माता चोट खाकर व्यस्त होकर बोली—हा, ठीक है, मैं जाती हूं बेटी! तुम भी जल्द ही काम ख़तम करके चली आओ।"

इसी बीचमें उपेन्द्र कलकत्ते से घर लौट गया था, सतीश भी सिर्फ एक ही दिन उपेन्द्रके साथ हारानको देखने आया था, फिर नहीं आया। वह अपनी चोटसे अलग छटपटा रहा था। उपेन्द्रनाथ ने भी उसका मनोभाव और इस घरसे आनेकी अरुचि देखकर उसे आनेके लिये नही कहा। वे अकेले ही दवा-दारूका तथा अन्यान्य कामोंका प्रबन्ध कर आते थे। हा कलकत्ते से घर लौटनेके दिन सतीशसे उन्होंने कहा था—"मौकेसे जाकर हारानचन्द्रकी खोज-खबर लेते रहना और मुझे उनके विषयमें सूचित करते रहना।" आज स्कूलसे लौटते ही सतीशको उपेन्द्र-।थ पत्र मिला। उन्होंने लिखा है—"आशा है, तुम्हारी ़ ़ जारी होगी। कई दिनोंसे हारान भैयाका समाचार नहीं है, इससे चिन्ता हो रही है। यद्यपि मैं समझता हूं, कि च।ू देनेकी वैसी कोई खास बात न होनेके कारण ही तुमने ु नहीं दी है, तथापि उनकी चिकित्सा ठीक हो रही है या नहीं, यह अवश्य लिखना।"

सतीशकी पीठपर मानो कोड़ा पड़ा। उसने एक दिन भी वहा जाकर हारानकी सुध न ली। इसी बीचमे न मालूम वहा क्या से क्या हो चुका हो। अपनी लापरवाहीके लिये वह घबरा उठा। तेजीसे नीचे उतरा। बिहारी जलपान ला रहा था धक्केसे उसके हाथकी तश्तरी और गिलास गिर पड़ा। सतीशने घूमकर देखा तक नहीं। सड़कपर आकर एक खाली गाड़ीमें चढ़ बैठा और तेजीसे हाकनेका हुक्म देकर मार्गकी ओर सतर्क होकर देखता रहा। उसे डर था, कि कहीं वह गली भूलकर दूर न निकल जाये। बीस मिनट बाद जब वह गाड़ीसे उतरकर उस छोटी गलीमे घुसा, तब भी दिनका प्रकाश था। पैरोंके नीचे खुली नाली, चलनेका मार्ग और सिरपर आकाश—ये सब अन्धकारोंमें मिलकर एकाकार नहीं हुए थे। तेजीसे चलकर १३ नम्बर मकानके सामने आते ही किवाड़ खुल गये, मानो कोई आखे बिछाये उसीकी राह देख रहा था। सतीशका अन्त.करण काप उठा। एकाएक अन्दर जानेका उसे साहस नहीं हुआ।

किवाडके एक पल्लेकी आडमे किरणमयी खड़ी थी। उसने अपना मुस्कराता हुआ मुखड़ा जरा बाहर निकालकर बड़े आदरसे कहा "आओ, छोटे बाबू, आओ। वाह ठिठक गये?"

फिर वही देवरका नाता? लज्जासे सतीशका चेहरा लाल हो गया, किन्तु अपनेको संभालकर विनय सहित बोला—"मालूम होता है, आपने अबतक मुझे माफ नहीं किया।"

किरणमयीने कहा—"नहीं, तुम तो माफी चाहते भी नहीं। बिना चाहे, बिना माँगे क्या मैं जबरदस्ती माफीका तौक तुम्हारे गलेमें लटका देती ? इससे शायद तुम्हारी मानहानि होती और तुम ऐसे सस्ते भी तो नहीं हो, कि मैं अनायास तुम्हारी मानहानि करूँ !"

उसकी इस मीठी चुटकी और तानेजनीमें एक ऐसी गम्भीर कातरताकी भी पुट थी, कि सतीश तत्काल झुक गया और बड़ी नम्रतासे बोल उठा—"कुछ भी दाम नहीं है, भाभी। कोई मानहानि न होगी, आप मुझे क्षमा करें।"

किरणमयीने मुस्कुराकर कहा—"ऐसी बहुत-सी बातें हैं देवरजी, माफ करते ही जिनका अन्त हो जाता है। आज तुम्हें क्षमा करनेपर यदि फिर 'सतीश बाबू' कहकर सम्बोधन करना पड़े तो याद रखो, वह क्षमा तुम्हें कभी न मिलेगी। तुम्हें फँसा रखनेकी यह एक जंजीर तुमने स्वयं मेरे हाथमे पकड़ा दी है। उसे अपनी मीठी-मीठी बातोंमे भुलाकर मुझसे ले लोगे, ऐसी बेवकूफ इस भाभीको न समझो।" यो कहकर उसने बड़े नाज़ो ... जके साथ अपनी गरदन हिलायी। सतीश चौंक उठा। ...जीरसे जकड़नेकी बात उसे अच्छी न लगी। उसके मनने ...—"कहीं सचमुच यह सुन्दरी युवती अपने जबरदस्त ... न जकड़ ले, सावधान ! सतीश वास्तवमे अपनी ...के लिये अपनी तमाम शक्तियोंको केन्द्रीभूत करके तैयार हो गया। इस मकानमें पैर रखते समय उसकी दृष्टि कर्त्तव्य-त्रुटिके

धिक्कारसे कुण्ठित और लज्जासे झुकी हुई थी, पर अब सहसा यह नयी ठोकर खाकर वह संदिग्ध और तीव्र हो उठी। उसका चेहरा सूखकर ऐसा उदास हो गया कि किरणमयीने विस्मित होकर पूछा—"क्या हुआ? तुम्हारा मुँह यों सूख क्यों गया? शायद तुमने अबतक कुछ जलपान नहीं किया है? आओ ऊपर चलो, कुछ खा लो।"

सतीश बिना बोले-चाले निमन्त्रण पूरा करनेके लिये तैयार हो गया और इस हँसी-मजाकका कुछ अंश कोरा मजाक़ नहीं जान पड़ता—यह विचार करता हुआ इस रहस्यमयी सुन्दरीके पीछे-पीछे चल पड़ा।

ऊपर पहुंचकर वह इधर-उधर देखकर बोली—"आज माँ मजदूरिनको साथ लेकर कालीजीके दर्शन करने गयी हैं। रसोई-घरमें बैठकर तुम मेरी पूरियाँ बेल देना: मैं छान लूँगी, बेल तो सकोगे न?" इतना कहकर हँस पड़ी, बोली—"हुं:! तुम बेल सकोगे, यह तुम्हारी सूरत ही बता रही है—आओ।"

सतीशने हृदयके अन्दर होनेवाले तर्क-वितर्कको कुछ समयके लिये स्थगित रखकर पूछा—"भाभी, क्या मेरे चेहरेपर यह भी लिखा है, कि मैं पूरियाँ बेल सकता हू या नहीं?"

किरणमयीने कहा,—"बेशक! लेकिन उस लिखावटको पढनेकी अक़्ल होनी चाहिये। उस रातको क्या मेरे चेहरेपर कुछ लिखा था, जिसने तुमने अनायास पढ़ लिया था?"

सतीशने फिर सिर झुका लिया। रसोई घरमें जाकर पहले

इसी तरहकी पैंतरेबाजी होती रही । बादको दोनों मिलजुलकर जब भोजन बनाने लग गये और इस संघर्षका उत्ताप कुछ ठंडा हो चला, तब किरणमयीने पूछा,—"तुम्हारी बहुतेरी बातें मैंने तुम्हारे उपेन्द्र भैयासे सुनी है । अच्छा, छोटे बाबू वे शायद अब यहां नहीं हैं, घर चले गये ?" सतीशके 'हां' कहनेपर किरणमयीने कहा —"मैं समझ गयी थी, कि वे यहां नहीं हैं, लेकिन मांको विश्वास नहीं होता । वे कहती हैं उन्हें बिना जताये उपेन्द्र बाबू कभी घर न जायेंगे । जो हो, शायद उन्हें जल्दीमें जाना पडा है ।"

सतीशको इस बातका ठीक-ठीक पता नहीं था । वह तो कुछ भी न जानता था । इसी बीचमें इन लोगोंके कारण ही दोनों मित्रोंमें कोई अप्रिय वाद- विवाद भी हो गया है, यह बात वह कहना नहीं चाहता था। अतः चुप हो रहा । उपेन्द्रके बिना कुछ कहे-सुने चले जानेका कारण क्या हो सकता है यह उसकी समझमें नहीं आता; किन्तु किरणमयीने बात दबने न दी, बोली —"छोटे बाबू, तुम्हारे भैयाका यह काम अच्छा नहीं । । वे कहकर जाते तो न उनका कुछ बिगडता और न मां इस तरह सोच-सोचकर मरतीं । मैंने मांको लाख समझाया उपेन्द्र बाबू हमेशा यहां नहीं रहते, दूसरी जगह उनका घर काम-काज मे इसके सिवा कोई कितने दिनोंतक दूसरोंके घ पड़ा रह सकता है ? किन्तु मां मेरी एक नहीं मानतीं। मां ही क्यों, बूढ़ा होते ही मनुष्यमात्र किसीकी कोई युक्ति

नहीं मानता, अपने मतलबके सिवा उसे संसारमें मानो और कुछ सूझता ही नहीं है।

सतीशने उस बातका स्पष्ट उत्तर न देकर कहा—"उपेन्द्र भैया इतने दिन यहा रह गये, यही आश्चर्य है! कहीं ज्यादा दिन रहनेकी उन्हें आदत नहीं है। खासकर शादीके बादसे तो एक रात भी कभी बाहर नहीं रहते—हम लोग सिर पटककर रह जाते है। पहले सभी बातोंमे वे हमलोगोंके साथ थे। हर कामोंमे हमारे आगे-आगे रहते थे। अब उन्होने एक-एककर सब छोड घरका पल्ला पकड़ा है। कचहरी गये बिना काम नही चलता, मेरी समझमे, इसीसे एक बार जाते है।"

बहूने बाधा देकर कहा—"बैठो, छोटे बाबू, तुम्हारे खानेके लिये आसन-पानी ठीक कर द। तुम खाते भी रहो और बाते भी करते रहो। क्यों? यही अच्छा होगा न? कहकर आसन बिछा, थालीमे भोजनकी सामग्री परोसकर पास बैठ गयी और बड़े आग्रहसे बोली—"हाँ, फिर?"

सतीशने एक कौर मुंहमे डालकर कहा—"हा, तो एक बरातकी बात सुनिये। हमारे उपेन्द्र भैया वर-वधूका जोड़ा मिलानेमे बड उस्ताद हैं—उन्होंने कितनोंकी शादिया करायी हैं, इसका कुछ हिसाब नहीं। हमारे साथियोमेसे एकका विवाह-का सारा आयोजन उपेन्द्र भैयाने अपने हाथो किया। परन्तु ऐन व्याहकी रातको वे ढूंढ़े न मिले—एकदम लापता। 'छोटी बहूकी तबीयत ठीक नहीं' का बहाना बनाकर वे किसी तरह

घरसे निकले। हम सबने मिलकर कितना अनुरोध किया भाभी, किन्तु सब व्यर्थ। पत्थरका देवता होता तो पसीज जाता लेकिन उपेन्द्र भैया किसी तरह न पसीजे। अन्तमे छोटी बहूके यह कहनेपर कि "मैं अच्छी हूं, तुम जाओ," वे बोले कि "तुम्हारे भले-बुरेका विचार करनेका भार मेरे ऊपर है, तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम चुप रहो।"

किरणमयी चुपचाप बैठी सुनती रही। उसका सम्पूर्ण विगत जीवन मानों उसके हृदयकी अन्धेरी गुफामें उतरकर न जाने किस रत्नकी खोजमे उसकी दीवारोंको खुरचता फिरने लगा, किन्तु सतीश कुछ भी न समझ सका। कौनसी बात कहा चोट करती है, उसे इसकी क्या खबर? उसने सिलसिला जारी रखा उपेन्द्रकी अनुपस्थितिसे किसने कैसी निन्दा की, किसने क्या हॅसी उडायी, किस तरह सबके होसले पस्त हो गये, क्योंकर सारा मजा किरकिरा हो गया—इत्यादि सारी बातें वह बताने लगा; पर उसकी बातें सुनता कौन था? किरणमयी तो उस समय कहानीसे बहुत दूर चली गयी थी।

एकाएक सतीशने हाथ रोका और बातोंका सिलसिला भी। पूछा—"आप सुनती हैं या कुछ सोचती है?"

किरणमयी चौंककर हॅसती हुई बोली—"हा-हा, सुनती हूं, न मेरा कहना यह है, कि यदि कोई बीमार हो, तो उसकी करना कुछ बुरा नहीं। यह तो उचित ही है।"

सतीशने आवेशमे आकर कहा—"सेवा करना तो उचित

ी है, पर यह ज्यादती तो उसमें भी अच्छी नहीं होती। उस पर
व छोटी बहूको माता निकली थीं, तब उपेन्द्र भैया आठ दस
दिनतक उसके सिरहानेसे न उठे। घरमें इतने आदमी हैं; फिर
नको स्नान-भोजन बन्द करनेकी क्या जरूरत थी ?"

किरणमयी कुछ देरतक उसके मुखकी ओर चुपचाप देखती
रही, फिर बोली—"अच्छा, छोटे बाबू, तुम्हारे उपेन्द्र भैया क्या
अपनी बहूको बहुत प्यार करते हैं ?"

सतीशने कहा—"हदसे ज्यादा।"

किरणमयी फिर कुछ देर चुप रहकर बोली—"छोटी बहू
देखनेमे कैसी है ? बहुत सुन्दरी है ?"

"हाँ, बहुत सुन्दरी है।"

किरणमयीने मुस्कुराकर कहा—"मेरी जैसी ?"

सतीशने सिर झुका लिया। कुछ देरके बाद सोचकर सिर
उठाकर कहा—"क्या आप सचमुच यह बात जानना चाहती हैं ?"

"और नहीं तो क्या ?"

सतीश—"देखिये, मेरी बातोंका कोई मूल्य नहीं, परन्तु यदि
कुछ भी मूल्य हो, तो मैं कहूंगा कि मेरी समझमे आपका-सा
रूप इस पृथ्वीमे भगवानने और किसीको दिया ही नहीं है।"

किरणमयी कुछ जवाब दिया चाहती थी, कि इसी
समय नीचे सासकी पुकार सुनकर वह उठ खड़ी हुई। वह
कालीजीके दर्शन करके लौटी थी।

सतीश जलपान कर ज्योंही बाहर आया, त्योंही अघोरमयी

सामने दिखाई पड़ी। सतीशके मुंहकी ओर देखकर उसने पूछा—"बहू, यह उपेन्द्रका भाई है न ? वह कहां है ?"

किरणमयी—"वे घर लौट गये।"

अघोरमयी "अच्छा" कह अपनी रोरी और चन्दनसे सुशोभित मुखपर ग्लानिकी कालिख-सी पोतकर—उदास होकर अपने लड़के के कमरेमें चली गयी।

सतीशने कहा—"भाभी, अब मैं जाऊँ ?"

किरणमयीने अनमनी-सी होकर कहा—"अच्छा।"

सतीश दो-एक कदम जाकर ही वापस आया, बोला,—हाँ, उपेन्द्र भैयाकी चिट्ठी आयी है। उन्होंने पूछा है, कि हारान भैयाकी चिकित्सा ठीक तरहसे हो रही है या नहीं ?"

किरणमयी—"चिकित्सा बन्द है। जो डाक्टर देख रहा था, उससे दिखानेकी राय न हुई। अब किसकी दवा होनी चाहिये, इसका निश्चय किये बिना ही वे चले गये।"

सतीश विस्मित होकर बोल उठा—"यह क्या भाभी! एकदम दवा-दारू बन्द करके बैठी हो—यह कैसी व्यवस्था है ?"

"बिना व्यवस्था किये ही वे चले गये। जहांतक मुझे स्मरण है, एक बार उन्होंने कहा था, कि सतीश यहीं है, वही व्यवस्था करेगा, पर तुम भी तो नहीं आये। मैं कर ही क्या सकती ?"

सतीश कुछ देर चुप खड़ा रहकर बोला—"कल सवेरे ही आऊँगा।" और तेजीसे बाहर चला गया।

सतीशके चले जानेपर किरणमयीने पतिके कमरेका किवाड़ खोलकर देखा। वे एक मोटे तकियेका सहारा लिये माताके साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। उन्हें आज शामको भी ज्वर नहीं आया। यह पता लगाकर ही वह लौट आयी और बाहरके अन्धेरेमें चुपचाप बैठ, एक अभूतपूर्व ममताके साथ इस छोटी-सी बातको लेकर मनको धैर्य देने लगी। आज सतीशके मुँहसे उपेन्द्रके 'अध.पतन' के इतिहासने उसके हृदयको एक अपूर्व माधुर्य्यसे भर दिया था। इसीसे आज जो बात सामने आयी, वही मधुर होकर किरणमयीको अनिर्वचनीय रससे स्निग्ध करने लगी।

१६

उस दिन रातको सतीशके चले जानेके बाद बहुत देरतक किरणमयी अन्धेरे बरामदेमें चुप बैठकर अन्तमें उठी और रसोई-घरमें चली गयी। रसोई चढ़ाकर मन मारकर बैठ रही।

उसके हृदयमें, आज सतीश अपनी गैरजानकारीमें उपेन्द्र-सुरबाला आदि नर-नारियोंको लाकर एक अद्भुत नाटकका जो अस्पष्ट अभिनय दिखाकर खिसक गया, निर्जन कमरेमें अकेली बैठकर उसे स्पष्ट रूपसे देखनेका लोभ किरणमयीको जिस प्रकार एक ओर तरसाने लगा, दूसरी ओर उसी प्रकार कोई अनिश्चित आशंका उसके हाथ-पैर और आंखोंको भारी करने लगी। उसे ऐसा ज्ञान पड़ा, मानों उन बातोंकी स्मृति अँधेरी

रातको कही गयी भयंकर भूतोंकी कहानीकी तरह उसे निरन्तर एक हाथसे खींचने और दूसरे हाथसे ढकेलने लगी।

अतएव न तो वह शान्त, स्थिर होकर उन घटनावलियोंको स्पष्ट रूपसे देख सकी, न आखें फिरा सकी। न तो प्रत्यक्ष रूपसे वह उसके आनन्दका उपभोग कर सकी और न अपनेको वंचित ही कर सकी। अपने हृदयके एकान्त कोनेमे उसका दुखी मन निरन्तर अनुभव करने लगा कि यह उसकी सरासर अनधिकार चेष्टा है। अतः चोरकी तरह आड़मे छिपना ही उसने अच्छा समझा।

फिर भी रंगमंचपर आने-जानेवालोंके पैरोंकी आहट मानों उसके हृदयको रौंदने लगी। उसकी दोनों आंखें रह-रहकर जल उठने लगी। कहीं उसकी आंखोंकी वह तेज लौ सब कुछ जलाकर भस्म न कर डाले, इसी भयसे शायद उसने अपने दोनों धधकते हुए नेत्रोंको जलते हुए चूल्हेपरसे हटने नहीं दिया।

आज जब वह जी-जानसे इस बातका यत्न कर रही थी, कि चाहे जैसे हो वह अपनी चित-वृत्तियोंको शान्त रखेगी, किसी तरह उसे उच्छृङ्खल होने न दी, उसी समय जूतेकी आहटसे चौंककर सिर उठाकर उसने देखा कि दरवाजेके बाहर डाक्टर अनंगमोहन खड़ा है।

किरणमयी लम्बा घूंघट तानकर उठ खडी हो गयी। यह देखकर डाक्टरने भौंहें सिकोड़ी।

इससे पहले यही डाक्टर ठीक इसी स्थानपर कितनी बार

आकर खड़ा हुआ है, और उसके करकमलोंके बनाये भोजनके लोभसे अतिथि होनेके लिये आरज़ू-मिन्नतें कर गया है। उसी पुराने हास-परिहासकी पुनरावृत्तिकी कल्पनाकर किरणमयीका चित्त विषाक्त-सा हो गया। अपने हृदयको कड़ा करके वह उसी घातकी परीक्षामें खड़ी रही; किन्तु डाक्टरने आज हँसी-मजाक की वैसी कोई बात न की। कुछ देर चुप रहकर कुछ, गम्भीर भावसे बोला—' दस-बारह दिन बाहर रहना पड़ा, इसीसे हारान बाबूके लिये बहुत चिन्तित हो गया; पर देखता हूं कि मेरे चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं था।

किरणमयीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, वे अच्छे थे।"

डाक्टर -' अच्छे हो जायें, यही तो मैं भी चाहता हूं हाँ, क्या अब मेरी जरूरत नहीं रही ?"

किरणमयी इसके भी उत्तरमें सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

डाक्टर—"तुम लोगोंको मेरी जरूरत न रहनेपर भी, मेरी जरूरत अभीतक पूरी नहीं हुई है, यही कहनेके लिये मुझे इतनी दूर आना पड़ा है।"

किरणमयीने सिर उठाये विना ही कहा—"अच्छी बात है। माँ अभी तक जग रही हैं, उन्हींसे जाकर कहिये—मुझसे कहना व्यर्थ है।"

डाक्टर बड़ा भयंकर मुँह बनाकर कहा—"मैं तो उन्हींके पाससे लौटा चला आ रहा हूँ। वे भी कहती हैं, जरूरत नहीं है।

जरूरत नहीं रही, यह मैं भी समझता हूँ, लेकिन 'डाक्टरकी बिदाई' की बात यहां भूलनेसे तो काम नहीं चलेगा।"

किरणमयी चुप हो रही।

डाक्टर व्यंग करके कहने लगा—"आज पांच-छः महीनेके बाद दवा-दारू और पथ्यादिके खर्चके इस भारको तुम उठाओ या तुम्हारी सास, यह तुम लोग जानो, लेकिन किरण, सिर्फ "जाओ कह देनेसे ही तो डाक्टर नहीं जाता।"

डाक्टरके मुँहसे अपना नाम आज अकस्मात् तीरकी तरह किरणमयीके कानोंमें जाकर चुभा। वह जोरसे थर्रा उठी। उस धुँधले प्रकाशमे भी डाक्टरको यह स्पष्ट दिखाई दिया।

किरणमयीने मृदुकण्ठसे पूछा—"क्या चाहते हैं आप, रुपया?"

डाक्टरने हँसीका बहाना करके कहा—"आप क्यों किरण? यहाँ और कोई थोडे ही है, 'तुम' कहनेसे भी दोष न होगा। लेकिन क्या तुम नहीं जानती कि इतने दिनोंसे मैं क्या चाहता आता हूं?"

किरणमयीके सारे शरीरके रोंगटे खडे हो गये। डाक्टरने फिर कहा—'रुपया नहीं चाहता यह कहना कठिन है। और इस समय जब कि तुम्हारे पास भी अभाव नहीं है, तो रुपया देकर ही विदा करो। मैं दोनों ओरसे ठगाना नहीं चाहता। लेकिन तुमने इतने दिनों बाद जो मेरे मनकी बात ताड ली इसके लिये तुम्हें धन्यवाद है। आज मै तुम्हें और ज्यादा तंग

करना नहीं चाहता। केवल यही पूछना चाहता हूँ, कि क्या कल एक बार आ सकता हूँ।

डाक्टर मन-ही-मन किस तरह जल रहा था और जिस आगसे वह जल रहा था, वह उसीकी इकट्ठी की हुई थी, यह बात किरणमयी अच्छी तरह जानती थी। फिर भी उसने शान्त रहकर दृढ़ताके साथ कहा—"नहीं। आप जरा ठहरिये, मैं अभी लाये देती हूँ।" कहकर और पासका दरवाजा खोलकर वह तीरकी तरह अन्दर चली गयी।

यह देख, डाक्टर डर गया। किरणको वह जानता था। न मालूम, वह कहांसे क्या लाने गयी है? कौन जाने इतनी रातको कोई बखेड़ा खड़ाकर कहांकी बात कहां ले जाये, इस दुश्चिन्ताने उसे व्याकुल कर दिया। वह चोट खाकर गयी है, लौटकर वह उस चोटका बदला निर्दयतापूर्वक चुकाये बिना न रहेगी। उसके निश्चित कठोर प्रतिघातकी कल्पना कर अनंगमोहन भयसे स्तब्ध हो खड़ा रहा।

किरणमयीके लौट आनेमें देर न हुई। चुपचाप सिर नीचा किये आंचलमें बँधे हुए जेवरोंको डाक्टरके पैरोंके पास उड़ेलकर बोली—"यह लीजिये, रखिये। आपकी फीस कबका कितना बाकी है, उसका हिसाब इतने दिन बाद करना व्यर्थ होगा। इतना समय भी मुझे नहीं है और न आप धैर्य ही रख सकेंगे—जो कुछ मेरे पास था, सब आपके आगे लाकर रख दिया है। यह लेकर हमारी जानको फुरसत दें और आप जायें।"

अनंगका चेहरा उदास हो गया वह चुप खड़ा रहा। किरणने कहा—'आप देरी क्यों करते हैं ? विश्वास कीजिये, अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। जो था, सब ला दिया है। रात अधिक हो रही है, आप रुखसत हों।"

अनङ्गमोहनने डरते हुए कहा—"मैं तुम्हारे अंगका भूषण तो नहीं चाहता—सिर्फ रुपया चाहता था। वह भी

किरण तमककर बोल उठी—"गहने भी रुपये ही हैं यह बात समझनेकी उम्र आपकी हो गयी है। व्यर्थ बहाना कर क्यों झूठ-मूठ देरी कर रहे हैं ?

इस बार अनंग खूब जोरसे सिर हिलाकर बोला—"मैं कदापि ये सब गहने न ले सकूँगा।

किरणमयी पास हो बैठी थी, झट उठ खड़ी हुई और बोली—"क्यों नहीं ले सकेंगे ? आप किसपर दया दिखलाते है ? आपको मैंने जो कुछ देदिया है, उसे किसी तरह वापस नहीं ले सकती, इसे आप सच जानिये।" कुछ देर चुप रहकर फिर बोली—"यदि आप न लेंगे, तो कल ये सब दीन-दुखियोंको बाँट दूँगी। किन्तु घरमें रखकर किसी प्रकार अपने स्वामीका अमंगल न बुलाऊँगी। पैरसे इन जेवरोंको जरा हटाकर उसने कहा—"लीजिये, उठाइये इन सबको !

आखिरी बात उसने इतनी कड़ी आवाजमें कही, कि अनंग-मोहन सिटपिटाकर गहने हाथसे उठाने लगा। किरणमयी कुछ काल उस ओर देख, झुँझलाहटको रोक अत्यन्त घृणाके साथ

धीमे स्वरमें बोली—"ले जाइये इन्हें। जबतक इनका नाम-निशानतक मेरे आगेसे हट नहीं जायेगा, तबतक मुझे न तो अन्न-जल रुचेगा और न आंखमें नींद ही आयेगी। डाक्टरने सब गहने समेटकर उठा लिये और वह चलनेको तैयार हुआ। किरणमयी कुछ अधीरताके साथ बोली—"रात बहुत हो गयी।"

डाक्टरने कहा—"जाता हूं, किन्तु तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिये नहीं, सब तुम्हारे अपने हैं। फिर मेरे न लेने-पर क्यों गरीबोंको दे दोगी? किरण मुझे क्षमा करो।"

किरणमयी झुंझला उठी—"फिर मेरा नाम लेते हैं। सच है; ये सब गहने मेरे ही हैं। जबतक मुझे इनका मोह घेरे हुए था; तभीतकके लिये आपसे सहायता लेनी पडी थी। अब इनका मोह नहीं रहा। खैर डाक्टर बाबू; रात बहुत हो गयी।"

डाक्टरने अपने नामका छपा एक कार्ड निकालकर कहा; "मेरे घरका ठिकाना ।"

"लाइये" कहकर किरणमयीने हाथ बढाकर ले लिया और लौटकर धधकते हुए चूल्हेमें उसे फेंककर कहा—"इसकी जरूरत मुझे न होगी। अभी-अभी तो आप मुझसे क्षमा मांगते थे न? आपको सम्पूर्ण रूपसे क्षमा कर सकूं, इसलिये आपका सब ऋण, सब सम्बन्ध निःशेष कर दिया। किसी दिन; किसी कारणसे आपकी कोई बात मेरे मनमें न आये, जाते समय सिर्फ यही आशीर्वाद देते जाइये।" कहकर उससे किसी

तरहका उत्तर पानेकी प्रतीक्षा न कर उसने जोरसे किवाड़ बन्द कर दिया और अपने रसोई-घरमें आ बैठी।

डाक्टरके जूतेकी आहट जब उसके कानोंके बाहर चली गयी, तब उसने एक लम्बी सांस लेकर देखा चूल्हा बुझ गया है। फूॅककर उसे फिर सुलगाया और फिर चुप हो बैठी।

सोचते-सोचते उसका शरीर काठ हो गया, तो भी वह उठ न सकी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा; मानो बाहरके अन्धकारमें तब भी एक भयानक भूत उसके लिये हाथ बढ़ाये बैठा हुआ है। छाती इस जोरसे धड़कने लगी कि दोनों हाथोंसे उसने उसे जोरसे दबा रखा। विदाईके इस प्रकरणको उसे एक-न-एक दिन पूर्ण करना ही होगा, यह वह खूब जानती थी, तथापि इस घृणित बन्धनसे अपनेको मुक्त करनेका बल और साहस वह अपने भीतर खोजनेपर भी नहीं पाती थी। यों ही जीवनके न जाने कितने दिन बीत गये हैं—दिन-रात सहती रही है, पर कुछ भी कर नहीं सकी थी। इतना बड़ा कठिन काम इतनी आसानीसे क्योंकर हो गया, इसी बातको वह चुपचाप सोचने लगी। आवश्यकताके अनुरोधसे जिस पापको अपने घरमें ... उसने स्वयं ही पाल-पोसकर बड़ा किया था, वह आज ... कहते ही चला गया? ऐसा क्योंकर हुआ? मान-मना-..., वियोग-व्यथा, यन्त्रणा, मर्मस्पर्शी अनुनय-विनय आदि कितनी ही बातें होनेके लिये भविष्यके गर्भमें छिपी हुई थीं और जिनकी कल्पना भी उसे तपाये भालेकी तरह निरन्तर

बेधती रही है, वे बाते क्या सचमुच ही अधूरी रह गयीं ? क्या उन सबका यहीं अन्त हो गया ?

एकाएक किवाड़ खुलनेकी आवाजसे चौंककर किरणने सिर उठाकर देखा। मजदूरिन कह रही है, चूल्हा तो बुझकर ठण्ढा हो गया। बहूजी, देखती नहीं। रात भी बहुत हो गयी है।"

किरणने झट उठ, उसके पास जा, आहिस्तेसे पूछा—क्यों री। डाक्टर हैं कि चला गया ?"

हाथके दियेकी बत्तीको बढ़ाते हुए मजदूरिनने कहा—"उसे गये तो दो घण्टे हुए। बहूजी तुम्हें भी कहे देती हूं……।" इसके आगे वह कुछ न बोल सकी। एकाएक उसकी जीभ रुक गयी। चिरागको जरा ऊपर उठा, बहूके जेवरोंसे खाली अंग-प्रत्यंगोंको बराबर निहार कर चिरागको झट दीवटपर रख धमसे बैठ गयी, बोली—यह क्या बात है, बहूजी ?"

१७

दिवाकरने बड़े दुःखसे रात काटी। कल सवेरे उसने छिपे-छिपे अपने बी० ए० फेल होनेकी खबर सुनी थी और शामको अपने विवाहके सम्बन्धमें अपने ही कमरेके सामने उपेन्द्र भैयाको प्रसन्न चित्तसे, बड़े उत्साहसे पुरोहितजीके साथ बातचीत करते सुनकर उसने मन-ही-मन मौतको गले लगानेकी कामना की थी। पुत्रशोकसे कातर माता जैसे शोकके मारे सो जाती है और शोकसे ही फिर जग भी उठती है, उसी तरह आज वह

हृदयमें अपार व्यथा लिये सोकर जग पड़ा है। आंखें मलकर देखा, कि कोठरीके पूरबकी ओर दरवाजे खिड़कियोंके शीशोंपर प्रकाश पड़ रहा है। वह नित्य उठकर दिनमणिके इन किरण-कणोंका बड़े आदरसे अभिवादन करता था। आज उन्हें अभि-वादन करनेकी बात तक उसे याद न आयी। मुसाफिरखानेके सम्पूर्ण अपरिचित अतिथिके समान मुँह लिये वह इन किरणोंकी ओर बड़ी उदासीनतासे देखता हुआ पड़ा रहा। स्वच्छ शीशेके बाहर असीम नीलाकाश दिखाई दे रहा था। उसके मनमें यह प्रश्न उठा कि इस विराट् सृष्टिके किसी कोनेमे उसके लिये कहीं थोड़ा-सा भी स्थान है या नहीं। इसके बाद, विचारमे डूबकर जहांतक दृष्टि गयी देखा, कहीं भी उसके लिये ठौर नहीं है। सृष्टिकर्त्ताने इतने बड़े विश्वकी रचना की है, पर ऊपर, नीचे, आस-पास, जलमे, स्थलमे सुईकी नोकके बराबर स्थान भी उसके लिये नहीं रखा है। उसके माँ नहीं, बाप नहीं, घर नहीं, शायद जन्मभूमि भी नहीं है। उसे अपना कहनेवाला कहीं कोई नहीं है। इस छोटेसे कमरेके साथ वह हजारों बन्धनोंसे बँधा है। जबसे उसने होश सम्भाला है, तबसे इसी छोटे कमरेने गोदकी तरह उसे आश्रय दे रखा है। किन्तु वह भी अपना नहीं—यह उसके मामाका घर है। वह आश्रय अपनी माताका नहीं विमाताका है।

इस प्रकार दुःखकी चिन्ता जिस समय अत्यन्त जटिल हो रही थी, उसी समय एकाएक उपेन्द्रका कंठस्वर सुन, वह अपने

आपेमें आ गया। वह जल्दीसे उठ बैठा। खिड़की खोली और झाँककर देखा कि उपेन्द्र नौकरको कोई हुक्म देकर बाहर चले गये। वे तो किसी ओर न देख, सीधे रास्तेसे चले गये, किन्तु दिवाकरने अपनी दोनों आँखोंमे दुःखका अनुभव कर खिड़कीसे मुँह हटा लिया। उसे मालूम हुआ, मानों छोटे भैयाके उन्नत दृढ़ ललाटपर सूर्यकी कुछ किरणें धक्का खा उसकी आँखोंपर आ उन्हें चौंधियाकर चली गयीं। वह फिर एक बार बिछौनेपर आँख बन्दकर निर्जीवकी तरह लेट गया। उसी क्षण दुश्चिन्ताओंने उसे दबा दिया।

अभ्यासके अनुसार आज भी बड़े तड़के उसकी आँखे खुल गयी थीं सही, किन्तु गत रात्रिमे उसे नींद नहीं आयी थी। दुस्वप्नरूपी भूत-प्रेत सारी रात इस देहको घसीटते रहनेके बाद मानों अभी छोड गये हैं। उनकी छोडी हुई सासोंकी वायु अब भी कमरेके कोनेमे जमी हुई है, इसको वह आँखें बन्द किये ही अनुभव करने लगा। फिर फेल होनेकी बात याद आयी। अनेकों दुःख सहकर उसने पढ़ा-लिखा है, पर सब व्यर्थ गया! आज यह खबर सभी सुनेंगे। फिर? जैसे धुआँ छोटेसे एक सुराखसे भीतर आकर सारे घरमे भर जाता है, उसी प्रकार इस एकमात्र निष्फलताके छोटे द्वारके सहारे निराशाके घने अन्धकारमें उसका मन एकदम निमज्जित हो गया।

कोई आठ बजनेका समय है। वह दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधे उठ बैठा और बोला—“नहीं किसी तरह नहीं। छोटे भैया

चाहे नाराज हों, भाभी चाहे दुःखी हों किन्तु मैं किसी तरह विवाह न कर सकूँगा। जो गृहलक्ष्मी होगी; वह आपही मेरे घर आयेगी या कभी न आयेगी। आनेपर मैं उसकी सम्मान-पूर्वक प्रतिष्ठा करूँगा; लेकिन उसे असम्मानके बीचमें खींचकर नहीं लाऊँगा, इस संकल्पसे मुझे कोई विचलित नहीं कर सकेगा।"

दिवाकरने धीरे-धीरे मकानके भीतर प्रवेशकर सुरबालाके घरके सामने खड़े हो पुकारा—"भाभी ?"

भीतरसे कोमलकंठसे उत्तर मिला—"भीतर आओ"

दिवाकर भीतर गया। जाकर देखा, सुरबाला सिर नीचा किये अलमारीसे सामान निकालकर सन्दूकमें रख रही है। पूछा—"छोटे भैया देहात जायेंगे क्या ?"

सुरबालाने सिर नीचा किये ही कहा—"नहीं, कलकत्ते जायेंगे।"

इसके बाद दिवाकरको कोई प्रश्न न सूझा। जो शक्ति उसको ... निर्जन घरसे इतनी दूर खींच लायी थी, वह ऐन मौकेपर ... हो गयी। वह चुपचाप सोचने लगा, किस तरह बातका ...श किया जाये ?

इसी समय बरामदेमें जूतेका शब्द सुन पड़ा, साथ ही ...ने परदा हटाकर भीतर पाँव रखा। दिवाकर अत्यन्त संकु-... हो भागनेकी तैयारी करने लगा। उसी समय उपेन्द्र 'ठहरो' कहकर धीरेसे खाटपर बैठ गये और कपड़ा खोलते-खोलते

पूछा—"फेल कैसे कर गये ? रोज रातको एक-एक बजेतक जग-जगकर क्या करते रहे ?"

इस बातका जवाब ही क्या था ? दिवाकर सिर नीचा किये खड़ा रहा।

उपेन्द्र कहने लगे—"मालूम होता है, यहां रहकर तुम कुछ न कर सकोगे। जाओ, कलकत्ते जाकर पढ़ो।"

थोड़ी देर बाद जरा मुस्कराकर बोले—"भाभीके पास क्या दरबार करने आये थे ? व्याह नहीं करोगे, यही कहने आये थे तो ?"

यह सुनकर दिवाकरको बड़ी शान्ति मिली। उसका सारा दुःख मानों एकबारगी घुल गया। उसने सहसा मुस्कराकर सिर ऊपर उठाकर देखा।

यद्यपि उपेन्द्रके होठोंपर मुस्कराहट दिखाई पडी, पर उस मुस्कराहटका अर्थ कोई समझ नहीं सका। अनन्तर बोले—'अच्छा, अभी तो दिल लगाकर पढ़ो, आगामी अगहन तक तुम्हें छुट्टी है। वह अभी बहुत दूर है। स्त्रीकी ओर देखकर बोले—"सतीशने तार दिया है, कि हारान बाबूकी तबीयत बहुत खराब है। मैं रातकी ट्रेनकी प्रतीक्षा न कर सकूँगा। अभी ग्यारह बजेकी गाड़ीसे जाऊँगा। जरा थर्मामीटर तो दो। देखूं, ज्वरने पीछा छोड़ा है या नहीं—अरे! इतना बडा ट्रङ्क साथमे ले जाकर क्या करूँगा ? एक छोटी-सी पेटी दो।'

सुरबाला कपड़े सहेजकर ट्रङ्कमे रख रही थी। उसने

मृदु कंठसे कहा—"छोटी पेटीमें हम दोनोंके कपड़े न आयेंगे। मैं भी साथ चलूंगी।"

उपेन्द्र चौंक पड़े। बोले—"तुम भी चलोगी? पागल हो गयी हो क्या?"

सुरबालाने अपना काम करते हुए कहा—"नहीं" फिर दिवाकरकी ओर मुड़कर बोली—"देवरजी, जरा जल्दीसे स्नानकर खा-पी लो। तुम मेरे साथ चलोगे!"

दिवाकरने आश्चर्यके साथ उपेन्द्रकी ओर देखा। वे हँसते हुए बोले—"क्या तू भी पागल हो गया? हारान भैया बहुत बीमार हैं। मालूम होता है, उनके दिन करीब आ गये। मैं उनका क्रिया-कर्म करनेके लिये जाता हूं। तुम लोग ऐसे मौकेपर चलकर क्या करोगे? जाओ, तुम अपना काम करो।"

सुरबालाने इस बार मुँह ऊपर उठाया। दिवाकरकी ओर देखकर शान्त तथा दृढ़ स्वर से कहा—"मैं कहती हूं, तुम तैयार हो लो। तुम्हारे छोटे भैयाको तीन दिनसे ज्वर होता है, अबतक नहीं गया। मैं भी साथ जाऊंगी, तुमको भी साथ चलना। जाओ, देरी मत करो।"

उपेन्द्र मन-ही-मन विस्मित हुए। उन्होंने इससे पहले सुर-को कभी इस तरह दिवाकरके साथ या घरके किसी ...मी के साथ बातें करते नहीं सुना था। वे यदि अपने कानोंसे सुनते तो शायद विश्वास ही न कर सकते, कि वह स्वच्छ-न्दतासे एक नौजवान आदमीपर छोटे बच्चेके समान इस प्रकार

हुक्म जारी कर सकती है। उन्होंने कुछ झल्लाकर कहा—"ऐसी विपत्तिके समय तुम लोग भी वहाँ चलकर क्यों विपत्तिको बढ़ाना चाहते हो ? नहीं, तुम्हारा जाना न होगा।" उनकी आखिरी बातमें कुछ कठोरता थी।

सुरबाला उठकर खड़ी हो गयी, पतिकी ओर देख पूर्ववत् दृढ़ स्वरसे बोली—"तुम सबके सामने, सब बातोंमें, मुझपर नाराज क्यों होते हो ? तुम बीमारीकी हालतमें यदि बाहर जाओगे तो मैं भी साथ जाऊँगी। नौ बज गये, खड़े मत रहो दिवाकर बाबू जाओ।

दिवाकरके आगे उपेन्द्रने जो रूखी बात सुरबालासे कही, उसके लिये वे बहुत लज्जित हुए, बोले—"नाराज क्यों हूंगा ? तुमपर नाराज नहीं होता; किन्तु पिताजी सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ? सोचो, जाओ दिवाकर, तुम खा-पी लो।"

सुरबालाने कहा—"बाबूजी मुझे साथ जानेकी आज्ञा दे चुके हैं।"

"इसी बीच उनसे भी इजाजत ले चुकी हो ?"

हाँ जाती हूं। तुम्हारा दूध लिये आती हूं।"—कहकर सुरबाला बाहर चली गयी। उपेन्द्र अरगनीको ताककर दुपट्टा उसपर फेंक, चित हो लेट रहे। सुरबाला साथ जायेगी ही, स्वामीके अस्वस्थ शरीरको आँखोंकी ओट न करेगी, इसमें कुछ भी सन्देह न रहा। दिवाकर तैयार होनेके लिये धीरे-धीरे बाहरकी ओर चला।

उपेन्द्र सोचने लगे, कि सुरबालाने जिद कर एक नयी समस्या पैदा कर दी। कलकत्ता पहुंचकर उसकी क्या मीमांसा की जायगी। कहाँ जाकर ठहरेंगे? हारान भैयाके यहाँ तो असम्भव ही है। कारण, वहाँ केवल स्थानाभावका ही सवाल नहीं है, किरणमयीका स्वामी मर रहा है और उसीकी आँखोंके आगे सुरबाला अपने स्वामीको जरा भी तकलीफ सहते न देख सकेगी, रुचने न रुचनेका कुछ भी विचार न करेगी, शिष्टाशिष्ट आचरणकी सीमा लांघकर भी वह स्वामीके स्वास्थ्यकी प्रतिक्षण रखवाली करती फिरेगी! मनमें यह विचार उठते ही उनको लज्जा मालूम हुई। बैरिस्टर मित्र ज्योतिपरायके घर उतरनेपर भी बड़ी गड़बड़ी होगी। सुरबाला कट्टर हिन्दू है। इसी उम्रमें वह यथारीति जप-तप करती है। उस घरमें वह अहिन्दू आचार आँखों देखकर शायद पानी भी न पीयेगी। उतने बड़े मकानमें एकमात्र माँके शुद्ध आचार-विचारसे क्या होगा? इसके सिवा वहाँ सरोजिनी है। वह सुरबालाको सदा घेरे रहेगी। उसीके ... रहकर उसे बारम्बार 'यह मत छूना—वह मत छूना' करते ... न तो सुखकर होगा और न उचित ही। बाकी रहा ...। उपेन्द्रने सुना था कि वह अपने नवीन वासस्थानमें ... ही रहता है। स्थान भी यथेष्ट है। विशेषतया वह भी ...-तपका प्रेमी है। सतीश और दिवाकर दोनों ही आचारवान् ...। इन दोनों देवरोंके साथ रहनेसे सुरबाला प्रसन्न ही रहेगी। उपेन्द्रने फौरन सतीशको तार दे दिया कि हम रवाना हो रहे हैं।

तार पाकर सतीश स्टेशनको चला।

सचमुच ही सतीशकी देह और मनको विधाताने बड़े कड़े पदार्थसे बनाया था। इसीसे उस दिनसे मरणासन्न हारानके अभागे परिवारवर्गके सारे भारको जैसे उसने अपने कन्धोंपर ले लिया था, सावित्री और विपिनके इतिहासको भी वह वैसेही सहन कर सका था।

इस इतिहासको जानता था बिहारी और उसके परम पूज्य गुरुदेव रसोइया महराज। बिहारी समझता था कि महराज सावित्रीको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखता है। इसीसे कल दोपहरको भी महराजका प्रसाद पा, छोटी-सी चिलमको औंधकर उसने कहा था—"छिः छिः देवताजी, अन्तमें उस छोकरीने कितनी भद्दी भूल की। उसने मेरे बाबूको पहचाना नहीं, नहीं तो क्या सोना छोड़कर कभी गेरूको आँचलमें गठियाती? आखिर विपिन बाबूके साथ चली ही गयी।"

महराजने जरा हिल डोलकर जवाब दिया—"बिहारी, निमाई संन्यासमें लिखा है—"मुनीनाञ्च मतिभ्रमः।" नहीं तो सावित्री सरीखी औरत इतनी बेवकूफी क्यों करती? किन्तु मैं यह भविष्यवाणी करता हूं, कि उसे एक-न-एक दिन जरूर पछताना होगा। सावित्री देखने-सुननेमें बुरी न थी। मेरे पास उठने-बैठनेसे और उपदेश सुननेसे उसने भलेमानसोंके साथ बातें करनेका तरीका भी सीख लिया था। जवानीकी उम्र थी, सतीश बाबूकी नजर भी गड़ चुकी थी, यदि रह जाती तो

अन्तमें अच्छा ही होता। किन्तु उसने मेरी सलाह तक न ली। दुनिया भरके लोग संकट आ पड़नेपर जो मेरे पैरोंपर नाक रगड़ते हैं, सो क्यों ? अभी उस दिन रामूकी माँ

रामूकी माँ कौन थी और ,उसने महराजजीसे क्या और किस विषयपर सलाह ली थी, इत्यादि बातें जाननेकी उत्कण्ठा बिहारीको न थी, इसलिये वह बीचमें ही बोल उठा—"देवताजी, चाहे जो कुछ कहो, बाबू हो तो मेरे मालिकके जैसा हो। कलकत्तेमें मैंने बहुतसे बड़े आदमी देखे, किन्तु ऐसा जवान, ऐसा कलेजेका मजबूत तो किसीको नहीं देखा। हाथीके दांत मर्दकी बात, जो मुँहसे निकली वह फिर लौटनेकी नहीं। उस दिन मैंने कह दिया था, "बाबूजी, बस करें रहने दें।" उसी दिनसे आजतक घृणासे एक दिन भी उन्होंने उसका नामतक न लिया ! और पहले उसे कितना चाहते थे।—क्या कहते हो देवता ?"

महराजने सिर हिलाकर जबाब दिया—"यह बात तो मैंने हले ही कह दी है। इसीसे तो इतनी खून-खराबियां होती। जेल फांसीकी नौबत आती है। एक बार आंख लड़ जानेपर फिर कहना ही क्या है समझे बिहारी ?"

बिहारी कांप उठा। उसका मुंह पीला पड़ गया। डरते कहा—"नहीं-नहीं, देवता, मेरे बाबू वैसे आदमी नहीं हैं। लेकिन वह है कहां ? कुछ जानते हो ? इस बीचमें कहीं घाट-बाटमें ···।

महराज जोरसे हँस पड़े, बोले—"तू भी कैसा वज्र मूर्ख है बिहारी! अरे वह क्या विपिन बाबूके यहाँ मेहनत-मजदूरी करने गयी है, जो घाट-बाटमे दिखाई पड़ेगी। उसने खुद ही कितने नौकर चाकर रखे होंगे विश्वास न हो तो जाकर देख आ।"

बिहारीके सिरसे मानो एक बोझ-सा उतर गया। मुस्कुराते हुए सिर हिलाते हुये कहा—"मैं भी यही समझता था और सोचता था कि एक बार महराजजीके पास जाऊं, देखूँ वे क्या कहते हैं। यही कहो देवता, आशीर्वाद दो कि वह राज-रानी होकर रहे, गाडी-पाल्कीपर चढ़कर घूमे, ताकि इस जीवन मे कभी चार आँखें होनेका मौका ही न आये।" यह कह, वह महराजकी चरणरज माथे चढ़ा, वहाँसे चल पड़ा।

बिहारी इस बार जबसे कलकत्ते आया है, तबसे इस बातसे डरता रहता है, कि कहीं संयोगवश दोनोंसे देखादेखी न हो जाये और इसी कारण सतीशके बाहर जानेसे वापस लौटनेतक वह इस भयसे व्याकुल रहता है। पश्चिम जाकर घरके पुराने नौकर-चाकरोंसे वह सुन चुका था, कि सतीश अत्यन्त क्रोधी है। सावित्रीने जो काम किया है, उससे खून-खराबी तककी नौबत आ सकती है, यह भी उससे अविदित न था। पर सावित्री दास-दासियोंके साथ गाडी या मोटरपर बैठकर घूमने फिरने भी निकल सकती है, इस बातकी कल्पना भी किसी दिन बिहारी ने नहीं की थी, आज महराजकी बातें सुनकर वह

बहुत कुछ निश्चिन्त—निर्भय हो रहा। सावित्रीपर उसे बड़ा क्रोध हो गया। वह शान्तिपूर्वक रास्ता तय करता हुआ प्रति-क्षण आशा करने लगा कि शायद किसी बड़ीसी जोड़ी गाड़ी पर सावित्री उसे सचमुच राजरानीके वेशमें दिखाई दे। विहारी सावित्रीको बड़ी ऊंची निगाहसे देखता था। वह कौन है, कैसे रानी बन सकती है, यह सब अनावश्यक प्रश्न उसके मनमें जगह न पाते थे। सावित्रीपर उसका एक अपूर्व स्नेह था—एक श्रद्धा थी। वह दुःखी है, मेरी तरह दूसरों की सेवा-टहल करती है यह बात सोच कर भी मारे लज्जा और संकोचके उसका सिर झुक जाता था। इसलिये उस दिनकी घटना अपनी आँखों देखकर भीतर ही भीतर बड़ा दुःख, बड़ी यातना पाकर ही विहारी अत्यन्त रुष्ट हुआ था। किन्तु आज ज्यों ही उसने सुना कि सावित्री उसके मालिकके पथका काँटा नहीं रही, त्योंही सर्वान्तःकरणसे यह शुभकामना की कि सावित्री सुखी हो, राजरानी बनकर रहे।

१८

हारानके जीवन-मरणके संग्रामने क्रमशः मानो एक करुण-तमाशेका रूप धारण किया। मृत्यु भूखे साँपकी तरह लगातार खींचकर पेटमें डालना चाहती थी और वह विशाल बरसाती मेढककी तरह दोनों पाँवोंमें उसका जबड़ा उलझाकर एक अद्भुत कौशलसे आत्मरक्षा कर रहा था। ऐसा

प्रतीत होता था, मानों उसके अशेष दुःख सहनेवाले प्राण किसी दिन शरीरको छोड़कर जायेंगे ही नहीं।

इस विपत्तिके समय सतीश मदद देने आया था; किन्तु किरणमयीकी पतिसेवा देख, वह स्तम्भित हो गया। उसने स्वयं भी बहुत कुछ देखा-सुना था, स्त्रियोंके लिये स्वामी ही सब कुछ हैं, यह भी जानता था, किन्तु चाहे जिस कारणसे हो, कोई मनुष्य सब कुछ जान-बूझकर परिणामकी व्यर्थताको भली भांति समझकर भी इस प्रकार प्राणोंकी बाजी बदकर सेवा कर सकता है, इसकी तो वह कल्पना भी न कर सकता था।

यह कैसी अद्भुत सेवा है! प्रति दिन, सारी रात चारपाईके पास बैठकर जागते रहना, सारा दिन अक्लान्त परिश्रम करते रहना और मुँहपर अवसाद-विषादका चिन्ह तक नहीं! मुंह देखकर समझा नहीं जा सकता, कि इतनी बड़ी विपद् उसके माथेपर मँडरा रही है।

सतीश अपनी इस भाभीको वास्तवमें बड़ी बहनकी तरह मानने लगा था। उसकी ऐसी एकान्त, उद्वेग-रहित पति-सेवाको देखकर वह अत्यन्त दुःखके साथ सोचता था कि चाहे जिस कारणसे हो, भाभीको आशा है, कि उनके स्वामी अच्छे हो जायेंगे। इसलिये अन्तमें उनके मनको असह्य वेदनाकी जो चोट लगेगी, उसकी कल्पना कर सतीश व्याकुल हो उठता था और किस प्रकार उस अप्रिय सत्यको वह किरणपर

प्रकट कर सकता है, इसकी भी उसे सदा चिन्ता लगी रहती थी।

एक दिन वह था, जब सतीश अपनेको बड़ा बुद्धिमान समझता था—लोकचरित्रका परखैया होनेका उसे घमण्ड था; किन्तु जब सावित्रीके व्यवहारोंसे उसके इस घमण्डको बड़ी ठेस लगी, जब सावित्री उसे छोड़कर विपिनके पास चली गयी, तभी उसे विश्वास हो गया था, कि वह बुद्धिमान नहीं है, वह लोकचरित्रका परखैया भी नहीं है। मनुष्यके मनके भीतर क्या है और क्या नहीं है, इस विषयको लेकर जिसकी खुशी हो आलोचना करे, शेखी बघारे; किन्तु वह अब इसके फेर में नहीं पड़ेगा। इस विषयकी याद भी उसकी सुप्त लज्जा और अनुशोचनाको जगा देती है। अपनी उसी बुद्धिके भरोसे उसने इस भाभीके सम्बन्धमे भी कितनी ही बातें सोची थीं और उपेन्द्र भैयाको सीख देना चाहा था।

आज सवेरे सतीशने हारानके घर पहुंचकर देखा कि किरणमयी सदाकी भाँति शान्तोज्ज्वल मुखसे घरके काम-काज कर है। दो-तीन दिनसे सासकी तबीयत फिर बिगड़ गयी। कल रातको बुखार कुछ अधिक बढ़ गया था और इससे अभी तक चारपाईपर पडी हुई है। किरणमयीका मुंह देखकर बातका अनुमान करना कठिन था। इससे सतीशको त्य सब हाल-चाल पूछना पड़ता था। आज प्रश्न करते ही किरणमयी काम-काज छोड़ मुँह ऊपर उठा कुछ देर ताकती

हकर बोली—"अब देर करनेकी जरूरत नहीं, तुम अपने उपेन्द्र भैयाको आनेको लिख दो।"

सतीशने डरकर पूछा—"क्यों भाभी?"

किरणमयीके मुँहको मानों शरदऋतुके बादलके एक छोटेसे धुँधले टुकड़ेने ढँक लिया। इस मुखके साथ जिसका विशेष परिचय नहीं, उसे यह छाया नजर नहीं आ सकती। उसने एक गहरी साँस लेकर कहा,—"मालूम होता है, यन्त्रणाका अन्त अब पास आ रहा है—तुम एक तार दे दो।"

सतीश कुछ देर चुपचाप ताकता रहा। अनन्तर बोला—"भाभी, मैं भी यह समझता था, किन्तु यह सोचकर कि कहीं तुम डर न जाओ, कहनेका साहस नहीं करता था।"

किरणमयीने सहज भावसे कहा—"डरनेकी बात तो है ही। उनकी साँसका लक्षण परसोंसे बदल गया है कल रातसे साँस जरा और बढ़ गयी है। वह घटेगी नहीं, इसीसे उनको तार देनेको कहती हूँ!"

सतीशको यह मालूम न था। इससे वह चौंक उठा, बोला—"यह तो मुझे मालूम न था। तुमने बताया भी नहीं।"

किरणमयीने कहा—"नहीं। साँसकी गति इतने सूक्ष्म रूपसे बढ़ रही है कि दूसरेको एकाएक मालूम नहीं हो सकता। फिर भी आज विशेष भय नहीं। किन्तु देखो, विपदपर विपद आती जा रही है। कलसे माँकी बीमारी भी टेढ़ी हो चली है। अभी देख आयी हूँ, खूब ज्वर है, बीच-बीचमें बड़बड़ा भी उठती हैं।"

यह कहकर वह जरा मुस्कुरायी, किन्तु उस मुस्कुराहटमें खुशी नहीं थी—"उसे देखकर रोना आता था।

सतीशकी आँखें डबडबा आयीं। उसने रुद्ध कण्ठसे धीरे-धीरे कहा—उपेन्द्र भैया आ जायें, तभी ......"

किरणमयीने कहा,—"और एक बात सुनोगे ?"

सतीश चुपचाप ताकता रहा।

किरणमयीने कहा—"परसों शामको वकीलकी एक चिट्ठी मिली है। उसमे लिखा है, कि दो साल पहले इन्होंने अपने एक मित्रको, अपनी जमानतपर तीन हजार रुपये कर्ज दिलाये थे। मित्रने रोजगार डुबोकर, असल और सूद मिलाकर कोई चार हजार रुपया इनके मत्थे मढ़, विष खा, दुनियासे नाता तोड़ दिया। वकीलने यह जानना चाहा है, कि इस टूटे-फूटे मकानकी ईंट-लकडी वेचनेसे उसका वह कर्ज पट सकता है या नहीं।" कहकर वह फिर वैसे ही मुस्कुरायी।

सतीश मुंह नीचाकर जमीनकी ओर देखता रहा। आंखें उठाकर उसकी ओर देखनेतकका वह साहस न कर सका और उस प्रश्नका जवाब ही दे सका।

सतीश उपेन्द्रको तार दे, जब वापस लौटा, तब दस बजे। धीरे-धीरे रसोईघरमें जा पहुंचा। किरणमयी सासके साबूदाना तैयार कर रही थी। उसने सतीशकी ओर मुड़ कहा, 'बैठो।' उसका गला कुछ भारी था।। सतीशने ध्यानसे देखा, आंखोंमें आसू तो नहीं थे, पर पलकें भींगी थीं। वह पास

ही चटाईपर बैठ गया। आज किरणमयीने आसन लानेकी बात न कही। वह कहां बैठा, क्या किया शायद यह भी उसे दिखाई न दिया। अबतक किसी छोटेसे छोटे विषयमें भी सतीशने उसकी त्रुटि नहीं देखी थी। वह इतने दिनोंसे आ-जा रहा है, इतना मेल-जोल बढ़ गया है, पर एक दिन भी उसने भाभीके सहज सरल व्यवहारमें थोडा भी सौजन्यका अभाव और घनिष्टताका रत्तीभर भी अपव्यवहार कभी नहीं पाया था। इसीसे आजकी इस नाम मात्रको लापरवाहीने मानो उसकी आखोंमें उंगली डालकर दिखा दिया, कि भाभीका मन किसी भारी बोझसे दबा हुआ है।

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। सहसा किरणमयी अपने आप ही व्यंगकी हँसी हँस पडी, मानो वह इतनी देरतक इस व्यंगको ही चिन्तामें डूबी हुई थी। कहा—"अच्छा, बताओ तो सही, यमराजके खातेका यह लेना-देना चुक जानेके बाद मेरे लिये भीख मांगकर पेट पालना अच्छा होगा या नौकरी करके?" सतीश इसका आशय समझ गया, बोला—उपेन्द्र भैयासे पूछना, वे ही इसका जवाब देंगे।

किरणमयीने कहा—"और बिना पूछे भी तो समझ सकती हूं, कि वे शायद दयाकर मुझे खानेको देंगे, किन्तु दूसरेपर निर्भर रहना भी तो भीख मांगना ही है।"

सतीश प्रतिवाद करनेकी इच्छा रखकर भी कोई बात न सूझनेसे चुपचाप ताकता रहा।

किरणमयीने उसके मनका भाव समझकर जरा मुस्कुराकर कहा—"साफ बातें कुछ रूखी होती हैं, यह मैं जानती हूँ, किन्तु बात सच है।" कुछ काल चुप रहकर फिर बोली—"यह मत समझो कि मैं तुम्हारे भैयाको पहचान न सकी हूं। मैंने उनको पहचान लिया है। समझ गयी हूं कि अनाथको आश्रय देना वे जानते हैं, किन्तु केवल देना ही तो नहीं है, लेना भी तो है! लिये विना किसीको कभी देते नहीं देखा, किन्तु सारी जिन्दगी किसीका मन रखकर विता सकना भी कम मुश्किल नहीं—यह बात अच्छी तरह समझती हूं।"

फिर भी सतीशको मानो कोई उत्तर न सूझा। वह चुपचाप सुनता रहा। किन्तु किरणमयी कुछ आवेशमें आ गयी थी, उसने जवावकी राह न देखी, कहा—"इस दुनियाके साथ कार-बात करते मुझे बहुत दिन नहीं हुए है, तो भी देना-लेना चुकानेके लिये अभी बहुत बाकी है। जीवनकी अवशिष्ट लम्बी अवधिमें, भावी कार्यक्रममें, कितने ही दोष हो सकते हैं, भ्रान्तियां हो सकती हैं, त्रुटियां रह सकती हैं। वैसी दशामें वे ही क्या कर,देंगे और मैं ही कौन-सा मुह लेकर हाथ पसा-ं ? उस समय मुझे फिर शुरूसे अपने रास्तेपर चलना ।।"

इतनी देरतक सतीश श्रद्धा और व्यथाके साथ उसकी भरी बातें सुन रहा था; किन्तु आखिरी बातसे मानो ..कर चौंक उठा, बोला—'यह क्या कहती हो भाभी ?

भूल चूक तो सभीसे होती है; पर तुमसे वैसी भूल ही क्यों होगी ?"

किरणमयी सतीशके विस्मयको समझकर हँसी। पीछे अपने कण्ठस्वरको कोमल कर बोली—"क्यों देवरजी, मैं भी तो मनुष्य ही हूं।"

हँसी देखकर सतीश अपनी गलती समझ गया। क्षणिक उत्तेजनामें आकर उसका मन कुत्सित अर्थकी ओर दौड़ गया था, लज्जासे सिर नीचे झुकाकर बोला—"मुझे माफ करना भाभी, मैं जैसा निर्बोध हूं, वैसा ही दुरात्मा भी।"

किरणमयी जवाब न दिया, फिर जरा मुस्कुरायी।

सहसा सतीशका अनुतप्त, अपराधी मन जोशमें आ गया, वह बोल उठा—"केवल उपेन्द्र भैया ही क्यों, क्या वे ही सब कुछ है ? मैं कोई नहीं—कुछ नहीं ? मैं तुमको उनका आश्रय न लेने दूंगा।"

किरणमयीने हँसकर कहा—बात तो एक ही है तुम्हारे भैया हो या तुम। तुम्हारे आश्रयमें रहकर भी तो तुम्हारा मन रखकर तुमसे भीख लेनी होगी।"

सतीशने कहा—"नहीं, यह बात नहीं। कारण, मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं, लेकिन उपेन्द्र भैया तुम्हारे स्वामीके मित्र हैं। जरूरत होगी, तो बहनकी रक्षाका भार मैं ही लूँगा।'

"किन्तु यदि मैं तुम्हारा मन रखकर न चल सकूं ?"

"तो मैं भी वैसा ही करूँगा।"

किरणमयीने कहा—"यदि कोई अपराध करूं ?"

सतीशने जवाब दिया—"तो भाई-बहनमें झगड़ा होगा।"

किरणमयीने फिर पूछा—"इस जिन्दगीमें यदि किसी दिन भूल-चूक हो जायेगी, तो मेरा यह छोटा भाई क्या मुझे क्षमा कर सकेगा ?"

सतीश मुंह ऊपरकी ओर उठाकर थोड़ी देर तक देखता रहा। इसके बाद सहसा अत्यन्त व्यथित स्वरसे बोला—"भाभी, तुम्हारी इस भूल-चूकका अर्थ मेरी समझमें नहीं आया। छोटा भाई अगर कोई बात नहीं समझे, तो उसे समझा देना पड़ता है उचित समझो तो बताओ, नहीं तो जाने दो। जो हो, यदि तुम किसी दिन ऐसा अपराध भी करोगी, जिसकी बात मनमें सोची तक नहीं जा सकती, तब भी मैं यह तो भूल न सकूंगा कि, मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं।" इसी समय उसे सावित्रीकी याद आयी। कहा,—"भाभी! आज अपने इस छोटे भाईके अहंकारको क्षमा करो। किन्तु इस जीवनमें जो अपराध मैं क्षमा कर सका हू, उसे क्षमा करनेमें शायद भगवानकी छाती कांप उठती। उसने देखा, किरणमयीकी आंखोंसे आंसू बह हैं। सतीशने बैठकर कहा—"जीजी, इधर देखो, मेरी बात ! आज मैं वह सतीश नहीं हूं, जिसने एक दिन 'द्धिकी स्पर्द्धासे प्रेरित होकर तुम्हें तानेके साथ भाभी कहकर था।" कहते-कहते उसका मुख-मण्डल प्रदीप्त हो । उसने बड़े जोरसे सिर हिलाकर कहा—"नहीं-नहीं, अब

मैं वह सतीश नहीं रह गया हूं। यदि वही होता, तो तुम्हें कभी पहचान नहीं सकता। उसने तुम्हारा सम्मान करना—पूजा करना नहीं सीखा था। इसीसे उसने ठाकुरजीको पत्थरका पुतला कहकर उपहास किया था, पर अपने महापातकके भारसे वह आप ही डूब चुका है, वह अब नहीं रह गया है।" यों कह, वह गर्दन टेढ़ीकर मानो अपने हृदयके भीतर गोता लगाकर कुछ टटोलने लगा।

किरणमयी एकटक उसकी ओर देखती रही। इसके बाद उसने अत्यन्त मृदु-कंठसे धीरे-धीरे पूछा—"कैसे हमे पहचाना भाई?"

सतीशने मुँह नीचाकर कहा—"वह बड़ोंके सामने कहने योग्य बात नहीं है।"

"कहने योग्य बात नहीं। ऐसी क्या बात है?" अकस्मात् संशयसे, भयसे किरणमयीका मुँह पीला पड़ गया। बोली—"क्या कहते हो?"

"क्यो भाभी।

'मुंह सीधा करो, देखूं तो सही।"

सतीशने कुछ देरतक चुप रह मुंह ऊपर किया। किरणमयी थोडी देर एकटक देखती रही, फिर बोली—"देवरजी, तुम हृदयमे भारी व्यथा लिये यहाँ आते-जाते हो, यह मैं कई दिनोसे परख रही थी, किन्तु पूछनेका अधिकार न होनेसे नहीं पूछा, पर आज? आज तुम मेरे छोटे भाई हो, बात क्या है, बात दो।"

सतीशने सिर नीचाकर कहा—"वह बड़ी ही लज्जाकी बात है, भाभी।"

किरणमयीने कहा,—"होने दो लज्जाकी बात। तुम्हें अपनी इस बहनका इस दु:खमें हिस्सा बाँटना ही होगा। मैं तुम्हें अकेले ही व्यथा लिये जाने न दूँगी।"

इसके बाद एक-एककर किरणमयीने आरम्भसे इस दु:खका बहुत कुछ इतिहास जान लिया। अन्तमें कहा—"ऐसा काम क्यों किया?"

सतीश चुप रहा।

किरणमयीने पूछा—"वह कौन थी?"

सतीश सिर नीचाकर कुण्ठित कण्ठ से बोला—"अभागिनी....."

किरणमयीने लम्बी साँस भरकर कहा,—"अब वह कहाँ है?"

"नहीं जानता।"

"खोज नहीं की?"

सतीशने मृदुस्वरसे कहा,—"खोजनेकी क्या जरूरत? सुना वह अच्छी तरह है।"

किरणमयीने कहा—'अच्छी तरह है? छि:। छि:।। क्योंकर धोखेकी टट्टीमें जा फँसे?"

इस बार सतीशने फिर मुँह ऊपर उठाया। साफ शब्दोंमें ाब दिया—"मुझे धोका नहीं हुआ भाभी, धोकेमें तो वही पड़ी। मैंने प्रेम किया था और वह प्रेम न कर सकी थी।"

किरणमयीने कहा—"फिर ?"

सतीश—"पहले वह अपने मनको नहीं समझा सकी । जब समझा सकी, तब चली गयी ।"

"बिना कहे-सुने छिपकर चली गयी ?"

सतीशने सिर हिलाकर कहा,—"नहीं, यह बात नहीं । जानेके पहले सावधान कर गयी, कि एक अस्पृश्य कुलटाको प्यार कर भगवानके दिये मनके मुंहपर कालिख न पोतो ।"

किरणमयी संभलकर बैठी, पूछा—"क्या कहकर गयी ?"

सतीशने सावित्रीके उस वाक्यको दुहराया ।

किरणमयी कुछ देरतक चुप रहकर बोली - "फिर यदि कभी भेंट हो, तो मुझे एक बार दिखलाना ।"

सतीशने विपिनकी बात यादकर कहा —"किन्तु अब भेंट नहीं होगी भाभी !"

किरणमयीके होठोंपर सूखी हँसी दिखाई दी । कहा—"ऊंहु ! फिर भेंट होगी ।"

"कब होगी ? क्यों होगी ?—न होना ही तो अच्छा है ।"

किरणमयीने सिर हिलाकर कहा—"कब भेंट होगी, यह नहीं कह सकती । किन्तु जब कभी वह दुःखमें पड़ेगी, विपत्तिमे फंसेगी तभी भेंट होगी । उसका फल अच्छा ही होगा, बुरा नहीं । वह चाहे कहीं हो, किन्तु वह तुमसे अधिक तुम्हारी भलाई चाहनेवाली है, यह बात कभी न भूलना ।"

उसी दिन शामसे कुछ पहले किरणमयी मरणासन्न स्वामीकी

उत्तम शय्याके पाससे उठकर कुछ क्षणके लिये बाहर जा खड़ी हुई। दरवाजेके पास ही दीवारके सहारे सतीश चुपचाप बैठा था शायद हरारतसे उसे नींदकी हल्की झपकी आ गयी थी। किरणमयीने विस्मित होकर कहा—"क्यों देवरजी, इस तरह बैठे क्यों हो ? घर क्यों नहीं जाते ?"

सतीशकी तन्द्रा टूटी। वह अकचकाकर उठ खड़ा हुआ; बोला—"नहीं भाभी !"

इतनी देर कहाँ थे ?"

"सड़कोंपर घूम रहा था, आज घर न जाऊंगा।"

किरणमयीने कहा—"नहीं-नहीं, यह बात क्या है ? खाओगे नहीं, सोओगे नहीं ? नहीं भाई मेरे, तुम घर जाओ, आज डरनेकी कोई बात नहीं है।"

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"भय हो या न हो, आज मैं तुमको अकेली छोडकर न जा सकूंगा। इसके सिवा मैं दुकान से खा आया हूं।"

किरणमयीने कहा—"नहीं, यह न हो सकेगा। मैं जानती दूकानके जलपानसे तुम्हारा पेट नहीं भरा होगा। इससे फिरसे रसोई बनानी होगी। मैं रसोई बना लेती, किन्तु कई ोंसे तुमने वक्तपर नहाया-खाया नहीं है, कल-परसों अच्छी सो भी नहीं सके हो, तुम्हारे शरीरपर यथेष्ट अत्याचार चुका है, अब ज्यादा नहीं। आज रातको यहाँ रहोगे, तो बीमार पड़ जाओगे। ऐसा मैं कभी न होने दूंगी।"

सतीश ने बिगड़कर कहा—"मैंने दो दिन कुछ कम खाया है, सोया भी कम है, इसीसे बीमार पड़ जाऊँगा और तुम तो एक महीनेसे नहीं सोयी ? तुम जो बिना खाये या कौर-दो-कौर खाकर इतनी मिहनत कर रही हो, यह क्या कम अत्याचार है ? तुम जब महीनोंमें न मरी तो मैं क्या दो दिनोंमें ही मर जाऊँगा ?"

किरणमयीने कहा—"तुम्हारी बातों से यह अर्थ निकलता है, कि एक महीने तक खाये-सोये बिना तुम भी खड़े रह सकते हो ?"

सतीशने कहा—"यह बात नहीं कहता, किन्तु··· ।"

किरणमयीने हँसकर कहा—"इसमे किन्तु-परन्तु क्या ? मैं स्त्री हूं, स्त्रियोंको क्या कभी बीमारी होती है ? नहीं। स्त्री नहीं मरती। क्या कहीं सुना है, कि बिना खाये-सोये या बेतरह खटते-खटते किसी स्त्री की मृत्यु हुई है ?"

सतीशने रुष्ट होकर कहा—"नहीं, कभी नहीं सुना। सुनता हूं कि स्त्रियां अमर होकर दुनियामें आती हैं।"

किरणमयीने कहा—"सच है, यही बात है। प्राण हो तब तो जाये, न हो तो जाये क्या ? भगवान स्त्रियोंके शरीरमें तो प्राण दिये ही नहीं हैं। मैं तो समझती हूं किसी स्त्री को गलेमे रस्सी बांधकर यदि दस-बीस बरस तक लटका रखा जावे तब भी वह नहीं मरेगी।"

सतीशने क्रुद्ध होकर कहा—"यह सब मैं सुनना नहीं चाहता। सुननेसे भी पाप लगता है।"

किरणमयीने गम्भीर होकर कहा—"सच बात सुननेसे पाप लगता है, यह किसने तुम्हें बताया है? अच्छा देवरजी, तुम स्त्रियोंका इतना अधिक पक्ष क्यों लेते हो? बताओ तो सही।"

सतीश वास्तवमें नाराज हो गया था, रूखे स्वरमे बोला—"भाभी, मैं समझता हूं कि तुम बारम्बार स्त्री-जातिकी आड लेकर केवल अपने ही ऊपर कठोर—गर्हित आक्षेप करती हो। क्यों करती हो, यह नहीं जानता; किन्तु आज मै तुमको मना कर देता हूं, तुम्हारे सम्बन्धका व्यंग या आक्षेप मैं तुम्हारे मुखसे भी सुनकर नहीं सह सकता। उससे मुझे बडी चोट पहुंचती है। अच्छा, मै जाता हूं।"

"सुनो तो!"

सतीश घूमकर खड़ा हो गया। बोला—"क्या?"

"सचमुच ही रुष्ट हो गये क्या?"

"क्रोध हो आता है, भाभी! संसारमे दो जनोंपर मैं देवताकी भक्ति रखता हूं। उपेन्द्र भैया पर और तुम पर। एकको द करते ही दूसरेकी भी याद अपने आप आ जाती है। तुम मैं एक साथ ही देखता हूँ; यहां गर्हित हंसी-मजाक सहन नहीं कर सकता। जाता हूँ, शायद खाकर आऊंगा।"

सतीश नीचे उतर गया।

किरणमयी आंखें बन्दकर चौखटपर माथा रख बेहोशकी

तरह खड़ी रही। उसके कानोंमें केवल वे ही शब्द प्रतिध्वनित होने लगे, "मैं तुम दोनोंको एक साथ देखता हूँ।"

१६

सतीशने अपनी जबानसे, इशारेसे भी कभी किसीके आगे सावित्रीका जिक्र नहीं किया। इसीसे किरणमयीको सावित्री-की बात बतानेके बादसे उसके सारे शरीरमें अमृतका स्रोत बहता था। किरणमयीको सतीश देवी समझता था। उसकी बातोंपर अटूट श्रद्धाके साथ विश्वास करता था। उसने कहा, है, 'दुःख पड़नेपर फिर भेंट होगी।' उसी समयसे सतीशके अन्तस्तलमें दुःखकी उन घड़ियोंके आनेकी प्रतीक्षा में विछोह-' का एक अपूर्व हाहाकार मच गया था। वे घड़ियां कैसी होंगी कैसे किस दुःखके रूप में दर्शन देंगी और कैसे उसपर दया करेंगी—यही सब बातें सोचता हुआ रास्ता तै करने लगा और आठ बजे रातको घर पहुंचा। घरमें पहुंचकर जिस वस्तुकी ओर नजर गयी, उसीने आज विशेषतासे उसकी दृष्टि आकर्षित की। कपड़े खोलकर अरगनोमें लटकाते समय देखा, कपड़े सजाकर रखे हुए हैं। हरिणके सींगोंपर शामको पहननेके कपडे सजे-सजाये रखे हैं। बैठते समय देखा कि कुर्सीपर आज मैले कपड़ोंका ढेर नहीं है। दो हफ्तेसे धोबी नहीं आया था और इसलिये मैले कपड़ोंका एक अम्बार कुर्सीपर बढ़ता जा रहा था। बैठते समय सतीश उनको जमीनपर फेंक देता था,

उठ जानेपर बिहारी फिर यथास्थान रख देता था। सात दिनोंसे मालिक और नौकर यही काम करते आ रहे थे, अचानक आज गठरीमें बँधकर वे अरगनीके कपड़ोंकी आड़में चले गये हैं। बिस्तरकी चादर, तकियेकी खोली बहुत मैली हो चुकी थी। आज चादर-खोली सब साफ हैं। मशहरी बहुत दिनोंसे बेढंगे तरीकेसे टंगी हुई थी, आज वह भी करीनेसे सीधी टांगी गयी है। लैम्प एक कोनेमें बराबर काजलसे काली होजाती थी। आज उसमें कोई दोष नहीं। बत्ती अच्छी तरह कटी हुई है। साफ रोशनी हो रही है। सभी तरफ यह सफाई—यह सजावट देखकर सतीश अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, परन्तु किसके हाथोंके स्पर्शसे यह परिवर्त्तन हुआ ? बूढ़े बिहारीका काम नहीं है। उसने पुकारा—"बिहारी।"

बिहारी ओटमें खडा था, सामने आकर बोला—"जी हाँ।"

सतीशने कहा—"यह सब सफाई तूने की है ?"

बिहारीने कोई जवाब नहीं दिया। सतीशने कहा,—"जब यह सब कर सकता है, तब घर-द्वार गन्दा क्यों किये रहता है ? आज बडा प्रसन्न हुआ।"

बिहारीने विनयके साथ सिर ज़रा झुकाकर कहा—"आप-एक तार आया है, बाबूजी!"

"कहाँ है ?" कहकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते ही मेजपर [illegible] हुए पीले लिफाफेपर नजर पड़ी। खोलकर देखा—"उपेन्द्र भैयाका तार है। वे ६॥ बजे की गाड़ीसे हवड़ा पहुंचेंगे।" घड़ीमें

प्रायः ८॥ बज चुके थे । घबड़ाकर कहा,—"बिहारी, जल्दीसे जाकर एक गाड़ी ले आ, उपेन्द्र भैया आ रहे हैं ।"

पांच मिनटके अन्दर बिहारीने गाड़ी लाकर खबर दी और किवाड़की ओटमें खड़ा होकर पूछा—"बाबूको घर ले आयेंगे तो ?"

सतीशने कुछ सोचकर कहा—"नहीं, आज रातको अब न लौटूंगा ।"

उपेन्द्र भैया सीधे हारान बाबूके ही घर जायेंगे, इसमें सतीशको संशय न था । कारण, उनके सस्त्रीके आनेकी सूचना तारमें न थी ।

सतीश इसी अवसरमें दो-चार गरम-गरम पूरियां गलेके नीचे उतार रहा था । बिहारीने ओटसे कहा—"बाबूजी, एक प्रार्थना है ।" किसी खास बातके लिये प्रार्थना करते समय बिहारी पण्डिताऊ-भाषाका प्रयोग करता था ।

सतीशने मुंह ऊपर करके पूछा—"क्या प्रार्थना है ?"

बिहारी 'जी, कहकर चुप हो रहा ।

सतीशने कहा—"जी क्या ? कुछ कहेगा भी ?'

बिहारीने संकुचित होते हुए कहा—"तीस एक रुपये देते ...."

सतीशने विस्मित होकर कहा—"अभी परसों ही तो तीस रुपये लिये थे —क्या घर भेज दिया ?"

बिहारीने मृदु स्वरसे कहा—"बाबूजी इसी लिये तो लिया था, किन्तु उस मेसके महराजजीके ...."

महराजका नाम सुनते ही सतीश जल उठा, बोला—"वह रुपया महराजको दे दिया—और यह रुपया किसे दान करेगा ?"

"नहीं, बाबू, दान नहीं करूँगा। एक आदमी बड़े दुःखमे पडा हुआ…… ।"

"कर्ज चाहता है ?"

"बाबूजी, उसे कर्ज क्योंकर दूँगा ……

सतीशने जल्दीसे भोजन समाप्तकर कहा—"तेरे पास हो तो तू बिहारी, मैं ऐसा बड़ा आदमी नहीं, जो रोज रुपया नष्ट करूँगा मैं न दे सकूँगा।"

इस बार बिहारीने हठपूर्वक कहा—"नहीं बाबूजी, दिये बिना काम न चलेगा। चाहे मेरी तनख्वाहसे ही दे दे।"

यह सुन सतीशने धमकाकर कहा - "तनख्वाह ? अबतक कितना रुपया ले चुका है ? बता तो सही।"

बिहारीने कहा—"जितने रुपये लिये हैं, उनसे लडकोंके लिये तीन बीघे जमीन और हल-बैल खरीद दिये हैं। इसके सिवा एक नया घर भी बनवा दिया है। पर वे रुपये तो मैंने अपनी तनख्वाह मध्ये नहीं लिये हैं। तनख्वाहके रुपये तो आपके पास ही जमा हैं। आज उसीमेसे दे दे बाबूजी !"

सतीशने हँसकर कहा—"लड़कोंके लिये जमीन और हल-बैल खरीदकर मेरा बडा उपकार किया है ! जा, मेरे पास रुपया नहीं है।" यों कह दुपट्टेको कन्धेपर रखकर सतीश स्टेशन जानेके लिये बाहर चला गया।

बिहारीने अपने घरमें आकर कहा—"बेटी, नहा-धोकर इस समय थोड़ा-सा कुछ खा-पी लो। कल सवेरे जैसे भी होगा, मैं रुपये ला दूँगा।"

सावित्री एक कमरेमे सहनपर आँचल बिछाकर पड़ी हुई थी। उठ बैठी, पूछा--"बाबूजीने रुपये नहीं दिये ?"

बिहारीने कहा—'जानती हो बेटी, दूसरेके दुःखके नामपर जब माँगा है, तब देंगे ही। मेरे मालिक दाता कर्ण हैं। अभी नहीं दिया, स्टेशन चले गये हैं, किन्तु कल सवेरे जब लौटेंगे, तब बुलाकर देंगे। तुम कुछ भी चिन्ता मत करो, इस समय उठकर कुछ खा-पी लो, सारा दिन तुमने यों ही बिना खाये बिता दिया !"

सावित्रीके मुर्झाये हुए, पीले पड़े चेहरे पर जरा-सी हँसी फूट निकली, बोली—"आज रातको न लौटेंगे, यह अच्छा ही हुआ। कल दोपहरकी ट्रेनसे काशी चली जा सकूँगी। क्यों बिहारी, यही ठीक रहेगा न ?"

बिहारीने कहा—"ठीक है बेटी !" फिर लम्बी साँस लेकर बोला—"एक मेरे मालिक हैं, एक तुम्हारे। घरसे बुडढ़ीने दुःख भरी एक चिट्ठी भेजी थी। बाबूजीसे पढाने गया, पढकर बोले, 'बिहारी, क्या तेरे घर-द्वार कुछ भी नहीं है ?' मैंने कहा, गरीब दुःखियोंके रहता ही क्या है, बाबूजी ?" वे और कुछ न बोले। चार दिन बाद छः सौ रुपये दे, मुझे घर भेज दिया। जमीन जगह खरीदी; हल-बैल खरीदे, घर-द्वार बनाया। सब कुछ

बाल-बच्चोंको सौंप; एक महीनेके भीतर मालिकके आश्रयमें लौट आया। बुढ़ियाने रोकर कहा कि मुझे भी साथ लेते चलो, एकबार चरणोंके दर्शन तो कर आऊं।" मैंने कहा नहीं, ऋण मत बढ़ा। तेरे जानेसे दो-एक सौ रुपये तुझे भी दे देंगे।" और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार होनेपर जो ५-७ रुपये दवा-दारूमें खर्च हुए थे, उनके लिये कर्जदार करार दिया और साफ कह दिया कि कर्ज चुका कर तब जाना। आह! नौकरी करने जाकर तुम्हें कितना दुःख हुआ बेटी! हम लोगोंको यह मालूम न था। इसीसे विपिन बाबूके नामसे तुम्हारी कितनी निन्दा की है। क्षमा करना बेटी नहीं तो मेरी जीभ सड़कर, गलकर गिर जायेगी।"

विपिनका नाम सुनकर सावित्री घृणासे उद्विग्न हो धीरेसे 'छिः छिः' कह उठी। किन्तु तत्क्षण ही भाव बदल; हंसकर बोली—"स्नान करूंगी विहारी; एक कपड़ा दे सकोगे?"

"कपड़ा?" विहारीने उदास होकर कहा—"तुम्हारे आशी-र्वादसे एक नहीं, दस-पांच दे सकता हूं कोई दुःख नहीं है, किन्तु शूद्रका पहना कपड़ा कैसे तुम्हें पहननेको दूं? चलो ऊपर एक धोया कपड़ा निकाल देता हूं।"

विहारी देव-द्विजपर भक्ति रखता था। अतएव प्रतिवाद न व्यर्थ समझ, सावित्री सम्मत हो, उसके पीछे-पीछे कमरेके बाहर आयी। सावित्री स्नान कर और सतीशकी बढ़िया देशी शान्तिपुरी धोयी धोती पहनकर मन-ही-मन जरा

हँसी। उसीके घरमें, उसीकी धोती पहन, उसीकी आचमनी-अर्घीसे सन्ध्या-वन्दन कर दिनभर भूखी रहनेके बाद विहारीकी लायी हुई विदेशी चीनीकी बनी परम पवित्र सोयेकी मिठाई खा, कुछ स्वस्थ हुई।

भोजनके बाद उसे पान और सुर्ती खानेकी बुरी आदत थी। वह बाजारका बना पान न खाती थी, यह विहारीको मालूम था। इसलिये वह इसी अरसेमें बाजारसे झटपट पान, सुपारी आदि ले आया था। एक तश्तरीमें पान-सुपारी ले सावित्रीके आगे रखने चला। यह देख, सावित्रीने हँसकर कहा—"विहारी, देखती हूं, तुमने मुझे जरा भी नहीं भुलाया है।"

विहारीने जवाब दिया—"आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूं। बेटी, तुमको एकबार देख लेनेपर पशु-पक्षी भी नहीं भूल सकते।" कहकर टेबुलके ऊपर लेम्प लाकर उसने दरवाजेके पास रख दी और तश्तरीको आगे सरका, पान लगानेको कहा और आप हिन्दुस्तानी रसोइयेसे सूखी खैनी लानेके लिये रसोईघरकी ओर चला।

सावित्री किरासन तेलके उज्ज्वल प्रकाशको आगे रख, पान लगाने बैठी। सिरपर कपड़ा नहीं, भीगे बाल सारी पीठपर फैल नीचे जमीन तक बिखरे पड़े हैं। दो-एक लटें आंचलके काले किनारेसे मिल कंधेसे नीचेकी ओर लटक रही हैं। स्त्रीके बीमारी, सिकुड़े, सूखे चेहरेपर जो स्वाभाविक और छिपा हुआ माधुर्य होता है, वह इस कृशाङ्गीके सद्यस्नात मुखमण्डलपर

बाल-बच्चोंको सौंप; एक महीनेके भीतर मालिकके आश्रयमें लौट आया। बुढ़ियाने रोकर कहा कि मुझे भी साथ लेते चलो, एकबार चरणोंके दर्शन तो कर आऊं।" मैंने कहा नहीं, ऋण मत बढ़ा। तेरे जानेसे दो-एक सौ रुपये तुझे भी दे देंगे।" और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार होनेपर जो ५-७ रुपये दवा-दारूमें खर्च हुए थे, उनके लिये कर्जदार करार दिया और साफ कह दिया कि कर्ज चुका कर तब जाना। आह! नौकरी करने जाकर तुम्हें कितना दुःख हुआ बेटी! हम लोगोंको यह मालूम न था। इसीसे विपिन बाबूके नामसे तुम्हारी कितनी निन्दा की है। क्षमा करना बेटी नहीं तो मेरी जीभ सड़कर, गलकर गिर जायेगी।"

विपिनका नाम सुनकर सावित्री घृणासे उद्विग्न हो धीरेसे 'छिः छिः' कह उठी। किन्तु तत्क्षण ही भाव बदल, हंसकर बोली—"स्नान करूंगी बिहारी, एक कपड़ा दे सकोगे?"

"कपड़ा?" बिहारीने उदास होकर कहा—"तुम्हारे आशीर्वादसे एक नहीं, दस-पांच दे सकता हूं कोई दुःख नहीं है ... किन्तु शूद्रका पहना कपड़ा कैसे तुम्हें पहननेको दूं? चलो ...चूक। एक धोया कपड़ा निकाल देता हूं।"

बिहारी देव-द्विजपर भक्ति रखता था। अतएव प्रतिवाद न व्यर्थ समझ, सावित्री सम्मत हो, उसके पीछे-पीछे ...रेके बाहर आयी। सावित्री स्नान कर और सतीशकी बढ़िया देशी शान्तिपुरी धोयी धोती पहनकर मन-ही-मन जरा

हँसी। उसीके घरमें, उसीकी धोती पहन, उसीकी आचमनी-अर्घीसे सन्ध्या-वन्दन कर दिनभर भूखी रहनेके बाद बिहारीकी लायी हुई विदेशी चीनीकी बनी परम पवित्र खोयेकी मिठाई खा, कुछ स्वस्थ हुई।

भोजनके बाद उसे पान और सुर्ती खानेकी बुरी आदत थी। वह बाजारका बना पान न खाती थी, यह बिहारीको मालूम था। इसलिये वह इसी अरसेमें बाजारसे झटपट पान, सुपारी आदि ले आया था। एक तश्तरीमें पान-सुपारी ले, सावित्रीके आगे रखने चला। यह देख, सावित्रीने हँसकर कहा—"बिहारी, देखती हूँ, तुमने मुझे जरा भी नहीं भुलाया है!"

बिहारीने जवाब दिया—"आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूं। बेटी, तुमको एकबार देख लेनेपर पशु-पक्षी भी नहीं भूल सकते।" कहकर टेबुलके ऊपर लेम्प लाकर उसने दरवाजेके पास रख दी और तश्तरीको आगे सरका, पान लगानेको कहा और आप हिन्दुस्तानी रसोइयेसे सूखी खैनी लानेके लिये रसोईघरकी ओर चला।

सावित्री किरासन तेलके उज्ज्वल प्रकाशको आगे रख, पान लगाने बैठी। सिरपर कपड़ा नहीं, भीगे बाल सारी पीठपर फैल नीचे जमीन तक बिखरे पड़े हैं। दो-एक लटें आंचलके काले किनारेसे मिल कंधेसे नीचेकी ओर लटक रही हैं। स्त्रीके बीमारी, सिकुडे, सूखे चेहरेपर जो स्वाभाविक और छिपा हुआ माधुर्य होता है, वह इस कृशाङ्गीके सद्यस्नात मुखमण्डलपर

विराज रहा था। वह कुछ अन्यमनस्क और चिन्ताग्रस्त थी। सहसा दूरसे जूतेका शब्द निकट आने लगा, तथापि वह शब्द उसके कानों तक न पहुंचा। जब उसने सुना, तब उपेन्द्र और सतीश दोनों दरवाजे पर आ खड़े हुए थे। सावित्रीने ध्यान टूटते ही सिर ऊपर उठाकर देखा। वह विवर्ण और आत्म-विस्मृत हो गयी। अचानक यह देखते ही नारीसुलभ जन्म-जन्मार्जित अंध संस्कारने उसे एकबारगी बेतरह शर्मा दिया और उसी क्षण उसने दोनों हाथ बढ़ा घूँघट काढ़ लिया।

सतीश बुद्धि-विमूढ़की तरह बोल उठा—"सावित्री! तुम!"

सुरबाला अबतक प्रकाशके सहारे बिहारी और दिवाकरके साथ ऊपर चढ़ आयी थी। उपेन्द्रने घूमकर कहा—"ठहरो, वहीं ठहरो, यहां मत आओ सुरबाला।"

सुरबालाने चौंककर पूछा—"क्यों?"

उपेन्द्रने इस सवालका जवाब न देकर कहा—"दिवाकर, तुम अपनी भाभीको गाड़ीमें लौटा ले चलो। सतीश मैं भी जाता हूं।" कहकर वे धीरे-धीरे चले गये।

२०

उपेन्द्रका पदशब्द क्षीण होते-होते सीढ़ियोंमें विलीन हो । वे थके थे, भूखे थे, अन्धेरी रात थी, तथापि सन्देह .. हो जानेसे वे ठहर न सके। सतीशके घरमें बैठी तरुणीने लज्जा और भयसे इस तरह मुंह ढक लिया था कि

उसके सम्बन्धमें कुछ पूछनेकी भी उन्होंने कोई जरूरत न समझी। वे घृणाके साथ लौट चले, उस ओर आँख उठाकर भी न ताका।

किन्तु यह क्या हो गया! थोड़ी ही देरके बाद सावित्री यह घटना जानकर काँप उठी। हजारों पुरुषोंके आगे भी उसे लज्जा करनेका अधिकार न था; किन्तु अनजानमें वह भारी भूल कर बैठी! उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानों उसके घूँघटने दिगन्त-तक विस्तृत होकर उसे नखसे शिखतक लज्जासे दृढ़तापूर्वक बाँध दिया। एक घड़ी पहले किसने यह बात सोची थी, कि जरा-सी लज्जाके लिये उसके सिरपर सहसा लज्जाका पहाड़ टूट पड़ेगा?

साँस रुकते या दम घुटते वक्त मनुष्य जिस प्रकार मुँह बाहर निकालनेकी जी जानसे चेष्टा करता है, सावित्री ठीक उसी तरह घूँघट जोरसे हटाकर सीधी होकर बैठ गयी। पूछी—"वे कौन थे?"

सतीश स्तब्ध भावसे दरवाजेके पास खड़ा था। उसी हालतमें उत्तर दिया—"उपेन्द्र भैया और भाभी।"

"ऐं ये उपेन्द्र बाबू थे? ये बहू थीं? वे लोग थे? सावित्री बड़े वेगसे उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर कहा—उन्हें लौटा लाऊँ। छिः छिः! मैं कोई भी नहीं। तो हटो, हटो। घरकी नौकरानी ही तो हूं! हटो, हटो।"

उपेन्द्र कौन हैं, यह सावित्री अच्छी तरह जानती

थी। सतीशकी बातोंमें अनेक बार उनका जिक्र आया था।

अब सतीशकी मानो नींद टूटी। इस चिल्लाहटने—इस अस्त व्यस्त भावने उसकी विह्वलताको क्षणभरमें विलीन कर उसे एकबारगी सजग कर दिया। इस बार उसने सीधे खड़े हो, दोनों हाथ फैला रास्ता रोका और कहा—“नहीं।”

सावित्रीने व्याकुल हो हाथोंपर जोर देकर कहा—“नहीं क्या? सर्वनाश मत करो, सतीश बाबू, राह छोड़ो। मेरा सच्चा परिचय उन लोगोंको जानने दो।”

सतीशने रास्ता न छोड़ा। परन्तु साँपकी जीभकी तरह दो भागोंमें बटे उसके दृढ़ बँधे हुए होठोंमें शायद हँसीकी एक सूक्ष्म रेखा दीख पड़ी। कहा—“अः! तुम्हारा सर्वनाश? नहीं, इस विषयमें निश्चिन्त रहो। किन्तु तुम्हारा सच्चा परिचय क्या है, पहले मैं तो सुनूँ।”

सावित्री सहसा जवाब न दे सकी। केवल देखती रही। ऐसी निरुत्तर दृष्टि सतीशने पहले भी देखी थी, किन्तु उसमें और ... बहुत अन्तर जान पड़ा। इस दृष्टिने, इतना बड़ा आघात ... भी आज आग क्यों नहीं लगायी? आश्चर्यभरी, ... करुण दोनों आँखें थीं। ये क्या उसी सावित्रीकी

कुछ क्षणके बाद उसने धीरे-धीरे कहा—“मेरा परिचय? तो दिया, घरकी दासी। सतीश बाबू, दया करें, मैं उन्हें

लौटा लाती हूं। इस अन्धकारमें, वे रास्ते-रास्ते कहाँ भटकते फिरेंगे ? यह क्या अच्छा होगा ?"

सतीशने जरा भी विचलित न होकर कहा—"उनके भले-बुरेका विचार करनेका भार उनपर ही रहने दो। रास्ते-रास्ते घूमना भी इस घरमे आनेकी अपेक्षा बहुत अच्छा है। मैं भाभीको किसी तरह अब इस घरमे आने न दे सकूँगा।"

क्यों न आने दे सकोगे ? मैं इस घरमे आ गयी हूं, इसी लिये ? सतीश बाबू, क्या पृथ्वी भी मेरे स्पर्शसे अपवित्र हो जाती है ?"

सतीशने क्षणभर मौन रहकर दूसरा प्रश्न किया—"तुम इस घरमे आयी क्यों ?"

"तुम··"

"मैं ? मैं क्या····"

सावित्री अधिक देरतक सतीशकी ओर देखती न रह सकी। जमीनकी ओर देखती हुई रोती आवाजमे बोली—"आप मेरे पुराने मालिक हैं। इसीसे असमयमे कुछ भिक्षा माँगने आयी थी।"

सतीश कूटकी हँसी हँसा, बोला—"असमयमें भिक्षा माँगने तुम्हारे तो बहुतेरे मालिक हैं, सावित्री! मालूम होता है, इतने दिनोंमे एक-एक कर सभी घरोंमे घूम आयी हो ?"

तेज बिजलीके स्पर्शके समान सावित्रीका मुख जल उठते ही मानो बुझकर खाक हो गया। सतीशका यह निष्ठुर आघात

उसके हृदय को टुकड़े-टुकड़े करने लगा; किन्तु उसने मुँह ऊपर न उठाया। कुछ बोली भी नहीं। दो दाँतोंसे जोरसे जीभ काट-कर रह गयी।

सतीशने फिर कहा—"विपिन बाबूने तुम्हें क्यों निकाल दिया ? क्या उनका शौक पूरा हो गया ?"

सावित्रीने फिर भी जवाब न दिया।

एकाएक सतीशको विहारी की प्रार्थना याद आगयी। पूछा—"क्या भिक्षा मांगती हो ? तीस रुपये न ?"

सावित्रीने नीचे झुके माथेको सिर्फ हिलाकर उत्तर दिया "हाँ।' मुँहसे कुछ न बोली।

'अच्छा' कहकर सतीश दराजके पास जाकर खड़ा हुआ और पलक भरमें घरके चारों ओर नजर दौड़ाकर रुक गया।

इस घरको जिस नयी सजावटने उसे पहले इतना आनन्द दिया था, वही इस समय मानो उसे काटने दौड़ी। पासकी शैय्या भी इसीके हाथकी बिछाई हुई है। स्टेशन जानेके पहले स लेटकर उसने कुछ क्षण विश्राम किया था, यह आते ही उसका सारा शरीर संकुचितसा हो गया। निगाह जल्दी-जल्दी दराज खोल, मुट्ठीभर नोट बाहर निकाले उनको सावित्रीके पाँवोंके पास फेंककर कहा—"जाओ, ।, इसे लेकर चली जाओ। फिर कभी मत आना।"

सावित्री गिनकर केवल तीन नोट ले, उठ खड़ी हुई। अब-मतीश चुपचाप देख रहा था। सावित्रीके खड़े होते ही

उसने सावित्रीसे कुछ कहना चाहा, किन्तु एकाएक अकारण ही उसका गला रुक गया। मुँहसे बात न निकली।

हाय। इसकी खबर तो उसे न थी। जेठके अन्तिम दिनोंकी तेज धूपकी तरह उसका तप्त क्रोध जब इस हतभागिनीको निरुपाय नि शब्द धरातलकी तरह जला रहा था, उसी समय दिखाई न देनेवाले आकाशमें उसकी बूंद-बूंद इकट्ठी होकर घने बादलोंकी सृष्टि हो रही थी। वे बादल ऐसे अज्ञात रूप से, ऐसी नि.शब्द गतिसे उसे घेरकर रोक रख सकते हैं, इस बातकी कल्पना भी सतीशने नहीं की थी। उसका कण्ठ, उसका मुँह उसकी दोनों आँखें मानो किसी अदृश्य आक्रमणसे दबी जाने लगीं सहसा उसने प्रबल चेष्टासे अपनेको उस घेरेसे विलग कर पुकारा—सावित्री ?"

"जी।"

"किस्सा कहानियोंमे पढ़ता था कि अमुक मनुष्य अमुक मनुष्यसे घृणा करता था। मुझे विश्वास न होता था। सोचता था, यह केवल क्रोधकी बात है। कभी मेरी समझमें नहीं आया कि मनुष्य किस प्रकार मनुष्यसे घृणा कर सकता है। पर अब देखता हूं, कि मनुष्य मनुष्यसे घृणा कर सकता है। सावित्री मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ, कि मैं मरते दमतक तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा।"

सावित्री चुप।

"अच्छा सावित्री, यह तो बताओ कि संसारमें तुम लोगों-

को रुपयेसे अधिक प्यारा क्या और कुछ भी नहीं है? यदि होता तो इन नोटोंको कदापि न उठा सकती। आज मेरे पास जो कुछ है; वह सब तुमको दे दूँगा, पर एक बात मुझे सच-सच बताती जाओ।"

"पूछिये।"

"पूछता हूँ" कहकर सतीश ठहर गया। सावित्री कठ-पुतलीकी तरह सिर झुकाये प्रतीक्षा करती रही।

सतीश बोला—"पूछते शर्म लगती है, फिर भी जानना चाहता हूँ... अच्छा, सावित्री! क्या तुमने कभी किसी दिन किसीको प्यार नहीं किया है?"

क्षणभर चुप रहकर सावित्री मृदु किन्तु स्पष्ट स्वरमें बोली—दूसरेकी बात जानकर आपको क्या लाभ होगा?"

सतीशने जरा सकुचाकर कहा—"अच्छा दूसरेकी बात जाने दो। यदि अपनेही सम्बन्धमें जानना चाहूँ?

"अपने विषयमे जानकर आप क्या करेंगे?"

"क्यों? अपने सम्बन्धकी बात जाननी चाहिये।"

"मनुष्य अपने सम्बन्धकी कितनी बात जानता है? कल होगा, यह कितने आदमी जानते हैं?"

"यह सच है, तथापि सभी जानना चाहते हैं।"

सावित्री दरवाजेकी ओर सरककर बोली—"चाहें। आप की कितनी ही बातें नहीं जानते। यह बात बिना जाने भी आपके दिन कट जायेंगे।"

"हाँ, कट तो जायेंगे ही।" कहकर सतीशने एक लम्बी साँसको बलपूर्वक दबा लिया।

पर सावित्रीने उसकी आवाज सुन ली। वह सिहर उठी। उसने मुँह फेर लिया। इसी समय उसके बीमार, पीले और दुबले चेहरेपर सतीशकी आँखें पड़ गयीं। वह चौंक उठा, पूछा—"तुम बीमार हो सावित्री ?"

"सावित्रीने सिर झुकाकर कहा—"नहीं तो।"

"बहुत बीमार-सी दिखाई देती हो।"

कुछ जवाब दिये बिना सावित्रीने जानेके लिये पाँव बढ़ाया। वह चुपचाप दरवाजेके बाहर आयी। कमरेके भीतरसे रुँधे हुए कण्ठसे एक आवाज आयी—"सावित्रीने एक दिन भी मुझे प्यारकी आँखोंसे नहीं देखा !"

सावित्री चौखटके सहारे चुपचाप खड़ी हो रही; उसने मुँह नहीं फेरा।

भीतरका रुँधा हुआ कण्ठ इस बार खुल गया—"सावित्री, एक बार बताती जाओ। मैं इतने दिनोंसे क्या केवल नींदकी खुमारीमें ही इस दुःखका बोझ लिये घूम रहा हूं ? मेरे भाग्यमें क्या सर्वत्र भूल ही होनी है ? मेरे हृदयमें जो अपार व्यथा भरी हुई है, क्या वह भी भूल है—मिथ्या—धोका है ?"

सावित्री कुछ काल सोचती रही। फिर लौटकर बोली—"देखिये, सतीश बाबू, आप यह सब क्या कह रहे हैं ? मैं बड़ी आफतमें फँसकर बिहारीके पास रुपये उधार माँगने आयी थी,

किन्तु आपसे सच कहती हूं, मुझे यह मालूम न था, कि ऐसे झगड़ेमें आ फंसूँगी, नहीं तो न आती।"

सतीश स्तब्ध हो रहा। सावित्रीका कण्ठस्वर शान्त और मृदु था; किन्तु उसमें मधुरता न थी। कुछ देर पहले तो उसने इस कोमल कण्ठसे मालिकसे भिक्षा नहीं माँगी थी।

उसने फिर कहा,—"आपने शपथ करके कहा है, कि मैं तुमसे घृणा करता हूं। फिर मैं क्या करूँ? आप ही बताइये। आपकी खुशी हो, तो प्यार भी कर सकते हैं; क्रोध हो तो घृणा भी कर सकते हैं। आप लोग ऐसा ही करते भी हैं। किन्तु हमारे तो हाथ-पाँव बंधे हुए हैं। रोजगार या मजदूरी करनेसे भी गुजर नहीं होती, इसीलिये जिससे पेट भरता है, वही हम लोगों-को करना पड़ता है जब इस रास्तेपर पाँव रख चुकी हू, तब इसपर चले बिना दूसरा उपाय भी तो नहीं है।"

अबतक सतीशकी छातीके भीतर जो उष्ण रक्त उबल रहा था, उसपर सावित्रीकी एक-एक बात बरफके टुकड़ेकी तरह पड़ उसे बिलकुल निस्पन्द और निःसत्त्व करने लगी। वह विह्वल ... उसकी ओर देखता रहा! वह सब बातें समझ गया या यह भी सावित्री न जान सकी।

... यह दृश्य देखना असह्य-सा हो रहा था। इसीसे ... ओर नजर घुमाकर जरा ठहर गयी। उसकी अपनी ही ... छातीमे मर्मभेदी बर्छीकी भाँति चुभ रही थी, तथापि ... सैनिककी तरह जमीनपर लोट जानेके पहले अन्तिम

बार सतीशके लज्जास्पद, निष्फल प्रणयपर उसने खड्गप्रहार किया; कहा—"आप पूछते हैं, कि किसी दिन आपको प्यार कर सकती थी या नहीं? किन्तु आप ही बतलाइये, उस मेसमें आप जिस तरह नाना प्रकारसे मुझे पैसे देते थे, उसी तरह मैं भी सबकी अपेक्षा आपका अधिक यत्न करती थी या नहीं? सम्भव है, आप इसे स्वीकार न करें और यह भी सम्भव है कि आप भूल गये हों, किन्तु बिहारी अब भी इस बातका साक्षी है। हमें तो जो कोई रखेगा, हम उसीकी सेवा-सुश्रूषा करेंगी। यदि आप स्थान दें, तो आपको भी वैसे ही चाहूँगी। आजकल तो बेकार बैठी हूँ, कहिये तो कलसे ही यहाँ आकर काम करने लगूँ। आप जगह दें, तो फिर आपको उसी तरह प्यार करूँगी।"

सतीशके दोनों कानों के भीतर एक अजीब तरहकी आवाज़ गूँजने लगी। उसने एक बार अच्छी तरह देखनेकी चेष्टा की; किन्तु आँखोंके आगे अंधेरा-सा छा गया। सावित्री दरवाज़ेके पास, प्रकाशकी ओट में खड़ी थी। उसका सम्पूर्ण शरीर बीभत्स, विकृत-सा दीख पड़ा। सतीशको ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके घरमें प्रतिष्ठित, परम पूज्य प्रतिमाको कोई तोड़-फोड़ कर घास-भूसी की अटियासी बनाकर उसके मुँहपर फेंककर मार रहा हो। उसने मुँह फेर लिया, कहा—"जाओ।"

सावित्री चौखटपर सिर रख, प्रणाम कर चुपचाप चली गयी। सतीशने यह न देखा। उसने केवल अत्यन्त कोमल अन्तिम पद-शब्द सुना।

नीचे विहारीकी कोठरीमें टिमटिमाता हुआ एक दीया जल रहा था। उसी घरमें सावित्री आधी आँखें बन्द किये तलमलाते पाँवोंसे पहुंची और दोनों हाथ बढ़ाकर उसने मानो किसी चीजको पकड़ना चाहा; पर आधार न पा, मुँह ढंककर मूर्च्छित हो जमीनपर गिर पड़ी।

विहारी उपेन्द्र आदिके साथ थोड़ी दूर जा, ज्योतिष साहबके घरका, रास्ता बता, कोई पाँच मिनट हुए लौट आया था और अन्धकारमें छिपकर सावित्रीकी आखिरी बातें सुन रहा था। आज दिनभर उसने उसके साथ कितनी ही बातें की थीं। हृदयहीन गृहस्थके घर काम करने जाकर सावित्रीको जो कष्ट सहने पड़े थे, बीमार हो जानेसे उसे जो मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं, उनका हाल सुनकर विहारीका कलेजा टूक-टूक हो चुका था। परन्तु इस समय बाबूके सामने सावित्री क्यों यों झूठ बोल गयी, इसका कुछ भी रहस्य बूढ़ेकी समझमें न आया। सावित्रीके नीचे उतर जानेपर वह भी अन्धेरेके सहारे बाबूकी आँखें बचा नीचे उतर आया। नीचे सावित्रीको न देख, ...की ओर दौड़ा। इधर-उधर कहीं भी उसे न पाकर फिर भीतर जा, जल्दी-जल्दी अपनी कोठरीमें ढूंढने पहुंचा ...टिटककर खड़ा हो गया। अनन्तर सावधानीसे निकट ...तेज की और सावित्रीके मुँहके पास बैठकर पुकारा,— सावित्री! इस तरह जमीनमें क्यों लेट रही हो?"

आहट न पाकर फिर प्रेमके साथ बोला—"तुम्हारी तबीयत

ठीक नहीं है, यहाँ ठंड लगेगी, तकलीफ होगी! उठ बैठो, मैं चटाई बिछाये देता हूँ।"

सावित्री ज्यों-की-त्यों पड़ी रही।

बिहारी विस्मित हुआ। उसे अच्छी तरह दिखाई न पड़ता था। दीपकको मुँहके पास ला, जरा झुककर देखते ही वह चिल्ला उठा—"तुमने यह क्या किया, बेटी!" सावित्रीकी आँखें बन्द थीं, चेहरा स्याह हो रहा था। इस चिल्लाहटसे भी वह न हिली न डोली, मुर्देकी तरह पड़ी रही।

ऊपरके कमरेमें सतीश अबतक पत्थरकी तरह जैसेका तैसा बैठा था। वह भी चौंक उठा। रसोइया रसोई बनाना छोड़ दौड़ आया। बिहारीने रोकर कहा—"खड़े मत रहो महराज, बाबूको फौरन खबर दो।"

उसने दौड़ते हुए जाकर सतीशको खबर दी—"माईजी मर गयीं······।"

"मर गयी? कहता क्या है?"

"हाँ बाबूजी!"

सतीश बिहारीकी कोठरीमें पहुंचा और सावित्रीके सिरके पास घुटनोंके बल बैठ गया। मुँहके पास बत्ती लाकर देखते ही उसे स्मरण आया, कि उसे मूर्च्छाका दौरा हुआ करता है। डटकर बोला—"चिल्ला मत बिहारी, आँख-मुँहपर पानी छिड़क। महराजसे कह कि एक पङ्खा लाकर जरा हवा करे।"

साहस पाकर, विहारी जोर-जोरसे पानीके छींटे मारने लगा और रसोइया पङ्खा झलने लगा।

कुछ देरमें सावित्री लम्बी साँस ली और आँखें मलती तथा माथेपर कपड़ा डालती हुई उठ बैठी।

सतीशने कहा—"महराज, जरा गरम गरम दूध तो ले आओ, कुछ अधिक लाना। विहारी, भींगा कपड़ा जल्दीसे उतार देनेके लिये कहा।"

महराज दूध लाने चला गया और विहारीने धीरेसे सावित्रीको गीला कपड़ा छोड़कर दूसरा पहननेके लिये कहा।

कुछ देर चुप रहकर फिर सतीशने कहा—"तबीयत ठीक होनेपर कहाँ जायेगी पूछ लेना और एक गाड़ी जरूर ला देना। मूर्च्छाके बाद पैदल न जाये।"

सावित्रीका सारा शरीर काँप उठा, किन्तु धुँधली रोशनीमें कोई उसे देख न सका। वह बड़े कष्टसे अपनेको संभालकर निश्चल हो रही।

थोड़ी देर बाद सतीश फिर बोला—"और यदि तबीयत न मालूम हो, तो मेरे बिस्तरपर सोनेके लिये कह देना। मैं ...ठ जाता हूँ।"

...वित्रीके सिरके बाल तक काँप उठे! उसे ऐसा जान पड़ा वह अब और अपनेको जब्त न रख सकेगी।

...तीशने एक छोटी-सी चाभी विहारीके पास फेंककर "और देखो दराजकी चाभी उसीके पास रखे जाता हूँ,

उसको जितने रुपयेकी जरूरत हो, जाते वक्त लेती जाये ।"

सावित्री बीमार तो थी ही, कमजोर भी बहुत थी, इसके अतिरिक्त सतीशकी बातोंने उसके हृत्पिंडको मथकर विष और अमृतसे कण्ठतक फेनमय कर दिया । वह फिर एक बार कांपकर पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह निस्पन्द-सी हो रही ।

सतीशने कहा—"मैं पथरिया घट्टा जाता हूं, बिहारी ! कल शायद देरसे लौटूं ।" एक कदम आगे बढ़कर बोला—"कोई संकोच न करना, जो आवश्यक हो ले लेना, मैं जाता हूं ।"

सतीश चला गया ।

सावित्री एक बार ऊपरकी ओर देख, पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ी । छाती फाड़कर रो उठी—"अरे ! क्यों तुमने इस पापिनीपर इतना प्रेम किया था ? अभी कसम खाई कि मुझसे घृणा करते हो, यही घृणा करना है ? मेरा इतना दुःख पहुंचाना, इतनी झूठी बातें गढना, क्या तुम्हारे स्नेहकी आगमें पड़कर खाक हो गया ? अरे, मुझे कौन बतायेगा, कि क्या करने से मुझे तुम्हारी घृणा ही प्राप्त हो सकेगी ?"

बिहारी इस रोनेका कुछ भी अर्थ न समझ सका । जरा पास आ, धीरज देनेके स्वरमें बोला—"बेटी, तुमने बाबूसे इतनी झूठी बातें क्यों कहीं ? जहाँ नहीं गयी जो दोष तुमने नहीं किया, क्यों उसे स्वीकार कर अपराधिनी बनी ?"

सावित्रीने रोते-रोते कहा—"धर्म जानता है बिहारी, मेरी सब बातें मिथ्या हैं । कहते छाती फट गयी है, तो भी कही हैं ।

किन्तु बोलना भी तो कुछ काम नहीं आया बिहारी, कुछ भी काम न आया !"

बिहारी मुढ़की तरह मुँहकी ओर देखकर बोला—"झूठ और क्या काम आये ?"

सावित्री आँखें मलकर उठ बैठी। उसके मुंहकी ओर देखती हुई बोली—"ठीक जानते हो बिहारी, झूठसे कोई काम नहीं होता ?"

बिहारीने कुछ देर सोचकर कहा—"होता क्यों नहीं? अदालतमें झूठ बोलनेसे ही काम चलता है। वहाँ झूठकी ही जय होती है।"

सावित्रीने कुछ उत्तर न दिया। बहुत देरतक स्थिर रहकर बोली—"मैंने क्यों झूठका सहारा लिया, यह बात शायद किसी दिन तुम भी समझ सकोगे। किन्तु जाने दो बिहारी, मेरी दो बातें मानोगे ?"

"क्यों न मानूंगा ? क्या बात है ?"

"एक तो मेरे चले जानेपर भी बाबूसे किसी दिन न कहना, कि मैंने आदिसे अन्ततक झूठी बातें कहीं ”

बिहारी मौन हो रहा। सावित्रीने कहा—"और एक बात अपना पता तुम्हें लिख भेजूंगी। यदि कभी मेरी जरूरत ,तो मुझे लिखना। तुमसे कहनेमें मुझे शर्म नहीं बिहारी ? ते हो, मेरे सिवा संसारमें कोई भी इन्हें बाबूसे नहीं का

सकेगा और गाढ़े दिनोंमें मुझसे अधिक दूसरा कोई इनकी सेवा भी न कर सकेगा।"

बिहारी रोने लगा। आंखें पोंछ, रुंधे हुए कण्ठसे बोला—"सब जानता हूं बेटी!"

सावित्री उठ खड़ी हुई, बोली—"तो चलती हूं। उनको तुम्हारे ही हाथ सौंपे जाती हूं। देखो, बिहारी! ये दो बातें याद रखना। भगवान करें, तुम सुखी रहो। अपना यह जला मुंह लेकर फिर कभी तुम लोगोंके सामने न आना पड़े।" यों कहती और आंखें पोंछती हुई सावित्री आगे बढ़ी।

रास्तेपर आ, एक किरायेकी गाड़ीपर सावित्रीको चढ़ाकर बिहारीने झुककर प्रणाम किया। आंखें पोंछकर गला साफ कर बोला—"बेटी! मेरी भी एक वीनती है। आज इसे अपने समझ कर मेरी याद की थी; जरूरत पड़नेपर फिर स्मरण करना।"

"अवश्य करूंगी।"

गाड़ी दौड़ चली। बिहारीके रुंधे कण्ठसे आवाज बाहर न निकल सकी। उसने फिर एक बार चुपचाप रास्तेपर सिर रख प्रणाम किया और धोतीसे आंखें पोंछ, जल्दी-जल्दी लौट गया।

२१

"पथरिया घट्टा जाता हूं" कहकर सतीश रातको ग्यारह बजे घरके बाहर आ खड़ा हुआ। थोड़ी दूर चलते ही उसे एक अजीब हरारत-सी जान पड़ी। वह सोचने लगा, कहीं बैठ

किन्तु बोलना भी तो कुछ काम नहीं आया बिहारी, कुछ भी काम न आया !"

बिहारी मुढ़की तरह मुँहकी ओर देखकर बोला—"झूठ और क्या काम आये ?"

सावित्री आँखें मलकर उठ बैठी। उसके मुंहकी ओर देखती हुई बोली—"ठीक जानते हो बिहारी, झूठसे कोई काम नहीं होता ?"

बिहारीने कुछ देर सोचकर कहा—"होता क्यों नहीं? अदालतमें झूठ बोलनेसे ही काम चलता है। वहाँ झूठकी ही जय होती है।"

सावित्रीने कुछ उत्तर न दिया। बहुत देरतक स्थिर रहकर बोली—"मैंने क्यों झूठका सहारा लिया, यह बात शायद किसी दिन तुम भी समझ सकोगे। किन्तु जाने दो बिहारी, मेरी दो बातें मानोगे ?"

"क्यों न मानूंगा ? क्या बात है ?"

"एक तो मेरे चले जानेपर भी बाबूसे किसी दिन न कहना, कि मैंने आदिसे अन्ततक झूठी बातें कही"

बिहारी मौन हो रहा। सावित्रीने कहा—"और एक बात अपना पता तुम्हें लिख भेजूंगी। यदि कभी मेरी जरूरत ना, तो मुझे लिखना। तुमसे कहनेमें मुझे शर्म नहीं बिहारी ? हो, मेरे सिवा संसारमें कोई भी इन्हें काबूमे नहीं का

सकेगा और गाढ़े दिनोंमें मुझसे अधिक दूसरा कोई इनकी सेवा भी न कर सकेगा।"

बिहारी रोने लगा। आँखें पोंछ, रुंधे हुए कण्ठसे बोला—"सब जानता हूं बेटी!"

सावित्री उठ खड़ी हुई, बोली—"तो चलती हूं। उनको तुम्हारे ही हाथ सौंपे जाती हूं। देखो, बिहारी! ये दो बातें याद रखना। भगवान करें, तुम सुखी रहो। अपना यह जला मुंह लेकर फिर कभी तुम लोगोंके सामने न आना पड़े।" यों कहती और आँखें पोंछती हुई सावित्री आगे बढ़ी।

रास्तेपर आ, एक किरायेकी गाड़ीपर सावित्रीको चढ़ाकर बिहारीने झुककर प्रणाम किया। आँखें पोंछकर गला साफ कर बोला—"बेटी! मेरी भी एक बीनती है। आज इसे अपने समझ कर मेरी याद की थी, जरूरत पड़नेपर फिर स्मरण करना।"

"अवश्य करूंगी।"

गाडी दौड चली। बिहारीके रुंधे कण्ठसे आवाज बाहर न निकल सकी। उसने फिर एक बार चुपचाप रास्तेपर सिर रख प्रणाम किया और धोतीसे आँखें पोंछ, जल्दी-जल्दी लौट गया।

२१

"पथरिया घट्टा जाता हूं' कहकर सतीश रातको ग्यारह बजे घरके बाहर आ खड़ा हुआ। थोड़ी दूर चलते ही उसे एक अजीब शरारत-सी जान पड़ी। वह सोचने लगा, कहीं बैठ

जाऊं या लेट जाऊँ, तो आराम मिलेगा। दोनों पाँव मानो उठाये नहीं उठते थे, सारा शरीर पत्थरकी तरह भारी जान पड़ता था। आज ऐसी गहरी थकावट कहाँसे और कैसे हुई, यह उसकी समझमें नहीं आया।

वहुत दिन पहलेकी ऐसी ही एक और रातकी वात उसे याद आयी। जब बिहारीने सावित्री और मोक्षदाके घरसे लौटकर कहा था, 'वह नहीं है, विपिन बावूके पास चली गयी है।" उस समय उस खबरने केवल कुछ देरके लिये उसे अवश कर दिया था। पर तुरन्त ही शरीरकी सब शिरा-उपशिराओंमें अभिमान और अपमानकी जो भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी थी, वह किलेके निर्जन मैदानमें नक्षत्र-खचित शान्त आकाशके नीचे, इस तरह आँखोंके जलसे बुझ न जाती तो चाहे जहाँ और जितने दिन लगते, सावित्रीको दग्ध किये विना शान्त न होती। आज भी वैसी ही रातमें वह घरसे निकला है, पर आज वैसी ही आग क्यों नहीं जल रही है?

सावित्री आज उसीके घरमें है, उसकी मुट्ठीमें है, उसका ̀ई रखवाला नहीं, विलकुल निरुपाय है। आज जो जी ्ता, वही कर सकता था; किन्तु कुछ भी तो न कर सका। ̀ भीतरकी सब आग क्या आप-ही-आप, बुझकर राख गयी है?

एक खाली गाडी जा रही थी, पुकारकर सतीशने कहा— "पथरिया घट्टा चलेगा?"

"चलूँगा" कहकर गाड़ीवानने गाड़ी रोकी और रास्तेके प्रकाशमे सतीशके मुंहकी ओर देखकर ही समझ लिया कि बाबू मतवाला हो रहा है, बोला—"बहुत दूर है हुजूर ! तीन रुपया किराया लगेगा ! पासमें रुपये हैं ?"

"है" कहकर सतीश गाड़ीपर चढ़ बैठा और गाड़ीके एक कोनेमे सिर रख आँखें मूँद लीं। थकावटने उसके शरीरको इस तरह चूर कर दिया था, कि सब कुछ समझनेपर भी उसमें किराया ठहराने या गाड़ीवानकी इस असंभव माँगपर आश्चर्य-प्रकट करनेकी भी शक्ति न थी।

यह थकावट मानसिक थकावट थी। इतने दिनोंसे जिस वेदनाको उसने अपने हृदयमे फोड़ेकी तरह पाल रखा था, उठते-बैठते उसके हृदयको जिन संशयोंने वेध रखा था, दुःखके ऊपर लगातर आ-आकर जो दुःख दिन-रात उसके हृदयको मसोस रहा था, जब सावित्रीने आज स्वयं ही आकर सबकी मीमांसा कर दी, उसने अपने हाथोंसे छुरी चलाकर उस फोड़े को चीरकर सारी ग्लानि मवादकी ही तरह बाहर कर दी, तभीसे उसके फटे हृदयकी दोनों शान्त आँखें नींदसे झँपती चली जा रही थीं।

किन्तु सतीश सो भी न सका। छुरीकी जिस चोटने उसे सबसे अधिक व्यथा पहुंचायी थी, वही चोट—सावित्रीकी वही बात—याद आ गयी। यह तो ठीक ही है। उनके हृदयके हाथ-पाँव बंधे हैं। यह उनका व्यवसाय है—जीविकाका उपाय

है। हम लोगोंकी तरह घृणा करनेका, स्नेहसे पिघल जानेका अधिकार उनमें कहाँ? प्रवृत्तिके कन्धेका सहारा लेकर यह जो बाहरी दुनिया उनके भोजन-वस्त्र, भूख-प्यास, मकान भाड़ा आदि-भली-बुरी सभी बातोंको लेकर उसके सामने खड़ी है और आँखें लालकर उसकी ओर कड़ी दृष्टिसे देख रही है, उसे ये औरतें कैसे नहीं स्वीकार करेंगी? जीवन धारणके लिये इन्हें कुछ करना तो चाहिये ही। मेरे स्नेहकी धारामें सावित्री अपने तन-मनको क्यों डुबो देगी? मेरे विषयमें वह जानती ही क्या है? मेरे प्रेमके भरोसे वह क्योंकर बैठी रहेगी? दूसरी बात यह है कि विपिनकी अवस्था उससे छिपी नहीं है, उसकी जैसी औरतोंका बोझ उठाने की आदत और योग्यता दोनों उसमें मौजूद है, यह बात भी सावित्री अच्छी तरह जानती है।

उसने कहा था, "इस रास्तेपर जब पाँव रखा है, तब अच्छा हो या बुरा, इसीपर होकर उसे चलना होगा, और कोई उपाय नहीं है।

ठीक है! जबतक मुझसे दो पैसे अधिक पाती थी, तबतक .। ही अधिक यत्न करती थी। यह बात भूली नहीं सकती, इस विषय में वह दबायी भी नहीं जा सकती— ् उसका गवाह है।

एक-एक कर उसकी सब बातें जल की तरह स्वच्छ झलकने ।ी। इसके पहिले इस सम्बन्धमें उनसे जो कुछ जानकारी हासिल की थी, वह मानो उसके कानोंमें कहने लगी—'यह

ठीक है, यही ठीक है!" इसके सिवा सावित्रीके लिये और किसी ओर पांव रखनेका मार्ग भी तो न था।

इसके बाद उसके उत्तप्त मस्तिष्कमें उसके सम्बन्धकी कितनी ही और-और बातें भी आने-जाने लगीं।

थियेटरमे एक दिन कोई मनुष्य सीताहरणका अभिनय सत्य समझकर क्रोधसे चिल्ला उठा था, यह याद आनेपर कितने ही व्यक्तियोंका व्यंग आक्षेप उसे याद आया। एक दिन मैजिक देखने गया था। वहाँ हिप्नोटाइज्ड किये गये मनुष्यने चीनी समझकर बालू खा ली थी, मिठाई समझकर लकड़ी चबायो थी, यह कौतुक देखकर लोग कितने खुश हुए थे, यह याद आया। घृणा और लज्जासे उसके रोंगटे खड़े हो गये। वह एकबारगी सीधा बैठकर बोला—"छिः छिः! मेरी दुर्दशापर सावित्री और विपिनने पास-पास बैठकर न मालूम कितनी ऐसी उड़ायी होगी।"

उसने सुन रखा था, कि प्रणय-कलह होनेपर, प्रेमियोंके कुछ कालके लिये अलग हो जानेसे, बन्धन और भी दृढ़ हो जाता है। सावित्री आज इसीलिये आयी थी, इसमें कुछ भी सन्देह न रहा। वह स्पष्ट देखने लगी कि आज वह उसके कन्धोंपर पांव रख, विपिनके पास और भी एक सीढी ऊपर चढ़ गयी।

गाड़ीवानने पुकारकर पूछा—"बाबू' किस नम्बरके मकानमें जायेंगे?"

सतीश आँखें मलकर उठ बैठा और फिर लेट गया—"बोला कि गंगा किनारे ले चलो।"

गाड़ीवानने गाड़ी रोक दी और नीचे उतरकर कहा—"बाबूजी, आप नशेमें हैं—मेरी बात मानिये, घर जाइये।" सतीश अकस्मात् आग्रहसे उठ बैठा, बोला—"मतवाला हूं? अच्छा, तू जानता है, यहाँ शराब कहाँ मिलती है?"

गाड़ीवान और भी कुछ क्षण देखता रहा। बादको बोला—"कहाँ चलेंगे? किन्तु दाम डबल लगेगा कहे देता हूं—बारह बज चुके हैं।"

सतीशने चुपचाप उसके हाथमें एक नोट दिया और फिर गाड़ीमें जा बैठा। इधर-उधर घुमा-फिराकर गाड़ीवान उतर गया और कुछ ही देरमें एक बोतल और बाकी रुपया सतीशके हाथमें दे आँखके इशारे से पूछा—"कहाँ चलेंगे बाबू?"

सतीशने वह इशारा न देखा—"कहाँ चलूं? तू ही बता।"

इस बार गाड़ीवान और पास आकर धीरेसे बोला—"बाबूजी, आप भलेमानस हैं, सब रुपया बर्बाद हो जायगा। घर लौट चलिये।"

"चलो" कहकर सतीश तुरन्त राजी हो गया और बोतल गोदमें रख, गाड़ीमें लेट गया।

जो अभागिनी बाराङ्गनाएं अब भी रास्तेके किनारे प्रतिक्षा कर रही थीं, उनमेंसे एक पर गाड़ीके मोड़पर घूमते वक्त सतीश

ही नजर जा पड़ी। नजर पड़ते ही उसका शरीर ऐसा कांप उठा, मानो उसके सरपर भारी चोट लगी हो। एक मनुष्यको देखकर एक मनुष्यके शरीरका प्रत्येक रक्तकण लज्जित हो जाता है, घृणासे मुँह खींच लेता है, आजसे पहले सतीशने इस बातका अनुभव नहीं किया था।

गाड़ीवान चतुरतासे बोतलको खोल लाया था। गाड़ीकी प्रत्येक गतिमें ढीले कागजसे निकलकर शराबकी तेज गन्ध उसकी नाकमें घुसने लगी और उसमें एक भूली हुई आकांक्षा जगकर क्रमशः उसको अपनी ओर आकर्षित करने लगी। एक बार इच्छा हुई कि गाड़ीमें ही बैठकर बोतलको साफ कर दे, किन्तु उसने सुना था, कि कोई मनुष्य इसी प्रकार गाड़ीमें शराब पीकर मर गया था। इससे डर गया। किन्तु शीघ्र घर पहुंचनेके लिये उसने गाड़ीवानसे गाड़ी जोरसे हांकनेके लिये कहा। पर विशेष लाभ नहीं हुआ। थके घोड़ोंने दो-चार चाबुक खा, चंचल हो, जरा तेज दौड़नेका ढंग दिखाकर मालिकका मन भर रख दिया।

सामनेके तिमंजिले मकानसे एक रमणीके कण्ठका मदोन्मत्त अश्लील संगीत सुन पड़ा। एक बार कान लगाकर सुनते ही उसके मनमें यह प्रश्न पैदा हुआ, कि क्या सावित्री भी गाना गाती है? वह स्वयं इस विद्यामें पारदर्शी था और अच्छी तरह जानता था कि अधिकांश वारवनिताएँ संगीत नहीं जानतीं और कुछ भी शिक्षा पाये बिना व्यर्थ चिल्लाती हैं और उनकी

उसी चिल्लाहटको संगीत समझकर उनकी अपेक्षा भी अधिक अशिक्षित पशुओंका दल मुग्ध हो जाता है ! क्या सावित्री भी इसी तरह उस मतवालेका मनोरंजन करती है ? क्या वह भी शराब पीती है ? शराब पीकर अचेत हो जाती है और इन्हींकी तरह बेसुरे ढंगसे चिल्लाकर अन्तमें जमीनपर लोट जाती है ?

गाड़ी दूर निकल गयी और वह ताल-लयहीन बेसुरा गान भी विलीन हो गया। किन्तु सतीशके कानोंमें वह उसी प्रकार गूँजता रहा और उसीके सहारे जो ज्वाला उसके हृदयमें भड़क उठी थी, उसी ज्वालामें जलता हुआ वह अपनी परम मंगला-कांक्षिणीके सम्बन्धमें इन समस्त नितान्त असम्भव प्रश्नोंकी सम्भव मान कर और सबको एकत्र गूँथकर अपनी कल्पनाओं का पुल बाँधने लगा।

इस हृदय विदारक दुःखके समय भी उसे सहसा एक बार हँसी आ गयी। सावित्रीने उसे शराब न पीनेकी शपथ करायी थी और वह अबतक उस प्रतिज्ञाका पालन बड़ी निष्ठाके साथ करता आ रहा था। उसने मन-ही-मन कहा—"मैं शराब नहीं पीता, यह दूसरी बात है, किन्तु वह मना करनेवाली कौन है ? मैंने उसकी इतनी बड़ी ज्यादती कैसे स्वीकार कर ली थी ? कभी भेंट होनेपर पूछूँगा कि वह स्वयं क्या करती है ?" बड़े विस्मयके साथ अपनेको बारम्बार यह कहकर धिक्कारने लगा, कि एक वेश्याकी आज्ञाका पालन मैंने इतने दिनतक क्यों किया ? मेरा ऐसा मानसिक अधःपतन क्योंकर हुआ ?

इस प्रकार सारी राहमें उसने सावित्रीको मन-ही-मन कोस-कर लाञ्छितकर, क्षुद्रसे क्षुद्र बनाकर जब घरके सामने आ पहुंचा तब रातका डेढ़ बजा था। गाड़ीसे उतरकर उसने किवाड़पर धक्का दिया। रसोइयेने आकर किवाड़ खोल दिये। दरवाजा बन्द करनेको कहकर सतीश आधी सीढ़ियाँ चढ़ एकाएक ठिठककर खड़ा हो गया। घरमे वह है तो नहीं ? जिस समय उसने यह अनुमान किया था, कि सावित्री केवल स्वार्थ-सिद्धिके लिये आयी थी और उसे वह सिद्ध भी कर चुकी है, उसी समय उसे यह भी विश्वास हो गया था, कि वह इस घरमे किसी तरह रात बिताना न चाहेगी। इसलिये इस सम्बन्धमे अबतक उसके मनमे कोई प्रश्न ही नहीं उठा था, किन्तु इस समय कमरेमे पाँव रखनेके कुछ काल पहले एकाएक संशयने अपने मजबूत पंजोंसे उसके पाँवको आगे बढ़नेसे रोक दिया। द्वार बन्दकर रसोइया सोने जा रहा था। उसको पास बुलाकर सतीश ने पूछा—"बिहारी कहां है ?"

रसोइयेने कहा—"अपने घरमे सो रहा है।"

सतीशने जरा रुककर पूछा—"और वह औरत चली गयी ?"

सावित्रीके जाते वक्त वह भोजन कर रहा था; अतः उसने उसे जाते नहीं देखा था। इसके अतिरिक्त उसने अनुमान किया कि जो औरत दिनभर यहीं थी, जो कुछ देर पहले बेहोश हो अस्वस्थ हो गयी थी, वह इस अंधेरी रातमे घर छोड़कर अवश्यही कहीं गयी न होगी ! इसी अनुमानके बलपर उसने

सिर हिलाकर बतलाया, कि वह गयी नहीं है। उसने सामने ताककर सिर हिलाया था, इससे सतीशने समझा कि सावित्री उसीके कमरेमें सो रही है।

पलक मारते सतीशका चेहरा मारे भयके पीला पड़ गया। हाथकी बोतलको उसने फौरन नीचे फेंक दिया।

रसोइया बोल उठा—"अहह ! बाबू, यह क्या किया आपने बेकार " सतीशने धीमे स्वरसे उसे चुप रहनेको कहा। इसके बाद वह चुपचाप सीढ़ियोंसे उतरकर बिहारीके कमरेमें पहुंचा। धीरे-धीरे उसे हिलाकर गाढी नींदसे जगाया और पूछा—"बिहारी, क्या सावित्री मेरे कमरेमें सो रही है ?"

बिहारी थोड़ा देर विह्लकी तरह देखते रहनेके बाद अकचकाकर उठ बैठा, बोला—"नहीं बाबू; वह तो उसी वक्त चली गयी।"

"चली गयी ?'

"हां, बाबू वह नहीं है।"

सतीश लम्बी सास ले बिहारीकी शय्यापर एक ओर बैठ गया . यह न समझ सका कि यह दु:खकी खबर है या सुखकी।

बिहारीने कुछ क्षणके बात मृदुस्वरसे कहा—"मैंने आपके . मुताबिक गाड़ी ठ क कर दी थी। चलिये, आपके कमरेमें . . कर दूं ?"

"नहीं, रहने दो, मैं ही रोशनी कर लूंगा।' सतीश पुन एक वार लम्बी सांस लेकर उस कमरेसे चला गया।

दूसरे दिन सवेरे जब उसकी कच्ची नींद टूटी, तब दिन चढ़ आया था।

अकस्मात् प्रबल आंधी आकर जिस प्रकार मनुष्यकी बनायी हुई चीजोंको उलट-पुलट कर चल देती है, उसी तरह सावित्रीके आगमन और गमनने सतीशके दिमागमे सहेजी हुई कितनी ही बातोंको उलट-पुलट दिया है। उन्हीं बिखरी हुई बातों और विपयस्त विचारोंके बीच वह बहुत देर तक चेतना-रहितकी तरह विचरता रहा। बिहारी तम्बाकू देकर चुपचाप बाहर जा रहा था, कि सतीशने पुकारकर कहा—"बिहारी कल वह यहां कब आयी थी?" सावित्रीके आनेके समयसे लेकर उसके जानेके समयतककी सभी बातोंका स्मरणकर बिहारीका व्यथित मन भीतरही भीतर बहुत रो रहा था। उसने सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे कहा—"दोपहरको।"

"कैसे उसने इस मकानका पता लगाया?"

"यह तो मालूम नहीं बाबूजी।"

सतीशने उसकी ओर आखें तरेरकर देखा और कहा—"बिहारी, क्या तुमने सचमुच मुझे बैल समझ लिया है? क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकता? सच्ची बात बता।"

बिहारी दोनो आखें फाड़, अपने मालिकके मुहको ओर देखता रहा। वह कुछ बोल न सका।"

सतीशने कहा—"देख क्या रहा है? तू विपिनके यहां नहीं जाता? सावित्रीके साथ तेरी भेंट-मुलाकात नहीं होती?"

· "नहीं बाबू !" कहकर बिहारी बाहर· जाने लगा । सतीशने कुछ और कड़ी आवाजमें कहा—"खड़ा रह, जा कहा रहा है ? क्या तूने उसे यहा आनेके लिये नहीं सिखा दिया था ?"

बिहारीने चुपचाप सिर हिलाकर जताया, "नहीं।"

सतीशने धमकाकर कहा—"फिर नहीं कहता है ?"

बिहारी सिर झुकाये खड़ा था—चौंककर उसने मुह ऊपर उठाया।

सतीश कहने लगा—"नहीं, तो उस हरामजादीने कैसे इस घरका पता पाया ? जा, तू उसीके पास रह, मुझे तेरी जरूरत नहीं। मैं आस्तीनमें साप नहीं पालना चाहता ' तू आज ही चला जा।"

बिहारीने कोई उत्तर नहीं दिया। विस्मयसे फैली हुई उसकी दोनों आखोंसे केवल झर-झर आसू गिरने लगे। यहासे उसकी नौकरी सचमुच ही छूट गयी, इस बातका उसने एकबारगी विश्वास नहीं किया, किन्तु सावित्रीके कारण बाबूने ऐसी कड़ी बातें क्यों कहीं, वह यही सोचने लगा।

आसू सतीशने देखे । क्षणभर चुप रहकर उसने पूछा—' ो वह कहा गयी ?'

बिहारीने आखें पोंछकर कहा—"यह भी नहीं . ।। कह गयी है, कि चिट्ठीके जरिये अपना पता .।ऊंगी।"

सतीश फिर चुप रहकर मुलामियतसे बोला—"क्या तुम्हें

भी वह पहलेसे बहुत दुबली जान पड़ी थी ? मालूम होता है, बीमार थी।"

विहारीने सिर हिलाकर कहा, "हाँ ?"

"मालूम होता है, इसीसे वहाँ जगह नहीं मिली है।"

विहारीने सिर हिलाकर अनुमोदन किया।

सतीश और कुछ देर चुप रहकर बोला—"किन्तु एक बार तुमको सावधान किये देता हूं, वह मेरे घर न आने पाये और किसी प्रकारका बहाना करके भी मुझसे मिलनेकी चेष्टा न करे। मेरी चाभी कहाँ है? जाते समय कितने रुपये उसे दिये थे ?"

विहारीने चाभी बाहर निकालकर कहा—"रुपया नहीं दिया।"

"नहीं दिया, क्यों नहीं दिया ? तुझे तो देनेको कह गया था।

"उसने लेना नहीं चाहा" कहकर विहारी कमरेके बाहर चला गया। सतीशने फिर उसे वापस बुलाया। सावित्री उपस्थित नहीं थी। विहारी उसे चाहता है, उसका पक्ष समर्थन करता है, उसकी मदद किया चाहता है, अतः विहारी को ही चोट पहुंचाकर अपने मनका क्षोभ मिटानेका यह मौका भी सतीशने हाथसे जाने देना ठीक नहीं समझा। उसके सामने आते ही सतीशने पूछा—"बादने फिर तुम दोनोंमें क्या-क्या सलाहें हुई ?

विहारी अपनेको अब और दबाये न रख सका। रुंधे गलेसे

बोल उठा—"मुझसे सावित्री भला क्या सलाह करेगी ? आपके चरणोंमें दोष-अपराध करता रहता हूं, सिर सामने रखा है, जो चाहें सजा दें, किन्तु बूढे आदमीको इस तरह जला-जलाकर ऊपरसे नमक क्यों छिड़कते हैं ?"

उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धार-सी बह चली।

सतीशकी आंखोंके कोनेमें भी सहसा पानी आ गया। "अच्छा, तू जा' कहकर सतीश उसे विदाकर फिर लेट रहा और लेटे-लेटे तम्बाकू पीने लगा। विहारी चला गया। तीव्र ज्वालासे जलते रहनेके कारण सावित्रीके लिये उसके मुंहसे चाहे जैसे ही कठोर और अनुचित शब्द क्यों न निकल पड़े हों, किन्तु उसके बीमार, दुबले चेहरेकी स्मृति उसे भीतर-ही-भीतर बहुत रुला रही थी।

इस समय विहारीकी बातोंसे यद्यपि कोई साफ बात नहीं मालूम हुई, तथापि वह इतना समझ गया कि सावित्री जरूर कहीं अन्यत्र चली गयी है। कहां गयी ? दो वर्ष पहले सतीशके व नाट्य-समाजमें बिल्वमंगलका अभिनय हुआ था। एकाएक वही पुरानी बात याद आ गयी, साथ ही उस नाटकके एक नेकी एक कड़ी भी उसे याद आ गयी। उसका अर्थ था— . भूलना चाहता हूं, पर भूल नहीं सकता—क्यों ?" ...मे यह कैसे आश्चर्यकी बात है ? जो सावित्री दुष्ट प्रहरी ... उसे लगातार दुःख पहुंचा रही है, जो अभी कई घण्टे पहले अपने मुंहसे स्पष्ट शब्दोंमें यह स्वीकार कर गयी है, कि

मेरा उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है—दोनोंमें कोई भी बन्धन नहीं और जिसके प्रति उसका हृदय आज सम्पूर्णतः घृणासे भर गया है, उसी सावित्रीके लिये उसके मनमें हाहाकार क्यों मचा हुआ है ? यह कैसी विचित्र बात है ! जिसके प्रति इतनी घृणा हो इतना विद्वेष हो, उसी के प्रति यह सद्भाव—यह मंगलाकांक्षा क्यो ? ये दोनों परस्पर-विरोधी भाव उसके मनमें एक ही साथ क्योकर टिके हुए हैं ? कैसे आश्चर्यकी बात है । परन्तु यदि वह एक बार भी देख पाता, एक बार भी समझ पाता कि उसका हृदय अभीतक अचल-अटल भावसे इसी विश्वास-को दृढतासे पकड़े हुए है कि सावित्री मेरी है, मुझसे बढ़कर उसके लिये संसारमे और कोई भी नहीं है—कुछ भी नहीं है तो शायद उसका आश्चर्य कम हो जाता। सतीशने सावित्रीके विरुद्ध स्वयं जो बातें कही थीं, वे भी उसके हृदयको इस विश्वाससे टससे मस न कर सकी थी। यदि सतीश अपने हृदयके इस रहस्यको जान पाता, तो उसके आश्चर्यका कोई कारण नहीं रह जाता—वह उस विचित्र उलझनका अर्थ साफ-साफ समझ जाता ।

२२

दो घंटे बाद सतीश पथरिया घट्टेकी तरफ जानेके लिये बाहर निकला और मन-ही-मन बोला—"उफ! कैसी आफ़त है। पर अब मेरी जान बच गयी—सिरसे भूत टल गया !"

रास्ता चलते-चलते सोचने लगा, किन्तु आज उपेन्द्र भैयाको मुँह कैसे दिखाऊँगा ? आग पर हाथ रखनेसे क्या होता है, यह बात जैसे वह निश्चयपूर्वक जानता था, उसी प्रकार अपने बाल-बन्धु उपेन्द्रनाथको भी पहचानता था। उनके निकट इस अपराधकी माफी नहीं मिल सकती, आजन्म-स्नेहके बदले भी इस विषयमे उपेन्द्र भैया से सहारा पाने की आशा नहीं, यह बात उसकी अपेक्षा और अधिक किसे मालूम थी ?

किरणमयीके घरका सदर दरवाजा खुला था-वहाँ पहुच-कर सतीश चुपचाप खड़ा हो गया और भीतर घुसनेके पहले एक बार सब बातें अच्छी तरह सोचने-विचारने लगा।

उसके मनमें आया कि केवल उपेन्द्र भैया ही उसके परम मित्र, गुरु और आदर्श हैं। उनसे बढ़कर अपना और कौन है। उन्हीं उपेन्द्र भैया के पास जाकर सिर ऊँचाकर खड़े होनेका अब कोई उपाय नहीं रह गया। कल्पनाकी आँखोंसे उसने स्पष्ट रूप से देखा, कि आज भेंट होते ही उनकी कठोर दृष्टि बाल-बन्धुत्व स्नेह और प्रेम—सबको एकदम भस्म कर देगी। कदापि क्षमा न करेंगे।

और इतना ही क्यों ? इस घरके दरवाजे भी निश्चय ही के लिये आजसे हमेशाके लिये बन्द हो जायगे और यहाँ कौन-सा मुँह लेकर आयेगा ?

किन्तु जो इतनी क्षति, इतनी लाञ्छनाका कारण है, जो सर्वनाश कर गयी, वह उसकी कौन थी ? उसने अपनेको

बांधने नहीं दिया, किन्तु मुझे बाँध गयी; उसने आप तो दुःख भोग नहीं किया, किन्तु मुझे दुःख की सागरमें डुबा गयी। जिन बातोंको मैं सच नहीं मान सकता, उन्हें मैं झूठ समझकर उड़ा भी नहीं सकता ? यह कैसी विचित्र परिस्थिति है ! एक लम्बी सांस लेकर सतीशने मन-ही-मन कहा—"सावित्रीने यह जो दुःख दिया है, इसके लिये दुःख नहीं, किन्तु सच्ची-झूठी बातों-में उलझाकर वह मुझे विडम्बनामें क्यों छोड़ गयी—दुःख इसीका है।"

इतनेमें दासीने हाथके इशारेसे कहा—"वहू आपको बुलाती है।"

सतीश चौंक उठा, पूछा—"उपेन्द्र भैया आये हैं ?"

"हाँ, कल बड़ी रातको आये थे।"

"उनके छोटे भाई और उनकी स्त्री भी हैं ?"

दासीने सिर हिलाकर कहा—"कहाँ ? नहीं तो। वे अकेले आये हैं। जबसे आये हैं, बाबूजीके पास बैठे हैं।"

"बाबूजी कैसे हैं।"

दासी ने लम्बी सांस लेकर कहा—
अन्तिम समय है।"

सतीशने मौन रहकर पूछा—"वहू कहाँ है ?"

"वे अभी स्नानकर रसोईघरमें गयी हैं।"

सतीश और प्रश्न न कर यथासाध्य दबे पाँवो सीधा रसोईघरकी ओर चला गया। किरणमयी शायद राह ही देख रही थी। सतीशके दरवाजेपर पाँव रखते ही उत्सुकतासे

पूछा—"यह क्या, भीतर नहीं आये ? बाहर ही खड़े रहे ? चेहरा यों उदास क्यों ? मालूम होता है रातको सोये नहीं।"

सतीशके कानोंमें प्रश्न प्रविष्ट होते ही उसका मुखमंडल क्रोधसे लाल हो, तुरन्त शान्त हो गया। बोला—"हां, सारी रात जगकर उसके साथ आमोद-प्रमोद किया है। सुनकर सन्तुष्ट हुई तो ? इसीसे यहां न आया, यही न ? किन्तु उपेन्द्र बाबूसे कहो कि उन्होंने मुझसे कुछ पूछा क्यों नहीं ? पूछते, तो मैं सब कुछ सच-सच बता देता। संसारमे उनके सिवा और भी मनुष्य हैं, जो सच बोल सकते हैं। इसके अलावा, वे मेरे ऐसे कोई सम्बन्धी भी नहीं हैं, कि डरकर मुझे झूठ बोलना पड़ता। कह दो उनसे। समझ गयी न भाभी।" यों कह, सतीश लौट चला। सतीशके इस भावने—उसके उग्र कंठस्वरने किरणमयीको कर्तव्यविमूढ बना दिया। सतीश बड़े कमरेका दरवाजा पार कर रहा है, यह देख किरणमयीने व्यस्तताके साथ आगे बढ़कर पुकारा—"छोटे बाबू, कहां जाते हो ? जरा सुन तो लो "

सतीश घूमकर खड़ा हो गया, चिल्ला उठा —"क्या होगा ... ? सच कहता हूं भाभी, ये इतने पतित हैं, मैंने स्व... मे भी न सोचा था। ये जहां रहते हैं, वहीं मेरा रहना असं... हो जाता है। आज समझ गया हूं, कि पिताजीने उस दिन मुझे उस तरहकी चिट्ठी लिखी थी, किन्तु उस ... ...कह देना कि मैं उसकी परवाह नहीं करता।"

किरणमयीने व्याकुल होकर पूछा—"किसीकी ? क्या कहते हो छोटे बाबू, कुछ भी मेरी समझमें नहीं आता।"

"ठीक कहता हूं भाभी, ठीक कहता हूं। उनसे कहते ही वे सब कुछ समझ जायेंगा। किन्तु आज तुमसे भी कहे जाता हूं—तुमने मेरे लिये अपने घरका दरवाजा बन्द कर दिया है। एक दिन समझोगी कि सतीश चाहे कितना ही बुरा हो, उसपर विश्वास कर किसीने धोखा नहीं खाया है। एक बात और उनसे कह देना—उनके मनमें जो आवे, जहांतक हो सके, मेरे सर्वनाशकी चेष्टा करें; किन्तु मैं अब उन्हें अपना मुँह न दिखाऊँगा और वे भी मुझे" अकस्मात् सतीश दरवाजेकी ओर देखकर रुक गया और फिर तुरन्त ही मुँह फेरकर आंधीकी तरह शीघ्रतासे चल पड़ा और उसकी दृष्टिका अनुसरणकर किरणमयीकी दोनों आंखें पत्थरकी मूर्तिकी तरह क्षणभर स्तब्ध रहनेके बाद उपेन्द्रके मुखपर जा पड़ीं। वे शोर-गुल सुनकर रोगीके पाससे उठ आये थे और किवाड़को जरा खोलकर खड़े-खड़े सुन रहे थे।

किरणमयीने एक बार सोचा, कि उपेन्द्र इस विषयमें कुछ पूछताछ अवश्य करेंगे, किन्तु उन्होंने कुछ भी न पूछा। चुपचाप किवाड़ बन्दकर वे भीतर चले गये।

किरणमयीके विस्मयकी सीमा न रही। यह क्या हुआ! सतीश अपने उपेन्द्र भैयाका इस तरह अपमान क्यों कर गया? वह रसोईघरमें लौट गयी और स्वप्नकी-सी अवस्था मनमें

लिये काम-काज करने लगी। किन्तु मनके भीतर एक गम्भीर, क्षुब्ध विस्मय हजारों रूप धारण कर निरन्तर चक्कर लगाने लगा। उसके घरमें जो बहुत बड़ी विपत्ति शीघ्र ही आनेवाली थी, क्षणभरके लिये वह उसे भी भूल गयी; केवल सोचने लगी कि कल शामके बाद सतीश घर लौट गया था। इसके बाद इसी एक रातमें भीतर ऐसी क्या घटना घटी जिससे वह इस प्रकार पागलोंकी-सी बातें करके चला गया?

किन्तु उपेन्द्रने एक बात भी जाननेकी चेष्टा नहीं की। उसने देखा कि थोड़ी देरके लिये उपेन्द्रके सूखे मुखपर मानों एक बार असह्य विस्मयका भाव प्रकट हुआ, किन्तु यह बात सच है या केवल उसके मनकी कल्पना, इसका भी वह निश्चय न कर सकी!

उपेन्द्र चुपचाप लौटकर रोगीकी शय्याके पास अपने पूर्व स्थानपर जा बैठे। वे स्वाभावसे ही अत्यन्त धीर, विवेकी और गम्भीर हैं। सहसा किसीके पक्षमें या विपक्षमें कोई धारणा नहीं बाँधते, किन्तु उस सहज निर्मल विचारकी क्षमता उनमें समय किसी तरह न रह सकी, जब कल रातको वे सुर- आदिको ज्योतिषके घर पहुंचाकर बड़ी रात बीते अकेले नके घरमें आये थे।

उस समय हारानका श्वास-कष्ट बढ़ गया था। भीतर .. थी या नहीं, यह भी अनुमान करना कठिन था। चारों र नजर डालनेसे यह घटना उन्हें बड़ी भयंकर-सी मालूम हुई

थी। किसीके मनमें जरा भी चंचलता या व्याकुलता नहीं थी। इसके पहले उन्होंने जो दो-एक मृत्यु-घटना अपनी आँखों देखी थी, उनसे यहाँके ढंग-ढर्रे बिलकुल भिन्न थे। रोगीके सिरहाने तेलका एक दीया जल रहा था, माँ घरके एक कोनेमें चटाई बिछाये अब भी सो रही थी! केवल किरणमयी जग रही थी सही, किन्तु उसके व्यवहार और कंठस्वर जरा भी शंका या उद्वेगका लक्षण न देखकर उनको ऐसा मालूम हुआ, मानो वह स्वामीकी मृत्युकी राह देखती हुई बैठी है। माका भी कैसा निर्विकार भाव है—वह अपने ही रोगसे बेचैन है।

कल रातको उपेन्द्रने जो कुछ देखा था, उससे उन्हें यह स्पष्ट जान पड़ा था कि केवल मृत्युकी विभीषिका ही इन दोनों रमणियोंके भीतर है, यह बात नहीं, बल्कि उसका जीवित रहना ही मानो एक बाधकी तरह बन गया और वह इस छोटेसे परिवारके सुख-दुखके प्रवाहको रोककर और कूड़ा-कर्कट बटोरकर भीतर-ही-भीतर बहुत दुःख दे रहा है। चाहे जैसे हो, इस अवरोधसे छुटकारा पाते ही मानो इन स्त्रियोंके सिरसे एक भारी संकट टल जायगा।

उपेन्द्र आज भी किरणमयीको पहचान न सका। वह मौका ही उन्हें न मिला, किन्तु सतीशने पहचान लिया था। इसीसे पहले जिस रातको इन लोगोंने हारानके बुलानेपर इस घरमें पैर रखे थे, किरणमयीके उस रातके व्यवहारोंसे सतीश तो भूला

था ही, पर उसने अपने मानोभावोंको स्पष्ट शब्दोंमे बताकर, सौ-सौ मुंहसे अपनी गलती कुबूल कर, उससे क्षमा मांगकर भाईका नाता जोड़ लिया था, किन्तु उपेन्द्रके मनमें उस दिन जो दाग बैठ गया था, वह तो था ही, कल रातकी यादने उस दाग पर और भी स्याही फेर दी और कहीं किसी तरहकी अस्पष्टता नहीं रहने दी। इन दोनों स्त्रियोंके सम्बन्धमें उनके मनका भाव भीतर-ही-भीतर क्या और कैसा है, अबतक उन्होंने इस विषयपर विचार कर कोई निश्चित धारणा मनमें बेठानेकी भी चेष्टा नहीं की थी। जब कभी यह बात मनमें पेदा हुई, तभी उसे बलपूर्वक दबा दिया, किन्तु गत रात्रिको उस घरमे प्रवेश करनेके बाद मन-ही-मन इस सम्बन्धमें तर्क-वितर्क करनेका उन्हें मौका न मिला। वहां पहुंचते ही उनका चित्त मांके प्रति वितृष्णासे और स्त्रीके प्रति घृणासे परिपूर्ण हो गया। इसीसे थोड़ी देरके बाद जब किरणमयीने चायका प्याला लिये कमरेके भीतर पांव रखा, तब उपेन्द्रने अपनी दृष्टि रोगीपर स्थिर रखी और उसने जब प्याला उनके आगे रख दिया, तब भी उसे ...नेके लिये उनका अन्तःकरण राजी न हुआ।

सवेरे मनोशके आने और जानेकी बात अघोरमयीको मालूम थी। उस समय वह अपने काम-काजमे लगी थी। उस समय ... पांवों कोठरीमे आकर लड़केको ओर देख, रोने लगीं। ...ने उनको धीरज नहीं बँधाया, मना भी नहीं किया। ...। चायके प्यालेकी ओर उनकी नजर जा पड़ी।

उन्होंने रोती आवाजमें पूछा—"क्यों बेटा, चाय नहीं पी ?"

उपेन्द्रने कहा—"नहीं।"

अघोरमयी अत्यन्त व्यग्र हो उठी, बोली—"नहीं, नहीं बेटा, यह न होगा—सारी रात जगे हो ; कहीं तुम बीमार हो जाओ, तो हमारी क्या गति होगी ?"

उपेन्द्र कुछ न बोले, केवल अघोरमयीके मुँहकी ओर अत्यंत विरक्तिके साथ देखकर फिर रोगीकी ओर लगे। इस तीव्र दृष्टिका अर्थ समझना अघोरमयीका काम न था। वह बार-बार जिद करने लगी। किन्तु उस दृष्टिका अर्थ समझा किरणमयीने अपने मरते हुए बेटेके पास बैठकर दूसरेके लडके के लिये माताके मुँहसे ऐसा असह्य, व्याकुलतापूर्ण आग्रह कितना अनुचित और अप्रिय था, यह उसकी तीव्र बुद्धिसे छिपा न रहा। फिर भी, उपेन्द्र इस मामूली अनुरोधके विरुद्ध क्यों इस तरह अड गये, इसका कोई कारण वह न समझ सकी। उपेन्द्रका यह व्यवहार किरणमयीको असंगत-सा प्रतीत हुआ।

यह आग्रह-प्रत्याग्रह हो चुकनेपर डाक्टर आये। डाक्टर साहब दो-तीन मिनट रोगीकी जांच-पड़ताल करनेके बाद परीक्षा कर आखिरी जवाब देकर चले गये, साथ ही यह आशा भी दे गये कि आगामी रात बीतनेके पहले मृत्युकी सम्भावना नहीं है।

उस समय दस बजे थे। किरणमयीने जरा पास आकर

कहा—"आपको वहाँ भी तो उन लोगोंको एक बार देख-सुन आना चाहिये।"

उपेन्द्रने किसी ओर न देखकर कहा—"वैसी कोई खास जरूरत नहीं। उन्हें सब-कुछ मालूम है।"

किरणमयीने कहा—"तब भी एकबार हो आइये, अभी तो कोई डरकी बात नहीं है। तबतक जरा विश्राम कर आइये।"

उपेन्द्रने कोई उत्तर न दिया। किरणमयीने मृदु और दृढ़ स्वरसे कहा—"जरा सोचकर देखिये, स्नानाहार न कर भूखे प्यासे इस तरह सामने बैठे रहनेसे तो कोई फल नहीं। गाड़ीसे आये हैं, कल सारी रात यहाँ जगे बैठे रहे—इसपर आज सारा दिन और सारी रात इस प्रकार बैठे रहनेसे बीमार हो सकते हैं। सतीश बाबू नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इस समय आप बहुत थके मालूम होते हैं। मैं यहाँ बैठती हूँ—तबतक आप जरा घूम आइये। कहा मानिये, उठिये।"

उपेन्द्रने जरा मुँह ऊपर उठा, नजर नीचे कर ली। उनके आगे किरणमयीने इतनी बातें कभी पहले न की थीं। उस स्वरमें तानेका तनिक भी भाव नहीं था। उसमें एक दृढ़ता और कोमलता भी। उपेन्द्रके कानोंमें किरणमयीका यह स्नेहपूर्ण कातर अनुरोध बहुत ही सुन्दर मालूम हुआ। उस एक रातको जैसा तीव्र कंठस्वर, जैसी कठिन भाषा मुँहसे सुन गये थे, उसमें और इसमें आकाश-पातालका ...र जान पड़ा।

उपेन्द्रने उसकी ओर देखे विना पूछा—"आप लोगोंका दिन आज कैसे बीतेगा ?"

किरणमयीने कहा—"यह बात क्यों पूछते हैं—आज हम लोगोंपर दुःखका जो पहाड़ टूटनेवाला है, उसमें कोई भाग तो ले नहीं सकेगा ? आप अब देरी न करें, इसी समय उठें।

सत्य बात कहनेका यह कितना शान्तिमय ढंग था ! कुछ देरके लिये उपेन्द्र सब कुछ भूल-से गये ; विस्मयसे दोनों आँखें फाड़कर वे किरणमयीके मुँहकी ओर देखने लगे। पहले ही उनकी आँखें उसकी माँगके सिन्दूरपर पड़ीं, जो स्त्रीके सौभाग्यका सर्व श्रेष्ठ प्रमाण है। इस जीवनका परम कल्याण अब भी विद्यमान है, यहाँतक कि यह जरा म्लान भी नहीं हुआ है—सौभाग्यकी समस्त महिमा लिये पताकाकी तरह गर्वके साथ वह अबभी उच्च स्थानपर विराजमान है सहसा एक लम्बी साँसके साथ उपेन्द्रका सारा शरीर काँप उठा।

किरणमयीने इसे देखा, वह उनके मनोभावको भी बहुत कुछ समझ गयी ; परन्तु अपने अन्तःकरणके दुःखका आभासतक उसने प्रकट होने नहीं दिया, कहा—"आप उठिये, मैं उनको थोड़ा दूध पीनेके लिये लाये देती हूं।"

उपेन्द्र जरा हटकर बैठ गये, पूछा—"दवा ?"

किरणमयी सोचते ही व्यथित स्वरसे बोल उठी—"नहीं, नहीं, अब दवाकी जरूरत नहीं रही। बहुत-सी दवाएँ बलपूर्वक खिला-पिला चुकी हूं। अब और दवा देना नहीं चाहती।"

उपेन्द्रने प्रतिवाद नहीं किया। दवाकी जरूरत नहीं, यह वे अच्छी तरह समझते थे। स्वामीको दूध पिलाकर उसने उपेन्द्रसे फिर अनुरोध किया। उपेन्द्र खड़े हो गये और बहुत शीघ्र स्नान भोजनकर लौट आनेकी बात कह द्वारकी ओर बढ़े। उन्हें जाते देख किरणने मृदुकण्ठसे पूछा—"आते वक्त सतीश बाबूके घरसे होते आयेंगे क्या ?"

उपेन्द्र लौटकर खड़ा हो गया, पूछा—"क्यों ?"

किरणने कहा—"मेरे पास तो कोई आदमी नहीं, कि उनके घर भेजती। इसीसे कहा है कि यदि आप एक बार

उपेन्द्रने सहसा समझा कि इस बुलावेके प्रस्तावके द्वारा शायद उन्हींको विशेष रूपसे ठोकर लगायी गयी है। इसीसे उन्होंने रूखे स्वरमें पूछा—"उससे क्या आपको कोई विशेष प्रयोजन है ?"

यह कण्ठस्वर और उसका आशय किरणमयी समझ गयी, किन्तु अपने कण्ठस्वरसे उसने उसे और भी परिस्फुट नहीं किया, बल्कि बिल्कुल अस्वीकार कर स्वाभाविक व्याकुलताके साथ कहा—"इस दुःसमयमें तो मुझे सभीकी जरूरत है। इसके सिवा, वे एकाएक आप पर इस तरह बिगड़कर क्यों चले गये, यह भी मालूम नहीं हो सका। इसीसे सोचती हूँ कि उनको एक बार बुलाना ही अच्छा होगा।"

उपेन्द्रने मन-ही-मन और भी चिढ़कर कहा—"आप इसके लिये चिन्तित न होइये वह तो मेरा ही मित्र है। उसका भला-

बुरा मैं अच्छी तरह समझ लूंगा। फिर भी, यदि आपको अपना कोई विशेष काम हो, तो उसके पास आदमी भेज दे सकता हूं; मुझे स्वयं जानेका समय न मिलेगा।"

किरणमयीने धीरेसे कहा—"यही ठीक होगा। आदमी भेज दें। वह मेरा भी भाई है न, अतः उसे आना ही चाहिये। बन्धुसे झगडकर बन्धुसे ही समझ बूझ ले। बहनके सिरपर जब ऐसी बडी विपत्ति आ पड़ी है, अब ऐसे समय मे क्या उसे मुझे त्यागकर मुझे दण्ड देकर चला जाना चाहिये? और यदि वह मुझे ऐसी अवस्थामे छोड़ भी दे, तो मैं बहन होकर उसे क्योंकर छोड़ सकती हूं?"

"नहीं-नहीं, इसकी क्या जरूरत है—मैं खबर भेज दूंगा।" कहकर उपेन्द्र बाहर निकल आये। उन्होंने मन-ही-मन कहा—"कौन किसका कितना निकट-सम्बन्धी बन जायगा, यह विचारनेका मुझे काम ही क्या है?" किन्तु आत्मीयताकी जो धारा एक दिन केवल उनके और इस परिवारके बीचसे होकर ही बहनेका मार्ग रखती थी, वह आज उनको लांघकर शायद दूसरे मार्गसे होकर बह रही है, इस विचारने उन्हें चोट पहुंचाये बिना न छोडा। बन्धुके साथ वह जो चाहे कर सकता है, किन्तु उनके इस भाई बहनके निकटतम सम्बन्धके विषयमे किरणमयी किसी बन्धुको भी हस्तक्षेप करने न देगी, यह बात वे बिल्कुल स्पष्ट रूपसे समझ गये। वस्तुत. उनके भले-बुरेके विषय में सोच-विचार या चिन्ता करनेका उपेन्द्रको अब अधिकार नहीं रहा।

जल्दी-जल्दी तंग गलीको पारकर उपेन्द्र सड़कपर पहुंचे और एक गाड़ी बुलाकर उसपर जा बैठे। अन्धकारकी ठंडकसे भरे, मृत्यु-वनके बाहर शहरके प्रकाशपूर्ण, यान-वाहनसे चंचल और कोलाहलसे जागृत राजपथपर आ पहुंचने पर भी उनका विषाद दूर न हो सका। मनके भीतर जो आग जल उठी थी, वह जलती ही रही।

जरूरत होनेपर किरणमयी कैसा उग्र रूप धारण कर सकती है, यह एक दिन उन्होंने देखा था, कि किन्तु उसका शान्तिपूर्ण विरोध भी उससे कम कठोर नहीं, आजकी कुछ बातोंसे ही उनको इसका अनुभव हो गया। सतीशके साथ उनका कुछ विवाद हो गया है, किरणमयीको यह मालूम हो गया है यह भी उपेन्द्र समझ गये, किन्तु उस विवादका कारण चाहे जो कुछ हो, जरूरत होनेपर उसका विचार वह खुद ही करेगी, उपेन्द्रको किसी तरह हाथ डालने न देगी, यह बात बारम्बार उनके मन के भीतर ठोकर मार-मार कर उन्हें निर्लज्ज कहने लगी कि वह किरणमयीका हितैषी है और सतीश ...है जो करे और चाहे जैसा ही क्यों न हो वह अब उसका ... है।

२२

स्त्रियोंके सम्बन्धमें उपेन्द्रको अपना मन परिवर्तित करनेका ...मय आ पहुंचा। कारण, अबतकके अनुभवोंसे उपेन्द्रके मनमें

स्त्रियोंके प्रति एक अवज्ञा थी। वे उन्हें 'अबला' ही समझते थे और इसीसे उनके प्रति अवज्ञापूर्ण दयाका भाव रखते थे, परन्तु आज उसपर एकबारगी धक्का लगा। आज उन्हें मन-ही-मन स्वीकार करना पड़ा, कि यह धारणा सत्य नहीं। ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जिनके आगे पुरुषोंका उन्नत मस्तक आप ही झुक जाता है, जोर नहीं चलता, सिर झुकाना ही पड़ता है। ऐसी स्त्री किरणमयी है। उस रातको जब प्रथम परिचय हुआ था, इसके सम्बन्धमें उपेन्द्रने सतीशके मुंहपर कुछ और ही कहा था और मन-ही-मन सकरुण घृणाके साथ सोचा था कि यह उसी प्रकारकी उग्र प्रकृतिवाली प्रचण्ड रमणी है, जो बिलकुल छोटीसी बात पर ज्ञानशून्य हो उन्मत्त बुद्धिका आश्रय लेकर बात-की-बातमें विष खाकर या गलेमें फांसी लगाकर बीभत्स काण्ड कर बैठती हैं। पर आज उन्होंने देखा और समझा कि नहीं, यह बात नहीं है। यह अत्यन्त संकटके समय भी दिमाग ठीक रख सकती है और रेशमात्र भी उग्र न होकर अनायास ऐसी प्रबल शक्तिका प्रयोग कर सकती है, जिसके विरुद्ध खड़ा होना मर्दोंके लिये भी भी असम्भव है। अतः सतीशके इस घरमें आने-जानेके सम्बन्धमें उनकी कर्त्तव्यबुद्धि चाहे जो उपदेश दे, किन्तु किरणमयीके कुशलकी खबर आज खुद जाकर या आदमी भेजकर उनको मँगानी ही होगी।

यह सब करते हुए इस बातकी वे जितनी ही आलोचना

करने लगे उतना ही उनका मन क्षुब्ध होने लगा। कारण उपेन्द्र सतीशको बहुत ज्यादा प्यार करते थे, इसीसे आज उसपर उनकी घृणाकी भी सीमा न थी। उसने जो अपराध किया है उसका विचार और किसी दिन होगा, पर आज वह उनके सामने आकर खुल्लमखुल्ला उनके सदाके अधिकृत बड़े भाईके सम्मानित आसनको बड़े अहङ्कारके साथ पैरों मसल और कुचलकर चला गया है। इस प्रकार अपमानित करनेमें उसने तनिक संकोच भी नहीं माना और किरणमयीने भी उसके इस व्यवहारको देखा है। सब दु:खोंसे बढ़कर यह लज्जा उनके कलेजेमें विधसी गयी है। सतीश आज ऐसी बात कहकर उपेन्द्र को अपमानित कर गया है, जो उसे न कहनी चाहिये थी। इस अपमानकी बात तो शरीरमें प्राण रहते उपेन्द्र किसीसे कह भी नहीं सकते। जिसे वे बड़ी ऊंची निगाहसे देखते थे, सबसे अधिक स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे, वही सतीश आज अध:पातके ऐसे गहरे गढ़ेमें जा पहुचा है कि उनको ऐसी गन्दी गालियाँ दे गया? उसने उनकी उम्रका भी लिहाज किया।

कुछ दिन पहले उपेन्द्रको घरमें एक गुमनाम पत्रसे सतीशके सम्बन्धकी बातें मालूम हुई थीं। वह पत्र राखालने लिखा था। ...न दोनोंमें सद्भाव था, तब सतीशके मुंह से ही उसने उपेन्द्रके ...लौकिक गुणोंकी बातें सुनी थीं। सच तो यह है कि सतीशका ...परिचित ऐसा कोई न था, जिसने सतीशके मुंहसे उपेन्द्र

बाबूकी विद्या, बुद्धि और विशेषतः उनके बर्फके समान शुभ्र और निष्कलङ्क चरित्रकी ख्याति न सुनी हो। सतीशको सब गर्वों में बड़ा गर्व था उपेन्द्र भैयाका और उनके अनुपम स्नेहका। वहां चोट पहुंचानेके समान मर्मान्तक आघात सतीशके लिये और कुछ हो ही नहीं सकता था, धूर्त राखालने इस बातको भली भांति समझ लिया था।

किन्तु उस पत्रका उस वक्त कोई असर नहीं पड सका था। उपेन्द्रने चिट्ठी पढ़कर फाड़ डाली थी और पत्र भेजनेवालेके विषयमें मुस्कुराते हुए कहा था—"तुम चाहे कोई भी हो, और चाहे सतीशकी जितनी गोपनीय बातें क्यों न जानते हो, मैं तुमसे भी अधिक उसे जानता हूं।" और दो दिन बाद जब सतीशके पिताने पूछा तब कहा था कि "सतीश अच्छी तरह है। मालूम होता है, किसीसे लडाई झगड़ा कर बैठा है, इसीसे पहला घर छोड कर दूसरेमें चला गया है। उसी मनुष्यने एक गुमनाम चिट्ठी भेजकर उसके सम्बन्धमें कुछ वाहियात बातें लिख भेजी है।"

वृद्धने उद्विग्न मनसे पूछा था—"कैसी वाहियात बातें उपेन्द्र?" उपेन्द्रने जवाब दिया था कि "उन सब झूठी बातोंको सुनाकर आपका समय नष्ट करना अच्छा नहीं। मैं तो सतीशको भली भांति जानता हूं। मैं शपथ करके यह बात कह सकता हूं कि वह ऐसा कोई भी काम न करेगा, जिससे किसीके सामने सर नीचा करना पड़े! आप निश्चिन्त

रहिये ऐसा विश्वास यदि मुझे न होता, तो मैं अबतक चुप न बैठा रहता।"

सावित्रीको अपनी आँखों देखनेपर उसके उस ध्रुव—अविचल विश्वासकी जड़पर मानो सहसा वज्राघात हुआ। सतीशके घरमें बन-ठनकर बैठी अकेली रमणी! उसमें कितनी गहरी लज्जा थी और लज्जासे भी बढ़कर उन दोनों बड़ी-बड़ी आँखों की व्यथित व्याकुल दृष्टिमें जो त्रास था, वह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इसमें भूल या भ्रमकी गुंजाइश नहीं है। पल भरमें उपेन्द्रके मनमें राखालकी वह भूली हुई चिट्ठी आदिसे अन्ततक आगके अक्षरोंमें जल उठी थी। पूछनेका, सन्देह करनेका कुछ भी अवकाश न था।

उस चिट्ठीको विश्वासयोग्य बनानेमें राखालने कोई कोर-कसर नहीं की थी। उसमें सावित्रीका नाम तो था ही, नाना प्रकारके विवरणोंमें उसके बायें गालपरके एक छोटे काले तिल का भी उल्लेख करना वह न भूला था। वह चिह्न ऐसा स्पष्ट था, कि सावित्रीपर दृष्टि पड़ते ही उपेन्द्रकी आँखोंने उसे पकड़ ..। था।

..तीशको सावधान करनेका अप्रिय कार्य करते चलें या .. यह विचार करते-करते ही किरायेकी गाड़ी ज्योतिष .. के घरके सामने जा पहुंची और फाटकके भीतर घुसते ही .. उत्सुक दृष्टिको मानो किसीने घरके दक्षिणके दुमंजि.. .. ओर आकर्षित कर लिया।

उपेन्द्रने ऊपरकी ओर आँख उठाकर देखा। उन्होंने जिसकी निस्संशय प्रत्याशा की थी, वहाँ वास्तवमें वही मौजूद थी। खुली हुई लम्बी खिड़कीपर एक स्थिर प्रतिमा मानों रास्तेपर मन-प्राण बिछाये खड़ी थी। इतनी दूरसे अच्छी तरह कुछ भी दिखाई देना सम्भव न था, तथापि उसके मनकी आँखोंने उन होठोंकी मन्द मुसकान और पलकके कोनोंके जलकी रेखातक देख ली। उपेन्द्रकी इतनी देरकी चिन्ता-ज्वाला, अभिमान और अपमानके घात-प्रतिघातकी वेदना एकबारगी विलीन हो गयी, केवल यही एक बात मनमें जग उठी कि सुरबालाने कलकी सारी रात और आजका यह सवेरेका पहर न मालूम कैसे बिताया होगा! यदि उसकी चलती तो वह उसे घरसे बाहर निकलने भी न देती। उसने इस अपरिचित शहरमें, गहरी रात्रिमें अपने अस्वस्थ स्वामीको अकेले घरसे जाने देकर इतना लम्बा समय कैसे बिताया, यह सोचकर उन्हें हँसी भी आयी और आँखोंके कोनोंमें पानी भी आ गया।

सरोजिनी खबर पाते ही भीतरसे दौड़ती हुई बाहरके बरामदेमें आ पहुँची। उपेन्द्रको देखते ही उसकी आँखोंपर और मुँहपर हँसी खिल उठी। गाड़ीपरसे उनके उतरते-न-उतरते बोल उठी—"बाहर न ठहरिये एकदम ऊपर चले चलिये।'

उपेन्द्रने अपनी मुखमुद्रा गम्भीर बनाकर एकदम ऊपर चलनेका कारण पूछना चाहा; पर उन्हें भी हँसी आ गयी।

सरोजिनीने हँसकर कहा—"कल रातभर न वे खुद

सोयीं, न मुझे सोने दिया। सारी रात गाडियोंका शब्द सुनती और खिड़की खोलकर रास्ता देखती रहीं। यह क्या? क्या आप चिट्ठी लिखने बैठे? नहीं-नहीं यह न होगा। एक बार मिल तो लीजिये, फिर जो इच्छा हो, कीजिये। अभी नहीं।'

बाहर एक छोटी मेजपर दावात-कलम थी। कागजका पेड भी था। उपेन्द्रने एक कागज निकालकर कहा—"चिट्ठी लिखने-के बाद जो कहो, कर सकता हूं, किन्तु पहले नहीं। पांच मिनटसे अधिक न लगेगा— चाहो, तो जाकर खबर दे दो।

सरोजिनीने पूर्ववत् मुस्कुराते हुए कहा—"मेरे खबर पहुंचाने-की जरूरत नहीं। उन्होंने ही मुझे खबर देकर बाहर भेजा है। अच्छा, पांच मिनटोंतक मैं यहीं खडी रहती हूं। आपको साथ लेकर ही जाऊंगी।"

उपेन्द्र और कुछ जवाब न देकर चिट्ठी लिखने लगे। लिखते समय उनके मुंहपर क्रोध और पीडाके जो स्पष्ट चिन्ह प्रति-फलित हो रहे थे, उनको पास खडी सरोजिनी देख रही थी, किन्तु उपेन्द्र यह न जान सके।

चिट्ठी खतम कर, उसे लिफाफेमें बन्द कर और लिफाफेपर ..। लिखकर उपेन्द्रने सिर उठाया। कोचवानने आकर सरोजिनीसे कहा—"गाडी तैयार है।"

उपेन्द्रने कहा—"तुम बाहर जाओगी क्या?"

सरोजिनीने कहा—"हां, मैंने अपना, छोटा पियानो मरम्मत करनेको दिया है, उसे एक बार देख आऊंगी।"

उपेन्द्रने खुश होकर कहा—"तो जरा दो गली घूम कर यह चिट्ठी साईसके हाथ उसके घरपर भेज देना—पास ही है, दूर नहीं"—कहकर उपेन्द्रने सरोजिनीके बढ़ाये हुए हाथपर चिट्ठी रख दी।

सरोजिनी कुछ देरतक लिफाफेके सिरनामेको देखती रही। पर नाम और पतेकी पंक्तियाँ पढ़नेमें उसे इतना समय नहीं लगता, जितना इसे देखनेमे लगाया। अनन्तर कुछ सोच-कर उसने कहा—"सतीश बाबू हमारे यहाँ क्यों नहीं उतरे?"

"वह तो हम लोगोंके साथ नहीं आया! सतीश बराबर यहीं रहता है।"

यह सुनकर सरोजिनी चौंक उठी। इस समय उपेन्द्रके मनकी ऐसी अवस्था न थी कि वे सरोजिनीके चेहरेपर होने-वाले इस परिवर्तनको ताड़ सकते।

सरोजिनी अपनी लज्जा दबाकर सहज भावसे बोलनेकी चेष्टा की—"इतने दिनोंसे पासमे ही रहकर वे कभी इस ओर न आये?"

उपेन्द्र अन्यमनस्क हो और ही कुछ सोच रहे थे, बोले—"शायद आप लोगोंकी बात उसे याद न आयी होगी।" बात बिल्कुल मामूली थी, किन्तु सुननेवालीके कानोंको वह बहुत ही कठोर मालूम हुई। "हैं, दिवाकर कहाँ है? वह तो दिखाई नहीं पड़ता?"

"वे बेचारे आज हाईकोर्ट देखने गये हैं। चलिये, आपको

साथ लेकर भीतर पहुँचा आऊं।" कहकर सरोजिनीने घरके भीतर प्रवेश किया।

कोई बीस मिनटके बाद जब वह लौटकर गाड़ीपर जा बैठी तब गाड़ी उसके आज्ञानुसार सतीशके घरकी ओर बड़ी तेजीसे दौड़ चली। सरोजिनीका हृदय सहसा कांप उठा और गाड़ी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उसके हृदयका धड़कना भी बढ़ने लगा।

उसके मनमें यह बात उठने लगी कि आज वह एक ऐसे कार्यका भार लेकर चली है, जिसकी सफलतापर मानो उसके निजी भविष्यका भला-बुरा निर्भर है।

शीघ्रही गाड़ी सतीशके घरके सामने आ खड़ी हुई और साईस पत्र हाथमें लेकर उतर गया। सरोजिनी गाड़ीके एक कोनेमें बिलकुल सिमटकर बैठी थी। उसने बड़े ध्यानसे साईसका दरवाजेका कड़ा खड़खड़ाना सुना। क्षणभर बाद दरवाजा खुलनेकी आवाज हुई, उसके भीतर जानेका अनुमान किया और इसके बाद निःक्षण वह किसीके सुपरिचित गम्भीर कंठ-स्वरके सुननेकी क्षा और आकांक्षासे उत्कंठित हो रही। वह निश्चयपूर्वक मान करती थी कि साईसके द्वारा गाड़ी और गाड़ीके भीतर लीकी खबर पाकर सतीश स्वयं ही आ उपस्थित । उसके मनमें एक बार भी यह बात न उठी, कि जो कि अबतक इतना पास रहनेपर भी इस तरह भूला रह सकता है, उसे यह खबर तनिक भी विचलित नहीं कर सकती।

फिर साईसका कण्ठस्वर दरवाजेके पास सुन पड़ा। द्वार बन्द भी हो गया और क्षणभरके बाद ही साईस चिट्ठी लिये वापस आ गया, बोला—"बाबू घरमें नहीं हैं।"

"घरमे नहीं।" सुनकर कुछ कालके लिये सरोजिनीके हृदयने मानो शान्ति पायी। झुककर कहा—"चिट्ठी क्यों लौटा लाया, दे आ।"

साईसने कहा—"बाबू कलकत्तेमे नहीं हैं। सुबह दस बजेकी गाड़ीसे घर चले गये हैं।"

यह सुनकर न मालूम क्यों उसे एक बार अपनी आँखों सतीशका घर देख आनेकी अनिवार्य्य इच्छा हुई इसका ठीक कारण वह स्वयं भी न समझ सकी किन्तु उसी क्षण गाडीसे उतर पड़ी और दरवाजा खुलवाकर घरके अन्दर दाखिल हो गयी। रसोइयेको साथ लेकर उसने उस मकानका सर्वत्र घूम-फिरकर देखा। नीचे उतरते वक्त रस्सीकी एक अरगनीपर लटकती अधमैली चौड़े किनारेकी साड़ीपर उसकी दृष्टि जा पड़ी। चौंककर पूछनेपर रसोइयेने कहा—"बाईजीकी है।" सावित्रीने शामको स्नानकर अपनी गीली साड़ी सूखनेके लिये फैला दी थी, वही अबतक लटक रही थी। सरोजिनीने विस्मित हो, इन बाईजीके सम्बन्धमें कई प्रश्न किये। उन प्रश्नोंके उत्तरमें उसे जो बातें मालूम हुईं, उनसे वह और भी आश्चर्यमें पड़ गयी। जो बातें साधारणतः नहीं होतीं और जिनके भीतरसे स्वयं ही दुर्गन्ध आती है, पूरे तौरसे न समझ सकनेपर भी मनुष्य

अपनी बुद्धिके अनुसार उनके विषयमें एक धारणा बांध लेता है। इन ब्राह्मण देवताने भी उपेन्द्रके सस्त्रीक आने, उलटे पांव वापस जाने और आज सवेरे मालिकके अकस्मात घर चले जाने-की घटनाओंके विषयमें यह अनुमान किया था, कि बाईजीके कारण ही ये बातें हुई हैं। खासकर सतीशका अस्वाभाविक चिन्तित और उद्‌भ्रान्त भाव किसी मनुष्यकी दृष्टिसे छिप नहीं सकता था, इसीसे उसने सावित्रीकी बीमारी आदि की अनेक बातें बतायीं। और यह भी कहा कि उसीको देखने-सुननेके लिये ही शायद उसके मालिकको यों व्यस्त और व्या-कुल होकर जाना पड़ा है। सरोजिनीको यह एक नयी बात मालूम हुई कि उपेन्द्र आदि पहले इसी घरमें आये थे, सामान तक उतार लिया गया था, किन्तु फौरन ही सब सामान उठवाकर उसी गाड़ीसे वापस चले गये। उन लोगोंमें किसीने सतीशका नाम तक नहीं लिया। इसके बाद उपेन्द्र बाबूने यह पत्र लिखा उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उन्हें अपने भाईके अकस्मात चले जानेकी खबर मालूम नहीं है। उस रमणीके सम्बन्धमें सूक्ष्मतापूर्वक नाना प्रकारके सवाल कर एक-एक कर उसकी ः और रूप-रंग आदिकी जो सूचनाएं मिलीं, वे सत्यको छोड़-कर बहुत ऊपर जा पहुंची थीं। अन्तमें लौटकर जब सरोजिनी नीचे आ बैठी, उस समय पियानो सम्मत करानेका उसका ... जाता रहा और ज्ञानोका भीतरी भाग एक अज्ञात बोझसे दब गया। यह रहस्यमयी कौन है और कैसे यहां आयी, यह

से मालूम न हो सका; पर दालमें कुछ काला जरूर होनेका अनुमान उसके मनमें दृढ़ हो गया।

सतीश और किरणमयीपर उपेन्द्रको चाहे जितना क्रोध और चाहे जितनी घृणा क्यों न हो, किन्तु उसे प्रधानता देकर कर्त्तव्यकी उपेक्षा करना उनके स्वभावके विरुद्ध था। इसीसे भोजनके बाद पथरिया घट्टेके उस मकानमें जानेकी उनकी इच्छा अवश्य थी, पर भारी थकावटने आज उन्हें जाने न दिया। सुरबाला भी ऐसी टेढ़ी हो गयी कि उसकी बात न मानकर जाना और भी कठिन हो गया। उसने स्वामीको स्पर्शकर पंखेकी रस्सी दिखा बहुत ही संक्षेपमें कहा—"तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं, यदि तुम विश्राम किये बिना चले जाओगे तो मैं गलेमें फांसी लगा लूंगी। जाने दो, चाहे जैसा ही काम क्यों न हो।" उपेन्द्र बिना प्रतिवाद किये चुपचाप चारपाईपर लेट रहे और देखते-देखते सो गये।

घंटों बाद जब उनकी नींद टूटी, तब दिन ढल चुका था। अंगड़ाई ले, उठ बैठते ही तिपाईपर रखी चिट्ठीपर नज़र पड़ी। उठाकर देखा, वह ज्यों-की-त्यों बन्द है—चाहे जिस कारणसे हो, वह सतीशके पास न पहुंची। आहट पाकर सुरबालाने कमरेके भीतर जाकर कहा—"सतीश बाबू तो यहाँ नहीं हैं। सुना दस बजेकी गाड़ीसे घर चले गये हैं।"

यह खबर सुनकर उपेन्द्रका मुंह सूख गया। पहले ही मनमें यह बात उठी, कि अपरिचित शहरमें हारानकी आसन्न मृत्यु

के सम्बन्धके सभी काम उसे स्वयं ही करने होंगे। ओफ ओह! कितने काम करने होंगे—और कैसे भीषण एवं कठोर! लोगोंको बुला लाना, सब सामान जुटाना, सद्यःविधवा स्त्री और जननीकी गोदसे मृत देहको उठा ले जाना। इस हृदयविदारक शोकके हृदयको कल्पना करके भी उनका सारा शरीर पत्थरकी तरह हो गया और चित्त पथरिया घट्टेकी ओर से उचट गया। वे अपने अन्धविश्वासमें भीतर-ही-भीतर सतीशपर कितना भरोसा किये हुए थे, यह अब घृणा और अपमानका पर्दा फटकर स्पष्ट दिखाई देने लगा।

ये सब काम उपेन्द्रकी प्रकृतिके बिलकुल विरुद्ध थे। जहाँतक हो सकता था, वे ऐसे कामोंमें पड़ना न चाहते थे। किन्तु सतीशके लिये ये बहुत सहज थे। जब किसीकी मृत्यु हो जाती थी तब सबल-स्वस्थ सतीश सबसे पहले पहुँचता था और सभी अप्रिय कार्योंको चुपचाप बिना आडम्बरके कर देता था। इसीसे ऐसे दुःसमयमें सभी उसे खोजते थे और उसके आ जानेसे शोकार्त्त और विपन्न गृहस्थको दुःखमें भी सान्त्वना और साहस प्राप्त होता था। वह जब एक बारगी कलकत्ता छोड़कर चला गया, तब क्षणभरके लिये उपेन्द्रको किसी ओर दृष्टि डालनेपर भी कोई मार्ग न सूझा।

सुरबालाने स्वामीके चेहरे की ओर देखकर हारानकी अवस्था पूछी, किन्तु सतीशका प्रसङ्ग न उठाया। सरोजिनीने सतीशके यहाँसे लौटकर अपनी आँखों देखी जो बातें बतौर किस्सेके

तायी थीं, उन्हींसे उसने कल रातकी बातोंका अनुमान कर लिया था। सतीश उसके स्वामीका कितना घनिष्ठ मित्र है, यह वह जानती थी, इसीसे इस बातको उसने हँसीमें उड़ा दिया।

सुरबालाकी सांसारिक बुद्धिपर उपेन्द्रका कुछ भी विश्वास न था, इससे वे कभी उससे किसी कठिन विषयकी चर्चा नहीं करते थे, किन्तु अभी वे अपनेको जिस विपत्तिमें फँसा हुआ समझ रहे थे, उससे वे व्याकुल हो उठे और बोले—"वह मुझे ऐसी विपदमें छोड़कर चला जायेगा, यह मैंने स्वप्नमे भी न सोचा था। अकेला इस अनजान जगहमें मैं क्या उपाय करूँ ?" इतना कह, वे असहाय शिशुकी तरह स्त्रीका मुँह ताकने लगे।

किन्तु आश्चर्य! स्वामीके सिरपर आयी हुई इतनी बड़ी विपत्तिकी बात सुनकर भी सुरबालाके चेहरेपर जरा भी उद्वेगका चिह्न दिखाई न पड़ा। वह पास खिसक आयी और स्वामीका एक हाथ पकड़ उनको फिर बिस्तरपर बिठा दिया और धीरे-धीरे कहा—"इतनी फिक्र क्यों करते हो ? यह कलकत्ता है, किसीका कोई काम किसीके बिना यहाँ अटका नहीं रहता। तुम्हारी चाय तैयार हो गयी है, हाथ-पाँव धोकर चाय पी लो। दिवाकर बाबूको लेकर मैं भी चलती हूं, चलो।"

उपेन्द्रने कहा—"तुम चलोगी ?"

सुरबालाने जरा भी विचलित न होकर कहा—"हाँ चलूंगी। स्वामीके ऐसे दुःखके समय पास रहना स्त्रियोंकाही काम है।" कहकर उसने अनुमतिके लिये प्रतीक्षा न कर पासके कमरेसे

चायका प्याला ला रखा और दिवाकरको खबर देने तथा स्वयं तैयार होनेके लिये फौरन ही बाहर चली गयी।

गृहस्थोंके घरमें दीपक जल चुके थे। ठीक उसी समय वे पथ-रिया घट्टके उस मकानमें पहुंचे। सदर दरवाजा खुला था, किन्तु नीचे कहीं कोई भी न था। कहीं कोई आहट भी नहीं मिलती थी। गिरा-पड़ा, टूटा-फूटा, अन्धेरा मकान श्मशानकी तरह सूना था। दोनोंको सावधानीसे पीछे-पीछे आनेका इशारा कर उपेन्द्र चुपचाप ऊपर चढ़ हारानके बन्द कमरेके सामने आकर कुछ देरतक चुपचाप खड़े रहे। भीतरसे एक मर्मभेदी दीर्घ श्वास कानोंमें आ पड़ी। कांपते हाथसे द्वार खोलते ही शय्याके नीचे धुंधली रोशनीमें सिरसे पैरतक कपड़ेसे ढकी हारानकी मृत देह दिखाई पड़ी। उसके दोनों पांवोंके बीचमें मुंह डालकर सद्य, विधवा पड़ी हुई थी— उसने एक बार सिर ऊपर उठाकर देखा और उसी क्षण बिजलीकी तरह तेजीसे उठ आर्तकण्ठसे "मां" कहकर चिल्ला उठी और उपेन्द्रके पांवों तले मूर्च्छित हो गिर पड़ी। सुरबालाने, जो अपने पतिके पीछे खड़ी थी, फौरन हतबुद्धि स्वामीको एक ओर हटाकर किरणमयीका सिर अपनी गोदमें ले लिया।

२४

अस्थि, मांस, मेद, मज्जा, रक्तसे बनी हुई इस मनुष्य-देहमें सब वस्तुओंकी एक सीमा निर्दिष्ट है। मातृ-स्नेह भी असीम नहीं, उसकी भी सीमा है। दिन-रात भारी भार खींचते-खींचते

जब रक्त-संचालन बन्द होनेको आता है, तब जननी भी संतान-को उठाकर एक पद आगे नहीं बढ़ सकती। इसका कारण स्नेहका अभाव है अथवा सामर्थ्यका, इसकी मीमांसा अन्तर्यामीके हाथ है, माँके हाथ नहीं। इसीसे उस दिन जब हारानकी मृत देह माताकी गोदसे निकल श्मशानको चली गयी तब अघोरमयीकी छाती फाड़कर जो लम्बी उसांस निकली, वह उस असीमके ही पदप्रान्तमें इस मृत्युकी खबर ढोकर ले गयी। वह और कुछ साथ ले गयी या नहीं, यह अनुमान करना मनुष्य-की शक्तिके परे है।

अघोरमयीको जिस समय बहुत ज्वर था, उसी समय हारानकी मृत्यु हुई। इसके बादके आठ-दस दिन कैसे बीत गये, यह वह जान भी न सकी।

किसी तरह श्राद्धादि कर्म हो जानेपर उसने उपेन्द्रको पकड़ा, कहा—"बेटा, पड़ोसके मल्लिककी बड़ी बहू काशी, वृन्दावन और प्रयाग जायेंगी, क्या उनके साथ मेरा जाना नहीं हो सकता ?"

"क्यों नहीं हो सकता मौसी, स्वच्छन्दतासे हो सकता है। किन्तु   " कहकर उसने एक बार किरणमयीके मुँहकी ओर देखा।

किरणमयी समझ गयी, बोली—"मेरे लिये कोई चिन्ता नहीं, मैं नौकरानीके साथ यहीं रह सकूँगी।"

लेकिन उपेन्द्र इससे तुरन्त "हाँ" नहीं कर सके, चुप हो रहे।

किरणमयीने कुछ देरतक उसके मुँहकी ओर देखते रहनेके बाद कहा—"किन्तु यह भी तो सुगमतासे हो सकता है, कि जब दिवाकर बाबू कलकत्तेमें ही रहकर बी० ए० पढ़ेंगे, तो उनको मेरे पास ही क्यों नहीं रख देते ? किसी अनजान घरमें रहनेकी अपेक्षा मेरी आँखोंके सामने रखना तो अधिक अच्छा है। देखरेख भी होगी, और कलकत्तेमें अकेले रखनेमें जो भय है, वह भी न रहेगा।" कहकर वह उपेन्द्रकी ओर देखने लगी।

अघोरमयी एक बारगी पूर्ण सम्मति देकर बोल उठी—"यह हो जाये, तो फिर कहना ही क्या है। उपेन्द्र, यही करो बेटा! यही करो। उस लड़केको भी कुछ कष्ट नहीं होगा और इस हतभागिनीकी भी हिफाजत रहेगी। कुछ भी हो, एक ऐसा रास्ता करो कि मैं काशीवास कर सकूँ।" इतना शीघ्र ऐसा सीधा रास्ता निकलते देखकर वृद्धाने एक बार मानों निश्चिन्त होकर साँस ली। उसके होठोंपर आज एक म्लान प्रसन्नताकी झलक भी दिखाई दी। पर उपेन्द्र किरणमयीका साहस देखकर स्तम्भित हो रहे। उसने एक ऐसा प्रस्ताव सामने ला रखा, जिसके सम्बन्धमें क्या करना चाहिये, पहले वे यही नहीं सोच सके। कुछ भी हो, दिवाकर बच्चा नहीं है, वह नवयुवक है और यह रूपवती युवती अकेली इस निर्जन गृहमें उसके साथ रहकर छोटे बच्चेकी तरह उसके लालन-पालन और उसकी देख-भाल करनेका पूरा दायित्व बिना सङ्कोचके ग्रहण करनेको तैयार है, यह देखकर उपेन्द्रके मुँहसे भली-बुरी कोई भी बात

सहसा न निकल सकी। यह रमणी कैसी असाधारण बुद्धिमती है, यह बात उपेन्द्र भली भांति जान गये थे। किरणमयी सामाजिक विधि-विधान, रीति-नीति और भलाई-बुराई सब बातोंको समझती है, इसमें उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं था। फिर उसे ऐसा साहस क्योंकर हुआ? कैसे उसने यह बात कही?

पलक मारते उपेन्द्रने संशयोत्तेजित अपनी समस्त पर्यवेक्षण-शक्तिको जाग्रत और एकत्र कर इस सौन्दर्यमयीके अन्तःकरणको देखना चाहा; किन्तु कहींसे उसे भीतर प्रवेश करनेका मार्ग न मिला, बल्कि उससे जोरसे टकराकर तुरन्त लौट आना पड़ा।

कुछ देरतक दोनों एक दूसरेका मुँह ताकते रहे। इसीसे मानों दोनोंमें एक नया परिचय हुआ—एक नयी जान-पहचान हुई। उपेन्द्रको ऐसा जान पड़ा, मानों ऐसी शुद्ध, शान्त और [illegible]त्तम वैराग्यकी मूर्ति उन्होंने कभी देखी ही नहीं। उस रातको इसका वेश-विन्यास देखकर उसी क्षण आये हुए उपेन्द्र और सतीशकी आँखें चौंधिया गयी थीं, दोनोंने समझा था, वह रूपकी खान है और सजावटकी प्रतिमा। और आज रूखे, ढीले, खुले बाल और विधवाका वेश देखकर उन्हें जान पड़ा, जैसे इसको और किसी दिन देखा ही नहीं। अचानक प्राप्त हुई नयी चेतनाके समान यह एक बात उनकी रग-रगमें प्रवाहित हो गयी कि सौन्दर्यका जो असीम समावेश इसमें है, वह मानो अग्निशिखाकी तरह लहराकर ऊपर उठ रहा है, इसे दूरसे देख तो लेना चाहिये, पर स्पर्श नहीं करना चाहिये

जो इसे स्पर्श करना चाहेगा, वह झुलसकर भस्म हो जायगा। इस तेज अग्नि-शिखा सरीखी विधवा रमणीने संकोच और भय के बिना दिवाकरको ग्रहण करना सत्यके अधिकारके नाते ही चाहा है—इसने दुःसाहस या स्पर्द्धा नहीं प्रकट की है।

उपेन्द्र उस समय कुछ कह न सका सही, किन्तु उसकी मानसिक दृष्टिमें यह स्पष्ट हो गया कि इस विधवाके निकट दिवाकर बिलकुल छोटे बच्चेकी तरह जान पड़ा है और उस दिन जो उसने सतीशको छोटे भाईकी तरह भेज देनेके लिये उपेन्द्रसे अनुरोध किया था, वह भी आज बिलकुल स्पष्ट रूपसे उन्हें ज्ञात हो गया। उसके परितप्त मनने चुपचाप हाथ जोड़कर इस महामहिमामयीके समक्ष अपना अपराध बारम्बार स्वीकार कर क्षमा माग ली। तीनों जने चुप थे। किरणमयी ने पहले बात उठायी। अपनी करुण दृष्टि उपेन्द्रके मुँहकी ओर स्थिर रखकर विनय-भरे स्वरमें बोली—"दिवाकरको मेरे पास रख न सकोगे क्या?"

उपेन्द्र मंत्रमुग्धकी तरह बोल उठा—"क्यों न रख सकूँगा, भाभी? आप उसका भार लें, यह तो उसके लिये परम सौभाग्यकी बात है।" इतने दिनोंके बाद आज उपेन्द्रने उसे आत्मीयकी तरह सम्बोधन किया। फिर कहा—"दिवाकर मेरे साथही आया था शायद यहींसे चला गया, नहीं तो अभी उसे पुकार कर कह देता।"

यह सुनकर किरणमयी चकित हो गयी। इस बार उसके

मुंहसे बात न निकली। मानो आनन्दकी बाढ़ने अचानक उनके हृदयको डुबा देना चाहा। इसीसे वह क्षणभरके लिये उपेन्द्रकी ओरसे मुंह घुमाकर अपनेको सम्भालनेकी चेष्टा करने लगी। इतनी ही अपनाइत है? पर यह भी कितनी मधुर है! इसीके लिये मानो वह एक युगसे प्यासी हो रही थी, सतीश भाभी कहकर पुकारता था, दिवाकर भी यही कहकर सम्बोधन करता है, किन्तु उसमें और इसमें कितना अधिक अन्तर है। इस सम्बोधनके द्वारा इतने दिनोंके बाद उपेन्द्रने जिस झोंकेसे अपनी ओर खींचा था, उससे किरणमयीको ऐसी आशंका हुई कि इसे शायद वह सहन न कर सकेगी।

किन्तु इन लोगोंके एकाएक चुप हो रहनेसे अघोरमयी मन-ही-मन शंकित हो उठी। एक यदि राजी हुआ तो दूसरेने मुँह फेर लिया। वह और ठहर न सकी, बोली—"बेटा उपेन्द्र, यदि ऐसा हो जाये तो मेरे जानेमें कोई विघ्न ही नहीं। तुम कहो, तो मैं मल्लिककी घरनीसे जाकर कह आऊँ?"

उपेन्द्रने किरणमयीकी ओर और एक बार देखकर कहा—मैंने तो कह दिया मौसी, मुझे इसमें कोई उज्र नहीं। तुम्हारी भाभी सम्मत हो जायें तो ठीक है। उनकी भी जब राय है तो तुम्हारी तीर्थयात्रामें मैं कोई बाधा नहीं देखता।"

"तो जाऊँ बेटा, मैं अभी जाकर उनसे कह आऊँ! और यह भी पूछ आऊँ कि वे कब जायेंगी!" कहकर अघोरमयी तुरन्त दासीको लेकर उत्सुकतापूर्वक नीचे उतर गयी।

उनकी इस जलदबाजी से उपेन्द्रने मन-ही-मन अत्यन्त संतुष्ट होकर कहा -"अच्छा ही हुआ, जैसे हो, कुछ दिन इनका बाहर रहना बहुत जरूरी है।"

किरणमयी कुछ अनमनी-सी हो रही थी । अतः जवाब न पाकर उपेन्द्रने फिर कहा—"आपकी सम्मति तो पक्की है न भाभी ?"

उपेन्द्रका कंठस्वर सुन, वह कुछ कालतक भौंचक-सी हो उसके मुंहकी ओर देखती रही । अनन्तर सहसा मानो सचेत हो उठी, बोली—"हां, क्यों नहीं, पक्की ही है। यह कैसा अन्ध-कूप है, यह केवल हमीं जानती हैं। जायं, कुछ दिन इस दु:खके गढ़ेसे रिहाई पाकर सुख भोग लें।"

उसके मुंहसे ऐसे ढंगसे ये बातें निकलीं कि उपेन्द्रके मनमें दु:ख हो आया। कुछ देर मौन रहकर पीड़ित चित्तसे उन्होंने कहा-"दु:खके इस गढ़ेसे केवल उनका ही नहीं, आपका निक-लना भी उचित है।"

किरणमयीने कातर दृष्टि से देखकर कहा-"मेरा कौन है बाबू जिसके पास जाऊंगी ?"

उपेन्द्रने पूछा—"क्या आपके मायकेमें कोई नहीं है ?"

किरणमयी मुस्करायी, बोली—"मायका कहां है, यह भी मालूम नहीं, मामाके घर पली थी, पर उनकी खबर भी आठ-वर्षसे नहीं मिली। दस वर्षकी उम्रमें ब्याह हुआ था और इस घरमें आयी थी। शायद मरे बिना कभी इस घरसे ... हो भी न सकूंगी।"

उपेन्द्र बहुत व्यथित हुए। कुछ सोचकर बोले—"तो आप भी मौसीके साथ पश्चिम क्यों नहीं जातीं? घूमना भी होगा; तीर्थयात्रा भी होगी।" किन्तु किरणमयीके चेहरेका भाव देखकर वे चकरा गये, क्योंकि ऐसे प्रस्तावसे उसने कुछ भी प्रसन्नता नहीं प्रकट की। उत्साह-हीन हो चुपचाप देखती रही।

उपेन्द्र तुरन्त समझ गये कि वह घर छोड़कर जाना नहीं चाहती, बोले—"क्या आप घर-द्वारके लिये चिन्ता करती हैं? कोई चिन्ता न करें। मैं यहाँकी देख-रेखका पूरा बन्दोबस्त कर दूँगा, कोई चीज बर्बाद न जायेगी।"

इस बार किरणमयी मुँह मोड़कर मुस्कुरायी। उसने कहा—"मालूम होता है, उस रातका मेरा पागलपन यादकर आपने यह बात कही है?"

उपेन्द्रने लज्जित होकर जल्दीसे कहा—"नहीं-नहीं, यह बात नहीं, किन्तु यदि यह बात हो भी तो उसे पागलपन क्यों कहती हैं? वैसी अवस्थामें इस प्रकारकी सतर्कता सबको रखनी पड़ती है।"

किरणमयी अपनी निन्दा करती हुई हँसकर बोली—"ओः एकबारगी इतनी सतर्कता।"

उपेन्द्रने कहा—"क्यों नहीं? अपने [illegible] चीज-वस्तुपर किसकी ममता नहीं होती? भविष्यत्की दुश्चिन्ता किसे नहीं होती? नहीं-नहीं, ऐसी बात आप न कहें। इसमें अस्वाभाविकता कुछ भी न थी।"

"न होना ही अच्छा था; किन्तु मैं तो उसे इस वक्त निरे पागलपनके सिवा और कुछ नहीं समझती। आपपर भी सन्देह किया था ? छिः छिः कैसी कड़वी बात कहती थी। अब याद आनेसे खुद ही लज्जासे मरी जाती हूं ?" कहते-कहते मानो उसका सहज सुन्दर मुख कृतज्ञता-मिश्रित अनुतापसे पिघल गया। उपेन्द्रसे इसपर कुछ कहते न बन पड़ा। चुपचाप उस ओर देखते रहे। क्षणभर मौन रहकर किरणमयीने फिर कहा—"किन्तु वह ममता अब कहां है बाबू ? एक बार भी यह मनमें नहीं होता, कि यह घर-द्वार मेरा ही रहेगा या नहीं। रहे चाहे नष्ट हो जाये। सोचती हूं, रास्तेके किनारे पेडके नीचेसे तो कोई हटा नहीं सकेगा। मेरे लिये वही बहुत होगा।"

उपेन्द्रने इसका भी जवाब नहीं दिया। किन्तु सद्यःविधवाके वैराग्यकी इन बातोंसे उसका हृदय श्रद्धाकी मधुरतासे लबालब भर गया।

किरणमयीने कहा—"घर-द्वारके कारण नहीं किन्तु मांके साथ तीर्थाटन करनेसे ही क्या मुझे शान्ति मिलेगी ? सुनती उन सभी जगहोंमें तो लोगोंकी बड़ी भीड़ रहती है।"

उपेन्द्रने सिर हिलाकर कहा—"तीर्थ-स्थानोंमें मनुष्योंकी भी होती है। किन्तु आपके लिये चाहे और कुछ न हो, शान्ति तो होगी। यह भी एक काम है।"

फिर किरणमयी उपेन्द्रकी ओर देखकर मुंह जरा घुमाकर मुस्करा दी, कुछ बोली नहीं। वह क्यों मुस्करायी, इसका अ

न समझकर उपेन्द्र कुछ कहने जा रहे थे कि इसी समय आश्चर्य-के साथ देखा कि पासकी कोठरीसे दिवाकर बाहर निकल रहा है।

"क्या तू अबतक इसी कोठरीमें था?"

किरणमयीने कहा—"दिवाकर बाबू दयाकर मेरी किताबों-को सहेज रहे थे। मैं कहना भूल गयी थी।

दिवाकरने पास आकर लम्बी सास भरकर कहा—"कितनी पुस्तकें हैं और किस बुरी तरह पड़ी हैं भाभी! किन्तु खोलकर देखनेसे मालूम होता है, कि उन्होंने बड़े यत्नसे सबको पढ़ा था।"

किरणमयीने उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा,—"ठीक बात है। जिसे पढ़ना कहते हैं, उन्होंने वैसे ही पढ़ा था।" दिवाकरने लज्जित होकर कहा—"मैं तो संस्कृत जानता नहीं, तो भी एक बार पढ़नेकी चेष्टा करूंगा। यह कठोप-निषद् है।"

किरणमयीने कहा—"इतनी पुस्तकोंके रहते हुए तुम्हें पसन्द आयी कठोपनिषद्?"

दिवाकर प्रश्न ठीक समझ न सका, मुँह ताकते हुए कहा—"क्यों भाभी! इससे अच्छी पुस्तक संसारमें और दूसरी कौन-सी है? इसका पढ़ना मेरे लिये प्रायः अनधिकार चर्चा है? समझ न सकूँगा, किन्तु यथासाध्य चेष्टा करना तो उचित है।"

किरणमयीने मुस्कुराते हुए कहा—"बाबू, जो समझ रहे हो, वह बात नहीं है। इस प्रकार चेष्टा करनेसे इसका कोई मूल्य नहीं। हाँ, कहीं-कहीं कुछ अंश अच्छा लगता है। हाथमें कोई काम न होनेपर आत्मा और जीव सम्बन्धी नाना प्रकारकी विचित्र बातें पढ़नेसे वक्त कट जाता है। बस इतना ही।"

यह मजाक सुनकर दिवाकर का मुँह एकबारगी उदास हो गया, बोला—"कहती क्या हो भाभी। सुनता हूं, उपनिषद् वेद है! उसका प्रत्येक अक्षर सन्देह-रहित सत्यसे पूर्ण है।"

उसके विस्मयकी अधिकता देख, किरणमयी फिर हंसी। बोली—"कोई धर्मग्रन्थ कभी निःसन्देह सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्मग्रन्थ है। इसलिये उसमें भी मिथ्यावादकी कमी नहीं है।"

दिवाकरने दोनों कानोंमें जोरसे उंगली डाल सिर हिलाते हुए कहा—"वेद मिथ्या है! अब और कुछ मत कहिये। सुनने-से पाप लगता है—वेद मिथ्या है! लोग 'वेद-वाक्य" शब्दको निर्भ्रान्त सत्यके अर्थमें प्रयुक्त करते हैं। कहते हैं, वेद क्या [illegible] बनाया है, जो मिथ्या होगा?"

उसका यह रुग्न भाव देखकर किरणमयी खिलखिलाकर पड़ी।

दिवाकरने कानमें उँगलियाँ निकाल, अपनी बातें मनमें लज्जित होकर कहा—'सचमुच ही ऐसा कहने-सुनने भी पाप होता है भाभी! वेद कभी मिथ्या हो सकता है? [illegible]

क्या और धर्मग्रन्थोंका-सा है कि शिवरचित बताकर लोग दो-चार प्रक्षिप्त श्लोक या दस-पांच गढ़न्त किस्से ठूँस देंगे ? वेद-का अर्थ ही है, साक्षात सत्य !"

किरणमयीने होठोंपर आयी हुई हँसीको दबाकर गंभीर होकर कहा—मैं क्या जानू ? जो सुना था; वही कहा। किन्तु तुम भी तो स्वीकार करते ही हो कि धर्मग्रन्थोंमे भी शिवकी उक्ति बताकर झूठी बातें घुसेड़ दी गयी हैं ?"

दिवाकरने उसकी बात मान ली। कुछ ही दिन पहले पुराणों-के सम्बन्धमे उसने किसी मासिक पत्रिकामें एक समालोचना पढ़ी थी अतः बोला—"वेदको असत्य मानना सर्वथा अन्याय है; हाँ, पुराणोमे उपकथाए हैं, झूठे श्लोक भी हैं—यह बात अस्वी-कार नहीं कर सकता। पर मिथ्या बात तो बहुत दिन टिक नहीं सकती। दो दिन बाद वह आपही प्रकट हो जाती है।"

"कैसे प्रकट हो जाती है ?'

दिवाकरने कहा—"यह तो मैं ठीक नहीं जानता, किन्तु जो मिथ्या है, उसकी बारीक आलोचना करनेसे ही पण्डितोंको मालूम हो जाता है, कि कौन मिथ्या है, कौन कहां प्रक्षिप्त है; किन्तु इसीसे आप वेदको सत्य नहीं मानतीं, यह अन्याय है—असङ्गत है !"

उपेन्द्र अबतक चुप थे। किरणमयीके इन सब परिहासोंका तात्पर्य क्या है, यह अनुमान न कर सके और इसलिये चुपचाप तर्क-वितर्क सुन रहे थे। किरणमयीने उनकी ओर एक बार देख

कर अपनी मुस्कुराहटको दबाया। फिर दिवाकरसे गम्भीरतापूर्वक कहा—"क्या जानूँ बाबू, मैंने एक बार एक धार्मिक पुस्तकमें पढ़ा था, कि कोई ब्राह्मणका कुमार किसी कारणसे यमसे मिलने गया। यम उस समय घरमें नहीं थे—शायद ससुराल गये थे। तीन दिन बाद घर लौटनेपर घरवालोंसे सुना कि एक ब्राह्मणका लड़का उपवास किये बैठा है—कुछ भी नहीं खाया है। एक तो वह ब्राह्मण था, दूसरे अतिथि, यम बहुत ही दुःखित हुए। अन्तमें बहुत विनयकर उन्होंने कहा—"भैया, तुमने तीन दिनसे उपवास किया है, इसके बदलेमें तीन वरदान ले लो। अच्छा · · ·।"

कहानी समाप्त होनेके पहले ही दिवाकर जोरसे हँस पड़ा, बोला—"यह आपने कहाँकी कहानी शुरू कर दी, भाभी?"

किरणमयीने शान्त भावसे कहा—"क्या करूँ, जो पढ़ा है वही कहती हूं। अच्छा, क्या कभी ऐसी घटना हो सकती है? क्या तुम्हें इसपर विश्वास होता है?"

दिवाकरने कहा—"कभी नहीं हो सकती। सर्वथा असम्भव है।

किरण०—"क्यों? असम्भव क्यों है? धर्मशास्त्रमें ही तो ... है।'

दिवा०—'हाँ, यह यदि किसी धर्म-ग्रन्थमें है, तो,विश्वास है—... कल्पना है।'

किरण०—'कल्पना कैसे जानी बाबू?"

दिवाकर—"भाभी, सभीको तो कुछ सोचने-समझनेकी बुद्धि ती है। मैं विशेष कुछ नहीं जानता, यह ठीक है; किन्तु यह मिथ्या घटना है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता।"

किरणमयीने कहा—"इसी प्रकार सभी अपनी बुद्धि और जानकारीसे ही सच झूठको परख करते हैं। इसके सिवा सच-झूठका पता लगानेका दूसरा उपाय नहीं है। किन्तु सबका एक ही मत नहीं होता—तुम जिसे सत्य समझ बैठे हो यदि मैं न समझ सकूँ, तो मुझे दोष देनेसे लाभ नहीं!"

दिवाकरने फौरन कहा—"ठीक है, लाभ नहीं होगा।"

किरणमयीने कहा—"तो फिर देखो बाबू, इसीमें जब मत न मिलनेसे दोष नहीं दिया जा सकता, तब फिर तुम्हीं बताओ कि जो वस्तु बुद्धि और जानकारी दोनोंके बाहर है, उसके सम्बन्धमें मतका कितना अनैक्य होना सम्भव है? किन्तु इस विषयमें हम लोगोंका मतभेद नहीं। हम दोनो सोचते हैं, कि यह घटना हम लोगोंकी बुद्धिके बाहर है। यह कपोल-कल्पना है, क्यों बाबू?"

किरणमयी उसे कहाँ ढकेल लिये जा रही है, यह समझे बिना दिवाकरने कहा—"हाँ।"

किरणमयी फिर हँसकर बोली—"अच्छा। किन्तु मेरे इस पारमार्थिक व्याख्यानका शेष भाग अपने हाथकी इसी किताबमें है, समझोगे।"

दिवाकरने चकित होकर कहा—"इस उपनिषद् में?"

किरणमयीने उसी प्रकार कौतुक भरे स्वरमें कहा—"इसीमें मिलेगा, बहुत खोज-ढूंढ़ न करनी पड़ेगी। किन्तु यदि मिल जाये, तब तो तुम्हें प्रत्येक अक्षर निर्मूल सत्य न मालूम होगा?"

दिवाकरने जवाब नहीं दिया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह हतबुद्धिकी तरह बैठा देखता रहा।

किरणमयीने उपेन्द्रके मौन मुखकी ओर देखकर कहा—"आपका क्या मत है बाबू?"

उपेन्द्र केवल मुस्कुराये, कुछ बोले नहीं।

दिवाकरने अपने आपको सम्भालकर कहा—"किन्तु वह रूपक भी हो सकता है?"

किरणमयीने कहा—"हो सकता है, किन्तु रूपक तो गप्प नहीं होता। इस पुस्तकमें आदिसे अन्ततक मिथ्या ही है, यह नहीं हो सकता; किन्तु आद्यन्त सत्य नहीं, यह बात बुद्धि तारतम्यके हिसाबसे सोचकर निकाली जा सकती है। तुम्हारी बुद्धि यदि उसे बारह आना सत्य समझ बैठी है, तो मेरी बुद्धि उसे शायद पन्द्रह आना असत्य समझ सकती है। इसमें मैं अन्याय कैसे कर रही हूं?"

दिवाकर हाथकी पुस्तक की ओर चुपचाप देखता रहा। किरणमयीकी बातें उसके अन्तःकरणमें पीड़ा पहुंचाने लगीं।

कुछ देर चुप रहकर बोला—"भाभी, आप जिसे मिथ्या कहती

जिस मनुष्यने जिन्दगीमें लाल रंग नहीं देखा, उसे मुँहसे कैसे समझाया जा सकता है कि लाल क्या है। जिसे यह समझाया जाता है वह जब नहीं समझता, तब क्रोध होता है, मारने-पीटने-की धमकियाँ दी जाती हैं। केवल बड़ी-बड़ी बातोंकी मार-पेंच रहती है। निर्गुण, निराकार, निर्विचार, ये सब केवल कहनेकी बातें हैं। इनका कुछ अर्थ नहीं होता। यदि कुछ अर्थ है, तो यही, कि जिन लोगोंने इन बातोंका आविष्कार किया है, उन्होंने ही प्रकारान्तरसे कहा है कि इस सम्बन्धमें कुछ भी चिन्ता मत करो, करोगे तो कोई फल नहीं होगा, सब श्रम व्यर्थ जायगा।"

दिवाकर कुछ क्षण चुप रहा, फिर धीरे-धीरे बोला—"भाभी आत्मा नहीं मानतीं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मिथ्या होनेके कारण। इसके सिवा मुझमें ऐसा दम नहीं कि सब नाश हो जायगा, केवल हमारा यह महामूल्य अहंकार कभी नष्ट न होगा। मैं ऐसी वासना भी नहीं करती, कि मेरी मृत्युके बाद भी मेरा अहंभाव बना रहे।"

"अच्छा, ईश्वर? क्या उनको भी आप स्वीकार नहीं करतीं?"

किरणमयीने हँसकर कहा—"इतना डरते-डरते क्यों पूछते हो भाई? इसमें डरनेकी कोई बात नहीं। नहीं, मैं अस्वीकार भी नहीं करती।"

दिवाकरने घने अन्धकारमें मानो प्रकाशकी एक रेखा देखी, पूछा—'आप कैसे उनकी चिन्ता करती हैं ?"

किरणमयीने कहा—जिस वस्तुको मैं अज्ञेय मानती हूँ, उसकी चिन्ता नहीं की जा सकती, करती भी नहीं। वस्तुतः अचिन्त्यकी कैसे चिन्ता करूँ ? इसीसे असम्भवको समझा करनेकी चेष्टा मैंने कभी नहीं की। कोई चीज बढ़ाकर बड़ी बनायी जा सकती है और भी बढ़ानेपर और भी बड़ी बनायी जा सकती है, किन्तु उसे खींच-खींचकर अनन्त बनानेकी भूल मुझसे कभी नहीं हुई।"

"तो क्या उसकी भावना नहीं की जा सकती ?"

"की जा सकती है। छोटा मानकर भावना की जा सकती है। मनुष्यको गुण दोषोंसे लपेटकर छोटा-मोटा देवता मानकर अशिक्षित लोग जिस प्रकार उसकी श्रद्धा-भक्ति करते हैं, ठीक उसी प्रकार की जा सकती है। नहीं तो ज्ञानके अभिमानमें ब्रह्म मानकर जो भावना करते हैं वे केवल अपने को ठगते हैं। बस, आज यहींतक रहने दो। ये सब बातें फिर किसी दिन होंगी।"

इसके बाद उपेन्द्रके मुंहकी ओर मुस्कराते हुए ताककर किरणमयीने कहा—"किन्तु आप तो बड़े चतुर हैं। हम दोनोंने जिदके ऊपर बहसकर अपने आपको हल्का कर अपना मन खोल दिया, पर आपने मुंह बन्द रखकर अपने आपको गुप्त किया लिया। मैं जानती हूँ कि आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु अपने ... एक बात भी किसीको जानने नहीं देते।"

उपेन्द्र हँसे, बोले—"नहीं भाभी, इस सम्बन्धमें मैं बिलकुल मूर्ख हूं। मैं चुपचाप केवल आपकी बातें सुन रहा था।"

किरणमयीने मुस्कुराकर कहा—"शायद व्यङ्ग करते हैं!

"नहीं भाभी, सच कहता हूं। बल्कि मैं तो यह सोचता हूं, कि इतनी थोड़ी अवस्थामें आपने कब इतना पढ़ डाला, कब इतना मनन कर डाला?"

प्रशंसा सुनकर किरणमयीका अंतःकरण पुलकित और गर्वसे उच्छ्वसित हो उठा। किन्तु उसे दबाकर विनयके साथ उसने कहा—"नहीं-नहीं, ऐसी बात न कहिये, मैं भी भारी मूर्ख हूं। कुछ भी नहीं जानती। तब भी इतना जाना है कि कुछ भी जाननेका उपाय नहीं है। इसीसे शास्त्रोंकी दम्भपूर्ण उक्तियों और ज्यादतियोंको देखते ही मेरी देह जल उठती है—किसी तरह अपनेको संभाल नहीं सकती। यही मनमें आता है—"तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानती। फिर तुम अपना बल क्या दिखाते हो? यह करो, वह मत करो—कहकर जो हुक्म चलाते हो, सो क्यों? मिथ्याडम्बरका यह घटाटोप क्यों दिखाते हो?" वे ऐसी दाम्भिकताके साथ अपनी बातें करते हैं, मानों परमात्मा को कुछ करते हैं, उसमें उन्हें मध्यस्थ बनाकर करते हैं। खाते-पीते उठते बैठते हर समय हर कामके वे भगवानकी दुहाई देते, धर्म दिखाते हैं। ऐसे हँसो, ऐसे खाओ, ऐसे यह करो, ऐसे वह करो—यह सब जबरदस्ती नहीं तो और क्या है? और मजा तो यह है कि किसी भी शास्त्रकारने अपने अनु-

शासनोंका कारण तक बतानेकी आवश्यकता नहीं समझी है। ऐसा करोगे, तो तुम्हें गोहत्याका पाप लगेगा और ऐसा करोगे तो ब्रह्महत्याका पाप होगा, तुम सत्यानाशमें मिलोगे, तुम्हारे चौदह पुरखे नरक जायेंगे। क्यों जायेंगे? किसने तुमसे कहा है? श्रुति, स्मृति, तन्त्र, पुराण, सभीमे इसी तरहकी जबर्दस्ती है और लाल आँखें दिखायी गयी हैं। सच कहती हूं, यह जबरदस्ती—यह ज्यादती असह्य प्रतीत होती है।"

उपेन्द्र कुछ न बोले। किन्तु दिवाकरने अपनी अन्तिम बात कही—"लेकिन हमलोगोंकी भलाईके लिये ही शायद उन्होंने ऐसा जोर दिया हो।"

किरणमयी जल उठी, बोली—"ऐसी भलाईकी क्या जरूरत है, बाबू! मानो वे ही मनुष्य हैं, और सारे देशवासी पशु हैं, जिन्हें लट्ठ लेकर अच्छे रास्तेपर खदेड़ ले जानेके लिये ही वे अवतीर्ण हुए हैं। अपनी भलाई कौन नहीं चाहता? समझाकर कहनेसे ही हो जाता। क्या वे नहीं कह सकते थे कि ऐसा करनेसे तुम्हारी यह भलाई है और न करनेसे यह बुराई; इसीसे ये विधि-निषेधकी बातें बतायी जाती हैं। क्या वे हमें यह नहीं समझा सकते थे कि इस रास्तेसे चलनेमें हमारी भलाई है। इसके लिये यों आँखें लाल करने, इतना मिथ्या-डम्बर रचनेकी क्या जरूरत थी?" यों कहकर वह गुस्सेमें मानो फूटने लगी।

उपेन्द्रको एकाएक उस प्रथम रात्रिकी बात याद आ गयी।

यह वही मूर्त्ति है। पिंजरेमें बन्द जङ्गली पशुकी वही मर्मभेदी गर्जन है। आखिर यह चाहती क्या है? किसपर इसका इतना क्रोध है? शास्त्र और शास्त्रकारोंका कोई अनुशासन मेटकर क्या यह उससे छुटकारा पाना चाहती है?

उसको शान्त करनेके अभिप्रायसे उपेन्द्रने विनयके साथ मुस्कुराते हुए कहा—"हम दोनों तो आपक बातोंका जवाब न दे सके भाभी, परन्तु यह न समझिये कि आपकी बातोंका कोई उत्तर ही नहीं दे सकता। मैं तो समझता हूं, कि उसके निकट आपको भी तर्कमें हार जाना पड़ेगा।"

किरणमयी अपनी उत्तेजना आप ही समझकर अन्तमें मन-ही-मन लज्जित हुई। उसने भी मुस्कुराकर कहा—"वह कौन? बताइये तो सही।"

उपेन्द्रने गंभीर होकर कहा—"आप हंसी न समझिये। सच कहता हूं, उससे तर्कमें जीतनेकी आशा न रखें। अधिक पढ़नेका तो उसे मौका नहीं मिला है; पर उसमें तर्क करनेकी बुद्धि बहुत सूक्ष्म है। इन बातोंमें उसकी रुचि भी बहुत है। हां, उसे आप यदि हरा देंगी, तब समझूंगा।"

किरणमयीने उत्साहित होकर कहा—"यदि हरा न भी सकूंगी तो कुछ सीख कर तो आ सकूंगी।" मुस्कराकर कहा—"मगर वे हैं कौन, मेरी छोटी बहन तो नहीं?"

उपेन्द्र हंसने लगे, बोले—"हां, वही। सचमुच उसमें विचार करनेकी अद्भुत शक्ति है। उसकी तर्क करनेकी बुद्धि देखकर मैं

कभी-कभी मूक हो रहता हूं । क्या जवाब दूं, क्या प्रश्न करूँ—कुछ भी मेरी समझमें नहीं आता । हतबुद्धि हो बैठ रहता हूं ।"

उपेन्द्रके मुंहसे सुरबालाकी यह अत्यधिक प्रशंसा सुनकर किरणमयीके मुखकी दीप्ति म्लान पड़ गयी । उसने इस बातको आगे बढ़ाना चाहा, किन्तु ईर्ष्याकी वेदनाने उसके सारे शरीरमें दौड़कर मानो गला दबा लिया । वह कुछ भी बोल न सकी ।

किन्तु उपेन्द्रका ध्यान उस ओर नहीं गया । उसने पूछा—"मालूम होता है, उसके साथ आपकी इस विषयमें कभी आलोचना नहीं हुई ?

किरणमयी सिर हिलाकर बोली—"नहीं । केवल दो दिन तो वे यहां थीं ही और वह समय भी वैसा न था, कि कोई बातचीत होती । चलिये न, आज एक बार आपकी तर्कवागीश्वरीको देख आऊं ।"

उपेन्द्र हंसने लगे, बोले—"नहीं भाभी, वह तार्किक बिलकुल नहीं है । असलमें वह इस विषयके सिवा और किसी विषय पर तर्क करती ही नहीं—जो आप कहेंगी, वही मान लेगी । दो तीन दिनके बाद तो वह घर चली जायेगी । आज्ञा दें तो यहीं उनको ले आऊं ।

किरणमयीने व्यग्रताके साथ कहा—"नहीं बाबू, नहीं । बुलाकर मैं उनको कष्ट देना नहीं चाहती । वे जो दो दिनके लिये [illegible] ही तर्कवागीशोंका सामना कर यहाँ रह चुकी है, [illegible]

बहुत है। उन्हें और तकलीफ देना नहीं चाहती। वही मेरा बड़ा भाग्य कहना चाहिये। मुझे ले चलिये, मैं ही चलूंगी। अच्छा एक बात पूछती हूं, ऐसे तार्किक गुरुके होते हुए भी आप दोनो भाई मेरी बातोंका जवाब क्यों नहीं दे सके?"

किरणमयीने साधारण हँसीके रूपमें ही बातें कहीं; किन्तु उसकी आन्तरिक वेदनाके कारण अन्तिम बातें कुछ कठोर-सी प्रतीत हुईं।

दिवाकर चुप रहा। उपेन्द्रने कहा—"नहीं भाभी, उसकी सब युक्तियां सीखी नहीं जा सकतीं। कितनी ही बार तो सुनी हैं, परन्तु किसी तरह उन्हें हृदयमे बैठा नहीं सका हूं। जो लोग भगवानको मनाते हैं वे कहेंगे कि यह उन्हींके दाहिने हाथका सर्वश्रेष्ठ दान है। सत्य कहता हूं भाभी, मुझे अनेक बार ईर्ष्या हुई; कि उसके सहस्र भागका एक भाग भी यदि मैं पाता, तो धन्य हो जाता।'

किरणमयी ठीक समझ न सकी कि उपेन्द्र क्या कह गये, तथापि उसका चेहरा स्याह हो गया और इसे उसने आप ही अनुभवकर एक फीकी मुस्कराहटकी आडमे अपनेको छिपाना चाहा। किन्तु बहुत चेष्टा करनेपर भी उसके होठोपर मुस्कराहटकी रेखा नहीं आयी।

यह कहकर उठ खड़ी हुई, बोली—"चलिये बाबू, आज ही मैं उनसे मिल आऊं। जिनकी बुद्धिमत्तासे आपको भी ईर्ष्या होती है, उन्हें देखे बिना मुझे कल नहीं पड़ सकती।"

उसके आग्रहकी ऐसी अधिकतासे उपेन्द्र किसी तरह अपनी हँसीके वेगको रोक न सके। किरणमयी यदि ईर्ष्यामें इतनी डूबी हुई न होती तो उनकी बनावटी गम्भीरताको जरूर ही ताड़ लेती; किन्तु उस ओर उसका ध्यान नहीं था। उसने कहा—"नहीं बाबू, तुम्हारे पाँव पड़ती हूं, मुझे साथ ले चलो।"

उपेन्द्रने व्यस्त होकर दोनों हाथ मत्थेपर रखकर कहा—"राम-राम। ऐसी बात मुह से न निकालिये भाभी। आप उम्रमें छोटी होनेपर भी सम्बन्धमें बड़ी हैं। अच्छा, मौसीको लौट आने दीजिये। चलिये, मैं आज ही आपको ले चलता हूं।"

२५

तीसरे पहर किरणमयी ज्योतिष बाबूके घर आ पहुंची। मोटा सफेद कपड़ा पहने थी, शरीर पर कोई गहना नहीं, लम्बे-लम्बे सूखे बाल—कुछ बिखरे हुए, कुछ बँधे हुए और कुछ ललाटपर लटके पड़े थे। दृष्टि उदासीनतासे भरी थी, वैधव्यका अलौकिक साम्राज्य उसके सर्वाङ्गको घेरकर मूर्त्तिमान हो रहा था। उसके चेहरेकी ओर देखते ही आँखें आप ही उसके पाँवोंकी ओर झुक जाती थीं। सरोजिनी बाहरके बरामदेमें चौकीपर बैठी एक किताब पढ़ रही थी। आँखें ऊपर उठाते ही यह अमंगल-रूप देखकर एकबारगी विह्वल हो गयी। उसने किरणमयीको कभी आँखोंसे देखा नहीं था। सिर्फ उसका नाम सुना था और उसके ... की प्रशंसा सुरबालाके मुँहसे सुनी थी, किन्तु ...

सौन्दर्य इस प्रकारका है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

उपेन्द्रने उसका परिचय दिया—"मेरी भाभी हैं—सरोजिनी!"

सरोजिनीने पास आकर प्रणाम किया।

किरणमयी उसका हाथ पकड़ मुस्कुराती हुई बोली—"तुम्हारा नाम तो सबसे सुना है बहन, आँखोंसे देखने आयी हूं।"

सरोजिनी क्या जवाब दे, यह उसे सूझ न पड़ा। अपरिचित नर-नारियोंसे मिलने-जुलने और बातें करनेकी शिक्षा उसे बचपनसे ही मिली है, वह इसमें अभ्यस्त भी है, परन्तु इस विधवा स्त्रीके सामने वह निर्वाक् हो रही।

किरणमयीने एक बार उपेन्द्रकी ओर घूमकर देखा, कहा—"किन्तु आज तो अधिक वक्त नहीं। अधिक देरतक ठहरनेके लिये समय न मिलेगा। चलो बाबू, एक बार छोटी बहनके घर से चलकर बैठें।"—कहकर उसने सरोजिनीका हाथ दबा कर इशारा किया।

जिस उत्तेजनामें आकर किरणमयी आज बेवक्त सुरबालासे मिलने आयी थी, उसपर उसने इसी बीचमें भली भाँति विचार कर लिया था। आते समय रास्तेमें ही उसने निश्चय कर लिया कि जिस सुरबालाके साथ उसका केवल दो दिनका परिचय है, अचानक उसके घर आकर उसपर आक्रमण करनेकी तरह

उसकी विद्या-बुद्धिकी जाँच करनेकी चेष्टा करना उससे तर्क-वितर्क करना ठीक नहीं है। लोग क्या कहेंगे? सभी मेरे इस व्यवहार की हँसी उड़ायेंगे। इसलिये उस सम्बन्धमें बिना कुछ चर्चा किये लौट जाना ही उसे उचित जंचा, किन्तु किसी तरह लौट न सकी। किसीने मानो उसे जबर्दस्ती रोक लिया।

उपेन्द्रने अपनी प्रियतमा पत्नीके जिन गुणोंकी इतनी बड़ाई की थी, जिसके लिये उन्हें गर्व है उसे किरणमयी मानो कुछ नहींके बराबर समझती है? वह जैसी भी बुद्धिमती क्यों न हो, मैं उसे बातकी-बातमें हरा दूँगी। उसके सामने ही मैं उसके सम्पूर्ण ज्ञानको धूलकी तरह उड़ा दूँगी। अपनी इस आकांक्षा-को, जो उसके हृदयके भीतर प्रतिहिंसाकी तरह धधक रही थी, वह किसी तरह दबा न सकी। सतीशासे उसने उपेन्द्रका जो परिचय पाया था, उससे उसे विश्वास था कि उपेन्द्र उसकी उक्तियों और प्रश्नोंके जवाब दे सकते थे, किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, केवल मुस्कुराकर रह गये। ऐसा क्यों किया? किस लिये? क्या सुरबालाके निकट ले जाकर मुझे एकबारगी तुच्छ बना देनेके लिये? यदि सुरबाला भी कोई जवाब न दे, स्वामी-की तरह वह भी मुस्कुराकर रह जाये, तो उस दशामें मैं क्या करूँगी?

यही सब सोचती-विचारती हुई जब वह सरोजिनीके पीछे-पीछे सुरबालाके कमरेमें पहुँची, तब उन मनके आनेकी उसे खबर न थी। वह पाँवोंपर बैठी महाभारतमें [illegible]

शय्याकी कथा पढ रही थी और रो रोकर आठ-आठ आँसू बहा रही थी। अकस्मात् किरणमयीको देख जल्दीसे पुस्तक मोड़ और आँखे पोंछकर वह खड़ी हो गयी। उसने किरणमयीके दोनो हाथ पकड, बड़े आदरसे कहा—"आओ बहन!" वहीं दरीपर बिठाकर बोली—"मैंने कल तुम्हारे यहाँ जानेका विचार किया था।"

किरणमयीने कहा—"इसीसे मैं आज ही आ गयी बहन!"

उपेन्द्रने पास ही एक कुर्सी खींचकर उसपर बैठते हुए कहा—"रो रही थी क्या? शायद यह महाभारत है?"

सुरबाला शर्माकर आँचलसे आँखें पोछने लगी।

उपेन्द्रने कहा—"क्यो तुम इन सब पुरानी पुस्तकोंके पीछे अपना समय नष्ट करती हो, मैं नहीं समझता। इसपर रोना, आँसू गिराना बात पूरी न होने पायी। सुरबाला आँखें पोछना छोड़, नाराज होकर बोली—"सैकड़ों बार तुम यह क्या कहते रहते हो कि—

उपेन्द्रने कहा—"कहता हूं, कि यह आदिसे अन्ततक मिथ्यासे पूर्ण है और कुछ तो नहीं कहता।"

ऐसी बातोंसे उसे नाराज करनेमें देर न लगती थी। उसने अपनी रिसभरी लाल आँखोंसे स्वामीकी ओर देखकर कहा—"महाभारत मिथ्या है? ऐसी बात तुम कभी मुँहसे न निकालो। पर [illegible] नहीं ऐसी बात पढनेसे भी पाप होता है, यह नहीं जानते?"

उपेन्द्रने कहा—"जानता हूं, कुछ नहीं होता। अच्छा, इनसे पूछो—ये भी विश्वास नहीं करतीं।"

इस बार सुरबाला किरणमयीके चेहरेकी ओर देखकर सुखी हँसी हँसकर बोली—"सुनती हो बहन, तुम महाभारत पर विश्वास नहीं करती? ये कैसी बातें करते हैं? इनको जरा समझा देना होगा।"

किरणमयी चुप रही। पति-पत्नीके इस वाक्य-युद्धका कुछ अर्थ वह समझ न सकी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि यह अभिनय उसीको लेकर हो रहा है।

उपेन्द्रने सरोजिनीको सम्बोधनकर कहा—"अच्छा, तुम महाभारतकी कहानियोंको सच मानती हो?"

सरोजिनी सरलभावसे बोली—"कुछ सत्य निश्चय ही है? किन्तु आदिसे अन्ततक सच है, यह कोई नहीं मानता, मैं भी नहीं मानती।"

सुरबाला पहले चुप हो रही। बादको उसने दिल्लगीके बहाने इस बातको ही उड़ा देना चाहा, किन्तु सरोजिनीके और दो-चार बातें कहने तथा उपेन्द्रके ताना मारनेपर वह विस्मित हुई और अन्तमें क्रुद्ध हो उठी। देखते-देखते तीनोंमें तर्क-वितर्क बहुत बढ़ गया।

अबतक किरणमयी एक बात भी नहीं बोली थी। कारण यह बात विवाद हँसी-मजाकके सिवा और भी कुछ हो सकता वह मनमें स्थान न दे सकी। जिसके साथ वह बहुत

नुवाद करने आयी है, वह जब सम्पूर्ण महाभारतको ही अखण्ड सत्य प्रमाणित करनेके लिये कमर कैसे बैठी है, तब ऐसे अचिन्त-नीय विषयको वह कैसे स्वीकार कर सकेगी! इधर तर्क-वितर्क जोरोंसे चलने लगा, उधर वह केवल तीक्ष्ण दृष्टिसे सुरबालाकी ओर चुपचाप ताकती रही। देखते-देखते उसकी सन्देहराशि भापकी ही तरह विलीन हो गयी। उसने देखा, सुरबालाके कंठस्वरसे, उसकी दृष्टिसे, उसके मुखमण्डलसे या यों कहिये कि उसके सारे शरीरसे एक ऐसा विश्वास प्रकट हो रहा है, जिसमे सन्देहका लेश भी नहीं हो सकता। यह इतना बड़ा ग्रन्थ उसकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष सत्य है। यह हँसी नहीं, खेल नहीं, यह तो प्रत्यक्ष जीवित-जाग्रत विश्वास है! इसके बाद कुछ देरतक, कौन क्या कहता है, इस ओर उसका ध्यान नहीं रहा। वह मानो एक नवीन, सम्पूर्ण अपरिचित भावका धुंधला-स्वरूप सुरबालाके अन्दर देखने लगी।

किन्तु इस प्रकार वह कितनी देरतक रहती, कहा नहीं जा सकता। सहसा वह उपेन्द्र और सरोजिनीको खिलखिलाकर हँसते देख आपेमें आ गयी। देखा, हँसीसे सुरबाला चकरा गयी है। वह बेचारी अकेली थी। इसीसे उसने किरणमयीको [illegible] मानकर गुस्सेकी आवाजमें कहा—"अच्छा बहन, यह क्या कभी मिथ्या हो सकता है?"

उपेन्द्रने किरणमयीकी ओर देख, हँसी दबाकर कहा—"[illegible] [illegible] वह है सरोजिनीने कहा है कि भीष्मकी

शरशय्याके समय अर्जुनने वाणोंसे पृथ्वीको फोडकर गङ्गाजल की धारा ला उपस्थित की थी, यह बात झूठी है। ऐसा कभी नही हो सकता।"

सुरवालाने स्वामीकी मुंहकी ओर कडी नजरसे देखकर कहा—"अगर नहीं लाये, तो कहती हूं, सुनो। पितामह भीष्मने शरशय्यापर लेटे हुए जल माँगा था। दुर्योधन सोनेकी झारीमें जल लाये, पर उन्होंने नहीं पिया। यह तो झूठ नहीं है? गङ्गाजल यदि नहीं आया, तो उनकी प्यास बुझी कैसे?"

सरोजिनी इसे सुनकर चुप न रह सकी, बोली—"कैसे? यदि उनकी प्यास बुझी थी, तो झारीके जलसे ही। उन्होंने वही जल पीया था, जो दुर्योधन झारीमें ले आया था।"

इस बार सुरवालाने बहुत उत्तेजित और रुष्ट होकर कहा—"तो क्यों लिखा है कि नहीं पिया, और यदि उन्होंने झारीका जल ही पी लिया तो, अर्जुनको इतना कष्ट उठाकर वाणसे पृथ्वीको बेधकर गङ्गाजल लानेकी क्या जरूरत थी। बहन, तुम्हीं बताओ, यह तो कभी किसी तरह मिथ्या नहीं हो सकता।" यों कहकर उसने क्रुद्ध और करुण आंखोंसे किरण-मयीकी ओर देखकर उत्तर देनेका आग्रह किया। उसी क्षण उपेन्द्रके अट्टहाससे कमरा गूंज उठा। सरोजिनी भी खिलखिला-कर हँस पड़ी।

उपेन्द्रने कहा—"लो भाभी, जवाब दो। बताओ, अर्जुन यदि नहीं लाये, तो प्यास कैसे मिटी? और जब आप

बुझ गयी, तब गङ्गाजल आया कैसे नहीं ?' कहकर एक बार फिर जोरसे हँस पड़े।

किन्तु आश्चर्य। किरणमयी इस हँसीमें भाग न ले सकी। वह विस्मित हो सुरबालाके चेहरेकी ओर देखती रही। क्षणभर बाद एकाएक बड़े आवेगके साथ उसको अपनी छातीसे लगाकर धीरेसे कहा "मिथ्या नहीं बहन, इसके अन्दर कहीं तनिक भी मिथ्या नहीं। गङ्गाजल जरूर आया था। तुमने जो समझा है, जो पढ़ा है, सब सत्य है। सत्यको सभी नहीं पहचान सकते, इसीसे लोग तुम्हारी बातें सुनकर हँसी उड़ाते हैं"– कहते-कहते उसकी दोनों आँखें भर आयीं।

सरोजिनी और उपेन्द्र दोनों आश्चर्यसे उसका मुँह देखने लगे। पर किरणमयीने उधर एक बार भी न देखा। उसको उसी तरह छातीसे लगाये, आँखें पोंछकर धीरे-धीरे कहा—"बहन, जिन्होंने अनेकों धर्म-ग्रन्थ पढ़े हैं, वे जानते हैं कि आज तुमने जैसा विचार किया है, उससे अच्छा विचार किसी धर्म-ग्रन्थमें किसी विद्वानने कभी नहीं किया है। उन्हें भी इसी तरह अपने सामने बात करनी पड़ी है। इस विषय को जो जानते हैं, वे तुम्हारी बात सुनकर हँस नहीं सकते"—कहकर उसे छोड़ सरोजिनीकी ओर देखकर कहा—"क्यों बहन, क्या तुम मेरे विचार-व्यवहार देखकर आश्चर्य कर रही हो। इतनेकी बात [illegible] है"—कहकर वह मुस्कराने लगी।

किन्तु सबसे अधिक आश्चर्यचकित हुए उपेन्द्र। वे किरण-

मयीके इस आकस्मिक् भावपरिवर्तनका कारण बिल्कुल ही न समझ सके। कुछ क्षण पहले जिसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि सत्य-असत्यकी परख, बुद्धि और बिवेकके पलड़के सिवा और किसी प्रकार हो ही नहीं सकती और इस पलड़ेपर जो बात सत्य नहीं उतरती, उसे स्वीकार करना वह व्यर्थ समझती है, वही सुरबालाके इन सीधे-सादे शब्दों और लड़कपनमें कैसे विचलित हो गयी? उसे छातीसे लगाकर उसने जो बातें कही थीं, वे मुँह देखी नहीं हो सकतीं। इसके अलावा किरण-मयी अच्छी तरह समझती है कि उसने जो बातें कही हैं, उनका आशय सुरबाला समझ भी नहीं सकी है। फिर उसकी आँखोंमें इस प्रकार आँसू क्योंकर उमड़ आये?—यह सोचकर उपेन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। एक बात और थी। उपेन्द्र जानते थे, कि इस प्रकारकी तीक्ष्ण बुद्धिवाली नारियाँ किसी भी अवस्थामें आवेग प्रकट करना नहीं चाहतीं। यदि किसी तरह उनका आवेग प्रकट हो भी जाता है तो उनकी लज्जाकी सीमा नहीं रहती। किन्तु अपने व्यवहारसे उसने तनिक भी लज्जाका अनुभव नहीं किया, यह बात सम्पूर्ण अपरिचिता सुरबाला भी समझ गयी।

शाम हो गयी। किरणमयी सबसे बिदा ले, धीरे-धीरे मार्ग-पर आ बैठी।

दिवाकर घरमें न था। घूमनेके लिये बाहर निकल गया था। इसलिये उपेन्द्रको अकेले ही भीतर बैठना पड़ा। [illegible]

किरणमयीने मानो उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। गाड़ीके एक कोनेमें सिर रख, स्तब्ध हो बैठी रही।

कुछ क्षण बीत गये। इस तरह चुपचाप बैठे रहना भी अच्छा नहीं। इसके सिवा उपेन्द्र निश्चयरूपसे समझते थे कि किरणमयी कुछ सोच रही है; किन्तु क्या सोच रही है, यह जाननेके लिये पूछा—"भाभी, देखा आपने, कैसी बुद्धिमती घरनीके साथ मुझे गृहस्थी चलानी पड़ती है? एक तो वह यों ही इस विषयमें किसीकी कोई बात नहीं सुनती है, दूसरे हँसी-ही-हँसीमें जो सार्टिफिकेट आप दे आई हैं, उससे तो अब किसीकी एक न सुनेगी।

किरणमयीने इसका कोई जवाब नहीं दिया। जरा इन्तजारकर उपेन्द्रने मुस्कुराते हुए कहा—"किन्तु यहीं इसका अन्त नहीं है भाभी। वह ऐसी नासमझ है, कि जन्मभरमें कभी झूठी बात बोल ही नहीं सकती।" किरणमयी पूर्ववत् चुप रही। उपेन्द्रने कहा—"क्यों नहीं बोल सकती, जानती हैं? एक तो तैंतीस करोड़ देवता उसे चारों ओरसे घेरकर दिन-रात पहरा देते ही रहते हैं। इसके सिवा जो कुछ उसने कभी देखा नहीं है उसके विषयमें अपनी बुद्धि लगाकर कुछ अनुमान करनेकी तो उसमें शक्ति ही नहीं है।"

किरणमयीने रुँधे हुए कंठसे संक्षेपमें कहा—"अच्छा ही है।"

उपेन्द्रने कहा—"यह अच्छी बात है, मैं ऐसा नहीं समझता।

गृहस्थाश्रममें एक-दो झूठी बात भी बोलनी पड़ती है। जिस बातसे किसीकी कोई क्षति नहीं, बल्कि किसी अशान्ति या किसी बेकारके बखेड़ेसे छुटकारा मिलता हो, वैसी झूठी बात बोलनेमे क्या दोष है? मैं तो कहता हूं, कि ऐसे समय झूठ बोलना ही अच्छा है।'

"अच्छा तो है, पर यह बात आप उन्हें नहीं सिखा सकते?'

"सीखेंगी कैसे? एक बहुत छोटी-सी मिथ्या बातके लिये युधिष्ठिरकी जो दुर्गति हुई थी, वह महाभारतमें लिखी है! देवी और देवतागण जिस तरह आंखें फाड़कर उसकी ओर देखते हुए बैठे हैं, यह जानकर भला वह झूठ बोल सकती है? वे उसी दम उसे घसीटकर नरकमें जो डूबो देंगे!' जरा ठहर-कर बोले—"भाभी वह आंख मींचकर भगवानका स्वरूप भी स्पष्ट देख पाती है, यह एक आश्चर्यकी बात है। कभी ढाल-तलवार, कभी शंख, चक्र, गदा, पद्म, और कभी वंशी हाथमे लिये वे प्रत्यक्ष रूपसे उसके सामने आ खड़े होते हैं, यह सुनकर तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते है। किसी और के मुंहसे ऐसा सुनता तो मैं झूठी गप्प समझकर हंसीमे उडा देता, किन्तु उसके सम्बन्धमे मैं ऐसा सन्देहतक नही कर सकता "

इतना कहते-कहते श्रद्धा, प्रेम, और गर्वसे द्रवित होकर उपेन्द्रका गला भर आया। उन्होंने फिर क्षणभर बाद कुतूहलभरे स्वरमे कहा—"यही सब देख-सुनकर उसे मनुष्यकी अपेक्षा जानवर कहना अधिक उचित जंचता है। इनकी बुद्धिकी बलिहारी है,

जिन्होंने बचपनमें उनका नाम पशुराज रखा था। यह क्या भाभी ?"

गाड़ीके मोड़ घुमते वक्त गैसकी रोशनीमें उपेन्द्र सहसा किरणमयीका चेहरा आंसुओंसे तर देखकर चौंक उठे।

उपेन्द्र लज्जासे सिर झुकाकर बैठे रहे। वे आनन्द-माधुर्य्य-में मग्न होकर स्नेहवश जिनके आगे बैठे यह परिहास कर रहे थे, वह किस व्यथासे पीडित होकर चुपचाप आंसू बहा रही थी, यह अबतक उन्हें मालूम भी न हो सका था।

पथरिया घट्टके मकानपर जिस समय दोनों पहुंचे, उस समय ढाई-तीन घंटे रात बीत चुकी थी। प्रायः सारा मार्ग किरणमयीने मौन रहकर पार किया था। मकानमें आ थोड़ी देरतक इधर-उधर करनेके बाद वह सहसा अत्यन्त अनुतप्त कंठसे बोल उठी—"मेरी बुद्धि एकदम मारी गयी क्या ? व्यर्थ क्यों घूमती-फिरती हूं। आप अबतक एक घूट जल भी पीने नहीं पाये, इसका भी मुझे ध्यान न रहा। हाथ मुंह धो लीजिये, मेरे साथ रसोईघरमें चलिये। दो-चार पूरियां निकालनेमें दस मिनटसे अधिक देर न लगेगी।" दासीसे कहा—"जरा तू चूल्हा तो जला दे, जल्दी कर, फिर घर जाना। मेरी मजदूरिन बड़ी नेक है!" वह किवाड़ बन्द कर रही थी, घर जाना चाहती थी, किन्तु इंधन कंडा लानेके लिये उसे फिर ऊपर जाना ही पड़ा। सदर दरवाजा बन्दकर वह जल्दीसे ऊपर चली गयी।

दो-चार पूरियां निकालनेकी बात सुन उपेन्द्र घबराये।

बोले—"यह न होगा, भाभी! आज आप बहुत थक गयी हैं। मैं वापस ही जाकर खाऊंगा। मेरे लिये आप कोई कष्ट न उठावें।"

"क्यों न उठाऊँगी?"

उपेन्द्रने कहा—"नहीं नहीं, यह न होगा, किसी तरह न होगा।"

किरणमयी मुंह मोड़कर मुस्कुराती हुई बोली—"बाबू, तुम यशके बड़े भूखे हो। इतना यश लेकर कहाँ रखोगे?"

सहसा इस प्रकारके प्रशंसा-वाक्योंका कारण न समझकर उपेन्द्र कुछ विस्मित हुए। किरणमयीने कहा—"सच कहती हूं, तुम्हारे परोपकारका यश ऐसा निःस्वार्थ, निर्लिप्त होना चाहिये जिसका जोड़ स्वर्ग-मर्त्य कहीं भी न हो। हमलोगोंके लिये तुमने जो कुछ किया है, उसके लिये मैं अपनी छाती चीरकर यदि हृदय-रक्तसे तुम्हारे पाँव धोऊँ, तो भी तुम्हे आपत्ति नहीं करनी चाहिये। जरा जलपान तैयार करनेकी बातमे ही सिर हिलाते हो? छिः! हमे तुमने इतना नीच समझ लिया है? बाबू, तुम हम लोगोंको क्या समझते हो? क्या हम लोग मनुष्य नहीं हैं या मनुष्यका रक्त हमलोगोंकी देहमे नहीं बहता?"

उपेन्द्रने अत्यन्त लज्जित और कुठित होकर कहा—"ऐसी कोई बात सोचकर मैं आपत्ति नहीं कर रहा हूं, भाभी। मैं तो केवल . ...

"केवल क्या बाबू? घर जानेकी जल्दीमें क्या कहा, क्या नहीं, इसका भी कुछ ध्यान नहीं रहा?"

उपेन्द्रकी जानमें जान आयी। परिहास फिर सीधे रास्ते आ गया, इससे मुस्कुराते हुए बोले—"बदनामी तो मेरी है ही भाभी, यह मैं अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु इस समय यह बात नहीं थी। मैंने यथार्थमें यह समझा था, कि आज आप बहुत थक गयी हैं।"

"थक गयी हूं ? हो सकता है ···· "यह कहकर किरण-मयी फिर मुस्कुरायी। इसके बाद सहसा गंभीर होकर बोली—"आह। आज यदि मेरे सतीश बाबू होते, तो अपनी बात अपने मुंहसे नहीं कहनी पड़ती। वे सौ-सौ मुंहसे मेरी सब बातें कहते। नहीं बाबू, थके-मांदेका बहाना कर आराम करनेकी अब मेरी अवस्था नहीं रही। इसके सिवा, हिन्दू घरोंकी किसी स्त्रीको यह बदनामी अच्छी नहीं लगती। अपना हो या पराया, किसी भी पुरुषको यदि ठीक समयपर खिला-पिला न सकों, और इस बातपर यदि किसीने ताना मार दिया, तो मरती हुई हिन्दू स्त्रियां भी उठ खड़ी होती हैं। यह तो जानते हो न बाबू ?"

उपेन्द्रने भी इस बार मुस्कुराते हुए कहा—'जानता हूं भाभी। अच्छी तरह जानता हूं। कबूल करता हूं, कि अपराध हो गया, माफ करो। भूख भी लगी है, चलिये, क्या खानेको देंगी ?"

"आओ" कहकर किरणमयी रास्ता दिखा, रसोईघरकी ओर चली। सासकी कोठरीके सामने पहुंचकर उसने एक बार झांककर देखा। वे बेखबर सो रही थीं।

रसोईघरमें पहुंच, पीढ़ा रख, जैसे वह सतीशको बिठाती थी, वैसे ही उसने आज उपेन्द्रको भी बिठाया।

दासी चूल्हा जलाकर और चीजोंका इन्तजाम करने बाहर चली गयी। किरणमयीने अपने इस रूपमें आये हुए नये अतिथिकी ओर देखकर कहा—"अच्छा बाबू, मुझे कष्ट होगा, इससे बिना खाये चले जानेका जो प्रस्ताव तुमने किया था वह यदि और किसीके आगे कर बैठते तो आज तुमको क्या दण्ड भोगना पड़ता, जानते हो?"

उपेन्द्रने कहा—"जानता हूं, किन्तु यहाँ तो वह दण्ड भोगनेका भय न था, भाभी।"

नौकरनी आटेकी थाली रखकर चली गयी। किरणमयीने थाली अपनी ओर खींचकर सिर झुकाये मृदु स्वरसे कहा—"ऐसा क्यों समझते हो? भाग्यमें यदि दंड बदा रहता है, तो भोगना ही पडता है। कहाँ जाकर कौन भोग भोगना पड़ेगा, कोई हिसाब पहलेसे मालूम भी तो नहीं रहता। भाग्यका लिखा क्या मेटा जा सकता है? मेटा नहीं जा सकता बाबू, यह आप ही आकर गले पडता है।"

उपेन्द्र इन बातोंका मर्म ठीक-ठीक समझ न सके। बोले—"यह तो ठीक ही है भाभी!" किरणमयी भी फिर और कुछ न बोली। एक बार केवल उपेन्द्रके मुंहकी ओर देखकर ही आँखें नीची कर आटा सानने लगी। मालूम हुआ, मानो वह चुपचाप हंस रही है।

कुछ क्षण चुपचाप काम करते-करते वह एक बार बोल उठी, पर उसने आँखें ऊपर न उठायीं। कहा—“अच्छा, आज इतना आडम्बर रचकर बहूको दिखाने ले जानेका अभिप्राय क्या था? अब जरा खोलकर कहो तो सही”

उपेन्द्रने आश्चर्यमें आकर कहा - “आडम्बर तो मैंने कुछ भी नहीं किया भाभी।”

किरणमयीने कहा—“तो शायद कहनेमें मुझसे भूल हुई है। लो साफ कहती हूं, ऐसी कपट-चातुरीसे मुझे क्यों ले गये थे?”

उपेन्द्रने कहा—“इसमें मैंने कपट-चातुरी ही क्या की थी?”

किरणमयीने कहा -“यही कि वह बड़ी बेवकूफ है, पागल है, आदि कितनी ही बातें बनायी थीं, किन्तु इन व्यर्थकी बातों-पर वादविवाद करनेसे क्या होगा? ऐसी बहूको यदि बेवकूफ समझते हो, तो इस भाभीका भी तो कुछ परिचय पा गये हो। क्या तुम समझते हो कि मुझे सहज ही भुलावेमें डाल सकोगे?”

“नहीं, ऐसा नहीं समझता।”

किरणमयीने मुंह ऊपर उठाकर देखा। कारण, जैसा छोटा-सा जवाब उपेन्द्रने देना चाहा था वैसा वे न दे सके। न इच्छा होनेपर भी उनके कण्ठसे गम्भीर स्वर निकल पड़ा था, किन्तु किरणमयीने उस ओर ध्यान दिया या नहीं, यह वे न जान सके। वह पहलेकी ही तरह हँसी-दिल्लगीके स्वाभाविक स्वरमें बोली—‘फिर?’

किरणमयीसे यह बात छिपी न रही; किन्तु वह भी चुपचाप अपना काम-काज करने लगी।

प्रायः दस मिनटोंका समय इसी प्रकार बीत जानेके बाद किरणमयीने धीरे-धीरे कहा—"अच्छा बाबू, यदि कोई ओटसे हम लोगोंको इस प्रकार चुपचाप बैठे देखे, तो क्या समझेगा ?" यह कहकर वह मुंह घुमाकर—छिपकर हँसने लगी।

इस हंसीको उपेन्द्रने आंखोंसे न देखकर भी हृदयसे इसका अनुभव किया।

"तो क्या करूं भाभी, कोई बात ढूंढ़े नहीं मिलती।"

किरणमयीने हंसते हुए कहा—"कोई बात ही नहीं मिलती ? अच्छा, मैं खोजे देती हूं, पर पहले ही एक बात बता देती हूं। जलपान तैयार होने और तुमको खिला-पिलाकर विदा करनेमें आध घंटेसे अधिक समय न लगेगा। इतनी देरतक प्रसन्नतापूर्वक बातें करो, इस तरह मुँह उदासकर बैठे रहो।"

उपेन्द्रने जोरसे हंसकर कहा—"अच्छा, कहो।"

किरणमयी फिर मुँह मोड़कर हंसी, बोली—"गनीमत है। भाभीका मान रखनेके लिये जरा हंसे तो सही। तुमको देखकर मेरे मनमें एक बात सूझ आयी है, किन्तु उसे सुनकर कहीं उल्टा अर्थ लगाकर तुम नाराज तो न हो जाओगे ?"

"नहीं, नाराज क्यों होऊंगा ?"

"क्या जानूं बाबू! अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रन्थोंमें चाहे अपने

देशके हों या विदेशके—देखनेमें आता है कि पहली देखादेखीमें ही प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया—क्या तुम इसे सम्भव समझते हो ?"

पलक मारतेमें उपेन्द्रका मुखमण्डल लज्जासे लाल हो गया। बोले—"भले-बुरे किसी भी काव्यका मुझे ज्ञान नहीं भाभी, यह सब मैं नहीं जानता।"

किरणमयीने हँसकर कहा—"यह क्या कहते हो ? इतना लिखना पढ़ना सीखा, सब कुछ पासकर छात्रवृत्ति ली और काव्यके सम्बन्धमें कुछ जानते ही नहीं ? शकुन्तला, रोमियो-जूलियट, क्या ये दो पुस्तकें भी नहीं पढ़ीं ?"

उपेन्द्रने कहा—"पुस्तकें पढ़कर पास करना एक बात है और उनमें लिखी बातोंकी सचाई-झुठाईका अनुभव करना और ही बात है। पुस्तकमें जो कुछ लिखा था, उसे कण्ठकर परीक्षाके समय लिख आया था। आपकी तरह किसी परीक्षकने प्रश्न नहीं किया, कि यह सम्भव है या असम्भव। मुझे माफ करना भाभी, मैं यह सब आलोचना आपके साथ न कर सकूँगा।"

किरणमयीने विषण्ण हो, एक गहरी साँस लेकर कहा—"इसीसे पूछा था, कि सुनकर नाराज तो न होंगे ?"

"नहीं मैं नाराज तो नहीं हुआ।"

"न होना ही अच्छा है।"—कहते हुए किरणमयीने जलते चूल्हेपर घीकी कड़ाही चढ़ा दी।

चुपचाप आठ-दस पूरियाँ निकाल कर किरणमयीने एक

लम्बी सांस लेकर कहा—"जो बात मैंने जाननी चाही थी, उसकी आलोचना ही तुमने नहीं की, किन्तु एक बात और तुमसे पूछती हूं, प्रणयको लोग अन्धा क्यों कहते हैं ?"

उपेन्द्रने कहा—मालूम होता है, आंख रहनेपर मनुष्य जिस रास्तेसे नहीं जाता, वह उसे उसी रास्तेपर ले जाता है।"

किरणमयीने उत्सुक होकर पूछा—"क्या सचमुच ले जाता है ? क्या यह बात सच है कि प्रेम अन्धा होता है ?"

उपेन्द्रने कहा—"सच ही है। अधिकतर लोगोंने इसे ऐसा ही बताया है और प्रायः अपने अनुभवसे ही बताया है।'

किरणमयीने कहा—"ठीक है, यदि ऐसा ही होता हो। यदि अन्धा गड्ढेमें गिरता है, तो लोग दौडकर उसे उठाते हैं। उसके लिये दुखी होते हैं, यथाशक्ति मनुष्य उसकी भलाईकी चेष्टा करता है, किन्तु प्रेमसे अन्धा होकर जब मनुष्य गड्ढेमें लुढक पड़ता है, तब उसे उठानेके लिये कोई नहीं दौड़ता, बल्कि और हाथ-पांव तोड-ताडकर उसे गड्ढेमें ही गाड़ देना चाहता है। मनुष्य स्वयं जिस सत्यका प्रचार करता है, जरूरत पड़नेपर उसकी मर्यादा नहीं रखता। मेरी बात समझते हो न बाबू ?"

उपेन्द्रने सिर हिलाकर कहा—"हां, समझता हूँ।"

किरणमयीने कहा—"समझते हो, इसीसे तो तुमसे पूछती हूं। किन्तु ऐसा होनेसे ही, दूसरेकी बात आ पड़नेपर मनुष्य अनेक बातें जबरन भूल जाना चाहता है, अन्धेको आंखवालेका दण्ड देकर बहादुर बनता है। दूसरेका विचार करते समय उसे

इस बातकी याद नहीं कि आँख न रहनेपर गड्ढेमें उसके भी गिर पडनेकी सम्भावना उससे कम नहीं है।"

उपेन्द्रने जरा अप्रसन्न होकर विस्मयके साथ कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, किन्तु मैं यह नहीं समझता कि आप यह सब आलोचना क्यों करती हैं? सच हो या झूठ, आपके जीवनके साथ इस मीमासाका कोई सम्बन्ध नहीं कोई सार्थकता नहीं। आप अब इन सब सच्ची-झूठी बातोंके बाहर चली गयी हैं।"

किरणमयी उपेन्द्रकी अप्रसन्नता देखकर भी मुस्कुरायी, बोली—"अन्धा आलोचना करके गड्ढेमें नहीं गिरता, गिरकर आलोचना नहीं करता। मैं गड्ढेमें नहीं गिरी या गिरनेके लिये उस ओर आगे नहीं बढ़ रही हूं, यह तुमने कैसे जाना?"

उपेन्द्रने कहा—"आप अन्धी हैं, यह तो कोई अन्धा ही कह सकता है। मैंने आपकी दोनों बडी-बड़ी आँखें देखी हैं भाभी।"

किरणमयीने कहा—"यही तो मुश्किल है। दो तरहके अन्धे होते हैं न? जिनकी आँखें बन्द रहती हैं, उनके सम्बन्धमें विचार नहीं करना पडता, वे पहचाने जाते हैं, किन्तु जो दोनों आँखोंसे देखकर चलते हैं और फिर भी देख नहीं पाते, उन्हींके सम्बन्धमें तो इतना गोलमाल है। वे अपने आपको ठगते हैं, दूसरोंको भी ठगते हैं।"

उपेन्द्र कुछ लज्जित होकर बैठे रहे। उनसे उत्तर न पाकर किरणमयीने सहसा अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा—"अच्छा

तुमने कब मेरी दो बड़ी-बड़ी आँखें देखीं, क्या मैं यह पूछ सकती हूं ?"

उपेन्द्र बोले—"आपके स्वामीके मृत्युके बाद ही। उस दिन आपको जिसने देखा है, वह कभी आपको न भूलेगा। क्यों आप अपनेको अन्धी बता रही हैं, यह आप ही जाने, किन्तु मैं जानता हूँ कि यह बात सच नहीं। उस दिन आपके दोनों आँखोंमें मैंने जो ज्योति देखी थी, उसे याद करते हुए कह सकता हूं कि आपको चारों ओरसे चाहे जैसा घना अन्धकार क्यों न घेर ले, पर आप उसमें राह न भूल सकेंगी। आप ठीक रास्ता देखकर आजीवन चली जा सकती हैं।"

किरणमयी कुछ देर चुप रहकर बोली—"शायद अब मैं समझ गयी। उस दिन बेहोश होकर उनके पाँव तले पड़ी थी, वही देखकर शायद तुमको यह धारणा हुई है।"

उपेन्द्रने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, वही देखकर, किन्तु मैं भूल कर रहा हूं, भाभी ?"

किरणमयी जरा मुस्कुरायी। उसके बाद संकोच-रहित ,, बिलकुल स्वाभाविक ढंगसे बोली—"हाँ, भूल नहीं तो और '। है ? मैं तो अपने स्वामीको प्यार नहीं करती थी।"

उपेन्द्र अवाक् होकर ताकते रहे।

किरणमयी पुनः कहने लगी—"सचमुच ही मैंने कभी उनसे प्रेम नहीं किया। सिर्फ मैंने नहीं, उन्होंने भी मुझसे प्रेम नहीं किया। तो उस दिनकी मेरी वह हालत क्या बिलकुल बनावटी

थी। यह बात भी नहीं बाबू, वह भी सत्य थी। सचमुच ही उस दिन मैं अचेत हो गयी थी। इतना कहकर और उपेन्द्रकी गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर वह जरा रुक गयी; किन्तु तत्काल ही सम्भलकर बोली—"डरनेसे मेरा काम न चलेगा। आज तुमसे सब बातें कहनी ही होगी।"

उपेन्द्रने कष्टसे मुंह खोलकर कहा—"क्यों न चलेगा? मैं सुनना नहीं चाहता, फिर भी मुझसे क्यों कहना होगा?"

किरणमयीने कहा—"तुम मेरे गुरु हो, यही इसका कारण है। जबतक तुम्हारे सामने मैं सब कुछ स्वीकार न कर लूंगी तबतक मुझे किसी प्रकार शान्ति न मिलेगी।"

उपेन्द्र स्थिर दृष्टिसे देखते रहे। किरणमयी दृढ़ और मृदु-स्वरसे कहने लगी—"मुझमें जो गम्भीर अन्तर्दृष्टि तुमने देखी थी, वह आंखोंकी भूल नहीं, सच थी; किन्तु वह बहुत थोड़े समयकी थी—एकदम क्षणिक थी। स्वामीको मैंने कभी प्यार नहीं किया, पर तन-मनसे स्नेह करनेकी चेष्टा शुरू की थी; किन्तु वे जीवित नहीं रहे, मेरी वह चेष्टा भी स्थाई न हुई। किताबोंमें ये सब बातें पढ़कर कभी सोचती थी, सब झूठ है, कभी सोचती थी, कविकी कल्पना है और कभी सोचती थी कि प्रेम करनेकी शक्ति ही मुझमें नहीं है। इसीसे कहती हूं कि यह शक्ति मुझमें है या नहीं, यह अब भी मुझे मालूम नहीं। किन्तु प्रेमकी लालसा मेरे अन्दर कितनी प्रबल है, यह तुमको देखकर पहले-पहल जाना है। इसीसे तुम मेरे गुरु हो।" जरा

ठहरकर कण्ठस्वरको सम्भालकर बोली—"दो दिन बाद तुम लोग चले जाओगे। फिर जब भेंट होगी, तब अपनी बात कहनेके अनुकूल मनकी अवस्था शायद न रहेगी। नहीं बाबू, यह न होगा। आज ही अपनी सब बातें तुमको सुनाकर तब निश्चिन्त हो सकूँगी।"

उपेन्द्रने कातर होकर कहा—"भाभी, देखता हूं, आज कई कारणोंसे आपका मन अत्यन्त उत्तेजित हो गया है। इस अवस्थामें क्या कहना उचित है, क्या नहीं यह आप सोच न सकेंगी और ऐसी बातें भी कह सकती हैं, जिनके कारण आपको पीछे बहुत लज्जा सहनी पड़े और बहुत पछतावा हो। मैं अनुरोध करता हूं, और किसी दिन आकर मैं आपकी सब बातें सुन जाऊँगा, किन्तु आज नहीं।"

किरणमयीने कहा—"ठीक इसी कारणसे तो मैं भी आज ही तुमको सब बातें सुनाना चाहती हूं। पीछे कहीं न सुना सकूँ, पीछे कहीं लज्जा कहने न दे, सांसारिक बुरे-भलेकी विचार-बुद्धि मुंह बन्द कर दे इसीसे आज ही कहूंगी। आज लुका-छिपाकर, सोच-समझकर, बना-बनाकर कहना असम्भव है और न वैसा करनेकी मेरी प्रवृत्ति ही है। आज ही कहनेका समय है। मैं जानती हूं कि इसके कारण कल मैं शायद मारे लज्जाके मरती रहूंगी, अनुपातसे अपना सिर फोड डालनेकी इच्छा होगी, शायद इस जन्मसे मेरा मुंह न देखोगे, फिर भी मैं कहूंगी। और कुछ कालतक मेरी यह दुर्बुद्धि बनी

रहे, मन ऐसा ही उन्मादित रहे, ताकि मैं तुमसे सब खोलकर कह सकूँ।"

उसके चेहरेकी ओर ताकनेपर उपेन्द्रका निर्मल, शुद्ध अन्तःकरण किसी अज्ञात भयसे कांप उठा, फ़िर भी बाधा देकर उसने कहा "भाभी मनुष्यमात्रमे छिपाने योग्य बातें होती हैं। उन्हें किसीके सामने खोलनेकी आवश्यकता नहीं; बल्कि गुप्त रखनेकी अपेक्षा उन्हें प्रकट करना अधिक हानिकारक हो सकता है। इससे केवल आपका या हमारा ही नहीं, और लोगोंका भी अनिष्ट हो सकता है।"

किरणमयीने कोई उत्तर न दिया। पूरियाँ निकालना खतम हो गया था। एक थालीमे पूरियाँ सजाकर उपेन्द्रके सामने रख दी और कहा "तुम खाते रहो बाबू, और मैं अपने मनका गुब्बार निकालती रहूं।"

"मत कहिये भाभी।"

किरणमयीने कहा—"मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। अब मुझे मत रोको! सब सुनकर तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरी सासके साथ मेरा भी भार लेना, न इच्छा हो तो अपना रास्ता लेना। मैं स्वयं जीवनका मार्ग ढूंढ़ लूंगी। मैंने कितनोंको ठगा है, लेकिन तुमको ठग नहीं सकूँगी।"

"तो कहिये"—कहकर उसने पूरीका एक टुकड़ा मुँहमें रखा।

किरणमयीने कहा—"तुमसे कह चुकी हूं, कि मैंने स्वामीसे प्रेम नहीं किया और न कभी उनका ही प्रेम पाया। इसके लिये

मुझे कोई रञ्ज न था। घरमें सास और स्वामी केवल ये ही दो प्राणी थे, उनमें एक नैयायिक थे। वे मानों प्राणोंको बाजी बदकर मुझे पढानेमें ही मस्त रहते थे और दूसरी बडी ही स्वार्थ-परायणा थीं। वे मुझसे काम लेनेमे ही खुश रहती थीं। इस तरह दिन बिता रही थी, और शायद बीत भी जाते। एकाएक सब उलट-पलट गया। स्वामी बीमार पड़े। मैंने उनसे अनेक पुस्तके पढ़ी थीं। नाटक, नावेल भी थोडे नहीं पढ़े, किन्तु हम दोनों पढ़-पढ़कर केवल हँसते थे। प्रेमका नाम भी मेरे घरमे न था—जैसे कोई मनुष्य जन्मान्ध या जन्मबधिर होता है, वैसे ही मेरे स्वामी भी जन्मनीरस थे। और मुझमे कितना अधिक रस था, यह उस समय न जान सकी थी सही, किन्तु एक दिन सहसा मालूम हो गया कि प्रेम और प्रेम पानेकी तृष्णा मुझमे किसी स्त्रीसे कम नहीं बस, इतनेमे ही हाथ खींच ... काम न चलेगा।"

उपेन्द्रने उदासीनतापूर्वक कहा "मालूम नहीं क्यों खाना नहीं है, भाभी !"

किरणमयीने एक लम्बी सास ली और क्षणभर मौन रहकर न मालूम क्या सोचकर कहा---"मैं जानती थी, कुछ देरमे पूरी तरकारीका स्वाद तुम्हारी जीभपर जहरसा लगेगा, किन्तु इसके लिये तो अभी देर थी—और थोड़ा खा सकते थे।" उपेन्द्र और भी खिन्न हो गये। किरणमयी उनकी ओर देखती हुई कहने लगी—"यदि कहूँ कि तुम्हारे न खानेका दुःख मेरे दाहिने हाथके सड़-

कर, गलकर गिर जानेके दुःखसे भी अधिक है, तो तुम विश्वास न कर सकोगे। करो या न करो, मैं तो जानती हूँ कि यह सच है, तो भी मुझे अपनेको रोक रखनेका उपाय नहीं मुझे कहना ही होगा।"

"अच्छा, कहिये।"

"कहती हूँ। स्वामीकी बीमारके समय मेरे गहनोंके सिवा और जो कुछ था, सब जब एक-एककर चला गया, तब एक नये, हालमें ही पास किये हुए डाक्टर आये थे। अच्छा, अनङ्ग डाक्टरको तुमने देखा है क्या?"

उपेन्द्रने कहा—"हाँ।"

किरणमयीने जहरकी-सी हँसी हसकर कहा—"आह! मेरी बदनसीबी। इधर एक ओर स्वामी मर रहे थे, उधर एक दूसरे कमरेमें उनको लेकर गयी प्रेमका शौक पूरा करने!"

उपेन्द्र सिर नीचा किये चुपचाप बैठे थे। किरणमयीने कहना चाहा, किन्तु मानो किसीने उसका गला दबाकर उसका बोलना बन्द कर दिया। कुछ क्षणके बाद बडी चेष्टा करके वह रूखे ढंगसे बोली—"सुनते ही तुम्हारा सिर झुक गया? तब तो तुम अनङ्ग डाक्टरको नहीं पहचाते। पहचानते तो समझ सकते कि कितने वर्षोंकी अनावृष्टिकी दुर्दमनीय ज्वाला मेरी इस छातीके भीतर इकट्ठी हो रही थी और इसीसे ऐसा सम्भव हो सका था। जानते हो बाबू, जिस प्यासके मारे मनुष्य नालीका गन्दा पानी भी अंजुली भरकर पी जाता है, मुझमें भी

वैसी ही प्यास थी – तृष्णा थी। किन्तु यह वात मालूम हुई उस जलको पीनेपर। इसके वाद जी मिचलाते-मिचलाते कुछ दिन कटे····· यों कहते-कहते उसका सारा शरीर वार-म्वार कांप उठा। एक तेज दुर्गन्धयुक्त जहरीलो डकार मानों उसके कण्ठतक उवल उठा। कुछ काल स्थिर रह और अपनेको संभालकर किरणमयीने फिर कहा—"किन्तु कै करके उसे निकाल भी न सकी। सासने मेरा मुंह दवा दिया। अनङ्गने तव ग्रहस्थीका आधा भार उठा लिया था।"

उपेन्द्र स्थिर हो पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह वैठे रहे। उनके निर्वाक् झुके हुए मुखको ओर एक वार कनखियोंसे देखकर किरणमयी वोली—"इसके वाद आसक्ति, घृणा, तृष्णा वितृष्णा-के अविश्राम संघर्पसे इतना विष दिन-दिन पदा होने और वढने लगा, कि देव-दानवके निष्ठुर आकर्पण-विकर्पणसे मन्दर-पीडित ‿ ̄ भी शायद उतना विष अपने मुंहसे न उगल सके होंगे। माल्रूम हुआ, मानो घरकी प्रत्येक ईंट, लकड़ी, खिडकी, ।ज।, कडी, वरन सव विपसे काले हो गये हैं।"

जरा ठहरकर वोली—"कितने दिनों वाद और किस तरह क। अन्त होता, यह नहीं जानती थी। कितना ही सोचा, पर किसी ओर कोई किनारा नजर नहीं आया। किन्तु उसी समय तुम न जाने कैसा अमृत लिये आ पहुंचे। कहाँ गयी विपकी ज्वाला और कहाँ गयी विद्वेप-वितृष्णा। पलक मारते यह सव ऐसा तुच्छ हो गया, कि अनङ्गको विदा करनेमें

मुझे एक मिनटकी भी देर न लगी। तुम ही आकर मानो मेरे कानमें इसका उपाय बता गये थे। जानते हो, स्त्रियोंको गहना कितना प्यारा होता है ? मेरे बड़े दुःखसे बचाये हुए गहने, मेरी पसलियोंकी तरह थे। इस समय तुम जिस जगहपर सिर झुकाये बैठे हुए हो, ठीक इसी जगह पसलियोंको निकालकर मैंने उसके पाँवोंतले रख दिया। मेरे प्रति चाहे उसकी कैसी ही अधिक आसक्ति रही हो, इतने गहने हाथ आनेपर वह कभी मुँह न दिखायेगा, जन्मभरके लिये वह रिहाई देकर चला जायेगा, यह मन्त्र मानो तुम्हींने मुझे बताया था।

"ओफ ओह। मैं कितने भय और कितनी चिन्तामें थी। विपत्तिके दिन आनेपर वे गहने मेरे पास रहते भी नहीं, इसीसे पहले ही मेरे हाथोंसे चले गये। यह अच्छा ही हुआ। उन्हें मैं नहीं रख सकी, इसका मुझे जरा भी दुःख नहीं, बल्कि बड़ी खुशी है। परन्तु इसका सच्चा हर्ष तो मुझे तब हुआ था, जब वह सायंकालके उस अन्धकारमें अपने लोभको न रोक सके। मेरे सारे अङ्गोंके गहने ले, गठरी बाँधकर चोर की तरह चुपचाप मेरे घरसे चला गया। मैंने समझा, अब मैं बची—मेरे प्राण बचे।'

उपेन्द्रको स्मरण हो आया। एक दिन सवेरे अनङ्ग डाक्टर उनके और सतीशके बीचसे चोरकी तरह दबे पाँवों निकल भागा था, लेकिन यह बात इससे न कहकर वे चुप रहे।

किरणमयी कहने लगी—"उसके जानेके बाद ही तुम आये।

क्या उस रातकी मेरी वह उग्र मूर्त्ति तुम्हें स्मरण है ? उस रात-को मैंने कितने ही छल-प्रपञ्चभरे काम किये थे, छिपकर तुम लोगोंकी बातें सुनी थीं, नीचे जाकर तुम लोगोंके साथ तनकर-ऐंठ-ऐंठकर बातें की थीं और तुम्हारे मनमे क्रोध उत्पन्न कर तरह-तरहकी आशङ्काओंसे अपने हृदयको जलाया था, किन्तु इसके बदले जो दो चीजें मिलीं, उन्हें पाकर मैंने समझा कि स्वर्ग और अमृत दोनों एक साथ ही मुझे मिल गये । श्रीराम-चन्द्रके स्पर्शसे पत्थरकी अहल्या जिस प्रकार मनुष्य वन गयी थी, मैं भी मानो उसी तरह राक्षसीसे नारी वन गयी। अहल्याने पत्थरसे मनुष्य होकर क्या पाया, मैं नहीं जानती, किन्तु मैंने जो पाया, उसकी तुलना किसीसे नहीं हो सकती । मेरे भाई न था, मैंने सतीशको सगे भाईके रूपमे पाया और तुमको पाया—हुं: । सिर क्यो झुकाते हो ? पुरुषको इतनी लज्जा नहीं सहती ।"

उपेन्द्रने सिर उठाकर दृढ़ कण्ठसे कहा—"सुनिये भाभी, जो ~ज विषय है, वह स्त्री-पुरुष दोनोके ही लिये वरावर है। यह सब बातें नहीं सुनना चाहता। या तो आप चुप हो या ही यहांसे उठकर चला जाऊं।"

किरणमयीन हँसकर कहा—'सचमुच चले जाओगे ?"

उपेन्द्र—"हां।"

किरणमयी—"तो मैं भी तुम्हें जवर्दस्ती पकड़ रखूंगी। पर कहे देती हूं। वलकी इस परीक्षामे मेरा ही लाभ होगा—हानि नहीं होगी।

किरणमयीके यह कहनेपर उपेन्द्र सिर नीचाकर बैठ रहे किरणमयीने फिर हँसकर कहा—"डरो मत, डरो मत बाबू! तुम्हारी इच्छा न रहते मैं तुम्हारे गले न पड़ूँगी, ऐसी उन्मत्तता मुझे अब भी नहीं हुई है। जी चाहे, तुम अभी चले जाओ, मैं न रोकूँगी।"

उपेन्द्र उसी प्रकार सिर झुकाये चुपचाप बैठे रहे। बादलोंसे ढके रहनेके कारण चन्द्रमा आँखोंसे न दिखाई देनेपर भी चारों ओर फैली हुई धुधली चाँदनीके द्वारा उसके अस्तित्वका पता चल जाता है। उसी तरह इन दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध इतनी देरतक हृदयमे छिपे रहनेपर भी सम्भाषण द्वारा कुछ-कुछ प्रकट हो चला है। यह गुप्त प्रेम अब देरतक छिपा नहीं रह सकता। हवा चली है, बादलका परदा बड़ी शीघ्रतासे हट रहा है, कुछ ही देरमें चन्द्रमा स्पष्ट दिखाई देगा। उपेन्द्र अपने मनमें इसका पक्का अनुमान करके ही वहाँसे भागनेकी चेष्टा कर रहे थे, किन्तु उनकी सारी चेष्टा विफल हो गयी। हवाके एक ही झोंकेमें आवरण दूर हट गया और सामनेका आकाश साफ दिखाई देने लगा।

किरणमयीने धीरे-धीरे कहा—"खैर, तुमपर जो मेरा प्रेम है, वह बता दिया, अब तुम्हारी जो खुशी हो करो। मैं अब कुछ न कहूँगी, लेकिन यह मत समझो, कि मैंने आशाकी मृगतृष्णामें पड़कर तुमसे यह बात कही हो। मैं तुम्हें पहचानती हूँ, मैं जानती हूँ कि मेरा यह कहना व्यर्थ है—बिलकुल ही बेमतलब!

रक्षक होकर तुम भक्षकका काम नहीं कर सकते, कभी नहीं—किसी तरह नहीं, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

इतनी देरपर उपेन्द्रका मुंह खुला। उसने बड़ी नम्रतासे कहा—"यदि मुझपर इतनी श्रद्धा है, तो फिर ये सब बातें मुझसे क्यों कहीं।"

किरणमयी—"इसके दो कारण हैं। पहला यह है कि यदि मैं ये बाते न कहती तो शायद पागल हो जाती। दूसरा यह, कि सब बातें तुमसे कहे बिना तुम्हारा आश्रय लेना मेरे लिये असम्भव था। ऐसा होनेसे मैं यही समझती, कि सुरबाला ही मुझे खाने-पहननेको देती है, किन्तु अब यदि तुम मेरा भार लोगे तो मैं समझूँगी कि मैं तुम्हारा ही दिया खाती हूँ और पहनती हूँ, किसी औरका नहीं। अच्छा, सुरबालासे मेरी ये बातें कहोगे तो ?"

उपेन्द्र—"नही।"

किरणमयी—"नही, क्यों ? क्या सुननेसे उसे कष्ट होगा ?"

उपेन्द्र—"नहीं, कष्ट नहीं होगा। वह बड़ी बेवकूफ है। कुलकी स्त्री पतिको छोडकर दूसरे पुरुषसे किसी अवस्थामे भी प्रेम कर सकती है, यह बात हजार बार कहनेपर भी वह न मानेगी। कदाचित् वह अपने हाथसे मेरा मुह बन्द करके कहेगी—ये सब बातें कहनेसे मुंहमे घाव होता है। अच्छा, अब आप आज्ञा दें, तो मैं जाऊँ।"

यह बात किरणमयीके हृदयमे तपी हुई बर्छीकी भांति बिंध

गयी। उसने मनके भावको दबाकर सहज कण्ठसे कहा—"आज्ञा देनेके सिवा और उपाय ही क्या है। आज्ञा तो देनी ही होगी। पर तो भी कुछ देर बैठो। तुमपर जो प्रेम उत्पन्न हुआ था, वही मेरे लिये विघ्न हुआ, लेकिन जिस बातको मैंने भुलाना चाहा था, आज वह बात भी तुमको जान लेना चाहिये। इस विषयमें मेरा गुरु कौन है, जानते हो ? वही बेवकूफोंकी सरदार छोटी बहू।"

उपेन्द्रके चेहरेपर आश्चर्यकी रेखाएँ दौड़ गयीं। यह देखकर किरणमयी बोली—"हाँ वही—तुम लोग जिसे पशुराज कहकर दिल्लगी करते हो वही सुरबाला मेरी गुरुवानी है। तुमने जो कुछ सिखलाया था, उन्होंने उसे भुला देना चाहा था तुम दोनो ही मेरे गुरु हो—मेरे प्रणम्य हो।"

'उपेन्द्र कुछ न बोले। किरणमयी कहने लगी—"तुमसे बार-बार कहती हूँ बाबू, आज मैंने तुम्हारे पैरोंपर अपनी लज्जा और संकोचकी जलाञ्जलि दे डाली है, और यह काम मैंने खूब अच्छी तरह अच्छे-बुरे परिणामोंपर विचार करके ही किया है। मैं जानती हूँ, तुम्हारी सुरबाला सती स्त्री है, और है तुम्हारे हृदय-की परम पवित्रता। वह स्फटिककी भाँति स्वक्ष है और वज्रके समान कठोर। उसपर कहीं जरा-सा दाग लगाना भी मेरी जैसी हजारों प्रेमिकाओंकी शक्तिके बाहर है। लेकिन देखो तो बाबू, मनुष्यके स्वभावकी यह कैसी विचित्रता है कि जो इसके शक्ति-सामर्थ्यके बाहरकी वस्तु है, सबसे बढ़कर उसी-के पानेका लोभ इसे लगा रहता है। भगवानको कोई नहीं

पाता, इसलिये मनुष्य सब प्रकारसे उन्हें चाहता है। मेरे मनमें भी यही बात है, तुम मेरे लिये इतने अप्राप्य न होते, तो शायद मैं तुमपर इतना प्रेम नहीं कर सकती; लेकिन अब इस बातको जाने दो।”

कुछ कालतक चुप रह, एक लम्बी साँस भरकर किरणमयी फिर बोली—“जिस प्रकार आचार्य द्रोण ऐकलव्यके गुरु थे, उसी प्रकार मेरी गुरु सुरबाला है, लेकिन वह कैसे मेरी गुरुवानी हुई वह बात भी मैं आज ही तुम्हें बता दिया चाहती हूँ। अभी जिस जगह तुम खानेको बैठे हो, एक दिन रातको सतीश भी वहीं खाने बैठा था। किसी तरह तुम्हारी बातें चल पड़ी। फिर क्या था? मेरा भाई—सतीश तुम्हारी बातोंमें एकदम पागल हो उठा। उसे सम्भालना कठिन हो गया। मेरे मनकी भी उस समय करीब-करीब वैसीही अवस्था थी। प्रेम-मदिराका प्याला पीकर तुम्हारे नशेमें मैं उन्मादिनी-सी बन गई थी, मेरे दोनों हाथ-पाँव हो गये थे, दोनों आँखोंमे लाली चढ़ गयी थी। ऐसे समयमें ार। कितने ही उदाहरण, कितने ही दृष्टान्त देकर कहने । —“तुम अपनी सुरबालाको कितना प्यार करते हो। शायद मने उसकी बीमारीमे खाना-पीना छोड़, उसके पास बैठे बैठे लगातार कई रातें जागकर बितायी थीं। किसी समय वह तुम्हारे सिरहाने बैठकर सारी रात तुम्हें पङ्खा झलती रही थीं। ऐसे कितने ही दिन और कितनी ही रातोंकी कितनी ही छोटी-बड़ी घटनाएं उसने बतायीं। वे सब तो उसकी सुनी हुई थीं।

हो सकता है, उनमे कोई बात झूठी भी हो या उसने कुछ बढ़ा-चढाकर कहा हो किन्तु उससे हम दोनोंकी कोई हानि न हुई। तुम दोनों स्त्री-पुरुषों में प्रेमकी जो निर्मल गंगा वह रही है, हम दोनों मानो वातको वातमे उसमे डूवकर तहतक पहुंचना चाहते थे। इसके वाद रात वहुत वीत जानेपर सतीश अपने घर चला गया, पर मैं वहीं वैठी रही। कितनी देरतक वैठी रही, यह मुझे मालूम नहीं। वाहर जाकर देखा, तो सामने शुक्रतारा दिखाई दिया। मेरे मनमें एकाएक यह बात आयी, कि सुरवालाका मुह भी मानों ऐसा ही है। ऐसाही रम्य, ऐसा ही उज्ज्वल ठीक ऐसा ही होनेके कारण मालूम होता है, तुमको उसके मुहपरसे दूसरी ओर दृष्टि हटानेका जी नहीं चाहता। मन-ही-मन कहा—'सुरवाला, तुमको तो मैंने देखा नहीं; लेकिन तुम जैसी ही हो, आजसे तुम मेरी गुरु हुई। तुम्हींसे मैंने पतिप्रेम का सवक सीखा है, प्रेमकी मधुरता तुम्हींने मेरी जीभमे लगायी है, इसे मैं अव छोड न सकूंगी। मैं प्रेमको हृदयसे चाहती हूं—मुझे प्रेम करना ही होगा। तो फिर दूसरेसे प्रेम करके क्यों इसे व्यर्थ करूं? अव भी तो मेरे पति जीवित हैं। अभी तो विधवा नहीं हुई हूं, तो क्यों ऐसी भूल कर रही हूं? तुम्हारी भांति आजसे मैं भी अपने पतिसे प्रेम करूंगी और किसीसे नहीं। इस प्रकार सोचते ही मेरा मन मानो अपनी सारी शक्तियोको केन्द्रीभूत कर वोल उठा—प्रेमका वदला पानेकी आशा न रहनेपर भी तुमको उनसे प्रेम करना

ही होगा।" किन्तु मेरा नसीब खोटा था। वे जीवित नहीं रहे। मेरे मनोरथका अंकुर उत्पन्न होनेके साथ ही सूख भी गया। उनकी मृत्युके दिन तुमने मुझे जो वैसे ही रूपमें देखा था, उसमें जरा भी कपटभाव न था"—कहते-कहते उसका गला भर आया। उपेन्द्रका ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ, पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। किरणमयी भी कुछ देर चुप रहकर बोली—"जो मूर्ख हैं, गँवार हैं, वे नहीं समझेंगे, लेकिन तुम तो जानते हो कि संसारकी सभी वस्तुओंके साथ प्रकृतिका एक नियम है, उस नियमका उल्लंघन करके पति पत्नीमें कोई अपने चिर मधुर सम्बन्धके वास्तविक सुखतक कभी पहुंच नहीं सकता। विवाहका मंत्र कर्त्तव्य पालनकी बुद्धि दे सकता है, भक्ति दे सकता है, मृतपतिकी जलती हुई चितामें प्रवेश कर जानेकी प्रवृत्ति भी दे सकता है, किन्तु माधुर्य देनेकी शक्ति तो उसमें नहीं है। वह शक्ति तो है केवल इस प्रकृतिके हाथमें। उसका वह दान [illegible] के भीतर है। जो नियमपालन करेगा, उसीको [illegible] दान मिलेगा। जब समय था, सामर्थ्य थी, तब हम [illegible]-पति-पत्नी—ने पैरोंसे उस नियमको ठुकरा दिया, [illegible]की कुछ भी कदर न की। जब समय हाथसे निकल गया, तब स्वामी रोगसे आक्रान्त हो गये, और धीरे-धीरे मृतप्राय हो पड़े, तब कौन मुंह लेकर उनसे प्रेम करने जाऊँ, तो भी मैं बिलकुल हताश न हुई, मेरे लिये तब भी एक राह खुली हुई थी और वह थी उनकी सेवा। सोचा था, यावज्जीवन स्वामी-

की सेवा करके ही किसी दिन उनके प्रेमकी अधिकारिणी बन सकूंगी, परन्तु मैं ऐसी हतभागिनी हूं कि वह अवसर भी मुझे नहीं मिला, मैं उनकी सेवा भी न कर सकी और वे इस संसारसे विदा हो गये।"

उपेन्द्रने विस्मयके साथ सिर उठाकर देखा, किरणमयीको दोनो आंखोसे आंसू बह रहे थे। कहा—"भाभी आपने उनकी जैसी सेवा की, किसी मनुष्यसे वैसी नहीं हो सकती। पति सेवाके लिये स्त्रीका जो कर्त्तव्य है, उसमें आपने कुछ भी त्रुटि नहीं की।"

किरणमयीने कहा—"शायद न का हो, किन्तु जो मनुष्य नहीं कर सकता, उसे मैं ही कैसे कर सकती? ऐसी कोई बात नहीं, वैसी सेवा सभी स्त्रियां कर सकती हैं। किन्तु मैंने तो कर्त्तव्य समझकर कुछ किया नहीं। मेरे अन्य मार्ग सभी बन्द थे, इसीलिये मैंने अपनी सेवासे ही उनको पानेका मनोरथ किया था। इसीलिये अपनी शक्तिभर कभी उपेक्षा नहीं की थी। एक बार यदि उन्हें अपने हृदयके भीतर पा सकूंगी, तो चाहे जितने दिन जीऊंगी, जहां कहीं और चाहे जिस अवस्थामें रहूंगी, भली भांति जीवन बिता सकूंगी। लेकिन मेरी सारी चेष्टायें विफल हो गयीं। उनको पानेका पाठ आरम्भ ही किया था, पा नहीं सकी थी। पहले ही दिन तुम जो मेरे हृदयमें आ बसे, किसी तरह वहांसे तुमको फिर हटा न सकी। अपने स्वामी को भी अपने हृदयके भीतर न पा सकी।"

उपेन्द्र खड़े होकर बोले—"रात बहुत हो गयी भाभी, मैं अब जाऊँ।"

किरणमयी भी उठ खड़ी हुई, बोली—"चलो, तुमको फाटक तक पहुंचाकर किवाड़ बन्द कर आऊँ। कल तो फिर तुम्हें देख पाऊँगी न?"

"नहीं, कल मैं घर जाऊंगा।"

"तो फिर कब भेंट होगी?"

"बराबर होती रहेगी। प्रणाम!"

"आशीर्वाद। दिवाकरको यहां भेजोगे न?"

"हां जरूर भेजूंगा। उसके मां-बाप नही है, मैं ही इतने दिनोंसे उसे देखता आया हूं। अब यदि आप उसका भार लेना चाहती हैं, तो मैं खुशीसे आपके हाथ सौंपता हूं।"

किरणमयीको आंखोंसे आंसू गिरना ही चाहता था, पर उसे वह बरबस रोककर बोली—"इतनी बाते सुनकर भी इतने बड़े स भार मेरे ऊपर क्यों सौंपते हो? तुम दिवाकरको न। चाहते हो यह तो मैं जानती हूं।"

उपेन्द्रने दरवाजेके बाहर आकर कहा—"इसीलिये तो आप-सौंप दिया है। मैं जिसे प्यार करता हूं, जिसे हृदयसे चाहता हू, उसका अमङ्गल आपके द्वारा कभी नही हो सकता, ऐसा मेरा मका विश्वास है।"—कहकर वे आगे बढ़े।

किरणमयीने जोरसे पुकारकर कहा,—"बाबू, एक बात और, न्या सतीश कलकत्तेमें नहीं है?"

उपेन्द्रने दूरसे ही जवाब दिया—"नहीं।"

किरणमयीने फिर पूछा—"वह जब मुझसे कहे बिना चला गया है, तब निश्चय है, कि मनमें कोई भारी चोट पाकर ही गया है। क्या तुमने उसे इस मकानमें आनेको मना कर दिया था?"

उपेन्द्रने पास आकर कहा—"मना कर देनेकी इच्छा थी, लेकिन मना नहीं किया।"

किरणमयी—"इच्छा थी, तो क्यों नहीं मना कर दिया?"

उपेन्द्र चुप हो रहे। जवाब न पानेपर किरणमयीने कहा—"परन्तु ऐसी इच्छा क्यों हुई थी, क्या मैं नहीं जान सकती?"

उपेन्द्रने कहा—"मुझसे भूल भी हो सकती है। जो हो वह कहां है, इसका पता लगाकर उसे आपके पास आनेके लिये एक चिट्ठी लिख दूंगा। न आनेका कारण उसीसे पूछियेगा।" यह कहकर उपेन्द्र दूसरे प्रश्नकी प्रतीक्षा न कर बड़ी तेजीसे अँधेरी गलीके पार हो गये।

२७

जो सीधा पक्का रास्ता सन्थाल परगनेसे होकर वैद्यनाथ धामको गया है, उसीके किनारे, एक बागमें, वैद्यनाथ धामसे प्रायः दो कोसकी दूरीपर, एक बङ्गला था। कलकत्तेसे आकर सतीशने रहनेके लिये इसी बङ्गलेको पसन्द किया था। आप अपना समझौता करनेके लिये वह इस सुनसान स्थानमें अज्ञात-

[illegible]

वास करने आया था। इसीलिये जब उसने देखा, कि इसके इधर-उधर गाँव नहीं है, सामनेके रास्तेमें भी लोग बहुत कम आते-जाते हैं, तब उसने बड़ी खुशीसे कहा था—"बस, मुझे ऐसी ही जगह चाहिये, ऐसे ही निर्जन, एकान्त स्थानकी जरूरत थी।" कलकत्तेसे अपयश और दुःखके जो गठ्ठर लादकर वह लाया है, वहाँ एकान्तमें बैठकर वह उनमेंसे एक-एककी सफाई करना चाहता था। उसका सबसे पहला काम था सावित्रीकी तरफसे मनमें घोर घृणा लाना, दूसरा काम था पथरिया घट्टेकी बहूको भुला देना और तीसरा ध्येय था उपेन्द्र भैयाके साथ सारा सम्बन्ध तोड़ लेना! इसी वनमें बैठकर वह इन सब कठिन कामोंको सिद्ध करना चाहता था। साथमें था बिहारी और इसी प्रान्तका एक रसोइया। बिहारी बाबूकी सेवा-टहलसे बचे हुए समयमें रसोइया महराजसे वाद-विवादकर उसे अनाड़ी और बेवकूफ सिद्ध करनेमें अपनी शक्ति खर्च करता और महराजका काम था भोजन बनाना और बाकी वक्त बिहारीसे लड़-झगड़कर यह सिद्ध करनेमें लगाना कि वह बाजारसे सौदे लानेमें दोनों हाथोंसे पैसे लूटता है। इस प्रकार उन दोनोंके दिन तो ज्यों-त्यों करके कट रहे थे, पर उनके मालिक दिन-रात तत्वचिन्तामें ही लगे रहते थे। संसारमें कामिनी और काञ्चन ही सब अनर्थोंकी जड़ हैं, वैराग्य ही परम साधनीय वस्तु है, पक्षियोंकी चहचहाहट ही परम संगीत है, वन, जंगल और पर्वत ही सौन्दर्यके विशुद्ध आदर्श हैं—इन

सयको पूर्ण रूपसे हृदयमें धारण करना ही उसकी वर्त्तमान साधना थी। इस साधनाके बिना उद्देश्य-सिद्धिका दूसरा उपाय ही न था, इसीलिये वह बरामदेमें एक टूटी-सी आराम कुर्सीपर पड़े-पड़े कान लगाकर पेड़ोंपर बैठे पक्षियोंकी किलोलें सुना करता था। महुएके पेड़से टकराकर सायं सायँ करती हुई जो हवा पार होती थी, उसमे वह दुर्लभ राग-रागिणियोंके सुर तलाश करता था, आकाशमे जहाँ-तहाँ बादल देखकर मग्न हो, मन-ही मन तारीफोंके पुल बाँधता था, और कहीं दूर पहाड़पर बाँसके सूखे पत्तोंमे आग लगी देख पड़ती, तो रात भर बैठा देखा करता था।

उसने मछली मास आदि खाना छोड़कर सात्विक भोजन करना आरम्भ कर दिया था और कहींसे सफेद पत्थरका एक लोढ़ा उठा लाकर दिनमे उसे पूजता तथा सन्ध्याको उसकी आरती उतारता था।

ऐसे नये ढंगसे जीवन वितानेका समय उसे कभी प्राप्त न हुआ था। पहले तो हमेशा उसे पक्षियोंकी चहचहाहटकी अपेक्षा सितारका शब्द ही अधिक प्रिय लगता था। कभी सपनेमें भी वह वायुमें राग-रागिणियोंकी कल्पना न करता था और न आकाशके नये बादलोंने ही किसी दिन उसे विचलित किया था। वास्तवमें प्रकृतिकी यह सारी शोभा-सम्पदा चाहे कितनी ही सौन्दर्य क्यों न हो, उसकी खबर लेनेकी फुर्सत सतीशको किसी दिन नहीं मिली थी। जहाँ गाना-बजाना, नाटक-थियेटर

या फुटबाल-क्रिकेटके खेल होते, वहीं सतीशने दिन विताये थे। दंगे-फसादमें भाग लेना, सभा-समितिकी वैठकके लिये जगह ठीक करना, किसीके घरमे मुर्दा पड़ा हो तो उसे जलाना, विपत्तिके समय किसीको दस रुपयेका प्रवन्ध कर देना, यही सब उसके आवश्यक कार्य थे।

पक्षियोंके गानमें मधुरता है या नहीं, कोयल पंचम स्वरमें कूकती है या नहीं, नदीका जल कलकल शब्दोंमें क्या घोषणा करता है, कामिनी और कांचन संसारमें कितने अनर्थोंकी जड हैं, ये सूक्ष्म तत्व कभी उसके मस्तिष्कमें न आते थे और न इनके लिये सोच-विचार करते ही कभी किसीने उसे देखा था। वह सीधा-सादा मनुष्य था, संसारका काम-काज सीधी तरहसे ही कर सकता था। जिसे प्यार करता; उसे विना विचारे ही करता और वीचमे वाधा पड़ती, तो फैसला न कर सकता था कि ्या करना चाहिये। दुनियामे दो आदमियोंको उसने सबसे द। चाहा था, एक सावित्रीको और दूसरे उपेन्द्र भैयाको। ।वि ी उसे धोखा देकर दुराचारी, विश्वासघाती विपिनके थ कहीं चली गयी। उपेन्द्र भैया भी विना कुछ पूछे, विना कुछ भी कहे-सुने एक अन्धेरी रातमे उसे छोडकर चले गये। उसके लिये खड़े होनेकी भी मानो कोई जगह न रह गयी। किरणमयीका घर था, लेकिन उस घरका दरवाजा वन्द देखकर उसे वहां जानेकी भी हिम्मत न हुई। इसीसे वह इस निर्जन स्थानोंमें आकर मुक्त आकाशकी वायु, पेड-पौधों और पशु-

पक्षियोंके साथ जबरदस्ती एक अनजान रिश्ता जोड़कर वैराग्य-साधनमे लगनेको तैयार हुआ था, लेकिन जिस आदमीने खेल-कूद और हा हा-ही ही मे अबतक अपने दिन बिताये थे, उसकी इस नयी चेष्टाको देखकर अकसर विहारीकी आँखें भर आती थीं।

वह किसी दिन आकर कहता—"बाबू साहब, दो बङ्गाली सज्जन, मालूम होता है, इधरसे तपोवनकी ओर जा रहे हैं।' सतीश बात समाप्त होनेके पहले ही "कहाँ-कहाँ" कहकर उछल उठता और फिर तुरन्त ही "जाने दो" कहकर मुँह लटकाकर अपनी कुर्सीपर बैठ जाता। विहारी कहता—"बुलाऊँ ? जरा बातचीत " सतीश कहता—"क्या जरूरत है ?" इसके बाद सूखी हसी हॅसकर कहता—"मुझे अब ऐसी बातचीतकी जरूरत नहीं—अच्छी नहीं लगती। विहारी, तू जानता नहीं, वनके पक्षी मेरे लिये गीत गाते हैं, पेड-पौधे बातें करते हैं, हवा सनसनाती हुई मेरे कानोमे कहाँ-कहाँकी कथाएँ कह जाती है, अब क्या मुझे व्यर्थके लोगोंके साथ गपशपकर समय नष्ट करना अच्छा लगता है ? और जो सच पूछो, तो मेरे सच्चे मित्र ये ही हैं। समझते हो न ?" विहारी चुपचाप लौट जाता, किन्तु देरतक मालिकका यह वेदनापूर्ण कण्ठस्वर उसके कानोंमें गूँजता रहता था और उसकी उस प्रकारकी हॅसीसे वृद्धेका कलेजा फट जाता था।

विहारीमे एक विशेष गुण था—वचन देकर वह मुकरना

नहीं जानता था। बहुतेरे बड़े आदमी तो लोभको नहीं सम्भाल सकते, पर बिहारी सम्हाल सकता था। वह मन-ही-मन एक तरहसे समझता था, कि सावित्री उस रातको कोई प्रपंच रचकर गयी थी। बिहारीको इसमे सन्देह नहीं था, कि वह सतीश को सबसे ज्यादा कुशल चाहती है और तन-मनसे प्यार करती है। लेकिन बराबर सोचते रहनेपर भी यह बात उसकी समझ मे न आती थी, कि जो दोष उसने नहीं किया, उसे स्वीकार कर और जो पाप उसने किसी दिन नहीं किया, उसीका बोझ अपने हाथों सिरपर उठाकर क्यों उसके मालिकको इतनी पीडा दे गयी? तथापि सावित्रीपर बिहारीकी असीम भक्ति थी और अगाध विश्वास था। इसीसे अपनी बुद्धिसे जब अपने विचारोंका कोई निर्णय न कर सका, तब मनको इस तरह समझाने लगा, कि अब चाहे जितना दुःख और कष्ट हो, अन्तमे कल्याण ही होगा और इसी कल्याणकी आशासे वह इस मामलेमे क.५ जबान बन्द किये हुए था। मालिकका मुंह देख, उनकी ी ि व्यथाको भली भांति समझकर जब असली बात कह ळनेके लिये बीच-बीचमें उसके मनमें बड़ा आवेग होता, तब ए इस विचारसे ठहर जाता, कि सावित्रीकी अपेक्षा मैं बाबू-को ज्यादा प्यार नहीं करता, जब वह स्वयं ही यह दुःख दे गयी तब मैं उसे दूर करनेकी चेष्टा क्यों करूं? मैं क्यों कहने जाऊँ? वह क्या बिना विचारे ही मुझे सिरकी शपथ देकर रोक गयी है?

इसी तरह इनके निर्जनवासके दिन कटते थे और सम्भव था और भी कुछ समय कट जाता, लेकिन एक दिन अकस्मात् नीचे लिखी घटनासे वाधा पड गयी।

दिन भर तो आकाश साफ था, लेकिन शामके कुछ पहले बीस ही मिनटके अन्दर बडे जोरकी आंधी आयी। उसी आँधीके समय सतीश घोडेकी टापकी आवाज सुनकर चौंक उठा। उसने सिर उठाकर देखा, सामने एक बढ़िया घोड़ा पीटपर साज लिये बडे वेगसे इधर-उधर दौड रहा है। सतीशने बिहारीको पुकारकर कहा "यह किसका घोड़ा है बिहारी ?"

बिहारी भीतर लालटेन साफ करते-करते बोला--"किसी बाबूका होगा।"

सतीशने पूछा—"यहाँ बाबू कहाँ ?"

बिहारी बोला—"यहाँ चाहे कोई न हो, पर देवघरसे बाबू लोग प्राय. गाडीपर तपोवन देखने आते हैं। उन्हींमें किसीका होगा। आँधी-तूफानसे डरकर निकल भागा होगा।"

'तब तो पता लगाना कठिन ही है।' सतीश इतना कहकर फिर अपनी आरामकुर्सीपर लेट रहा। लेकिन बात उसके दिलसे दूर न हुई, वह सोचने लगा—"चाहे कोई हो, साथमें अगर स्त्री भी हो तो और भी आफत है। यहाँ गाड़ी पालकीकी कौन कहे, एक आदमीकी मदद भी मुश्किल है। रास्ते भर पेड़ोंकी आड़के सिवा और कहीं कोई आश्रय नहीं है और आँधीमें पेड़ तले रहना भी खतरनाक ही है। इधर शाम होनेमें

भी देर नहीं है और पानी भी जोरोंसे आनेका लक्षण दिखाई दे रहा है।

सतीशसे रहा न गया, वह बरामदेके कोनेसे लाठी उठाकर बाहर निकल पड़ा। रास्तेमें तेज आंधीमे बालूके कण शरीरमे छर्रेसे लगते थे। मार्गमें मिट्टी और बालूके उड़नेसे अन्धकार छा गया था। थोड़ी दूर जाते ही सहसा एक ओर शोर-गुल सुन पड़ा। होलीके दिन छुट्टी पाकर मिर्जापुरी दरबानोंका दल जिस तरह हो-हल्ला करता हुआ निकलता है, यह शोर-गुल उसी तरहका था। मामला क्या है, यह जाननेके लिये सतीश उसी ओर बढ़ा तो सामने ही रास्तेपर उसे एक टमटम दिखाई दी। उसे घेर हुए आठ-दस आदमी तालियाँ पीट-पीटकर प्रसन्न हो रहे थे। किसीके सिरपर टोपी, किसीके सिरपर साफा है— कपड़े भले आदमियों केसे पहने हैं।

यह खुशी कैसी है, जाननेके लिये सतीश जरा और आगे [illegible] तो देखा कि टमटमके पास एक स्त्री कपड़ेमे मुँह छिपाये [illegible] सिकुड़कर पत्थरकी मूरत बनी खडी है और उसे [illegible] समझ कर ये लोग जिन अश्लील शब्दोंका व्यवहार [illegible]र रहे हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। पहले तो सतीशने समझा, कि ये लोग शायद इस स्त्रीको साथ लेकर इधर मौज करने निकले हैं, घोडा भाग जानेसे अब दिल्लगी कर रहे हैं। एक बार उसके जीमें आया, कि इस झंझटमे न पड़कर लौट जाना ही ठीक है; पर न मालूम क्यों किसी तरह आज

वह अपना कौतूहल रोक न सका । ठीक समय उसकी आश्चर्यभरी दृष्टि स्त्री की पोशाकपर पड़ी । सन्ध्या और धूल-धक्कड़के अन्धेरेमें भी उसे मालूम हुआ कि वह बङ्गाली औरतों-की तरह पारसी साड़ी पहने है। पैरोंमें जूते भी हैं, लेकिन लख-नऊकी जूतियाँ नहीं, मेमोंकेसे जोड़े है।

अकस्मात् स्त्रीने जोरसे पुकारकर कहा--"बाबू साहब, मुझे बचाइये।"

"बचाइये' इस शब्दने बिजलीकी तरह काम किया । सतीश उसकी रक्षाके लिये व्यकुल हो उठा । कामिनी काञ्चन सब अनर्थोंकी जड है, यह तत्व वह थोडी देरके लिये भूल-सा गया। शेरकी तरह उछलकर युवतीके पास आ खडा हुआ, बोला—"क्या हुआ है ?"

इतनी देरतक युवती अकेली होनेके कारण इन दुष्टोंके कितने ही अश्लील वाक्य-वाण सुन-सह चुकी थी । अब सहारा पाते ही उसने मुह टंक लिया और बैठकर रोने लगी।

सतीशने उकताकर पूछा—"मामला क्या है, क्या हुआ है ?"

"इन लोगोने मेरा बडा अपमान किया है।'

"अपमान किया है ? ये कौन हैं ?"

"नहीं जानती ?'

"नहीं जानती ?" सतीशने एकदमसे प्रश्नोंकी झड़ीसी लगा दी—"तुम कौन हो ? कहांसे यहां आयी हो ? तुम्हारे साथके आदमी कहां हैं ? गाडी किसकी है?"

स्त्री आखें पोंछकर रुधे स्वरसे बोली—"मेरा साईस घोड़ा पकड़ने गया है। मेरे साथमें और कोई नहीं है। मैं तपोवन देखने गयी थी, वापस आ रही थी वहींसे ये लोग मुझे दिक करते आते हैं।"

सतीशने विगड़कर कहा—"खूब किया। आप क्या मेम साहिबा हैं, जो टमटम पर सवार होकर इतनी दूर सैर करने निकलती है, ? आप क्या अङ्गरेज महिला हैं, कि जहां जी चाहे वेधड़क चली जायेंगी ? हमारे देशके आदमी असहाय भारतीय महिलाको देखते ही उसका अपमान करगे, उसपर अत्याचार करंगे--यही इस देशका नियम है, इसे क्या आपके मां-वाप नहीं जानते ?" कहकर वह उन लोगोंमे जो सबसे बडा था, उसकी ओर जलती हुई आंखोंसे देखकर बोला—"तुम लोग क्यों खड़े हो ?'

वह बोला—"हमारी खुशी !"

उन लागोंकी आंखोंकी ओर देखनेसे जान पडता था, कि भङ्ग पी है या गांजा पिया है अथवा दोनोका ही पूरी त्रा मे सेवन किया है।

सतीशने उंगलीसे सीधा रास्ता दिखाकर थोड़ेमे कहा—"चुपचाप चले जाओ।" जवावमे उस आदमीने मुंह विगाडकर, तमक कर कहा—'चलो, चलो—तुम अपना रास्ता देखो। हम क्यों जायें ?" इसपर सतीशने उसके गालपर कसके एक तमाचा जड़ दिया। हाथ ऐसा भरपूर बैठा, कि वह एकदम जमीनसे

बातें करने लगा। बगलमें ही एक दुबला-सा छोकरा खड़ा था। उसके गालपर बाँयें हाथका थप्पड़ पड़ा और वह टमटमके पहियेके पास आँखें बन्द करके ध्यान करने लगा। बाकी छः व्यक्ति कुछ तो नशेके प्रभावसे और कुछ थप्पडके भयसे हतबुद्धिकी भाँति आँखें फाड़-फाडकर देखते रहे। सतीशने सामनेके आदमीको बुलाकर कहा,—"अब आइये, आपकी बारी है!"

वह बिजलीकी तरह उछलकर सबके पीछे जा खड़ा हुआ।"

सतीशने तब युवतीसे कहा—"उठिये।"

युवती चुपचाप उठ खड़ी हुई। सतीशने कहा—"चूल्हेमें जाये आपका साईस और गाड़ी। पानी आ रहा है— आइये, मेरे साथ। युवतीने डरते-डरते कहा,—"क्या मैं टाउनतक पैदल चल सकूँगी?"

सतीशने कहा "टाउन नहीं, मेरे घर चलिये, इसी बागके अन्दर है। पानी आ रहा है, सोचनेसे काम न चलेगा, जल्दी चलो और नहीं तो तुम खड़ी-खड़ी भीगो, मैं जाता हूं।"

युवतीने कहा—"चलिये न? आपके साथ चलनेमें सोच-विचार क्या है?"

बूँदें शुरू हो गयी थीं आँधी कम हो जानेपर भी बन्द नहीं हुई। दोनों कुछ देर चुपचाप चलकर बागके फाटकके सामने आये। सतीश सहसा ठहरकर बोला—"लेकिन मेरे घरमें कोई स्त्री नहीं है—मैं अकेला रहता हूं।"

युवतीने पूछा—"आपके रसोई-पानी और घर-बारका काम कौन करता है, स्वयं ही?"

"नहीं नौकर है, लेकिन वह स्त्री नहीं।"

'न सही। पर आप ठहर क्यों गये? बढ़ते चलिये। कहिये।"

सतीशने कुंठित होकर कहा—'यही कह रहा हूं कि मेरे यहां कोई स्त्री नहीं है। इस रातमें भीतर जानेके पहले यह बात आपको जता देना उचित है।"

युवतीने कहा—"यदि उचित है, तो वहां क्यों न जताया? अब तो मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता। मेरे हाथ-पैर कांप रहे हैं, प्याससे दम निकल रहा है।'

"आइये-आइये"—कहकर सतीश विवश हो, अन्धेरे बगीचे में मार्ग दिखाता हुआ आगे बढ़ा। इन दुष्टोंके फेरमें पड़कर इस बेचारीको जानपर कितनी मुसीबत आयी होगी, मन-ही-मन यह अनुभवकर सतीश अपने कठोर व्यवहारके लिये कुछ लज्जित हुआ। कुछ देरके बाद उसने धीरे-धीरे कहा—"मालूम होता है, जैसे मैंने कहीं आपकी बातें सुनी है। युवतीने कोई जवाब न था। लेकिन वह समझ गयी कि सतीश अंधेरेमें उसका चेहरा ं देख सका है। बरामदेमें जाकर सतीशकी टूटी आराम-ॉ बैठ गयी और बोली—"साथमें बिहारी तो है न?' और पुकारा—"बिहारी, मेरे लिये एक गिलास पानी तो लाना।"

बिहारी उधरकी कोठरीमें था। पुकार सुनकर जल ले आया। बरामदेमें एक छोटी-सी दिवालगीर जल रही थी। उसकी धीमी रोशनीमें बिहारीने युवतीको देखते ही पहचान लिया, चकित होकर बोला "अरे जीजी, तुम यहां कहां?"

"लम्बी कहानी।" कहकर वह उठकर खड़ी हुई। बिहारीके हाथसे जलका गिलास लेकर एक सांसमे सब पी गयी। गिलास बिहारीको लौटाकर बोली—"भैयाको खबर देनी होगी। बिहारी, पता बता देनेसे इस रातमें तू घर ढूँढ़ ले सकेगा?"

बिहारीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं जीजी, मैं तो इस शहरमे किसीको जानता-पहचानता नहीं। दूसरे, बूढ़ा अदमी हूं, इस आंधी-पानी और अन्धेरेमे रास्ता चलना मुश्किल है।'

"तब क्या होगा बिहारी? घोड़ा अगर भूलता-भटकता कहीं अस्तबलमे जा पहुंचा, तो भैया बड़े चिन्तत होंगे। किसी तरह उन्हें खबर दे देनी चाहिये कि कोई डर नहीं है, मैं सुरक्षित स्थानमे हूं।"

बिहारीने सोचकर कहा—"हां, महाराज इसी तरफका बाशिन्दा है, यहांके सभी स्थानोंसे परिचित है। उसे बुला लाता हूं।' कहकर वह रसोईघरकी ओर चला गया।

सतीशने कहा, "भैयाको एक चिट्ठी लिख दो।"

युवती बोली—"हां, यही सबसे अच्छा है।"

सतीशने कहा—"जरा यह भी लिख दीजियेगा कि बहन मेम साहिबाका आज क्या नतीजा हुआ था? ज्योतिष बाबूको बड़ी खुशी होगी।"

ताना सुनकर सरोजनीको क्रोध आ गया। दैवयोगसे वह आज इस प्रकार गुण्डोंके फेरमे पड़ गयी थी और उसे काफी अपमानित भी होना पड़ा था। इसके लिये उसे स्वयं भी कम

दुःख और क्षोभ नहीं हुआ था; ऊपरसे यह ताना ? जो अपने कियेपर आप ही पछताता हो, उसपर अगर कोई ताना मारता है, तो वह बरदाश्त नहीं होता। उसने रुखाईके साथ जरा तनकर जवाब दिया – भैयाको आप ही क्यों नहीं अपने हाथसे लिख देते, कि तुम्हारी बहनको मैंने अकेला ही बडी आफतसे बचाया है ? और इतनेसे सन्तोष न हो, तो कल सवेरे सारे शहरमें इस बातका ढिढोरा पिटवा दीजिये। जब चारो ओरसे यह बात भैयाके कानोंमें पहुंचेगी, तो वे और भी खुश होंगे।" इतना कहकर वह हस पडी।

उसकी झुँझलाहटका कारण सतीशने साफ समझ लिया, लेकिन वह इन साहबी ढङ्ग-ढरों को बिलकुल नहीं देख सकता था। अंगरेजोंकी नकल करना बहुत खराब है, शराब पीनेकी अपेक्षा मुर्गी खानेमें अधिक पाप हैं, यह उसके मनमें जमा हुआ था, अतएव उसने जवाब दिया—"यह कोई अचरजकी बात —आपके समाजमे सब कुछ सम्भव है।"

सरोजिनी बोली - "तो हमारा समाज क्या कुत्तो-बिल्लियोंका ज है। क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?"

सतीशने कहा - 'आप लोग मनुष्य क्यों नहीं ? बल्कि ५ लोगोकी समझमे आप लोगोंके सिवा बंगालमे और कोई मनुष्य हो नहीं हैं।"

सरोजिनी बोली—"एक हिसाबसे यह बात सच भी है। हम लोगोंमें जो ऐसा समझते हैं, उन्हें मैं दोष नहीं देती।"

सतीश बोला—"यह मैं जानता हूं। इसीलिये आज आपकी सजा और भी ज्यादा होनी चाहिये थी। अगर मैंने वहां आपको पहचान लिया होता, तो चुपचाप चला आता—बात भी न करता।'

सरोजिनीने कहा—"क्या सजा मिलती? अपमान और अत्याचार—यही तो?"

सतीशने कहा "यही।"

सरोजिनी बोली—"यहां, अब मैं समझ गयी, कि आप क्यों यह बात कह रहे थे, कि असहाया स्त्रियोंका अपमान करना ही इस देशके लोगोंका नियम है। मालूम होता है, जो अपमान बाकी रह गया है, वह घर लाकर स्वयं करनेके विचारसे ही आपने यह बात कही थी। जान-पहचान निकल आयी इससे अड़चन पड़ गयी और गुस्सेका कारण भी शायद यही है, क्यों?"

सरोजिनीकी व्यङ्गभरी बातोंसे सतीश क्रुद्ध होकर भी हँस पड़ा। बोला—"बिल्कुल यही बात है। तुम्हारा अपमान नहीं कर पाता इसीसे मुझे इतना क्रोध है। हमारे देशमे कृतज्ञता शब्दका प्रयोग किया जाता है, लेकिन तुम लोगोके इस नये साहबाने समाजमे कृतज्ञता शब्दका प्रयोग करना भी अनावश्यक समझा जाता है।"

सरोजिनीके होठोपर एक दबी हुई हंसी मेघमे छिपी बिजली की तरह खिलकर चली गयी। फिर भी उसने क्रोधके स्वरमे

ही जवाब दिया। लेकिन इस बार उसके कण्ठस्वरमें इतना अधिक बनावटीपन था कि इतने बड़े लापरवाह श्रोताके कानोंने भी उसे पकड़ लिया! बोली—"जी नहीं, ये साहब-मेमें जितनी अकृतज्ञ हैं, उतनी ही पाखंडी भी। जबतक तुम उनके दलमें नहीं मिलते, तबतक उनके उद्धारका कोई उपाय नहीं हो सकता। बोलो, मिलोगे?"

जवाबमें सतीश भी हँसी रोककर कुछ कहना चाहता था, कि ठीक इसी समय बिहारीने हनुमान पाँडेको लाकर हाजिर किया। सरोजिनी अपना हैण्डबैग खोला, पाँच रुपये निकाल, कुर्सीपर रखकर कहा—"पाँडेजी, अभी शहर जाकर यह चिट्ठी दे आ सको तो ये ५) रुपये तुम्हें इनाम मिलेंगे?"—यह कहकर उसने नाम-धाम बतला दिया।

पाँडेजीने दो महीनेकी तनखाहकी ओर लोलुप दृष्टिसे देखा और क्षणभरमें राजी होकर पत्रके लिये हाथ बढ़ाया। उसके ` हुए हाथ पर सरोजिनी रुपये रख दिये और पत्र लिखने े कमरेमें चली गयी। लिखने की मेज सामने ही थी। देरमें पत्र लाकर उसने पाँडेजीके हाथमें रखा। पाँडेजीने न े पत्रको मिर्जईकी जेबमें रखा, बायें हाथमें लालटेन र दाहिनेमें लम्बा मिर्जापुरी सोटा लिया और उसी मूसलधार वर्षामें सबके देखते-देखतेनिकल पड़े।

बिहारीने कहा—"बाबूजी, महराज न मालूम कब लौटें, भोजनका क्या होगा?"

सतीशने सरोजिनीके मुँहकी ओर देखकर बातको दबानेकी गरजसे कहा—"अरे देखा जायगा, वह लौटेगा तब होगा।"

इससे बिहारीकी उद्विग्नता जरा भी कम न हुई। बोला—"क्या होगा, मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता, बाबूजी!"

सतीशने अप्रसन्न होकर कहा—"तुझे फिक्र नहीं करनी पड़ेगी बिहारी, तू जा, मैं सब ठीक कर लूँगा। इसके सिवा आज मुझे भूख भी नहीं है।"

पर बिहारी टस-से-मस न हुआ; क्योंकि उसने सतीशकी बातोंका जरा भी विश्वास न किया। एक तो मामूली आदमियोंसे सतीशकी भूख यों ही ज्यादा थी, दूसरे इतने दिनोंकी नौकरीमें उसने कभी सतीशको खानेसे उदासीन होते नहीं देखा था। थोड़ेमें बोला—"भला यह कैसे होगा बाबू?"

सतीशने कड़कर कहा—"तेरे अन्दर यही सबसे बड़ा दोष है बिहारी! तू सब बातोंमें कानून करने लगता है। कहता हूं, सब ठीक कर लूंगा, लेकिन तू नहीं सुनता, खड़ा-खड़ा मुँहपर सवाल-जवाब कर रहा है।"

डाँट सुनकर बिहारी चुपचाप लौट रहा था, कि सरोजिनीने बुलाकर कहा—"बिहारी, आज मेरे ही कारण तुम लोगोंपर सारी आफत है। क्या भोजनका कुछ इन्तजाम नहीं हुआ है?"

"इन्तजाम क्या होगा जीजी, सब कुछ रखा हुआ है, पर बनायेगा कौन? महराज न मालूम कब लौटेगा?" यह कहकर बिहारी रूठकर चला गया।

सरोजिनी बोली—"मेम साहिबा चाहे जैसी भी हो, है तो ब्राह्मणकी ही कन्या। उसके हाथका खानेसे क्या किसीकी जात जायेगी ?"

सवाल सुनकर सतीश हँसा, बोला—"जात जायेगी या नहीं, सो नहीं कह सकता, लेकिन मेम साहिबाका पकाया भोजन किसीके गलेके नीचे उतर सकेगा या नहीं, सवाल तो यह है।"

"ऊँहु। ऐसी बात नहीं। मेम साहिबाके हाथका खाकर आप जन्मभर भूल न सकेंगे।" कहकर सरोजिनी अपनी हँसी और एसेन्सकी गन्धसे सारे दालानको सुवासितकर बड़ी तेजी-के साथ उठकर अन्दर चली गयी। पाँच-छः मिनट बाद जब वह बाहर आयी तब उसकी ओर देखकर सतीश क्षणभरके लिये मुग्ध हो रहा।

जूते और मोजोंसे पैर खाली थे, रेशमी कपड़ोंकी जगह सिर्फ कमीजपर सतीशकी एक सीधी-सादी लाल किनारीदार धोती थी। देखकर सतीशके दोनों नेत्र शीतल हो गये, बोल उठा—"अहा ! कैसी अच्छी लगती हो, मानों साक्षात् लक्ष्मी हो।"

बात सुनकर सरोजिनीका रोम-रोम आनन्दसे भर गया। कानों द्वारा इतनी मधुरता भी भीतर जा सकती है, जीवनमें कभी उसने यह अनुभव न किया था। लेकिन लज्जाके मारे सिर झुकाकर सिर्फ बोली—"चत्त।"

दो ही अक्षरोंका शब्द था; लेकिन अपने ही मुखसे निकले हुए इन दो अक्षरोंके उसके कानोंमें मानो अमृत बरसा दिया।

केवल सतीश ही नहीं, उसके भी कण्ठस्वरमें इतना माधुर्य भरा हुआ है, यह आज ही उसने पहले पहल अनुभव किया।

लेकिन लज्जाको उसने उसी घड़ी, जिस किसी तरह दबा डाला। पढ़ी-लिखी लड़की थी, परिचित और अपरिचित पुरुषके साथ निस्संकोच भावसे बातचीत करनेका उसे अच्छी तरह अभ्यास था। वह जानती थी, कि लज्जाको मुँह लगानेसे ही वह सिर चढ़ जाती है। इसीसे जबरदस्ती सिर उठाकर हँसती हुई बोली—"अच्छा, तारीफ पीछे होगी । जरा पहले चलकर यह बतलाओ कि तुम्हारा चौका-चुल्हा किस ओर है ?" कहकर वह स्वयं आगे बढ़ी।

२८

खा पीकर जब छुट्टी मिली, तब बरामदेमें दोनों दो कुर्सियोंपर आमने-सामने बैठ गये। इसी बीचमे "तुम" और "आप"का संग्राम समाप्त होकर 'तुमने, सिंहासनपर अधिकार जमा लिया था।

सरोजिनी बोली—"एक बात हम लोगोंमें किसीको न सूझी। हम पहलेसे यह कहना ही भूल गये कि यदि उसको मेरा घर न मिले, तो वह खुद ही एक गाड़ी भाड़ा कर लेता आवे। अगर गाड़ी न आयी, तब क्या होगा, सतीश बाबू ?"

सतीशने कहा—"इतनी रातको कोई गाड़ीवाला इतनी दूर आना न चाहेगा या तो तुम्हें यहीं रात बितानी पड़ेगी या पैदल जाना पड़ेगा। इसके सिवा तीसरा मार्ग नहीं है।"

"मैं पैदल जा सकती हूं, लेकिन सिर्फ तुम्हारे साथ और किसीके नहीं।"

इसके माने ? मेरे साथ जानेसे क्या विपत्तिकी संभावना नहीं है ?"

"है क्यों नहीं ? लेकिन उसका सब भार तुमपर है ! उसकी जवाबदेही तुम्हींको करनी पड़ेगी, मुझे नहीं।"

सतीशने चकित होकर कहा—"मुझे जवाबदेही करनी पड़ेगी ?—मेरा कुसूर ?"

"और किसीके सामने चाहे न करो, अपने सामने तो करनी ही पड़ेगी।" यह कहकर सरोजिनी एकाएक सन्नाटेमें आकर रुक गयी।

सतीशने फिर उसका प्रतिवादन किया, लेकिन साफ-साफ अनुभव किया कि दोनोंकी क्षणिक नीरवताके भीतरसे लज्जाकी झोंकीली हवा वह गयी। उस झोंकेने अकस्मात् सरो- ढकेल सा दिया।

"कौन आ रहा है ?" कहकर वह कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी और कुछ देरतक बरामदेकी रेलिंगके सहारे अन्धेरे बागकी र देखती खड़ी रही।

क्षणभर बाद जब वह अपने आप मृदु कण्ठसे "कोई तो नहीं है" कहती हुई अपनी जगहपर लौट आयी और एक बार फिर पोशाक दुरुस्तकर अच्छी तरह संभल कर बैठी, तब सतीश कुछ बोल न सका।

इसके बाद दोनों चुपचाप बैठे रहे । आँधी रुक गयी थी, लेकिन वर्षा बन्द न हुई थी। सिरपर अन्धेरा आकाश था और नीचे चारों ओर आम, कटहलके बागमें वह अन्धकार दसगुना गहरा हो गया था। उसी घोर अन्धकारके एकान्त स्थानमें, लालटेनकी धीमी रोशनीके बीच बरामदेपर ये दो तरुण स्त्री-पुरुष आमने-सामने बैठकर भी बातोंके अभावसे जब चुप हो रहे, तब एक अन्धे देवता आड़मे रहकर निश्चय ही होंठ दबाकर मुस्कुराने लगे। उस दबी हुई मुस्कुराहटकी झलक काले बादलोंकी आड़में रह-रहकर थिरकने लगी।

बाहरी प्रकृति अपने आकाश, वायु, प्रकाश और अन्धकार की लीलाओंसे मनुष्यके मानसिक भाव और हृदयकी वृत्तियोंको किस तरह खींच ले सकती है, सतीशने कुछ समय पहले एक दिन रातको इसका परिचय पाया था। उस दिन बिहारीकी जुबानी सावित्रीके विपिनके साथ घर छोड़ जानेका समाचार पाकर उसने सोचा था, कि उसके भविष्यकी सारी सुख-शान्ति दुःख सागरमे डूब गयी और वह पागलसा होकर अकेला भागा। और किलेके निर्जन—नीरव मैदानमे जाकर चुपचाप लेट गया। उस समय, ऐसे ही काले आकाश और उसके अन्धकारने अपने शीतल करस्पर्शसे सतीशकी सारी विद्वेप-ज्वाला शान्त कर उसे सावित्रीको क्षमा करनेका उपदेश दिया था और आजकी यह उद्दण्ड उच्छृंखल बाहरी प्रकृति सतीशके नैराश्य-पीड़ित चित्तको एकदम दूसरे ही एक मार्गमें प्रबल वेगसे ढकेलने लगी।

सरोजिनीने पूछा—"तुम्हारे इस वनवासका अर्थ क्या है ?"

सतीशने कहा—"कोई-न-कोई अर्थ जरूर है।"

"सो तो है, लेकिन विना किसीसे कुछ कहे-सुने भाग क्यों आये ?"

"भागनेकी खबर तुम्हें किसने दी ?"

सरोजिनीने जरा हंसकर कहा—"यह आविष्कार मैंने स्वयं ही किया है।" तुम जिस दिन सवेरे चले आये, मैं स्वयं उस दिन तुम्हारे घर गयी थी। सतीशने विस्मित और पुलकित होकर कहा--"समझ गया। उपेन्द्र भैया मुझे खोजने गये थे; तुम भी उनके साथ थी। मैं.जानता था कि वे जायंगे, लेकिन मुझे न पाकर वे क्या बोले!"

सरोजिनीने कहा—"हां, कुछ बोले तो थे, लेकिन मैंने सुना नहीं। कारण, वे स्वयं वहां नहीं गये थे, मेरी ही मार्फत एक चिट्ठी भेज दी थी।"

सतीशने पूछा--"फिर!"

सरोजिनी बोली--'मैंने जाकर सुना, कि तुम नहीं हो, सवेरे ही गाड़ीसे चले गये हो। मैंने तुम्हारे रसोइयेको बुला, दर ज खुलवाया और तमाम मकानको घूम-घूमकर देखा। बाहरके बरामदेमें उस समय भी एक साड़ी सूख रही थी, पूछनेपर मालूम हुआ, कि यह कपड़ा किसी स्त्रीका है वे बीमार हैं, तुम उन्हें ही लेकर पश्चिम चले गये हो। अच्छा, वे कौन हैं! यहां तो वे नहीं दिखाई देतीं।"

सतीशका चेहरा उदास पड़ गया, कुछ देर चुप रहकर वह बोला—"उस रसोइयेने तुमसे कहा, कि मैं उन्हें लेकर पश्चिम गया हूं? बदमाश, झूठा, पाजी कहींका और उपेन्द्र भैयाने इस-पर विश्वास कर लिया?"

सतीशका चेहरा देख और कण्ठस्वर सुनकर सरोजिनी अचम्भेमें आ गयी। बोली—"उपेन्द्र बाबू तो उस समय नहीं थे, और यदि वे सुनते तो विश्वास ही क्यों न करते? अच्छा, सतीश बाबू, वह तुम्हारी कौन है?"

सतीशने रुखाईसे कहा-"मेरी कौन होगी? कोई नहीं, हमारे पुराने मेसमें मजदूरिन थी। शैतान-बदमाशकी बच्ची! बीमारीसे मर रही थी। भीख मांगने आयी थी। मैं उसे लेकर पश्चिम चला आया हूं? हरामीका बच्चा, मेरे सामने यह बात कहता तो ?"

सरोजिनीके विस्मयकी सीमा न रही। कुछ क्षण चुप रह सतीशके मुहकी ओर देखकर मृदुतासे बोली—"मजदूरिन! तो आप यों जामेसे बाहर क्यों होते हैं?" उसके मुखका यह 'आप' सम्बोधन सतीशके कानोंमें खटका। लेकिन इससे उसके क्रोधकी मात्रा जरा भी कम न हुई। बोला—"झूठा कलंक लगानेसे किसे गुस्सा नहीं आता?"

"वे रातमें बेहोश हो गयी थीं?"

सतीशने पूर्ववत् रुखाईके साथ कहा—"हां, हो गयी थी। लेकिन, इससे क्या? उसके बेहोश होनेमें मेरा क्या अपराध है?

और तुम्हीं उसके सम्बन्धमें ऐसे सन्मानसे बातें क्यों कर रही हो ? घरके नौकर-नौकरानियोंको तुम लोग क्या 'आप', 'जी हजूर' कहकर पुकारती हो ?"

सरोजिनीने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रही। अबतक उसके हृदयमें जो आनन्दका चाँद निकला था, न मालूम कहाँसे काले बादलोंने आकर उसे ढँक लिया। एक बार उसके मनमें यह प्रश्न पूछनेकी इच्छा हुई कि क्यों उस रातको उपेन्द्र उसके घरमें सशोक जाकर भी तत्काल लौट गये थे, लेकिन उसने पूछा नहीं। उसने मन-ही-मन एक तरहसे समझ लिया था, कि इसमें कोई रहस्य है, जिसे उपेन्द्र स्वयं भी प्रकाशित न कर सके और सतीश भी न कर सकेगा।

किन्तु यह क्षुब्ध नीरवता मानो दोनोंको पीड़ित करने लगी और चुप न रह सकनेके कारण धीरे-धीरे पूछा—"अच्छा, आपसे एक बात पूछ सकती हूं ?"

सतीशने जरा रुखाईके साथ कहा—"फिर वही आप ?"

"आप इतने दिनों हम लोगोंके इतने पास रहकर भी कभी ... क्यों नहीं ?"

सतीशके पास इसका कोई उचित उत्तर न था। बोला—"कई कारणोंसे समय नहीं मिला।"

"कारण क्या थे ? पढ़ना-लिखना ?"

"नहीं, पढ़ाई-लिखाई तो मेरी नाम मात्रकी है। वह कभी मेरे कहीं जानेमें बाधक नहीं होती।"

"फिर ?"

सतीशने जरा हँसनेकी चेष्टा करके कहा—"देखो, तुमसे सच्ची बात कहता हूं। यह नहीं, कि कभी तुम लोगोंकी बात मनमें न आयी हो, लेकिन हम लोगोंका जैसा समाज है, जैसी शिक्षा-दीक्षा है, उससे तुम लोगोंकी मण्डलीमें जानेमें स्वभावतः रुकावट-सी मालूम होती है। शायद इसीलिये नहीं जा सका !"

सरोजिनी बोली—"शायद और लेकिन क्या ? क्या मैं सुन सकती हूं कि आप लोगोंकी शिक्षा-दीक्षा कैसी है ? जान पड़ता है, उपेन्द्र बाबूके समाजके साथ उस समाजका मेल नहीं है, क्योंकि उन्हें तो हमसे मिलने-जुलनेमें कोई रुकावट नहीं होती ? यह कहकर सरोजिनी जरा हँसी। सतीशके मेसकी उस अज्ञात स्त्रीका प्रसङ्ग उठनेके बादसे ही उसके भीतर-ही-भीतर एक ज्वाला धधक रही थी। इस बनावटी कैफियतसे वह ईर्ष्याकी जलन जरा और ज्यादा हो गयी। सतीशको छिपे प्रेमकी दृष्टिसे न देखती तो इसकी सारी लुकाछिपी शायद उसके सामने छिपी ही रहती, लेकिन प्रणयकी अन्तर्दृष्टिको इतने सहजसे धोखा न दिया जा सका। मामलेकी तह तक न पहुंचनेपर भी उसके हृदयने किसी तरह मानो असल बातको समझ लिया। सतीशने व्यथित होकर, विस्मित होकर सरोजिनीकी ओर देखा। उसके कण्ठमें कलहकी जो दबी हुई ध्वनि थी उसने सतीशके कानोंमें तीखेपनसे बचकर सावित्रीकी याद करा दी। लेकिन इसी दोषसे सरोजिनीका प्रेम उसपर जम

जा सकता है, यह सम्भावना सतीशके मनमें स्वप्नमें भी कभी आयी नहीं थी। इसलिये अपनी इस प्रश्नोत्तर-मालाका सच्चा कारण वह सत्यके आलोकमें न देख सका। इसे उच्च शिक्षिता रमणीका स्पर्धासे पूर्ण व्यवहार समझकर वह स्वयं भी मन-ही-मन जल उठा और वैसा ही जवाब दिया—"उपेन्द्र भैया समाज और शिक्षासे भली-भाँति परिचित हैं और इसलिये वे शायद आपलोगोंसे मिल-जुल भी सकते हैं; लेकिन कोई यदि इसमें असमर्थ हो तो मिल-जुल न सकनेका कारण बतानेके लिये वह बाध्य नहीं हो सकता। जो हो, मुझे माफ कीजिये, इन आलोचनाओंका कोई नतीजा नहीं।"

सरोजिनी उसकी बातें सुन, सन्नाटेमें आकर चुपचाप उसकी ओर देखती रही। उसके अभिमानको सतीश इस रूखेपनके साथ पैरोंसे ठुकरा सकता है, उसके हार्दिक भावोंका यों ...न कर सकता है, यह आशङ्का उसकी कल्पनामें भी न ...ा सकी थी। उसका चेहरा उदास पड़ गया। वह स्थिर नेत्रोंसे ...प देखती रही। एक भी बात उसके मुँहसे न निकली। ...श भी चुपचाप मुँह लटकाये बैठा रहा।

इस दुस्सह नीरवताको भंग कर दूरमें गाड़ीका शब्द सुनाई दिया। सरोजिनी उठी और फिर रेलिंगके सहारे जा खड़ी हुई। मृदु कण्ठसे बोली—"जान पड़ता है, भैया आ रहे हैं।"

दस ही मिनट बाद गाड़ी आकर फाटकके सामने खड़ी हुई और ज्योतिष बाबूने जोरसे सतीशको पुकारते हुए गेरानी

और आदमियोंको साथ लिये बागमें प्रवेश किया और पाँच मिनट बाद ही उन्होंने बरामदेमें पहुंचकर अपनी बहनको बड़े स्नेहके साथ हृदयसे लगा लिया।

ज्योतिषने सभ्यताके नियमानुसार सतीशके साथ तरह-तरहकी समयानुकूल बातें कीं, उसे बहुत धन्यवाद दिये, कृतज्ञता प्रकट की और यह सब समाप्त कर आध घण्टे बाद जब बहनको लेकर चलनेकी तैयारी की तब सतीशने सरोजिनीसे पूछा—"मैं आपसे एक बात पूछना भूल गया। उपेन्द्र भैयाके हारान बाबू नामक एक मित्र थे, क्या आपको मालूम है कि उनका क्या हुआ?"

ज्योतिषने आश्चर्य प्रकट करते हुए उसका जवाब दिया—"आपने नहीं सुना? उनका तो देहान्त हो गया।"

यह समाचार सुनकर सतीश कुछ क्षण चुप खड़ा रहा, फिर बोला—"उनकी माँ और स्त्री कहाँ है मालूम है?"

सरोजिनीने कहा—"वे अपने घरमें ही हैं। तै हुआ है कि दिवाकर बाबू उन्हींके यहाँ रहकर कालेजमें पढ़ेंगे—वे ही उनकी देख-भाल करेंगे।"

ज्योतिषने एकाएक बहनसे पूछा—"हारान बाबूकी स्त्री एक दिन अपने यहाँ आयी थी न?"

सरोजिनी बोली—"हाँ, बहुत देर तक थीं, बहुत बातें की थीं।"

किरणमयीने अपने सम्बन्धमें क्या बातें कहीं, स्वामीके शोकको उसने किस भावसे ग्रहण किया, इत्यादि बातें जाननेके

लिये सतीशने सरोजिनीकी ओर उत्सुकतासे देखा; क्योंकि उसे जरा भी संशय न था कि उसके सम्बन्धमें कितनी ही आलोचनाएँ हुई होंगी। लेकिन उस धीमी रोशनीमें या तो सरोजिनीने उसके मुखका भाव समझा ही नहीं अथवा समझकर भी सतीशका कुतूहल दूर करनेकी कोई जरूरत न समझी। उसने अपने भाईको आगे बढ़नेके लिये हाथसे जरा ठेलकर मृदु-कण्ठसे कहा—"भैया, अब देर न करो, चलो।"

"हाँ, बहन चलो।" कहकर और सतीशको नमस्कार कर ज्योतिष कहा—"सतीश बाबू, एक बार और असंख्य धन्यवाद! कल-परसों तक एक दिन इस नाचीजकी कुटियाको जरूर पवित्र कीजिये।"

सतीशने बदलेका नमस्कार करके अव्यक्त स्वरमें जो कुछ कहा, वह किसीकी समझमें न आया। सरोजिनी सतीशकी ओर मुँह करके उसे साधारण रूपसे नमस्कार कर चली गयी।

उसी सीढ़ीपर खड़े-खड़े इस बार सतीशकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। इसकी ठीक-ठीक वजह तो वह न समझ सका लेकिन किसी तरह मानो कोई अनिर्दिष्ट अनुभूति उसे बार-बार जताने लगी कि उसकी सावित्री, उसकी भाभी, उसके उपेन्द्र भैया सभी मानों एक समयमें बहुत दिनोंके लिये उसे बहुत दूर छोड़ बैठे। इस निःशब्द, निर्जन, अन्धकार कुटीके सिवा उसके जाने और खड़े होनेका स्थान संसारमें मानो और कहीं है ही नहीं।

२६

दो महीने पहले हारानकी मृत्युके समय दिवाकर सिर्फ दो-चार दिनके लिये कलकत्तेमें रहकर लौट जानेको मजबूर हुआ था। इस बार किरणमयीकी देख-भालमें रहकर कलकत्तेके कालेजमें बी० ए० में पढ़ना निश्चित होनेपर वह अपने लिये खरीदी गयी नयी पेटीमे किताबें तथा वस्त्रादि आवश्यक वस्तुएँ भरकर हारान बाबूके पथरिया घट्टेके मकानमें एक दिन सन्ध्या समय आ उपस्थित हुआ।

किरणमयीने उसे अपने प्यारे छोटे भाईकी ही भाँति स्नेह सहित ग्रहण किया।

मामाके घर सुरबालाके सिवा दिवाकरको प्यार करनेवाला और कोई न था। पर उस प्यारसे दिवाकरको जो सुख-शान्ति मिलती थी, उसे मय व्याजके वसूल कर लेती थी। माहेश्वरीकी तीखी दृष्टि, जो शनिकी दृष्टिकी भाँति समय-समयपर उसके बदनका लहू तक मानो सोख लेती थी। लेकिन यहां वैसी कोई बात न थी और न उसकी आशङ्का ही थी।

लापरवाहीसे रखा हुआ गमलेका पेड सहसा मुक्त पृथ्वीका आश्रय पाकर अपरिचित रसके स्वादसे अपनी भूखी जड़ोंको जिस प्रकार मिट्टीमें चारों ओर फैला देता है, किरणमयीके आश्रयमें दिवाकरकी भी ठीक वही दशा हुई।

पर कलकत्ता महानगरीकी विस्तीर्ण और विचित्र आबोहवामे

पढ़कर देखते-देखते उसकी संकुचित आशा और संकीर्णताका भविष्य फैल गया। उसके मनमें बड़प्पन आ गया। बी० ए० फेल करनेके साथ ही विद्याभ्यासका जो उसका पुराना तार था, वह टूट चुका था और नया तार जोड़नेमें अभी देर थी। इसी मधुर अवकाशके समयमें वह निरन्तर सर्वत्र घूम-घूमकर रस संचय करने लगा।

थियेटर देखकर उसने मानों स्वप्न देखा। चिड़ियाखाना देखकर चौंककर मूक हो रहा। जादूघर देखकर सन्नाटेमें आ गया। शिवपुरकी कृषि-वाटिका देखकर उसने निबन्ध लिखा। ऊँची अटारियों और प्रासादोंकी ओर भौंचक्का होकर देखता रहा। अन्तमें एक दिन गाडीके नीचे दबनेके डरसे भागते समय पैरमें मोच आ जानेके कारण घर आकर पड़ रहा। चोट बहुत मामूली थी। किरणमयी चटपट हल्दी-चूना गरम कर लायी और लेप करते-करते हँसकर बोली—"कहाँ दब रहे थे? गाडी थी या बैल-गाड़ी?"

दिवाकरने सकुचाकर कहा—"घोड़ा-गाडी।"

किरणमयी बोली—'गनीमत! कहीं बैल-गाडी या भैंसा-गाड़ीके नीचे आते, तो लँगडाते-लँगड़ाते थानेमें जुर्माना भी देने जाना पड़ता।"

दिवाकरने लज्जित मुखसे कहा—"चोट वैसी नहीं लगी है, सवेरे तक पैर ठीक हो जायेगा।"

किरणमयी बोली—"ठीक तो हो जायेगा। लेकिन अब

ज्यादा दूर न जाना। सुना है, कलकत्तेमें एक ऐसा दल आया है, जो लड़कोंको पकड़ ले जाता है।"

यों ही दिन कट रहे थे। अघोरमयी कितने ही तीर्थस्थानों-से घूमकर एक दिन घर लौट आयी इसके पहले उसने दो एक दिनके लिये दिवाकरको देखा था, तब उसका हृदय पुत्रशोकमें ऐसा डूबा हुआ था, कि उसने इसके चेहरेपर दृष्टि भी न डाली थी। आज इस बिना दाढ़ी-मूँछके सुगठित शरीरवाले सुन्दर नवयुवककी ओर देखते ही उसके मातृप्राण स्नेहसे पिघल गये। बोली—"दिवू, मैं रिश्तेमे तुम्हारी मौसी होती हूं, मुझे मौसी कहा करो।"

इसके भी माँ-बाप नहीं हैं, यह सुनकर वृद्धाकी दोनों आँखें छल-छला आयीं, आँचलसे दो बड़ी-बड़ी बूँदें उसने पोंछी, बोली—"भगवानने हारानको उठाकर भी यदि इस अभागिनको संसार मे रखा है, तो जितने दिन जीऊँ उतने दिन बेटा तू मुझे छोड़ कर कहीं न जाना।" इतना कहकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए वृद्धाने स्नेह प्रकट किया।

उसकी मीठी बातें सुन और उसकी आँखोंमे जल देख, दिवाकरकी भी आँखें भर आयीं, पर उसे छिपाकर वह सामनेसे हट गया। इन थोड़े ही दिनोंमे दिवाकरके प्रति उसका अपत्य-स्नेह जादूगरके माया-वृक्षकी भाँति डाल-पात फैलाने लगा। डर तो यह था, कि यह पुत्रहीना जननी कुछ दिनतक प्रवासमें रहनेके बाद घर लौटकर सम्पूर्ण अन्तःकरणसे पुत्रका

अभाव इसके द्वारा पूरा कर लेना चाहती थी। इसी घरमें कई महीने पहले जब उसका अपना बेटा चल बसा था, तब उस सर्वग्रासी निष्ठुर शोकने ही उसके मातृत्वका संरक्षणकर किसी तरह उसे जीवित रखा था, इस समय वह शोक अपेक्षाकृत शान्त हो गया था। इससे उसका मातृहृदय सन्तानाभावसे एक शून्यताका अनुभव कर एकदम टूटा जा रहा था। उसने उस सूने सिंहासनपर दिवाकरको बड़े समारोहसे अभिषिक्त कर लिया।

इस अपत्य-स्नेहकी भूखी वृद्धा और किरणमयीकी जैसी चतुरा, कर्त्तव्यपरायण भाभीके साथ रहकर इस घरमें दिवाकरके आदर और यत्नकी सीमा न रही।

यहाँ दिवाकरको भूख न होनेपर कैफियत देनी पडती है, जरा-सी तबीयत खराब होनेपर जवाबदेही करनी पड़ती है। स्नेहके इन गूढ़ रहस्योंको इस बीस वर्षके जीवनमें उसने कभी नुभव नहीं किया था। जीवनके इस आकस्मिक परिवर्त्तनके ने पहले-पहल उसे किसी-किसी बातमें रुकावटसी जान ड़ती थी। चिराभ्यास अनधिकारका संकोच एकदमसे दूर ो होना चाहता था, फिर भी उसका संकुचित मन इन दोनों नारियोंके अपरिचित स्नेहमें यथेष्ट फैल गया। आखिर कब उसकी बड़े कष्टसे हासिल की हुई दुःख सहनेवाली आदतें पेड़के तनेपरकी सूखी छालोंकी भाँति उसके शरीरसे छूट गयीं, इसे वह जान भी न सका।

नहीं है, चाहे वह कुछ हो। दर्पणमें मनुष्यका जो प्रतिविम्ब पड़ता है, यह प्रतिविम्ब आदमी नहीं है, यह कहनेकी जरूरत नहीं। प्रतिविम्बको मनुष्य समझकर पकडनेकी चेष्टा करना भूल है, लेकिन रूप तो उस प्रकार किसी वस्तुका प्रतिविम्ब नहीं है। सांपको रस्सी समझकर पकड़नेकी चेष्टा करना भूल है, मरीचिकाको पानी समझ उस ओर दौड़कर जाना भी भूल है, किन्तु रूप तो ऐसी भ्रमात्मक वस्तु नहीं है। रूपके पीछे तो मनुष्य सिर्फ रूपकी तृष्णासे ही दौड़ा फिरता है।"

किरणमयी—"बाबू तुमने जो अभी दर्पणमें प्रतिविम्ब देखनेका दृष्टान्त दिया है, वह बहुत ठीक दिया है। जिस दिन समझोगे कि रूप भी मनुष्यका प्रतिविम्ब है—मनुष्य नहीं—उसी दिन वास्तविक प्रेमका पता पा सकोगे। खैर, अभी इसे जाने दो, मैं पूछती हूं, रूपके ही पीछे मनुष्य क्यों दौड़ा फिरता है?'

"यह मैं नहीं जानता। भ्रमर-सी गुणवती स्त्रीको छोड़कर गोविन्दलाल क्यों रोहिणीके पीछे दौड़ गया था? यह मुझे बड़ा ही आश्चर्यजनक मालूम होता है।"

'लेकिन इसका नतीजा क्या निकला?'

"चाहे जो निकले, उसकी विवेचना करनेका भार मनुष्यके [illegible] नहीं है' रोहिणी रूपवती थी, पर उसमें गुण न था। [illegible] रूप रहनेपर गोविन्दलालकी क्या दशा होती, यह [illegible] सकता।'

किरणमयी चुप हो रही। बी० ए० फेल किये हुए इस नवयुवक पर उसकी श्रद्धा न थी। सिर्फ फेल कर जानेके ही कारण नहीं, पास करनेपर भी वह शायद समझती कि ये लोग किताब रटकर पास ही कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते, किन्तु आवश्यकता पडनेपर इनका शिक्षित मन तर्क भी कर सकता है, ऐसी धारणा उसके मनमे न थी। वह बोली—"रूप प्रतिबिम्ब नहीं है। इस बात को इतने निस्संशय भावसे स्थिर कर रखना ठीक नहीं। अच्छा, यह तो बताओ, यह सब बात तुमने स्वयं सोची है या किसीकी सोची हुई बात सुनकर कह रहे हो।"

दिवाकरने जरा हसकर कहा—'भाभी, यह मेरी अपनी सोची हुई बात है। भगवान्ने मुझे बचपनसे ही अनेक बातें सोचनेका सुयोग दिया था।"

किरणमयीने कुछ क्षण चुप रहकर कहा—"फिर भी इस [illegible] रूपके तत्वका पता लगानेका लाभ न उठा सके। [illegible] तो यह है कि सतीश बाबूने भी एक दिन मुझसे यही [illegible] पूछी थी, और भी एक व्यक्तिने पूछी थी और आज तुम भी यही पूछ रहे हो। मुझे सन्देह होता है कि कहीं मेरा रूप देखकर ही तो तुम लोगोंके मनमे यह प्रश्न नहीं उठता है?"

दिवाकर एकाएक चौंक उठा। लज्जासे उसका सिर झुक गया। उसने मुंह नीचा कर कहा—"मुझे माफ करो भाभी मैं यह सब नहीं जानता।"

किरणमयी हसती हुई बोली—"एक दो बार नहीं लालाजी लो तुम्हें सौ बार माफ करती हूं।" कह और क्षणभर चुप रह कर मानो उसने अपने मनमें पैदा होनेवाली दुविधाको जोरसे ढकेलकर निकाल दिया और अपनी परम सुन्दर गर्दन जरा ऊंची कर कोमल, मधुर स्वरमें कहने लगी—"सुनो बाबू, आज तुमने जितनी बातें मुझसे पूछी हैं, उनका यदि सच-सच उत्तर देती चलूं, तो मेरी सभी बातें दम्भ-पूर्ण मालूम होंगी। पर उसे भूल जाना पड़ेगा। नहीं तो अपनी भूलसे मेरी बातोंको गलत समझ सभी बनी-बनायी बातोंको बिगाड़ दोगे। मेरी बात समझमें आती है न ?"

दिवाकरने सिर हिलाकर बताया—"हां।"

किरणमयी फिर कहने लगी—"मेरा यह रूप केवल मर्दोंकी आंखोंमें ही नहीं, मेरी अपनी आंखोंमें भी आश्चर्य पैदा करता है। इसीसे इसकी बात मैंने बहुत सोची है। जो कुछ मैंने सोचा-समझा है, वह सही हो या न हो, वह चाहे जो हो, मैंने अपनी इस भावनाको जब एक देवरसे कहनेमें संकोच नहीं किया, तब तुमसे कहनेमें ही क्यों लजाऊं। मैं अपने स्वरूपको देखकर क्या समझती हूं, जानते हो। यही समझती हूं, कि सन्तान धारण करनेके लिये जो सब लक्षण विशेष उपयोगी हैं उनकी समष्टि-[illegible] हैं। संसारके सभी साहित्योंमें, [illegible] इसने इसका वर्णन है।'

दिवाकर चुपचाप किरणमयीकी ओर ताकता रहा। किरण-

मयी उसके गम्भीर चेहरेपर नये यौवनकी अभी हालमें जगी क्षुधाकी एक मूर्तिका अनुभवकर कुछ देरके लिये संकोच सहित एकाएक रुक गयी। फिर शीघ्र ही अपनेको संभालकर बोली—"सुनो बाबू, सच कहती हूं, इसी जगह पहुचकर मानो रूपका एक किनारा देख पड़ता है यही कारण है, कि स्त्रीका बाल्य-रूप मनुष्यको मुग्ध कर सकने पर भी उसे उन्मत्त नहीं कर सकता और जब वह सन्तान धारण करनेकी उम्र पार कर जाती है, तब फिर ठीक वही बात रह जाती है। खूब सोचकर देखो, सिर्फ स्त्रीकी ही नहीं, पुरुषकी भी यही अवस्था है। तभीतक उसमें रूप रहता है, जबतक वह सन्तान पैदा कर सकता है। यह सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता ही उसका रूप है--यौवन है। सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा उसका प्रेम है।"

दिवाकर ने दबी जबानसे कहा- 'लेकिन ..."

किरणमयी उसे रोककर बोल उठी—'नहीं लेकिनकी गुंजा-इसमें नहीं है। इस चराचर विश्वकी ओर जिधर चाहो ।ँ उठाकर देखो, यही एक बात देखनेमें आयेगी। सृष्टितत्व-की मूल कहानी तुम अपने सृष्टिकर्त्ता के लिये ही रहने दो। उसके कार्यकी ओर एक बार नजर उठाकर देखो, देखोगे कि इसका प्रत्येक अणु-परमाणु निरन्तर अपनको नये रूपोंमें परि-णत करना चाहता है। किस तरह वह अपनेको नियमित करेगा, किसके साथ मिलने और क्या करनेसे वह और भी सबल और भी उन्नत होगा, यही उसका अविराम अक्लान्त

उत्तम है। दृश्य हो चाहे अदृश्य, भीतर हो चाहे वाहर, सर्वत्र प्रकृतिका नित्य परिवर्त्तन होता है। इसीलिये स्त्रीमें जब पुरुष ऐसा कुछ देख पाता है तव उसे पानेकी तृष्णाको वह किसी प्रकार दवा नहीं सकता। ज्ञानसे हो, चाहे अज्ञानसे, जहाँ वह अपनेको और भी सुन्दर और सार्थक वना सकेगा, वहाँ उस लोभको किसी तरह रोक न सकेगा।"

दिवाकरने धीरे-धीरे कहा—"ऐसा होनेसे तो चारों ओर मार-काट मची रहती।"

किरणमयीने कहा—"कभी-कभी वह दृश्य भी देखनेमें आता है, किन्तु मनुष्यमें लोभ दवानेकी शक्ति, स्वार्थ त्याग करनेकी शक्ति, समाज-शासनकी शक्ति आदि कितनी ही विरोधी शक्तियाँ मौजूद हैं, जिनके कारण चारों ओर एक साथ आग लगने नहीं पाती और इसी सामाजिक मनुष्यका एक ऐसा दिन था, जब कि वह प्रवृत्तिको छोड़ और किसीका शासन नहीं मानता था—रूपका आकर्षण ही उसकी दुर्दमनीय प्रवृत्तिका परिचायक था। उसका प्रेम 'ऐसे गूंगे मत वनो वावू, इसको अच्छी पोशाकमें सजानेसे, सिंगार-वनाव करनेसे रूपलालसका निर्दोष प्रेम वन जाता है।"

दिवाकरने जरा रुककर कहा—"कहाँ पाशविक प्रवृत्तिका प्रेरणा और कहाँ स्वर्गीय प्रेमका आकर्षण? जो लोग पाशविक प्रवृत्तिसे भरे हुए हैं, वे निर्मल पवित्र प्रेमकी मर्यादा क्या समझेंगे? तुम किसके साथ किसकी तुलना कर रही हो भाभी?"

'तुलना तो नहीं करती बाबू दोनों एक ही चीज है, सिर्फ यही बता रही हूं। इंजनको जो यन्त्र सामने खींचकर ले जा सकते हैं वे ही उसे पीछेकी ओर ढकेल भी सकते हैं, यह काम दूसरा नहीं कर सकता। जो प्रेम कर सकता है, उसे अच्छा कहो या बुरा, वहीं कर सकता है, दूसरा नहीं। तुमने गोविन्द-लालकी बात कही थी न? उसके जिस हृदयने भ्रमरको चाहा था, ठीक वही हृदय उसको रोहिणीकी ओर भी बुरी तरहसे खींच ले गया था। यह बुरा प्रेम भी हरलालसे होना सम्भव न था। उसने संसारके भले-बुरे, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सुविधा-असुविधा आदि सभी बातोंको सोचकर अपने मनको दबा रखा था, लेकिन गोविन्दलाल उसे दबाकर न रख सका। यद्यपि हरलाल गोविन्दलालसे अच्छा न था, तथापि उसने जिसे घृणासे परित्याग कर दिया था, दूसरेने उसीको सिर-आंखोंपर चढ़ा लिया। किसीको सिर चढ़ाना अनेक कारणोंसे व्यर्थ और ...ल भी हो सकता है, लेकिन दुःख, ग्लानि और लज्जाके ...तिरिक्त एक बहुत बड़ी सफलताकी आशा एक व्यक्तिको खींच-... एक और व्यक्तिके पास नहीं ले जाती, यह बात भी कोई ...दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकता।"

दिवाकर मन-ही-मन कुढ़कर विनयके साथ बोला—"भाभी, तुम्हारी सब बातें यद्यपि मैं ठीक-ठीक समझ नहीं सकता, तथापि पवित्र प्रणय स्वर्गीय नहीं, यह बात मैं किसी तरह मान नहीं सकता।"

किरणमयीने कहा—"तुम्हारे मानने न माननेपर कुछ निर्भर नहीं। हमारी यह देह भी तो नश्वर है, बिल्कुल पार्थिव वस्तु है किन्तु इसमे तो दुःखका कोई कारण नहीं देखती। मनुष्य जन्म लेनेके बादसे जबतक अपनी देहमे सृष्टि-शक्तिका संचय नहीं करता, तबतक प्रेमका सिहद्वार उसके आगे बन्द ही रहता है। वह सिहद्वार प्रवृत्तिकी ताड़नासे ही उन्मुक्त होता है। इसके पहले वह माता-पिताको, भाई-बहनको प्यार करता है, बन्धु-बान्धवोंको प्यार करता है, किन्तु उसका शरीर जब-तक बडा नहीं होता तबतक तुम्हारे स्वर्गीय प्रेमके ज्ञानका उसे अधिकार नहीं मिलता तबतक तुम्हारा यह स्वर्गीय आकर्षण उसे तिलभर भी नहीं हिला सकता। पृथ्वीका आकर्षण तो सदा ही बना रहता है, किन्तु उस आकर्षणसे वृक्षका पका फल ही आत्म-समर्पण करता है कच्चा फल नहीं। उसका रेशा और गूदा पृथ्वीके रससे ही पकता है, स्वर्गीय रससे नहीं। सुन्दर प[illegible] रूपसे, गन्धसे, मधुसे भौंरोको खींचकर फलमे परिणत हो जाता है वही फल फिर ठीक समयपर जमीनपर गिर अंकुरमे परिणत होता है। यही उसकी प्रकृति है—यही उसकी प्रवृत्ति है और यही उसका स्वर्गीय प्रेम है। विश्वभरमे सृष्टिका जो [illegible] खेल हो रहा है वह इसका ही खेल है—उसे स्वर्गीय स्वीकार नहीं करनेसे दुःखित या लज्जित होनेकी कोई [illegible] है [illegible]।

[illegible] निस्तब्धी बोली—"अंधेरेमे भूतोंके भयसे

'तुलना तो नहीं करती बाबू दोनों एक ही चीज हैं, सिर्फ यही बता रही हूं। इंजनको जो यन्त्र सामने खींचकर ले जा सकते हैं वे ही उसे पीछेकी ओर ढकेल भी सकते हैं, यह काम दूसरा नहीं कर सकता। जो प्रेम कर सकता है, उसे अच्छा कहो या बुरा, वही कर सकता है, दूसरा नही। तुमने गोविन्द-लालकी बात कही थी न? उसके जिस हृदयने भ्रमरको चाहा था, ठीक वही हृदय उसको रोहिणीकी ओर भी बुरी तरहसे खींच ले गया था। यह बुरा प्रेम भी हरलालसे होना सम्भव न था। उसने संसारके भले-बुरे, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सुविधा-असुविधा आदि सभी बातोंको सोचकर अपने मनको दबा रखा था, लेकिन गोविन्दलाल उसे दबाकर न रख सका। यद्यपि हरलाल गोविन्दलालसे अच्छा न था, तथापि उसने जिसे घृणासे परित्याग कर दिया था, दूसरेने उसी को सिर-आंखोंपर चढा लिया। किसीको सिर चढाना अनेक कारणोंसे व्यर्थ और निष्फल भी हो सकता है, लेकिन दुःख, ग्लानि और लज्जाके अतिरिक्त एक बहुत बडी सफलताकी आशा एक व्यक्तिको खींच-कर एक और व्यक्तिके पास नहीं ले जाती, यह बात भी कोई दृढतापूर्वक नहीं कह सकता।"

दिवाकर मन-ही-मन कुढकर विनयके साथ बोला—"भाभी, तुम्हारी सब बातें यद्यपि मैं ठीक-ठीक समझ नहीं सकता, तथापि पवित्र प्रणय स्वर्गीय नहीं, यह बात मैं किसी तरह मान नहीं सकता।"

किरणमयीने कहा—"तुम्हारे मानने न माननेपर कुछ निर्भर नहीं। हमारी यह देह भी तो नश्वर है, बिल्कुल पार्थिव वस्तु है. किन्तु इसमें तो दुःखका कोई कारण नहीं देखती। मनुष्य जन्म लेनेके बादसे जबतक अपनी देहमे सृष्टि-शक्तिका संचय नहीं करता, तबतक प्रेमका सिंहद्वार उसके आगे बन्द ही रहता है। वह सिंहद्वार प्रवृत्तिकी ताड़नासे ही उन्मुक्त होता है। इसके पहले वह माता-पिताको, भाई-बहनको प्यार करता है, बन्धु-बान्धवोंको प्यार करता है, किन्तु उसका शरीर जब-तक बडा नहीं होता तबतक तुम्हारे स्वर्गीय प्रेमके ज्ञानका उसे अधिकार नही मिलता तबतक तुम्हारा यह स्वर्गीय आकर्षण उसे तिलभर भी नहीं हिला सकता। पृथ्वीका आकर्षण तो सदा ही बना रहता है, किन्तु उस आकर्षणसे वृक्षका पका फल ही आत्म-समर्पण करता है कच्चा फल नही। उसका रेशा और गूदा पृथ्वीके रससे ही पकता है, स्वर्गीय रससे नहीं। सुन्दर फूल रूपसे, गन्धसे, मधुसे भौंरोंको खींचकर फलमें परिणत हो जाता है यही फल फिर ठीक समयपर जमीनपर गिर अंकुरसे परिणत होता है। यही उसकी प्रकृति है—यही उसकी प्रवृत्ति है और यही उसका स्वर्गीय प्रेम है। विश्वभरमे सृष्टिका जो यह अविच्छिन्न खेल हो रहा है वह रूपका ही खेल है—उसे स्वर्गीय स्वीकार नहीं करनेसे दुःखित या लज्जित होनेकी कोई बात नहीं है, लाला।"

जरा ठहरकर किरणमयी बोली—"अंधेरेमे भूतोंके भयसे

यदि तुम आँखे बन्द करके शान्ति पाते हो, तो मैं तुम्हें आंखें खोलनेको नहीं कहती, किन्तु इतना अवश्य कहूंगी कि जो कोई स्वर्गीय प्रेमका उपभोग करना चाहेगा, वह यह नहीं कह सकता कि 'मैं प्रवृत्तिको ताड़नाके परे हूं' प्रेम इतनी आसान चीज नहीं है।"

दिवाकरने पूछा—"फिर पृथ्वीमें पवित्र प्रेम और घृणित प्रेम ये दो क्यों हैं ?"

किरणमयी मुस्कुराकर बोली—"तुम्हारा तर्क तो ठीक सतीशके तर्क जैसा ही है। संसारमें इन दोनोंका रहना ही अनिवार्य है। मनुष्यकी प्रवृत्ति कोई दलील या युक्ति नहीं है, इसीलिये दोनोंका रहना असम्भव है। जिसे घृणित कहते हो वह तो असलमें सुबुद्धिका अभाव है—अर्थात् जिसे प्यार करना उचित नहीं, उसे जो प्यार किया जाता है, वही बुरा समझा जाता है। असावधानीके कारण पेडसे गिरकर अगर हाथ-पांव टूट जायं और हम इसका दोष पृथ्वीके मध्याकर्षणके मत्थे मढ़ें, तो वह जैसी बेवकूफी मानी जायगी, प्रेमको कुत्सित और घृणित कहना भी वैसी ही बेवकूफी है। इसी प्रकार संसारमें, एकका अपराध दूसरेके मत्थे मढ़ा जाता है।—कहकर किरणमयी चुप हो मानो अपने भीतर पैठकर यह देखने लगी कि उसके हृदयमें क्या बात है। दूसरे ही क्षण बोली—"तुमसे पहले कह चुकी हूं कि जीवनका प्रत्येक अणु-परमाणु, प्रत्येक रक्तकण अपनी उत्कृष्ट परिणतिमें विकास पानेका लोभ संवरण नहीं

कर सकता। जिस देहमें उसका जन्म होता है, उस देहमें उसकी परिणतिकी निर्दिष्ट सीमा जब पूरी हो जाती है, तब वह परिणति उसकी जवानी कहलाती है। केवल तभी वह दूसरी देहके संयोगसे सार्थक होनेके लिये रग-रग और नस-नसमें विप्लवका जो ताण्डव नृत्य मचाती है, उसे ही पण्डित लोगोंके नीतिशास्त्रमे पाशविक और घृण्य बताया गया है। इसका तात्पर्य न समझकर ही पण्डितोंने इसे घृणित कहा है, बीभत्स बताकर सन्तोष कर लिया है, किन्तु मैं तुमसे निश्चयपूर्वक कहती हूं कि इतना बडा आकर्षण किसी तरह वैसा घृण्य और निन्दनीय नहीं हो सकता जैसा बताया गया है, यह सत्य है, सूर्यके प्रकाश की तरह सत्य है ब्रह्माण्डके आकर्षण की तरह सत्य है। कोई प्रेम कभी घृणाकी वस्तु नहीं हो सकता।"

यह सुनकर दिवाकर सम्पूर्णतः विह्वल हो रहा। उसकी छाती धडकने लगी। ऐसा उत्तप्त तीव्र कण्ठस्वर तो उसने कभी नहीं सुना, आंखोंसे ऐसी उत्तप्त उत्कट दृष्टि कभी नहीं देखी! डरते-डरते उसने पुकारा—'भाभी।"

'क्या है बाबू?'

"मेरे सदृश निर्बोधको उपदेश देनेमे शायद तुम अधीर हो उठती हो?"

"यह क्या कहते हो, मुझे तो बहुत ही अच्छा मालूम होता है।"

दिवाकरने जरा मुस्करानेकी चेष्टा करके कहा—"अच्छा

लगता, तो तुम्हारे मुँहसे ऐसी ऊट-पटांग बातें क्यों निकलतीं? अभी तुमने कहा है कि जिससे प्रेम करना उचित नहीं, उससे प्रेम करनेको ही कुत्सित प्रेम कहते हैं, फिर कहती हो, इसका तात्पर्य न समझ सकने के कारण ही विज्ञ लोग उसे बुरा कहते हैं। फिर सत्य कौन सा है?"

किरणमयी फौरन बोली—"दोनों सत्य है।"

"विधवा रोहिणीसे प्रेम करके क्या गोविन्दलालने बुरा काम नहीं किया?"

'प्रेम क्या कोई काम है, जो उसका न्याय-अन्याय होगा? स्त्रीको छोड़ जाना बुरा काम अवश्य कहा जा सकता है।"

दिवाकर फिर एक बार उत्तेजित हो उठा। बोला—"छोड़कर चला जाना तो सचमुच ही बुरा काम है, हजार बार बुरा काम है, किन्तु अपनी पत्नीको छोड़ना और दूसरी स्त्रीको मन-ही-मन प्यार करना क्या घोर अन्याय नहीं है?"

उसकी उत्तेजनापर किरणमयी मुस्करायी, बोली—"अपने-। ऐसा शक्तिमान नहीं समझना चाहिये, अहङ्कार जरा कम ।न। ही अच्छा है। क्या तुम सोचते हो, कि मनुष्य इच्छा ... ही जो चाहे, कर सकता है! गोविन्दलाल यदि चाहता तो रोहिणीको प्यार भी कर सकता था और नहीं भी कर सकता था, क्या, तुम्हारी यह धारणा है?'

"नहीं यह मेरी धारणा नहीं है। परन्तु इच्छाके साथ चेष्टा होनी चाहिये।"

किरणमयीने कहा– "और फिर उसके साथ क्षमता अक्षमताका सवाल भी तो है। केवल चेष्टा करनेसे ही काम नहीं चलता। इस छतके कोनेमें बैठे-बैठे यदि तुम्हारे सिरपर एक पेड़ निकल आये तो भी कालिदासकी तरह तुम "मेघदूत" न लिख सकोगे। मेघ देखनेपर तुम्हें वर्षाकी आशङ्का होगी, सरदी लग जानेके भयसे ही व्याकुल हो जाओगे, पर विरहीका दुःख सोचनेका समय न पाओगे—हजार चेष्टा करनेपर भी नहीं। यह अक्षमता नस-नसमें धँसी हुई होती है, उससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता।" कहकर किरणमयी चुप हो रही।

दिवाकरने भी कुछ जवाव नहीं दिया, वह सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा। वहुत देरतक कोई वात न निकली। निस्तब्ध कमरेके एक कोनेसे एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन घड़ीका केवल टिप्-टिप् शब्द आने लगा।

वहुत देर तक चुप रहकर किरणमयी सहसा वहुत मीठे स्वर से वोली— 'तुमसे और दो एक वातें कहना चाहती हूं। उस दिन तुम्हारी जहरीली छूरी' लेकर चाहे जो कुछ कह डाला हो, पर सच कहती हूं मैंने यह भी देखा था, कि तुम्हारे हृदयमें एक ऐसी चीज भी है, जो यथार्थ ही प्रेमिक है, कवि है। इस वस्तुको यदि नष्ट न करना चाहो, तो दूसरेको अपराधी वनानेके हठसे अपनेको ही वंचित करना होगा। यह कभी मत भूलना कि कवि विचारक नहीं होता। नीतिशास्त्रके मतके साथ यदि

तुम्हारा मत अक्षरसः न भी मिले तो इसपर लज्जित होनेकी आवश्यकता नहीं। मैं जानती हूं, मनुष्य दूसरेकी अक्षमता और अपराधको एक ही तराजूमें तौलकर दण्ड देता है, किन्तु यह तराजू या उसके बटखरे उधार लेनेसे काम नहीं चलेगा। तुमने बारम्बार गोविन्दलालका नाम लिया है। वही गोविन्दलाल कितनी बड़ी शक्तियोंसे परास्त होकर अपना सर्वस्व त्यागकर चला गया था। इस संसारमें जिन्होंने सिर्फ भले-बुरेका विचार करनेका भार लिया है, यह प्रश्न उनका नहीं, तुम्हारा है। खूनके अपराधमें जब जज साहब किसी अभागेको फांसीकी सजा देते हैं तब वे विचारक हैं, किन्तु अपराधीके हृदयकी दुर्बलताका अनुभव कर जिस समय वे हल्की सजा देते हैं उस समय वे कवि बन जाते हैं। इसी प्रकार संसारके सामञ्जस्यकी रक्षा होती है। इसी प्रकार संसारकी भूल, भ्रान्तियां और अपराध असह्य नहीं होने पाते। कवि केवल सृष्टि ही करता हो, यह बात नहीं है, सृष्टिकी रक्षा भी करता है जो स्वभावतः सुन्दर है, उसको भी सुन्दर बनाकर प्रकट करना उसका काम है, जो सुन्दर है उसको असुन्दरके हाथोंसे बचाना भी उसीका काम है।"

दिवाकरने जरा सोचकर कहा—"इससे क्या अन्यायको प्रश्रय देना न होगा?"

किरणमयीने कहा—'ठीक जानती नहीं, हो भी सकता है। सुनती हूं बुरेके प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर देना भी कविका ही काम है, किन्तु अच्छेके प्रति अत्यन्त लोभ जगा देना क्या

उससे बहुत अच्छा काम नहीं है ? इसके सिवा जबतक इस संसारसे पाप बिलकुल उठा न दिया जायेगा, जबतक मनुष्यका हृदय पत्थर न बन जायेगा, तबतक इस पृथ्वीमें अन्याय और भूल भ्रांति होती ही रहेगी और उसे क्षमा कर प्रश्रय भी देना ही पड़ेगा। जब पाप दूर करनेकी सामर्थ्य नहीं हो, तब यदि सहन करनेकी भी क्षमता नहीं रहेगी, तो इससे क्या सुविधा होगी ?"

दिवाकरने जवाब दिया—"सुविधा ही तो सब कुछ नहीं है। असुविधामें भी तो अन्यायका पालन करना चाहिए। जो शुभ है, निर्मल है, जो सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट है, उसीको तो सबके ऊपर स्थान देना उचित है ?"

किरणमयीने कहा—"नहीं। यदि पाप मनुष्यके रक्तके साथ लगा रहता तो तुम्हारा कहना ही सच होता। न्यायके सिवा संसारमें और कुछ भी नहीं रहने पाता। दया, माया, क्षमा आदि चित्तवृत्तियोंके नामतक भी किसीको मालूम न होते। तुम सूर्यके प्रकाशके सफेद रङ्गके साथ न्यायकी तुलना करते हो, किन्तु जानते हो, सब रंगोंके मेलसे ही सफेद रंग बनता है। यह उज्ज्वल प्रकाश जिस तरह टेढ़े शीशेके भीतर पैठनेसे रंगदार हो जाता है, उसी तरह अन्याय, अधर्म पाप-तापके टेढ़े रास्तेसे दया, माया, क्षमा सभी विचित्र—विकृत रूपोंमें दिखाई देती है। अन्यायको क्षमा करनेसे अधर्मको फल मिलता है यह मानती हूँ, किन्तु अधर्म क्षमाका रूप नहीं यह बात भी तो स्वीकार किये बिना नहीं रह सकती।

बहस करके शायद अपनी बात तुमको समझा न सकूंगी, किन्तु क्षमा जिस प्रेमके भीतर पैदा होती है, उसका यदि अनुभव कर सकोगे, प्रेमके मर्मको यदि कभी जान सकोगे तभी समझोगे कि अन्याय, अधर्म, अक्षमताको क्षमाकर प्रश्रय देना धर्मका ही अनुशासन है। पर बहुत देर हो गयी । क्या आज तुम्हें भूख-प्यास नहीं लगी है ?" कहकर घबड़ाकर वह कमरेसे बाहर निकल गयी।

शामके बाद दिवाकरने खाते समय धीरे-धीरे कहा—"आज दो पहरका समय बड़े आनन्दसे कटा । कह नहीं सकता, मैंने कितनी नयी बातें सीखी।"

किरणमयीने मुस्कुराते हुए कहा—"अनेक बातें सीखी हैं, तो मुझे अपना गुरु मानना चाहिये।"

दिवाकर उत्तेजित कंठसे बोल उठा—"जरूर-जरूर। सौ बार तुमको गुरु स्वीकार करता हूं सच कहता हूं भाभी, यदि तरह हमेशा तुम्हारे पास रहने पाऊं तो मुझे और कुछ नहीं हिये।"

'क्या कहते हो ? इतनेमें ही इतना आकर्षण ?'

दिवाकरका चित्त उसकी बातोंकी धारामें मग्न हो गया था, सरल मनसे बोला—"तुम्हें छोड़कर एक दिन भी कहीं रह न सकूंगा भाभी।"

किरणमयी मुस्कुराकर उठी—'बोली, चुप रहो यदि कोई सुन लेगा तो कुछ जवाब देते न बनेगा।"

दिवाकर होशमें आकर गहरी लज्जासे बिलकुल रङ्ग गया।

३१

बिछौने बिछाते-बिछाते किरणमयीने उसके एक कोने पर बैठकर ममता और दया-भरे कण्ठसे कहा—'यह क्या तुम्हारी नौकरी है या व्यवसाय, कि इसकी सफलता-विफलता मालिककी मर्जीपर अथवा दूकानकी खरीद्-बिक्रीपर निर्भर करेगी? यह अपने हृदयका धन है। इसे विफल करे, ऐसी शक्ति किसी और मे नहीं है।" यों कहकर वह कुछ देर तक आँखे मूँदे बैठी रही।

दिवाकरने भक्ति भरे चित्तसे उसके मुखकी ओर देखकर धीरे-धीरे कहा—"अच्छा भाभी, क्या तुम आँखें मूँदनेपर अपने स्वामीका मुख अन्त.करणमे देख पाती हो?"

किरणमयीने आँख खोल, जरा चकित होकर कहा—हाँ, देख पाती हूँ। जो मेरे यथार्थ स्वामी हैं, वे दिन-रात मेरे इस जगह रहते हैं।—कहकर उसने उँगलीसे अपना हृदय दिखाया।

दिवाकरने बातको सरल भावसे समझकर नम्रतासे कहा—"किन्तु इस देखनेसे क्या लाभ? तुम भगवानको नहीं मानती; लोक-परलोकको भी स्वीकार नहीं करती हो, फिर मरनेके बाद कैसे तुम उनके पास जाओगी?"

किरणमयीने कहा—"मरनेके बाद मैं किसीके पास नहीं जाना चाहती ?"

"कहीं—किसीके पास नहीं ? बिलकुल अकेली रहना चाहती हो ?" पूछकर दिवाकर मुंह बाये ताकता रहा। उसका प्रश्न सुनकर किरणमयी भी थोडी देरके लिए अवाक् हो रही, किन्तु तत्क्षण जोरसे हँसकर बोली—"तुम अकसर मेरे सम्बन्धकी बातें क्यों सुनना चाहते हो बाबू, बताओ तो सही।"

"क्या जानूँ भाभी, पर मुझे सुननेकी बडी इच्छा होती है।"

किरणमयीने बिछौनेकी चादरको ठीक तरहसे बिछानेके बहाने मुंह घुमाकर कहा "मैं एक आदमीके पास जाना चाहती हूं, मरनेके बाद नहीं—पहले ही।"

"किन्तु वे मर गये। जीते जी उनको कैसे पाओगी ?"

किरणमयीने मुस्कुराकर कहा—"वे मेरे लिये अभी जीते हैं—अबतक चली भी गयी होती, लेकिन

"लेकिन क्या भाभी ?'

"यदि एक बार भी मुझे यह मालूम हो जाता कि वे मुझे चाहते हैं, तो मैं चली गयी होती।"

दिवाकरने फिर आश्चर्यमें पडकर पूछा—"कौन जीता है ? किसकी बात कहती हो ? कौन बतलायेगा कि वे तुमको चाहते हैं या नहीं ? क्या बात है बताओ भाभी।"

किरणमयीके चेहरे पर थोडी देरके लिये एक हल्की स्याही दौड गयी, किन्तु क्षणभरमें ही वह हट गयी और फिर

उसका मुखमण्डल उज्वल हो उठा। बनावटी क्रोधके स्वरमें उसने कहा—"तुम बड़े चालाक हो। अपने मुँहसे साफ-साफ कुछ कहना नहीं चाहते, केवल मेरे मुँहसे सब बातें सुनना चाहते हो। जाओ, उनकी कोई बात मैं तुम्हें न बता सकूंगी।" कहकर और मुँहको जरा ओटमें करके वह मुस्कुराने लगी। दिवाकरको वह मुस्कुराहट दिखाई दे गयी और एक अज्ञात आवेगसे उसका हृदय तेजीसे धड़कने लगा। उसने जरा सभलकर कहा—"मेरे सम्बन्धकी ऐसी बात ही क्या है, जो तुम्हे खोलकर बताऊं ?"

किरणमयी उसकी ओर मुंह करके खड़ी हो गयी, बोली—"अबतक जो इतना सिखलाया, क्या वह सब व्यर्थ हो गया! एक बार अपनी छातीपर हाथ रखकर देखो, कि वहाँ एक भयानक बात खलबली मचा रही है या नहीं। सच कहो।"

दिवाकरने मन्त्रमुग्धकी तरह कहा—"क्या बात है, मुझे क्या सिखाया तुमने ?'

किरणमयीने कहा—"तुमने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया। इतने बड़े हो गये, अबतक क्या केवल ढोंग ही सीखा है ? तुम खुलकर कुछ नहीं कहते मैं भी नहीं कहती, इससे या तो मेरी छाती फट जायेगी या तुम्हारी।" इतना कह, झुककर दिवाकरकी दाढ़ीको सहसा एक बार हाथसे हिलाकर कमरेसे बाहर चली गयी। दिवाकर काठकी तरह बैठा रह गया। किरणमयीने अबतक कितनी ही बार, कितने ही प्रकारसे उससे हसी

की, हजारों बार हजारों छलसे उसे स्पर्श किया था, किन्तु आजके इस परिहासने, इस स्पर्शने उसकी नस-नसमें मानो बिजली प्रवाहित कर दी। अपनी देहके प्रत्येक रक्तबिन्दुमें इतने उत्तापका और उसकी चालमें इतनी तेजीका आजतक दिवाकरने कभी अनुभव नहीं किया था।

३२

बहुत दिनोंके बाद आज सुबहको अघोरमयी पड़ोसकी कई बूढ़ी स्त्रियोंके साथ दर्शन करनेके लिये कालीघाट गयी थी। जाते समय कह गयी थी कि माताकी आरती हो जानेके बाद थोड़ी रात बीते घर लौटूँगी।

आठ बज रहे थे। दिवाकर अपने बिस्तरेपर चुपचाप पड़ा था, उसके सिरहाने मिट्टीका एक दीया टिमटिमा रहा था। इसी क्षीण प्रकाशमें कुछ काल पहले वह 'दुर्गेशनन्दिनी' नामक [illegible] पढ़ रहा था। उसीको मुँहपर रखकर शायद मन-ही-मन [illegible] बात सोच रहा था, इसी समय किरणमयीने आकर [illegible] —"क्यों छोटे बाबू, सोते हो क्या?"

दिवाकरने मुँहपरसे किताब हटाये बिना ही कहा—"नहीं, सिरमें बहुत दर्द है।"

किरणमयीने कहा—"तो अच्छी दवा कर रहे हो। सिरहाने दीपक जला रखनेसे सिरका दर्द दूर नहीं हुआ क्या?"

दिवाकरने कहा—"यह किताब खतम कर रहा हूँ।"

किरणमयीने कहा—"आँखें बन्दकर आयशाकी चिन्ता करनेसे ही पुस्तक खतम न होगी भैया, आँखें खोलकर पढ़ना होगा। नहीं तो खा-पीकर ख़तम करो, अब चलो, खाना ठण्डा हुआ जाता है।"

दिवाकरकी उठनेकी इच्छा न थी। उसने अनुनय-विनयसे कहा—'अभी रहने दो भाभी, मौसीके आनेपर खाऊँगा।"

किरणमयीने कहा—वे कब लौटेंगी, इसका क्या ठीक है? आज मेरी भी तबीयत ठीक नहीं। सोचती हूं, उनके कमरेमें भोजनकी सामग्री रखकर जरा सोऊँगी। उठो, तुमको खिला-पिला कर छुट्टी कर लूँ।"

कहकर उसने दिवाकरके हाथसे किताब ले ली।

पास ही दिवाकरकी लोहेकी पेटी रखी हुई थी। किरणमयी लौटकर उसपर आ बैठी और तकाजा किया—"उठो भी!"

"मैं उठना नहीं चाहता भाभी। इससे अच्छा तो यह है कि तुम कुछ कहो, कोई बात करो, मैं सुनूँ।"

'केवल बातोंसे ही पेट नहीं भरता। समयपर खाना भी पड़ता है। बोलो उठते हो कि नहीं?"

दिवाकर क्षणभर चुप रहकर बोला—"अच्छा भाभी, मेरे नहाने, खाने और सोनेके पीछे तुम इतनी माथापच्ची क्यों करती हो?"

किरणमयीने मुसकराकर कहा—'क्यों करती हूं? नहीं जानते?"

"विना वताये कैसे जानूँगा ?"

"यह तो तुम झूठ कहते हो। न वतानेसे भी जाना जा सकता है और तुम जरूर जानते हो कि मैं तुम्हारे पीछे क्यों इतनी तकलीफ सहती हूं।"

दिवाकरका चेहरा लज्जासे लाल हो गया। वह कुछ क्षण चुपचाप पडा रहा। अनन्तर सहसा उदास हो, करुण स्वरसे वोला—"भाभी तुमसे एक बात पूछूँ।"

"एक क्यों एक सौ पूछो, किन्तु पहले खा-पीकर मुझे छुट्टी दो। इसके वाद सारी रात तुम्हारी वातोंका जवाब दूँगी। क्यों राजी हो ?" कहकर वह मुस्कुराने लगी। दिवाकर इस दिल्लगी के बदलेमे जवाब देनेका प्रयत्न कर कृत्रिम सहानुभूतिके स्वरमे कहा-- "अच्छा तो है भाभी, तुम शायद इसी लोहेकी पेटीपर बैठी सारी रात मेरी वातोंका जवाब दोगी। किरणमयी मुह फेरकर हंसी, वोली- "मेरे इसपर बैठनेसे यदि तुम्हे कष्ट होता है, तो तुम्हारे नरम विछौनेपर ही आ बैठूंगी। ऐसा होनेसे तो फिर दुःख न होगा ?"

फिर दिवाकरका चेहरा कानोंतक लाल हो गया।

शर्माकर उसने करवट वदल ली।

किरणमयीने पास आकर कहा "चलो, उठो। मुझे छुट्टी दो। करवटें वदल-वदलकर क्यों आलस्य वढा रहे हो "

रसोईघरसे नौकरानीकी आवाज सुन पडी "मैं यहांसे सुन रही हूं, तुम नहीं सुन पाती वहू ? माँ नीचेसे पुकार रही है।"

किरणमयी लौटकर फिर उसी ट्रंकपर बैठ गयी। नाराज होकर दासीसे बोली—"तू तो सिर चढ़ गयी! मैं जाकर दरवाजा खोल दूं और तू जाकर नहीं खोल सकती?"

"मेरा हाथ खाली नहीं था, इसीसे कहा है वहू।" कहकर नौकरानी बडबड़ाती हुई जल्दी-जल्दी नीचे उतर गयी। दरवाजा खोलते ही अघोरमयी झिझककर बोल उठी—"क्या तुम दोनो-की-दोनों बहरी हो गयी हो, सुनती ही नहीं, आध घण्टे से खडी खडी शोर मचा रही हूँ।'

इस बार नौकरानी जल उठी। बोली—"अन्धी-बहरी न होती तो क्या तुम्हारे घर नौकरी करने आती मांजी, अब किसी आंख-कानवालीको रख लो, मुझे जवाब दे दो। रसोईघरसे मैं सदर दरवाजेपरकी पुकार न सुन पाऊँगी।"

अघोरमयी ने नरम होकर कहा—"वहू कहां है?"

दासीने अस्फुट झल्लाहटके साथ कहा—"सारा दिन देवरको लिये सोहाग होता है। अभी दरवाजा खोल देनेको कहा, तो मुझपर झनझना उठीं, बोली 'तू सिर चढ़ गयी है। ओ! [illegible]' कह, लज्जित होकर दासी बगलमे जा खडी हुई।

अघोरमयीने घूमकर कहा—"उपेन्द्र, आओ, ऊपर चलो।"

"चलो मौसी चलता हूं।" कहकर उपेन्द्र अघोरमयीके पीछे-पीछे सीढ़ियोंपर चढ़ने लगे। दासीकी सभी बातें उन्होंने सुन ली थीं।

ऊपर आकर अघोरमयीने कड़ी आवाजसे पुकारा—"कहाँ हो बहू, जरा बाहर तो आओ। उपेन्द्र आया है, उसे.. ...

अन्धेरी कोठरीमे बैठी किरणमयीकी छाती भीतरसे सिहर गयी और बिस्तरपर लेटे हुए दिवाकरका सर्वाङ्ग शिथिल और ठण्डा हो गया।

अघोरमयीने फिर आवाज दी—"कहाँ गयी ? एक चटाई तो लाकर बिछा दो बहू—उपेन्द्र क्या खडा ही रहेगा ?"

किरणमयीने बाहर आकर बरामदेमें एक चटाई बिछा दी। उसके मुंहसे सहसा बात न निकली। उपेन्द्रने पास आकर प्रणाम किया और पूछा—"अच्छी तरह हैं भाभी ?'

किरणमयीने अपनेको संभाल लिया। सिर हिलाकर कहा—"हाँ ? तुम कैसे हो ? बहू अच्छी तरह है ? बिना खबर दिये ही सहसा कैसे आ गये ?' किरणमयीका कंठस्वर सुनकर उपेन्द्र आश्चर्यमे पड गया। स्वरमे माधुर्यका लेश नहीं, बिल्कुल शुष्क और नीरस था।

उपेन्द्रने कहा—"मुवक्किलका पैसा मुझे खींच लाया है भाभी—कल सवेरे ही लौट जाना होगा। कालीघाटका काम खतम हो चुकनेपर बाहर निकलते ही मौसीको देखा। तबसे साथ-ही-साथ हूं। दिवाकरकी खबर बतलाइये। वह चिट्ठी-पत्री तक नहीं भेजता है। क्या बाहर गया है ?"

किरणमयीने कहा—"सिरमे दर्द है, इसीसे लेटे हुए हैं क्या मालूम शायद सो गये हों।"

अघोरमयीका मिजाज आज अच्छा न था। बहूका दोष दिखानेका यदि कभी जरा भी मौका मिल जाता वह उसे न चूकती थी आज दिवाकरपर भी उसका चित्त प्रसन्न न था। सवेरे उससे अपने साथ कालीघाट जानेको कहा था, किन्तु कामका बहाना बताकर उसने जानेसे इन्कार कर दिया था। कड़ाईके साथ बोली—"अभी तो तुम उसके कमरे से निकली हो बहू, वह सोता है या नहीं, यह भी नहीं जानती।"

"नहीं जानती" कहकर किरणमयीने सासकी ओर अस्वाभाविक दृष्टिसे देखा। उपेन्द्रने ऊँची आवाजमें पुकारा—"दिवाकर।"

आहट न मिली।

फिर आवाज दी—"दिवाकर, सोता है?"

वह जाग रहा था, इस आवाजकी उपेक्षा न कर सका। 'आया' कहकर धीरे-धीरे बाहर आ खड़ा हुआ। प्रणाम कर अस्पष्ट स्वरसे पूछा—"कब आये छोटे भैया?"

"सवेरे। तेरे सिरमे दर्द है?"

"साधारण।"

अघोरमयीने नाराज होकर कहा—"सिरमे दर्द नहीं बेटा। पहले इधर-उधरसे जरा घूम फिर आते थे। अब तो घरसे बिलकुल ही बाहर नहीं निकलते। सवेरे कहा था कि मेरे साथ जरा कालीघाट चलो, तो जवाब दिया—"मुझे काम है मौसी, मैं न जा सकूंगा। भला तुम्हें क्या काम था? बताओ तो सही।"

दिवाकर चुपचाप खड़ा रहा।

उपेन्द्रने पूछा—"चिट्ठी-पत्री भी नहीं लिखता। किस कालेज-में नाम लिखाया है?"

दिवाकरने कोमल स्वरसे कहा—"कालेज खुलते ही नाम लिखाऊँगा। नाम कहाँ लिखाया है?"

"खुलते ही नाम लिखायेगा, अभी नहीं लिखाया?" असह्य क्रोधसे उपेन्द्रकी दोनों आँखें आग की तरह जल उठी? "सोलह-सत्रह दिनसे अधिक हुए, सब कालेज खुल गये और तुझे यह भी खबर नहीं?"

दिवाकरका चेहरा पीला पड़ गया। वह कठपुतलीकी तरह खड़ा रहा।

मौका देख अघोरमयी भी मुँह बनाकर कहने लगी—"कैसे जाने उपेन्द्र? दोनो दिन रात हँसी-खेल करते रहते हैं और न जाने क्या-क्या सलाह-मशविरा होता रहता है। मैं बार-बार , हूं, बहू वह पराया लड़का है, लिखना-पढ़ना सीखने है, आठों पहर उसके पास तुम क्या करती रहती हो? देवर तो क्या हुआ जवान लडकेके पास बहूको जरा लाज शर्म करनी चाहिये। लेकिन कौन किसकी बात सुनता है। की ओर देखकर बोली—"तू बैठा है इसीसे, नहीं तो अबतक मेरा झोंटा पकड़कर घसीटती फिरती। मैं कसम खाकर कह सकती हूं उपेन्द्र, सब दोष इसी अभागिनका है।"

किरणमयी पास ही खड़ी थी—एक बातका भी उसने जवाब नहीं दिया। धीरे-धीरे रसोईघरकी ओर चली गयी।

अघोरमयीने उसी तरह क्रुद्ध स्वरमें कहा—"अरी, ओ बड़े बापकी बेटी! मैं दिनभरसे उपवास किये बैठी हूँ। कुछ खाने-पीनेका बन्दोबस्त करोगी या नहीं? इस तरह जा कहाँ रही हो?"

किरणमयी घूमकर खड़ी हो गयी और स्वाभाविक स्वरमें बोली—"इसीके लिये तो जा रही हूँ माँ। उपेन्द्रसे कहा—"भाग मत जाना बाबू, मुझे कुछ पूरियाँ तैयार करनेमें दस मिनटसे अधिक वक्त न लगेगा।"

स्तब्ध, मूर्छितप्राय दिवाकरसे कहा—'छोटे बाबू, चलो तुम्हारा भी खाना परोस दूँ। माँ, दासीको जरा बाजार भेज दो बाबूके लिये कुछ मिठाई ले आये!"

अघोरमयी या उपेन्द्र कोई भी उसकी बातोंका जवाब न दे सका। इस बहूके अपरिमित संयम और असीम अहंकारने मानो एकबारगी बुद्धिके अतीत हो, कुछ क्षणके लिये सबको निर्वाक कर दिया।

प्राय घंटेभर बातचीत कर अघोरमयी सन्ध्या-वन्दन और जाप पूरा करने चली गयी। किरणमयीने पास आकर कहा—"अपने कमरेमें तुम्हारे खाने-पीनेकी व्यवस्थाकी है बाबू, वहीं चलो।"

उपेन्द्र चुपचाप उठकर निर्दिष्ट आसनपर आ बैठा। किरण-

मयी पास ही फर्शपर बैठ गयी और बोली—"आज यही खा-पी लो देवरजी, और अधिक बनाने-पकानेमें नाहक रात बीतेगी।"

उपेन्द्र ने सिर उठाकर देखा। दीपकके क्षीण प्रकाशमें उसका चेहरा पत्थरकी तरह कठोर दिखाई देता था। भोजनकी थाली-को एक ओर सरकाकर बोले—"भाभी, खानेके लिये इतना ही काफी है; किन्तु मैं आज खाना खाने नहीं आया हूं, आपसे एकान्तमें दो बातें करने आया हूं।"

किरणमयीने कहा—"मेरा अहोभाग्य; पर खाओगे क्यों नहीं?"

उपेन्द्र क्षणभर एकटक देखते रहे। उनके चेहरेकी कठो-रता मानो और बढ़ गयी। उन्होंने कहा—"आपका छुआ हुआ खाना खानेमें आज मुझे घृणा हो रही है।"

किरणमयी चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही। कुछ देरके बाद धीरे धीरे बोली— "तो खानेकी जरूरत नहीं।" उसने फिर सिर नीचा कर लिया। अनन्तर सिर ऊपर उठाकर जरा मुस्कुरायी, बोली—"घृणा होनेकी बात ही है, किन्तु मैंने कभी न सोचा था कि तुम्हारे मुंहसे ऐसी बात सुनूंगी। वह केवल एक ही मनुष्य था, जो इस तरह घृणासे थाली सरका दे सकता था—वह सतीश है। तुम नहीं बाबू।"

उपेन्द्र क्रोध और विस्मयके मारे निस्तब्ध हो रहे। किरण-मयी उसी तरह शान्त, कठोर भावसे कहने लगी—"मेरे ऊपर तुम्हारा जो यह क्रोध है, जो घृणा है, सो सब दिवाकरके ही लिये

तो, किन्तु मुझ विधवाके लिये जैसे तुम हो, वैसे वह ! उसके साथ मेरा सम्बन्ध कहाँतक कैसा है, यह तुम लोगोंका अनुमान मात्र है। किन्तु जिस दिन अपने मुँहसे मैंने तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रकट किया था, उस दिन तो मेरी दी हुई थाली इस प्रकार हटाकर दूर नहीं कर सके थे। अपनी बेर, परायी औरतकी दी हुई मिठाईमे क्या प्रेमकी मिठास बहुत अधिक होती है ?”

उपेन्द्रने भीतर मुश्किलसे दबाये जानेवाले क्रोधको बड़ी कठिनाईसे रोककर कहा—“आपके आगे उसका नाम लेना भी उसका अपमान करना है, किन्तु फिर भी याद दिला देता हूं कि अभीतक मेरी सुरबाला जीवित है ! वह कहती है कि मुझे जो एक बार प्यार करता है, उसकी मजाल नहीं, कि दूसरेको प्यार करे। मैंने केवल इसी भरोसेपर दिवाकरको आपके हाथ सौंप दिया था। सोचा था, कि इन विषयोंमें सुरबालासे कभी भूल नहीं हो सकती। पर……

बात पूरी न होने पायी थी कि किरणमयीने एकबारगी दोनों हाथ उठाकर कहा—“ठहरो बाबू, उनकी भूल हुई है, तुमने भूल नहीं की, इस बातपर तुमने कैसे निस्सन्देह विश्वास कर लिया ?”

उपेन्द्र एकाएक उठ बैठा, बोला—“रात होती जाती है मुझे तर्क करनेके लिये समय नहीं है, भाभी। मैं आपको अच्छी तरह पहचानता हूं, पर यह बात निश्चय-पूर्वक जान रखिये कि आप किसीसे प्रेम नहीं कर सकेंगी, यह आपकी सामर्थ्यके बाहर है;

आप केवल सर्वनाश कर सकेंगी। छिः छिः—आखिर दिवाकर तुमको ..."

घृणासे उसका कण्ठ भर आया। किन्तु नीचे ताककर देखा कि किरणमयीका चेहरा ऐसा विवर्ण हो गया है, मानों किसी-ने उसकी बीच छातीमें गोली मार दी हो।

बाहरसे अघोरमयीने पूछा—"खा चुका उपेन्द्र ?"

"नहीं मौसी, खाया नहीं, तबीयत ठीक नहीं है ?"

"तबीयत ठीक नहीं ? यह क्या बात है ? तो फिर आज यहीं रह जा, जा मत बेटा।"

"नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा"—कहकर उपेन्द्र बाहर निकल आये। दिवाकरके कमरेके सामने आकर आवाज दी—"दिवा।"

दिवाकर रोशनी गुलकर लेट रहा था। उसके हृदयके ... अवस्था केवल अन्तर्यामी ही जानते थे। अस्फुट स्वर-'हाँ' कहते और कांपते हुए पैरोंसे वह बाहर आया।

उपेन्द्रने कहा—"अपना सामान बांध ले। मेरे साथ ... होगा।"

अघोरमयी चौंक उठी और घबड़ाकर बोली—"यह क्या उपेन्द्र, इस रातको लड़का कहां जायेगा ?"

"मेरे साथ जायेगा मौसी, चिन्ता क्या है ? बांध ले सब सामान, जल्दीसे सब कुछ ठीक कर ले। मैं गाड़ी ले आता हूं"

अघोरमयी उपेन्द्रका हाथ पकड़, चिरौरी करने लगी—

"नहीं बेटा, आज अमावस्याकी रातमें उसका किसी तरह जाना न होगा। लडका है, शायद कुछ अनुचित ही कर गया हो। यहां न रखोगे, तो कल-परसों चला जायेगा—किन्तु आज रातको मैं किसी तरह जाने न दूंगी।"

यों रुकावट पडती देख, उपेन्द्रने हताश होकर कहा—"मौसी, उसे एक रात भी यहां रखनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। अच्छा, आज अमावस्याकी रात बीत जाने दो, किन्तु कल सवेरे न रोकना। सवेरे दस बजे तक ज्योतिषके घर अवश्य भेज देना।" इसके बाद अघोरमयीको प्रणामकर उपेन्द्र जल्दी-जल्दी नीचे उतर गये। सदर दरवाजेपर पीछेसे अंधेरेमें उनका दुपट्टा खिंच गया। पीछे मुडकर देखते ही किरणमयीने झुककर उसके दोनों पांव पकड लिये। कहा—"मेरी छाती फटी जाती है बाबू सब झूठी बातें हैं। छिः छिः। क्या तुम्हारे आसनपर मैं कभी दिवाको

'चुप!' कहकर उपेन्द्रने असह्य घृणासे उसके सिरको जोरसे ठेल दिया, जिससे वह उलटकर चित्त हो गिर पडी।

'झूठी निर्लज्ज, अपवित्र!' कहकर उसकी ओर देखे बिना उपेन्द्र जल्दी-जल्दी बाहर चले गये।

किरणमयी विद्युद्वेगसे उठ बैठी। उसने मानो चिल्लाकर कुछ कहना चाहा, किन्तु गलेसे आवाज न निकली। केवल खुले दरवाजेकी ओर ताकती रही और उसकी आंखोंसे चिनगारियां सी निकलने लगीं।

कुछ दिन पहले इसी अन्धेरी जगहपर, उसकी दोनों आँखोंमें ऐसी ही उन्मत्त दृष्टि, ऐसी ही प्रज्ज्वलित वह्निशिखा दिखाई पड़ी थी, जिस दिन सतीशके साथ पहले पहलउपेन्द्र इस घरमें आ, बाहर निकले थे। आज अन्तिम विदाके दिन फिर उसके प्रति उन्हीं दोनों आँखोंमें उसी तरह आग जलने लगी।

"बहू! यहा क्यों बैठी हो?"

"क्या तू घर जाती है मुक्ता?" कहकर किरणमयी जल्दीसे उठ खड़ी हुई और दासीका हाथ पकड़कर कहा—"जरा मेरे कमरे-में चल, तुझसे दो बातें करनी हैं।" यों कहती हुई वह उसे जबर्दस्ती अपने कमरेमें खींच ले आयी और बत्तीकी रोशनी तेज-कर सन्दूक खोला, सन्दूकसे चाँदीके दो कड़े निकालकर दासीके हाथमें रख दिये और कहा "तेरी बेटीके लिये पहननेको दे रही हूँ। तुझे मेरी सिरकी कसम, लेनेसे इनकार मत कर शायद कभी भेंट न हो!" कहकर वह रोने लगी, आँखोंसे झर-आँसू झरने लगे।

"क्या बात है बहू?" दासीने विह्वल दृष्टिसे उसकी ओर ख . पूछा।

किरणमयीने आँखे पोंछते हुए कहा—"तेरे सिवा मेरा और कोई अपना नहीं है, मेरी रक्षा कर—मुझे बचा। मेरा यहासे उद्धार कर। यहां रहनेसे मेरी छाती फट जायेगी।"

दासीने चुपचाप किरणमयीको सिरसे पैरतक देखा। अन्तमें एक लम्बी साँस खींचकर कहा—"सब समझती हूँ बहू, मैं भी

तो औरत ही हूं मेरे मर्दने जिस दिन तालाबके किनारे रोकर कहा था—"चलता हूँ मुक्ता शायद अब फिर भेंट न होगी, तब मैंने भी तो उसके पांव पड़ रोते-रोते कहा था—"मुझे साथ ले चलो। अकेली छोड़ जानेसे मेरी छाती फट जायेगी। तो क्या कल सवेरे ही छोटे बाबू यहांसे चले जाते हैं ?"

किरणमयीने कहा—"हां। किन्तु कलकत्तेमें अब हम न रहेंगे। कहा जायें बता तो सही।"

दासीने जरा भी चिन्ता न की, कहा—"तो अराकन जाओ बहू, सुखसे रहोगी। वहा मेरी छोटी बहन भी है। मेरा नाम लोगी, तो वह तुम लोगोंको सिर-आंखोंपर रखेगी। आज तो मंगलवार है। कल सवेरे ही जहाज खुलेगा, वहा जाओगी बहू ?"

किरणमयी दासीके गलेसे लिपट गयी, दासी उसकी आंखोंके आसू पोंछ, धीरज देकर कहने लगी—"तो तुम तैयार रहना मैं तड़के गाड़ी लेकर पहुचूँगी, तुम दोनोंको ले चलूँगी। चिड़िया तक न जान पायेगी कि तुम लोग कहां गये। जाओ बहू, जाओ, छोटे बाबूके बिना तुम न बचोगी।" कहकर दासीने इसबार आंचलको अपनी आंखोंमें लगाया।

* * * *

"देवरजी।"

शायद प्रातःकाल हो गया था। दिवाकर चौंककर उठ बैठा। देख सामने किरणमयी खड़ी थी। वह काले रंगकी मखमली

किनारीकी साड़ी पहने थी। रोशनीमें अंगोंपर गहने जगमगा रहे थे।

दिवाकर चौंककर बोला—"भाभी, तुम हो ?"

"हाँ बाबू, मैं ही हूं।" कहकर किरणमयी विह्वल हो, सोये हुए दिवाकरकी छातीके ऊपर एकदम झुक-सी पड़ी, बोली—"बाबू, मुझे छोड़कर तुम चले जाओगे ? कहाँ जाओगे ?"

जवाबमें दिवाकर एक बात भी न कह सका। केवल उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

किरणमयी उठ बैठी और आँचलसे उसके आँसू पोंछकर कहा—"मर्द होकर रोते हो ?"

"भाभी, मेरा कोई वश नहीं, छोटे भैयाने आज सवेरे मुझे चले जानेको कहा है।"

उपेन्द्रका नाम लेते ही किरणमयीका माथा गरम हो उठा। तीक्ष्ण स्वरसे बोली—वे कौन हैं। मेरी अपेक्षा भी क्या वे ...रे अधिक अपने हैं ? तुम्हें न देखनेसे क्या उनकी भी छाती फट जायेगी ? नही बाबू, संसारमें किसीको मजाल नहीं, जो हम दोनोंको अलग करे। बाहर गाड़ी खड़ी है, चलो, हम दोनो चले।

"कहाँ भाभी ?"

"मैं जहाँ ले चलूं।"

"अच्छा" कहकर दिवाकर उठनेको तैयार हुआ। एक बार उसके मनमें यह बात आयी, कि शायद वह जागता नहीं है,

नींदके झोंकेमें स्वप्न देखता है; किन्तु तत्काल ही किरणमयीका अनुसरण कर धीरे-धीरे कमरेसे बाहर आ खड़ा हुआ।

३३

किरणमयीने मानो किसी जादूके बलसे अर्धचेतन, भ्रान्त चित्त दिवाकरको जहाजके घाटपर ला उपस्थित किया और टिकट खरीदकर आराकान जानेवाले जहाजपर जा बैठी। इस जहाजमे भीड़ न होनेसे और दोनोंको स्त्री-पुरुष जानकर जहाजके अधिकारियोंने एक केबिन मे दिवाकर और किरणमयीके लिये स्थान निर्दिष्ट कर दिया। दिवाकर इसी केबिनमें किरणमयी-को बिठाकर डेकके एक एकान्त हिस्सेमे रेलिंग पकड़कर चुपचाप खड़ा रहा। देखते-देखते डेकपर यात्रियोंकी भीड़ शान्त हो गयी। कुलियोंका हल्ला रुक गया और सामने लङ्गर उठाये जानेके शब्द-से दिवाकरका कलेजा काँप उठा। क्षणभरमे ही जहाज गङ्गाके मध्यमे आ पहुँचा और किनारोंसे रहित समुद्रमे प्रवेश करनेकी तैयारीसे धीरे धीरे गतिसंचय करने लगा। जब यह ठीक मालूम हुआ, कि जहाज चल पड़ा है, तब दिवाकरकी दोनों आँखें अकस्मात् भर आयीं और उसने अपनी दोनों हथेलियोंसे आँखें मूँद, रोनेका वेग रोककर अपनी ग्लानीको प्रकट होने नहीं दिया। पूर्व ओरका आकाश बाल-सूर्यकी लाल किरणोंसे उस समय आरक्तिम हो रहा था और इधर उसके आनेके विषयमे तनिक भी सन्देह न रखनेवाले उसके उपेन्द्र भैया ज्योतिषके घरमे

उषःकालकी मीठी नींद ले रहे थे। भागनेके लिये घरसे निकलने तक जो भीषण अप्रकट ग्लानि दिवाकरके चित्तमें अज्ञात भावसे जमा हो रही थी, उसका अन्त कैसा वीभत्स और कितना दुःखद है, यह इस समय उसकी आँखोंके सामने आ गया। भले घरकी एक विधवाको वह स्वयं किसी अनजान देशोंमें ले जा सकता है, यह बात कभी स्वप्नमें भी उसके मनमें नहीं आयी थी। पर जब जहाज चलने लगा, तब उसने स्पष्ट रूपसे समझा कि वह अपने शिक्षा-संस्कार, चरित्र, स्कूल-कालेज, बन्धु-बान्धव और सर्वो· परि उपेन्द्र भैया आदि सबसे किस प्रकार निर्मम भावसे सदाके लिये दूर हटा जा रहा है। अपने उपेन्द्र भैयाके निकट वह आज भी अपनेको छोटे बच्चेकी तरह समझता है। यह खबर सुनकर उनके मनका भाव कैसा हो जायगा, यह याद करते ही उसकी छातीकी धडकन बन्द सी होने लगी। उसी जगह वह अपने [illegible] घुटनेके बीच सिर रखकर बैठ गया, उसकी आँखोंसे [illegible] धारा बहने लगी। इसी समय किरणमयी उसकी [illegible] आ खडी हुई और उसके सिरपर हाथ रखकर स्नेहभरे स्वरसे कहा—"लाला, चलो जरा कमरेमें बैठो।"

बहुत चेष्टासे दिवाकर अपनी आँखोंके आँसू पोंछकर मुंह नीचा किये उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे किरणमयीका अनु- सरणकर केबिनमें पहुंचा। किरणमयीने केबिनका दरवाजा बन्द कर दिवाकरको अपनी बगलमें बिठाया और उसके दोनों हाथ अपने हाथमें ले, उसके चेहरेकी ओर ताककर अत्यन्त करुण

कण्ठसे पूछा—"रोते थे क्या ?" दिवाकरकी आँखोंसे फिर आँसू बहने लगे।

किरणमयीने अपने आँचलसे उसकी आँखोंके आँसू पोंछकर कहा—"सच बोलो बाबू, तुम मुझे प्यार करते हो ?"

दिवाकर कुछ उत्तर न दे सका, छोटे बच्चेकी तरह अधीर होकर रोने लगा।

किरणमयीने उसके आँसूओंसे भीगे मुखको अपनी छातीपर खींचकर दबा रखा और धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरकर सान्त्वना देने लगी। दिवाकरको यह न दिखाई दिया कि किरणमयीके चेहरेपर एक अद्भुत हँसी अठखेलियाँ कर रही है और वह बलपूर्वक उस उच्छ्वसित हँसीको रोकनेका यत्न कर रही है।

इसी तरह बहुत देर बीत गयी। आँसुओंकी धारा आपसे आप रुक गयी। पहलेकी अपेक्षा उसका मन भी कुछ शान्त हो गया और बिना कुछ कहे-सुने वह दरवाजा खोलकर कमरेसे बाहर निकल गया। जहाज उस समय नदीके किनारे-किनारे, धीमी-धीमी चालसे मन्द गतिसे समुद्रकी ओर चला जा रहा था और छोटी-बड़ी नाव जहाजके हिलोरोंसे बचनेके लिये दूर ही दूर रहकर धीरे-धीरे अत्यन्त सावधानीसे बही जा रही थीं।

दिवाकरने रेलिंगके पास एक कुर्सी खींच ली और उसपर बैठकर [illegible] जो कुछ दिखाई पड़ने लगा, उसीसे मन-[illegible] वेदनाके साथ हमेशाके लिये विदाई लेने लगा [illegible] असह्य दुःख अन्तर्यामीको जताने लगा।

कुछ देर बाद केबिनसे फिर पुकार हुई।

किरणमयीने कहा—"देर बहुत हो गयी है, स्नान कर आओ। मैं तबतक तुम्हारे खाने-पीनेका बन्दोबस्त कर रखती हूं।" पीठपर भीगे बालोंको लटका, फर्शपर बैठ और हांडीका मुंह खोलकर वह खाद्य-सामग्रियोंके जमा-खर्चका न जाने क्या-क्या हिसाब लगा रही थी। रातमें ही नौकरनीके द्वारा उसने ये सब सामान जुटा लिये थे।

दिवाकरने कहा—"तुम खाओ। मुझे जरा भी भूख नहीं मालूम होती है, भाभी।"

किरणमयीने सिर ऊपर उठाकर देखा। उसकी दोनों आंख अजीब ढंगसे थिरक रही थीं। कहा—"यह न होगा। तुम न खाओगे तो मैं भी न खाऊंगी। तुम इस समय मेरे गुरुजन हो—स्वामीके समान हो। इसीसे सोच रखा है, कि तुम्हारे उच्छिष्ट पात्रमें प्रसाद पाकर आज नारी-जन्मको सार्थक कर लूंगी।"

तुरन्त हंसीको रोकनेकी गरजसे आंचलसे मुंह ढककर फूल-फूलकर हंसने लगी। यह हंसी दिवाकरकी छातीमें बर्छीकी तरह विंध गयी। वह लज्जा और घृणासे गड-सा गया और कोई बात न कह, फौरन बाहर जानेके लिये तैयार हुआ। किरणमयीकी नजर इसी ओर थी। उसने हाथ बढाकर लपक-कर दिवाकरकी धोती की खूंट पकड़ ली और हंसकर कहा—"यह सप्तरथियोंका व्यूह है, भागते कहां हो बाबू? भीतर प्रवेश करनेका पथ है; किन्तु बाहर निकलनेका पथ शायद ही कोई

जानता है। यदि यही इच्छा थी, तो यह विद्या अपने उपेन्द्र भैयासे कल सीख क्यों न ली ?" दूसरे ही क्षण धोती छोड़, गम्भीर होकर बोली—"दिल्लगी नहीं है बाबू ! कहा मानो, स्नानकर कुछ खा-पी लो। इसके बाद बाहरकी रेलिंग पकड़कर जितनी खुशी हो रोना, मैं आपत्ति न करूंगी। किन्तु यह भी बता दिया चाहती हूं कि आसुओंकी पीछे बड़ी जरूरत होगी, बिना जरूरत उन्हें खर्च न कर डालो, नहीं तो पीछे अफसोस करना पड़ेगा। दिवाकरने कुछ जवाब न दिया। दिलपर चोट पहुंचानेवाले इस व्यंगको सिर झुकाये सहनकर स्नानके लिये बाहर चला गया और किरणमयी भी कठपुतलीकी तरह स्तब्ध हो बैठी रही। कारण, उसके इस कठोर उपहासने केवल दिवाकरको ही चोट नहीं पहुचायी; बल्कि उसने किरणमयीकी अकारण हंसीके स्रोतको फौरन रोक दिया।

बहुत देर तक इसी तरह निश्चल भावसे बैठी रहनेके बाद उसे एकाएक याद आया, कि दिवाकर अबतक लौटकर नहीं आया ! तब उसने बाहर निकलकर देखा, दिवाकर कहीं भी दिखाई न पड़ा। इसके बाद लौटकर दरवाजा बन्द कर लिया और पलंगपर बैठ जाते ही उसके मुंहसे आप-ही-आप निकल गया "हाय ! यह भी भाग्यमें लिखा था ?' उसकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी बूंदे मोतियोंकी तरह टप-टप गिरने लगीं।

बाहर आकर दिवाकर स्थिर न रह सका। वह इधर-उधर घूमता-घामता छतके इस अंशमें जा पहुंचा, जिसमें तीसरे

दर्जेके मुसाफिर कसमकस वैठे थे। वह विभिन्न प्रान्तोंके तरह-तरहके लोगोंके बीचमें वैठकर अपना मन वहलानेका उपाय ढूंढने लगा। इसी भारतवर्षमें कितनी विभिन्न जातियां हैं, कितने प्रकारके पहनावे हैं, कितनी अज्ञात भाषाएं प्रचलित हैं, ये बातें दिवाकरके लिये बिलकुल नयी थीं। वह विस्मयसे अवाक् हो गया। नाना प्रकारकी भाषाओंके संमिश्रणसे जो अभिनव शब्द उत्थित हो रहे थे, वे बड़े ही विचित्र थे। दिवाकर सीढ़ियोंसे उतरकर उसी जनसमूहमें पहुंच गया और आश्चर्यसे स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

जरासे स्थानपर दखल जमानेके लिये यात्रियोंमें इसके पहले बड़े जोरकी रेल-पेल, धक्कम-धक्की मची हुई थी। पर अब वे अपने-अपने अधिकृत स्थानोंपर बिस्तर बिछा, असावब रख, यथासम्भव शान्त होकर बैठ गये थे और अब उन्हें अपने पास-ं यात्रियोंकी ओर ध्यान देनेका भी मौका मिला था। ेक व्यक्ति एक दूसरेका सन्तोष-जनक परिचय पानेके लिये ट रहा था। दिवाकर समझ गया कि यह अद्भुत शब्द-राशि उन्हीं उत्सुक कण्ठोंसे पूछे और कहे गये प्रश्नोत्तरोंकी समष्टि है।

इतनेमें दिवाकरने देखा कि एक बंगाली खड़ा होकर चिल्ला-चिल्लाकर उसे बुला रहा है—"बाबूजी, इधर आइये, इधर आइये। उसके पास एक प्रौढा स्त्री बैठी थी। उसने भी उत्सुक नेत्रोंसे दिवाकरकी ओर देखकर उस अनुरोधका मानों समर्थन

किया। दिवाकर बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंका सामना कर, लोगों-की झिड़कियां और फटकारें सुन-सहकर, भीड़के बीच साव-धानीसे पांव रखता हुआ उसके पास पहुँचा । उसके पास पहुं-चते ही उस मनुष्यने पास ही रखी हुई पेटी दिखाते हुए कहा—
"यह मेरी टीनकी पेटी नहीं. है, असली लोहेकी है, आप बैठ जाइये, कुछ भी चिन्ता न कीजिये। आप कौन हैं ?'

दिवाकर बोला—"ब्राह्मण।"

फौरन उस मनुष्यने दोनों हाथ बढ़ाकर जूतेके ऊपरसे ही चरण-धूलि लेकर सिर आंखोंपर चढ़ायी । अनन्तर बोला—'सोचता था कि ये कई दिन कैसे कटेंगे, आप मिल गये, बहुत ही अच्छा हुआ। हां, आप कहां बैठे हैं ?"

दिवाकरने ऊपरकी ओर इशारा किया, बोला "केबिनमें ।"

"अच्छा, जहां, चाहे रहें, शामको एक बार चरण-धूलि दे दिया करें। क्या रंगून जायेंगे ? दिवाकरने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, आराकान।"

"मैं भी आराकानमें रहता हूं । वहां रहते बीस बरस हो गये ! पर आपको तो वहां कभी नहीं देखा । क्या पहले पहल जा रहे हैं ? क्या वहां आपके कोई सम्बन्धी हैं ? नहीं भी हों, तो क्या हुआ। कुछ चिन्ता न करें। आपके आशीर्वादसे मैं वहांके एक मकानका मालिक हूं। कई कमरे मेरे खाली पड़े हैं। हां, तो आप मेरे साथ ही चलिये । पास बैठी हुई स्त्रीको दिखाकर कहा—"ये मेरी घरनी हैं।"

वह स्त्री अवतक एकटक दिवाकरकी ओर देख रही थी, उसने दिवाकरसे पूछा—"क्या आपकी स्त्री आपके साथ ही हैं ?"

दिवाकरने शर्माते हुए सिर हिलाकर किसी तरह वतला दिया कि 'हाँ, साथ ही हैं।' वातोंसे वह वंगालिन न जान पडी, ललाटपर गोदना था, माँगपर सिन्दूरका चिह्न था, नाकमे नथ और दोनों कानोंमे वीस-तीस छोटी वड़ी वालियाँ थीं। कपड़े-का जो थोड़ासा हिस्सा सिरको ढके था, वातें करनेके लिये जोशमें आते ही वह भी खिसक पड़ा। उसने कहा- "हमारे साथ चलना आपके लिये अच्छा ही हुआ। आराकान वड़ी खराव जगह है, वदमाशोंका देश है। किन्तु मेरे घरमे दात गडानेकी किसीकी मजाल नहीं—मैं ऐसी-वैसी मकानवाली नहीं हूं। ऐसा कौन है, जो कामिनी दासीका नाम सुनते ही डर न हो ? आप मेरे घरमे ही रहेंगे, कोई डर नहीं, भाड़ा रुपया है, आप चार ही रुपये दीजियेगा।' फिर उस ५मीकी ओर मुड़कर पूछा,—"क्यों मकानवाले, आपके ।.. `` इनको कोई काम मिल जायेगा ?"

मकानवालेने जरा टाल-मटोलकरके कहा—"हा, मिल जा सकता है।"

दिवाकरने पूछा - "आपका नाम ''

"हरीश भट्टाचार्य। पर आप यह न समझें कि मैं ब्राह्मण हूं—मैं कैवर्त (कोइरी) हूँ। लोग आदरसे भट्टाचार्य कहते हैं।

कण्ठी-माला पहने रहता हूँ, मछली-मांस छोड़ दिया है, दो-ढाई हजार रुपया खर्चकर चारों धाम घूम आया हूं। कोई चार साल हुए, घरमें देवीकी प्रतिष्ठा की है, अब कुछ करना बाकी नहीं है। इसीसे गृहिणीसे अकसर कहा करता हूं कि 'आरा-कानमें जो कुछ है, सब बेंच-बांचकर चलो, किसी तीर्थस्थानमें जाकर रहें।"—कहकर वह उदासीनतापूर्वक ऊपरकी ओर ताककर चुप हो रहा। गृहिणीने अपने स्वाभाविक भारी गलेसे जवाब दिया—"मैं भी तो यही कहती हूं। लड़कपनमें भाग्यके फेरसे जो किया, वह तो किया ही है, पर वह मेरे शरीरपर लिखा तो है नहीं। मैं भी कहती हूं, अब देर न करो, इस बार ही चले चलो।"—कह, और ऊपर आंखें उठा कर बैठ रही। दिवाकरकी बुद्धि अभी पुष्ट नहीं हुई है, वह कच्ची मिट्टीका घड़ा है, पक्का आदमी नहीं है, इसीसे इन सब बातोंका गूढ़ तत्त्व वह समझ न सका। वह चुप-चाप बैठा रहा।

गृहिणीने कहा—"हां, तो अब चूड़ा भिगो दूं?"

मकानवालेका ध्यान टूटा। धीरे-धीरे बोला—"भिगो दो।"

दुनियाके ढङ्ग-ढर्रेसे अनजान दिवाकर इस इशारेसे अब तात्पर्य्य समझ गया। वह उठकर खड़ा हुआ, बोला—"अब मैं चलता हूं, फिर आऊंगा।"

दिवाकर हरीशसे विदा हुआ। उसने अबतक स्नान नहीं किया था और न खाया-पीया ही था। वहांसे चलकर वह डेरेमें आ आरामकुर्सीपर लेट रहा। वह यह न जान सका

कि कब जहाज नदीका मैला पानी पार कर गया और कब वह अगाध काले रङ्गके खारे जलमें जा पहुंचा। अस्फुट कोलाहलसे जब उसकी नींद टूटी तब उसने देखा कि सूर्यका रङ्ग लाल हो रहा है। बहुतसे लोग तर्क-वितर्क करते हुए यही देख रहे थे। सूर्यास्तका यह विवरण उसने अङ्गरेजी और बङ्गलाकी अनेकों पुस्तकोंमे पढ़ा था। यही सूर्यास्त है? यही समुद्र है? चारों ओर ताककर उसने एक बार अनन्त जलराशिका दृश्य देखा और अस्त होते हुए सूर्यको नमस्कार करते ही उसकी आंखोंमे आंसू आ गये। सूर्यके अस्त हो जानेपर भी वह शून्यकी ओर ताकता रहा। आकाश धूमिल होने लगा, सन्ध्याका अन्धकार फैलने लगा। वह ताकता ही रहा। देखते-देखते आकाश और जलने काला रूप धारण किया, फिर भी दिवाकर उसी प्रकार रेलिंगके सहारे स्तब्ध खड़ा रहा।

रातकी शीतल वायु वह रही थी। ऊपर डेकपर मनुष्य . नाम नहीं। सिरके ऊपर कृष्णपक्षका गंभीर नीलाकाश था, . वैसा ही समुद्रका नीला जल था, दोनोंके बीचमे दिवाकर . ने अन्तःकरणकी गहरी कालिमाको निमज्जित करके कुछ क्षणके लिये शान्तिका अनुभव कर रहा था। इसी समय किसी के कोमल हाथोंके स्पर्शसे उसका ध्यान टूट गया। चौंककर घूमा, देखा, किरणमयी है।

किरणमयीने कहा—"क्या कर रहे हो बाबू? तुमने क्या मरनेका प्रण कर खाना-पीना छोड़ दिया है?" दिवाकरने जवाब

न दिया । केवल उसकी ओरसे पुनः मुँह घुमा लिया। किरणमयीने कुछ क्षण तक उत्तरकी प्रतीक्षा की, फिर 'केबिनमें चलो ' कहती और कपड़ा पकड़ कर खींचती हुई वह उसे केबिनमें ले आयी और फर्शपर बिछे बिस्तरपर बिठाकर बोली—"यदि कुछ भी नहीं समझते तो भी इतना तो जरूर समझ सकते हो कि बहुत रोने-धोनेसे भी जहाज तुम्हे देशको लौटा न ले जायेगा। भूखे प्यासे रहकर सूख जानेपर भी नहीं, समुद्रमें कूद पड़ने पर भी नहीं। तुमको आराकान जाना ही होगा। तब क्यों नाहक स्वयं सूखकर मुझे सुखाते हो ? जो दूं, उसे लो और जो खा सको खाओ। जब जहाज आराकान पहुंच जायेगा तब तुम्हारी मर्जी हो तो रहना, नहीं तो लौट आना—कसम खाकर कहती हू बाबू, मैं न रोकूंगी"—कहते-कहते किरणमयीके कण्ठस्वरमें तीखापन आ गया। भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण आंखें आगकी तरह जलने लगीं। दिवाकर सिर उठाकर चकित दृष्टिसे देखने लगा। आज इतने दिनोंके बाद उसे मालूम हुआ कि उसे परदेकी ओटमें मानो सच्ची बात दिखाई दी है। किरणमयीकी दोनो सुन्दर आंखोंकी वासनादीप्त तृषित दृष्टि सुन्दर और कोई चाहे क्यों न हो, किन्तु उसके लिये वहां ... ... नहीं है तथापि उसने कोई बात न कही, चुपचाप ... देखता रहा और दोनों घुटनोंके बीच सिर लटकाये ... रहा।

कुछ क्षण बाद किरणमयी उठी और एक हांडीके भीत

कुछ मिठाई एक छोटी-सी रकाबीमें ले आयी और दिवाकरके आगे रख घुटनोंके बल ऊंची हो बैठ गयी और एक-एककर उसके मुंहमें दे-देकर खिलाने लगी। इस तरहसे सब खतमकर किरणमयीने मनमें क्या सोचा, यह मालूम नहीं, पर वह उसी क्षण झुककर दिवाकरके भोले होठोंको, चूम खिलखिलाकर हँस पड़ी।

यह विपाक्त चुम्बन और यह निष्ठुर हँसी दिवाकरने अपनी समस्त शक्ति एकत्रकर सह ली, किन्तु रातमें जब एक ही विस्तरपर सोनेका प्रबन्ध होने लगा, तब उससे न रहा गया। वह उठ खड़ा हुआ और बोला—"यह न होगा भाभी। मैं यह न कर सकूंगा। मुझे छोड़ दो, मैं बाहर जाकर कहो पड रहूंगा, किन्तु तुम्हारी इस आज्ञाका पालन करके मैं इस कमरेमे रात न विता सकूंगा—किसी तरह नहीं, किसी तरह नहीं।"

किरणमयी उस वक्त विछौना विछा रही थी। चौंक पडी घूमकर खडी हो गयी। दिवाकर फिर दृढ कंठसे बोल उठा—"किसी तरह न होगा।"

किरणमयीने पहले तो हँसनेकी चेष्टा की, किन्तु हंसी न ...ी, बोली—"क्या यहाँ सोना न होगा? अबकी उसकी दोनों आंखें गोली खाई हुई शेरनीकी तरह जल उठीं। उसने दाँतों-पर दाँत चढ़ाकर धीरे-धीरे कहा—"क्या तुम समझते हो, कि कुलीन घरकी बहूको निकाल लाना इतना सहज है? तुम ऐसे दुधमुंहे बच्चे नहीं कि यह भी नहीं समझो कि किस

कामका क्या फल होता है। शायद सोचते होगे, कि सब अपराध मेरे मत्थे मढ़कर भले आदमी की तरह घर लौट जाकर अपने उपेन्द्र भैयाके पाँव छू, कसम खाकर कहोगे कि 'मैं साधु हूं।' तुम्हारे उपेन्द्र भैया सिर उठाकर चलेंगे, यह न होगा बाबू। मेरी सब बातें न समझोगे, समझनेकी जरूरत भी नहीं है—तुम साधु हो या न हो, इसकी भी कोई चिन्ता नहीं है। किन्तु अपमानके भारसे जब मेरा सिर झुक जायेगा, तब ऐसी कोई बात उठा न रखूँगी, जिससे तुम्हारे उपेन्द्र भैया सिर उठाकर चल सकेंगे—यह तुम निश्चय जानो।"—कहकर वह फिर बिछौना बिछाने लगी और पास ही गद्दीदार बेंचपर दिवाकर खिन्न हो सिर नीचा किये बैठ गया।

रातमें दोनों एक ही बिछौनेपर सोये। अदृष्टके फेरसे सवेरे दान देकर हरिश्चन्द्रने जैसे चाण्डालके हाथ अपनेको सौंप दिया था, उसी तरह दिवाकरने इस घोर पापिष्ठाकी बगलमें लेटकर आत्म-समर्पण किया, किन्तु उसके हृदयमें जो घोर रंज, अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हुई, वह किरणमयीसे छिपी न रही।

सारी रात तन्द्रावस्थामें उसके कानोंमें कहींसे रोदनका [illegible] फूटने लगा और बीच-बीचमें किसीका क्रुद्ध श्वास रह-रहकर भयानक शब्दोंमें सुनाई देने लगा। पौ फटनेके समय शरीर जोरसे हिल जानेके कारण वह सजग हो उठा और समझ गया कि बाहर बड़े जोरसे हवा चल रही है और जहाज काँप

रहा है। आखोंसे देखा, कि उसकी छातीपर किरणमयीका कोमल वाया हाथ निद्रित कालसर्पकी तरह पड़ा है। पीछे जग-कर कहीं काट न खाये, इसीसे मानों उसने उठनेका साहस न किया, फिर आँखें वन्दकर पड़ा रहा। हवाका वेग क्रमश बढने लगा। जहाजका हिलना-डोलना भी क्रमशः वढने लगा और किरणमयीकी आँखें खुल गयीं। दिवाकरकी छातीपर रखे हुए हाथको जरा दवाकर पूछा—"वाहर क्या हो रहा है? तूफान आया है?"

दिवाकरने कहा—"हाँ"

"तव उपाय?"

दिवाकर कुछ न वोला।

किरणमयीने मन-ही-मन हंसकर कहा—"जहाज डूव जाये तो अच्छा हो, शायद यही प्रार्थना भगवान्से करते हो?—क्यों
"

दिवाकरने कहा—"नहीं।"

"वस, यही एक छोटासा शब्द 'नहीं'? तुम आदमी नहीं हो — पत्थरके पुतले हो।" कहकर उसने वलपूर्वक दिवा-करको खींच अपनी छातीसे सटा रखा और वोली "जहाज यदि डूव ही जाये, तो हम दोनों इसी तरह मरें। लहरें हम दोनों-को इसी रूपमें, इसी तरह किनारे पहुंचा दें, लोग देखें, अख-वारोंमें छप जाये, तुम्हारे उपेन्द्र भैया भी देखें, और पढें, यह अच्छा होगा न वावू?"

जिस चित्रका भाव किरणमयीने वीभत्स हसीके बहाने दिखाया, उसका कोई भी अंश दिवाकरको अच्छा न लगा। वह मन-ही-मन आशंकासे अलंकित हो, धीरे-धीरे अपनेको बन्धन-पाशसे छुड़ाकर उठ बैठा और क्षणभरके बाद डोलता-डगमगाता हुआ बाहर निकल आया।

३४

किन्तु बाहर आते ही सारी रातकी एकत्र हुई ग्लानिकी जलन सहसा 'छू मन्तर' हो गयी। तूफानने तब भी प्रबल रूप धारण नहीं किया था, फिर भी सागर-जलका कैसा विराट रूप था। चारों ओर जल-ही-जल था। कहीं कूल-किनारा नहीं। वह एक कुर्सीपर बैठकर एकटक समुद्रकी ओर देखता रहा। हृदयके अन्दर जो उधेड़-बुन मची हुई थी। उसे वह स्पष्ट भावसे सोचनेके सिवा विचारकर हृदयङ्गम नहीं कर सका। जहाजपर सफेद फेनका किरीट माथेपर पहने ऊँची-ऊँची लहरें उन्मत्त हो [illegible] हैं, चूर्ण-विचूर्ण होकर विलीन हो जाती हैं, फिर [illegible] फिर विलीन होती हैं, इस प्रकार आघात-प्रतिघातका [illegible] देर दिवाकर आत्मविस्मृत हो, मुग्ध नेत्रोंसे देखने लगा। [illegible] पृथ्वी और आकाशमें पहाड़ जैसे धुंधले में [illegible] [illegible] सूर्यका उदय हुआ है या नहीं [illegible] पड़ी [illegible] नीचे आकर यह खबर देनेके [illegible] इस तरह [illegible] बाद ही [illegible] घबराये हुए खड़े देखकर—

जाने लगे और ऊपर कमानका घंटा वार-वार वजने लगा। तूफानका वेग उत्तरोत्तर वढ़ रहा है, और भविष्यमें और भी वढ़ेगा, यह इशारा आकाशके मेघ और समुद्रकी लहरोंने कमान-से लेकर कामिनी दासी तक सवपर अच्छी तरह प्रकट कर दिया। इसी समय एक खलाशीने आकर कहा—"वावू, पानी वरसनेमें अव देर नहीं, पानीमें वाहर वैठकर क्यों कष्ट पायेंगे? भीतर केविनमें चले जाइये। देखिये वहां क्या होता है।"

दिवाकरने उद्विग्न होकर पूछा—''क्या हुआ है वहां"

खलासी चटगाँवका मुसलमान था। मुस्कुराते हुए उसने कहा—'कुछ हुआ नहीं, किन्तु जहाज वहुत हिलता-डोलता है, इसीसे कहता हूँ कि जाकर देखिये, औरतें क्या करती हैं, इतना हिलोर सहना वहुत कठिन है।"

दिवाकर उठ खड़ा हुआ और समझ गया कि खलासीका ह वहुत सच है। वह गिरने लगा। खलासी उसे पकड़कर ३।—"चलिये वावूजी आपको पहुचा आऊं। उसकी सहायता-दिवाकर किसी तरह केविनके द्वार तक पहुचा। दरवाजा खोल भीतर जाकर देखा कि किरणमयी नीचेका विस्तर छोड़ ` ...सके लोहेकी पेंचको जोरसे पकड़कर पट होकर पड़ी हुई है। यदि डूव` धीरे-धीरे जाकर उसके सिरके पास वठ गया। कहा—को इसी रूप...तकलीफ होती है भाभी?"

...ारोंमें छुप ज...यी न वोली, न उसने सिर ही उठाया, केवल चुप-अच्छा होगा ...रकी पीठपर अपना दाहिना हाथ धीरेसे रख दिया।

जहाज उलटने-पलटने लगा। बाहर हवा सांय-सांय करके चिल्लाने चीखने लगी। ऊंची-ऊंची लहरोंका ताण्डव नृत्य, वह अभी-अभी देखकर आया था। अब पानीके छींटे बड़े वेगसे छोटी खिडकीके मोटे शीशेपर बार-बार उड़-उड़कर पड़ने लगे।

दिवाकरने देखा, कि इस छोटेसे कमरेका अन्धेरा अब भी दूर नहीं हुआ है, नीचे अबतक कलका बिछौना बिछा पडा है, क्षणभरमें उसे कल रातकी सब बातोंकी यादने दबा लिया। उसका सिर चकराने लगा। उसे स्पष्ट मालूम होने लगा कि बैठनेकी शक्ति मानो कोई खींचे लिये जा रहा है। वह उसी तंत बेंचपर किरणमयीके सिरके पास सिर रखकर बेहोशकी भांति लेट रहा।

किरणमयीने उसके माथेको हाथसे छूकर मृदु स्वरसे पूछा—"लेट रहे हो? सिरमें चक्कर आ रहा है क्या?"

दिवाकरने कहा—"हां।"

किरणमयीने कुछ देर मौन रहकर पूछा—"अच्छा बाबू, तूफान तो क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है, क्या जहाज डूब जायेगा, क्या खयाल करते हो?"

दिवाकरने कहा—"नहीं।"

किरणमयीने कहा—'फिर वही 'नहीं'? तुम अदालतमें गवाही दे रहे हो?' कहकर वह कुछ क्षण चुप पड़ी रही, फिर धीरे धीरे बोली—"यदि न भी डूबे, तो इस तरह कितने दिन रहेंगे?" दिवाकरने जवाब न दिया, यह देखकर—

किरणमयी दिवाकरके सिरको हाथसे हिलाकर बोली—"सुनते नहीं ?"

दिवाकर – "सुनता हूं, जबतक चले।"

किरणमयी – "इसके बाद ?"

दिवाकर—"इसके बाद समुद्रका जल तो है ही, नहीं तो गलेमें बांधनेके लिये रस्सी मिल ही जायेगी। इन दोनोंमें किसी एकका आश्रय लेना ही पड़ेगा।"

इतनी देर बाद दिवाकरके मुंहसे यह कठोर बात सुनकर किरणमयी कुछ देरतक चुप रहकर स्वाभाविक स्वरसे बोली – "नहीं, ऐसा मत करो, घर लौट जाओ। तुम पुरुष हो, कुछ कह-सुन देनेसे ही मामला तय हो जायगा। सम्भव है, इसकी भी जरूरत न पड़े। मैं नहीं समझती कि तुम्हारे नाते-रिश्तेदार इस बातको लेकर कोई बखेड़ा खड़ा करना चाहेगा।"

दिवाकर चुप रहा। ऐसा प्रस्ताव चाहे कैसी ही लोभनीय न हो, वह उसे मनमें ग्रहण न कर सका। बहुत देर मौन बोला –"और तुम ?"

किरणमयीने पहलेकी तरह सहज शान्त स्वरसे कहा "मैं ? मैं जहां जा रही हूं, वहीं रह जाना पड़ेगा।"

दिवाकरको सन्देह हुआ। कहा—"कैसे रह जाओगी भाभी ? वहां कौन है ?"

किरणमयीने कहा – "कोई नहीं।"

"फिर ?"

"फिर भी रह जाना पड़ेगा।"

दिवाकर उत्कण्ठासे उठ बैठा, बोला—"जरा साफ-साफ कहो भाभी। कहती हो फिर कोई नहीं है, फिर रह कैसे जाओगी? तुम क्या वहां अकेली रहोगी।"

किरणमयी मुस्करायी। वह मुस्कराहट दिवाकरने न देखी। देखता तो चौंक उठता। कुछ क्षण चुप रहकर धीरे-धीरे जवाब दिया "नहीं बाबू, अकेली न रह सकूँगी, मेरी वैसी उम्र नहीं है। किन्तु तुम इन बातोंको सुनकर क्या करोगे?" कहकर और दिवाकरका दहिना हाथ अपने हाथमें लेकर उसने अत्यन्त व्यथित कण्ठसे कहा—"किन्तु तुमको तो मैंने व्यर्थ कष्ट दिया। इसके लिये माफी चाहती हूं।"

दिवाकर फिर चुपचाप लेट रहा। सब बातें साफ-साफ उसकी समझमें नहीं आयीं। इतना समझ गया कि घर लौट जानेके अंधेरे रास्तेके लिये जो आशादीप उसने कुछ देर पहले गृहिणीकी तरह जला दिया था, उसको बुझा देनेका समय आ गया है। दीपक बुझ गया सही, किन्तु उसके बुझते ही हवामें जो [illegible] भर गयी, उससे उसकी छाती मानो एक भारी बोझसे दब गयी। रुकी हुई सांसकी गहरी वेदनासे उठ बैठा और [illegible] पूछा—"तो भाभी अबतक मुझसे यों दिल्लगी क्यों [illegible]"

[illegible] और नम्र दिवाकरकी एकाएक ऐसी ढिठाई-से [illegible] चौंक पड़ी। बोली—"दिल्लगी क्या की है बाबू?"

"मुझे घर लौट जानेकी बात कहकर ताना मारनेकी क्या जरूरत थी ?"

किरणमयीने कहा—"नहीं ताना क्यों मारती ?"

"तो क्या यह सच है ?"

"सच ही समझो।"

"तुम अकेली रह जाओगी, यह भी सच है ?"

"यह भी सच है।"

"ओ। इसीलिये आराकान जा रही हो। किन्तु किसके पास, किस रूपमें रहोगी ?"

जवाबमें किरणमयीने केवल एक लम्बी साँस ली। उसका इस तरह भागना दिवाकरके लिये कितना अस्वाभाविक है, इसकी लज्जा कैसी दुस्सह है, किरणमयी यह सब जानती थी और इस भारी संकटमें पड़कर उसका मन किस प्रकार बेचैन हो था, यह भी किरणमयीसे छिपा न था। दिवाकरसे प्रेम नहीं किया और कर भी नहीं सकती, तथापि आश्चर्य , कि इसीकी उदासीनतासे अबतक किरणमयी मन-ही-मन त हो रही थी।

किन्तु जिस घड़ी दिवाकर अपने कठोर स्वरमें पूछे गये कड़वे प्रश्नके भीतर छिपी हुई ईर्ष्याकी ज्वालाको समझ गया उसी घड़ी किरणमयीके भीतरकी छिपी हुई वेदना हर्षसे उछल पड़ी। मनोभावोंके इस उथल-पुथलका एक बड़ा कारण भी था। अपरिपक्व बुद्धिका यह तरुण युवक इस आश्चर्यमयी नारी-

के अलौकिक रूपकी ओर जब धीरे-धीरे आकृष्ट हो रहा था, उस समय किरणमयी देखकर भी नहीं देखती थी, जानकर भी अनजान-सी बन जाती थी। किस तरह मधुका यह छत्ता धीरे-धीरे बनता जा रहा था, कहां मधु एकत्र हो रहा था, घृणा और उपेक्षासे उसने इस ओर देखा तक नहीं, किन्तु आज अकस्मात् चोट खाकर जब मधु चू गया, तब इस निर्वासनके समयमें जो मनुष्य उसका एकमात्र अवलम्बन था, उसीके छत्तेमें यत्नसे संचित प्रच्छन्न मधु-भण्डारकी ओर किरणमयीने अपनी पूरी सतर्क दृष्टि डाली। मन-ही-मन हँसकर बोली—"किसके पास किस रूपमें रहेगी, यह जाननेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जब लौट ही जाओगे तो इस अनावश्यक कौतूहलकी सार्थकता ही क्या?

दिवाकर कुछ क्षण स्थिर हो रहा। अनन्तर बोला—"लौट जानेकी बात तो मैंने एक बार भी नहीं कही। यह तो तुम्हारे ही मुँहकी बात है, "मेरे मुँहकी नहीं।"

किरणमयी बोली—"यह ठीक है। किन्तु मेरे मुँहसे तुम्हारे मनकी ही बात निकल पड़ी है।" यह कहकर वह तीव्र प्रतिवादकी प्रतीक्षा करती रही, किन्तु प्रतिवाद न हुआ। किरणमयी उनको सोचनेका समय दे, धैर्य्य धारण किये चुप होकर रही। कई मिनट बीत गये। पानीकी लगातार होनेवाली लहरोंसे जहाज काँपने लगा, खलासियोंका भय उपजानेवाला कोलाहल [illegible] स्पष्ट सुनाई देने लगा, किरणमयीके

धैर्यका वाँध टूटनेको आ गया, किन्तु लकड़ीके इस छोटेसे कमरेकी निस्तब्धता जैसीकी तैसी बनी रही।

जब इस वातपर किरणमयीको विश्वास हो गया, कि दिवाकर प्रतिवाद न करेगा, तव उसने लम्बी साँस भरकर धीरे-धीरे कहा—"तो फिर तुम्हारा लौट जाना ही स्थिर रहा।"

दिवाकर बोला—"नहीं।"

किरणमयीने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ दिवाकरके घुटनेपर रखकर वह चुपचाप बैठ रही।

३५

उसी रातको आँधी-पानी वन्द हो गया। उन्मत्त समुद्र दिन भर धूम मचाकर रातको मानों वहुत ही थक गया और सवेरा होते-होते शान्त हो गया। किन्तु आकाश अवतक साफ न हुआ था, वह मुंह-मलिन किये ही रहा।

सवेरे कुछ कालके लिये सूर्योदय हुआ, किन्तु सूर्य इस जहाजके डरे हुए, अधमरे यात्रियोंको धीरज वँधाकर फिर चला गया, अथवा आँखें लालकर अन्तर्धान हो गया, यह ठीक समझमे न आया।

इसी समय दिवाकर बाहर आकर कनवासकी एक आराम-कुर्सीपर लेट रहा। न मालूम क्यों, आज आत्मग्लानिकी आगने उसे इस समय पहलेकी तरह नहीं जलाया। लज्जाका समुद्र भी आज वैसा दुस्तर नही मालूम हुआ। मानो हरे-हरे पौधोंसे ढका

हुआ एक घुंधलासा किनारा उसे दीख पड़ने लगा। हृदयका असह्य बोझ इस प्रकार जब हल्का हो चला, तब स्थिर होकर दिवाकर फिर एकबार किरणमयीके तर्कपर सहानुभूतिके साथ विचार करने लगा। क़ल रातको किरणमयीने यह तर्क किया था, कि "वास्तवमें हम अन्याय तो तभी करते हैं, जब किसीको उसके न्यायोचित अधिकारसे वञ्चित करते हैं। इसलिये किसी काममें प्रवृत्त होनेके पहले यह देखना चाहिये कि हम किसीके सच्चे अधिकारमें हाथ डालते हैं या नहीं, फिर यह अधिकार जैसा बाहर है, वैसा ही भीतर भी है। अपने ऊपर भी अपना एक न्याय अधिकार है। अपना होनेके कारण वह किसीसे न्यून नहीं है—किसीसे तुच्छ नहीं है। उस अधिकारके बाहर किसीका हस्तक्षेप सहना, अपने ऊपर अन्याय करना है।"

क्षणभर स्थिर रहकर उसने और भी कहा था कि "चोरी, डाकेजनी जिस प्रकार दूसरेके अधिकारमें हाथ डालना और अन्याय करना है, मतवालेके लिये पैसेकी व्यवस्था कर देना भी ठीक वैसा ही अन्याय है, क्योंकि पैसे देकर हम उसे गढ़ेमें ढकेलते हैं—अच्छे रहनेके अधिकारसे उसे वञ्चित करते हैं।"

दिवाकर चुपचाप सुन रहा था। यह देखकर किरणमयीने फिर कहा था—"यद्यपि सामाजिक मनुष्योंका यह अधिकार अत्यन्त व्यापक है, कहाँ इसकी सीमा रेखा है, कहाँ पांव रखनेसे अनधिकार-प्रवेश न होगा, इस विषयमें अनेक द्वन्द्व, अनेक मतभेद हैं, तथापि सीमा कुछ है ही, इसमें किसीको सन्देह नहीं।

"इस सीमाको लाँघनेकी शक्ति किसीमें नही हैं, समाजमे भी नहीं है। समाज इस सीमाको लाँघकर दूसरेको ही नष्ट नहीं करता, वल्कि अपनेको भी कमजोर बनाता है, नष्ट करता है। तुमको इस तरह मन उदास करके रहनेकी जरूरत नहीं होती, यदि एक बार इस बातका सोचकर देखते, कि किसीके सच्चे अधिकारमें हाथ डाला है या नहीं। मैं विधवा हूं, मुझपर किसीका न्यायसंगत अधिकार नहीं है, तुम भी अविवाहित हो, तुम्हारे हृदयपर भी किसीका अधिकार नहीं है। अतएव मुझसे प्रेमकर तुमने अन्याय नहीं किया, यह समझना तो कठिन नहीं है—वहुत ही आसान वात है।"

दिवाकरने विस्मीत होकर कहा था—"यह क्या भाभी? यदि अवैध प्रणय भी अन्याय नहीं है, तव संसारमें फिर अन्याय क्या है?"

इसपर किरणमयीने कहा था—"अवैध क्यों समझते हो? समझनेका तुम्हारा संस्कार ही ठीक नहीं है। अच्छा, यह तो वताओ, कि तुम इसे अवैध समझते क्यों हो?"

दिवाकरने उत्तेजित होकर जवाव दिया था—"जो विवाहके द्वारा पवित्र नहीं, जिसे समाज स्वीकार नहीं करे, जिसे आत्मीय-स्वजन, वन्धु-वान्धव घृणाकी दृष्टिसे देखें, वही अवैध है, यह तो विल्कुल सीधी-सी वात है।"

किरणमयीने हँसकर कहा था—"सीधी वात कैसे है? जरा सोचकर तो देखो, आपही मालूम हो जायगा कि सीधी वात भी

कभी-कभी ऐसी टेढ़ी हो जाती है, कि दुनियाकी अनेक टेढ़ी चीजें भी हार मान जाती हैं। तुमसे तो अनेक बार कहा है, कि पवित्रता-अपवित्रताका तुम्हारा वह ज्ञान स्पष्ट और परिमार्जित नहीं है। इस संसारमें ही अनेक स्त्री-पुरुषों का ऐसा समागम हुआ है, जिसको तुम अपने दृष्ट-कोणसे पवित्र नहीं कह सकते। मैं उदाहरण सामने रखकर बात बढ़ाना नही चाहती तुम्हारी इच्छा हो, तो इतिहास-पुराण पढ़ देखो। उन सब मिलनोंको भी समाजने स्वीकार किया था और व्याहके मन्त्रसे वे पवित्र बना लिये गये थे। हम लोगोंके पथरियाघट्टेके उस मकानके पास यदि कण्व मुनिका आश्रम होता, तो शकुन्तलाने जो रहस्यपूर्ण प्रणय-सम्बन्ध किया था, उससे केवल मुनि महाराजको ही अपने भाई-बन्धुओंके साथ नहीं, बल्कि पथरियाघट्टेके सब लोगोंको जातिके बाहर होना पड़ता। उस प्रेम कथाको पढ़ कर किस सती-साध्वीका मुखमण्डल लज्जासे रंग नहीं जाता?

"नहीं, नहीं घबड़ाओ नहीं बाबू। मैं सती-साध्वी स्त्रियोंपर ताना नहीं मारती, अथवा इस समयसे उस समयकी तुलना भी नहीं किया चाहती। यह समय ऐसा ही रहे, और वे लोग जहाँ, वहीं अच्छे होकर रहें। मुझे किसीसे आपत्ति नहीं, किन्तु उस समयकी शकुन्तलाके प्रति आजकलके लोग घृणाका भाव क्यों नहीं रखते, यह एक विचित्र बात है!"

इतना कहकर कुछ रहकर धीरे-धीरे उसने कहा था—"जानते

दिवाकरने इसके उत्तरमें कोई बात नहीं कही। किरणमयी कुछ क्षण चुप रहकर फिर बोली—"यह सीमा किसी समाजमें सदा एक स्थानमें टिकी नहीं रहती। आवश्यकताके अनुसार वह खिसकती रहती है।

दिवाकरने पूछा—"कौन उसे खिसकाता है ?

किरणमयीने कहा था—"जिस नियमसे विश्व-ब्रह्माण्ड चलता है, उसी नियमसे यह सीमा भी आप-ही-आप चलती रहती है परन्तु वह चलती है या नहीं, यह बात उस समय मालूम होती है, जब कोई इसे धक्का पहुंचाता है।"

अबतक दिवाकर किरणमयीकी सब दलीलोंको अपने भागनेके अनुकूल बनानेका यत्न कर रहा था, किन्तु मनमें बाधा ही पहुंचती थी। एक तो इस कामकी निकृष्टताके विषयमें उसे कुछ भी सन्देह न था, दूसरे सब अपराधोंको विनीत भावसे [illegible] करनेके लिये वह अपने आपको तैयार कर रहा था। [illegible]न्तु जब वह स्पष्ट रूपसे समझ गया कि यह गर्विता नारी [illegible]तने बडे अपराधको अपराधकी गिनतीमें नहीं लाना चाहती, बल्कि समाजको ही दोषी बनाना चाहती है तब उसे उसकी बातें असह्य प्रतीत होने लगी थीं, किन्तु कोई कठोर बात कहना भी उसके लिये अत्यन्त कठिन काम था। इसीसे उसने केवल आक्षेप भर किया था, कहा था—"अच्छी बात है देखना है, कि समाजको हम लोगोंने जो धक्का पहुंचाया है, उससे समाजका कितना होह घटता है और कितना गर्व टूटता है।"

यह सुनकर किरणमयी कुछ देरके लिये सन्नाटेमें आ गयी थी; किन्तु फिर तत्काल ही दोनों घुटनोंके बल बैठ, दिवाकरके मुंहकी ओर ताककर उसने उत्तर दिया था—"हम लोगोंने धक्का कहां पहुंचाया? भय खाकर भाग खड़े होना और खड़े होकर धक्का पहुंचाना, क्या ये दोनों बातें एक ही हैं, जो समाजका दर्प चूर्ण होगा? किन्तु तुम तो बी० ए० तक पढ़े हो न?" कहकर उसने जल्दीसे लेटकर सिरसे पैर तक चादर तान ली थी और सब तर्क-वितर्कोंका मुंह एक बारगी बन्द कर दिया।

किन्तु इस तरहसे तर्कका प्रवाह रुका नहीं करता है। वह रुके हुए स्रोतकी तरह फूल-फूलकर भीतर-ही भीतर और भी जोर बांधता है। और देरसे हो या जल्द, मार्गकी रुकावट को तोड़ ही देता है। हुआ भी ऐसा ही। यह रुद्ध तर्क केवल किरणमयीके भीतर ही चुपचाप उग्र नहीं हो रहा था, नम्र प्रकृति दिवाकर मनमें भी उछल-कूद मचा रहा था। खासकर किरणमयीकी वह अन्तिम बात—"तुम बी० ए० तक पढ़े हो न?" गूंज रही थी।

यद्यपि उसके मनमें कभी लिखने-पढ़नेका अभिमान स्पष्ट रूपसे नहीं था किन्तु बुद्धिकी प्रतियोगिताके विचारसे इस स्त्रीके मुंहसे निकली ऐसी कड़ी लांछनाके वाक्यने उसे युद्धके लिये बाहर-ही-भीतर तत्पर कर दिया था। किन्तु किस तरह युद्धकी घोषणा करे, किस तरह यह नीरवता भंग करे, यह दिवा-

कर निश्चय न कर सका। और भी एक बात हुई थी—आज दो दिनकी लगातार छेड़छाड़से उसके प्राण होठोंपर आ रहे थे। बाहर जलकी झड़ी जिस तरह विराम लेने नहीं देती थी, भीतर-की आत्मग्लानि भी उसे उसी तरह बिल्कुल बेचैन किये हुए थी। कहीं किसी ओर जाने या टिकनेकी जगह न पाकर आज जब वह खलासीका हाथ पकड़े हुए किरणमयीके कमरेके दर-वाजेके सामने आ पहुंचा था, उस समय उसकी क्लान्त देह और अवश मनने सन्धिकी प्रत्याशा की थी। किन्तु बीचसे तर्ककी यह जो उल्टी धारा बह गयी थी, उसने केवल उसको एक अप्रीतिकर स्थानपर ही नहीं पहुचा दिया था, बल्कि उसके स्वस्थ होनेकी अस्पष्ट आशाको भी एकबारगी नष्ट कर दिया था।

बाहरकी मन्द पड़ी हुई झड़ीके शब्दको दबाकर जहाजके ... बारह बज गये। तबतक दिवाकर छातीके अन्दर गरम ... साँस लिये मन-ही-मन फूल-सा रहा था।

किन्तु एकाएक जब किरणमयीने दबे गलेसे पुकारा ...!" तब दिवाकर चौंक पड़ा, हृदयमें भय और आशाने एक ...य ही हलचल मचा दी, जल्दीसे जवाब दिया—"क्या है भाभी?"

किरणमयीने कहा—"तुम लौट जाओ।"

दिवाकरने जोर देकर कहा—"कदापि नहीं।"

किरणमयीने कहा—"नहीं क्यों? बिना समझे-बूझे ...क

अनुचित काम कर बैठे हो, इसके लिये क्या जिन्दगीभर उसका बोझ लिये फिरना पड़ेगा ? इसको क्या जरूरत है ?"

दिवाकरने कहा—"तुम नहीं देखती, मैं देखता हूं । इसके अतिरिक्त लौट जानेसे क्या सिरसे बोझ उतर जायगा ?"

किरणमयीने कहा—"आज ही उतर जायेगा, यह नहीं कहती ; किन्तु दो दिन बाद उतर भी जा सकता है।"

दिवाकरने मृदुकंठसे पूछा—"किन्तु जाऊँगा कहाँ ?"

किरणमयीने कहा "अपने घर, अपने सम्बन्धियोंके पास। अपने उपेन्द्र भैयाके पास। सभी तो तुम्हारे हैं।"

दिवाकरने क्षणभर चुप रहकर कहा—"जो कुछ मेरा है, वह मेरा नहीं है, यह तुम भी जानती हो। केवल उपेन्द्र भैया है। क्या तुम उनके पास लौट जानेको कहती हो ?" यह बात मुँहसे निकालते हुए वह भीतर-ही-भीतर काँप उठा। किरणमयीसे भी यह छिपा न रहा। मन-ही-मन क्रूर हँसी हँसकर बोली—"अच्छा तो हैं उन्हींके पास चले जाओ।"

दिवाकर कुछ क्षण चुप रहा। अनन्तर धीरे-धीरे बोला—"तुम उनको अच्छी तरह नहीं जानतीं। मैं भी नहीं जानता। शायद अच्छी तरह वे जाने ही नहीं जा सकते, किन्तु बचपनसे उनके पास रहने और उनके आदर-यत्नमें लालित-पालित होनेसे [illegible] है। उनके सामने जाकर खड़े होनेकी अपेक्षा मेरे लिये [illegible] पड़ना सहज है।"

सहसा किरणमयी चकित हो उठी। घूमकर दिवाकरके

मुखकी ओर ताककर बोली—"क्यों, क्या ऐसे निष्ठुर हैं? परन्तु इसमे तुम्हारा दोष नहीं है, यह बात समझाकर कह देनेपर भी क्या वे तुम्हें दण्ड देंगे? यह कभी नहीं हो सकता।"

किरणमयीके आकस्मिक उत्साहकी ओर दिवाकरका ध्यान नहीं था। दीवारपर चिमनी जल रही थी उसकी ओर देखकर अन्यमनस्ककी तरह उसने धीरे-धीरे कहा - "उनको कोई बात समझाकर नहीं कहनी पड़ती न। जाने कैसे वे सब कुछ जान लेते हैं। अवश्य ही तुम्हारी तरह मैं यह नहीं सोच सकता कि यह जो काम मैंने किया है इसमे मेरा दोष नहीं किन्तु यदि तुम्हारी ही बात ठीक हो यदि सचमुच ही मैं निर्दोष होऊं तो जिस दिन उनके सामने जाकर खड़ा हूंगा उसी दिन वे सब कुछ जान लेंगे। उसी दिन मेरे विषयमे वास्तविक निर्णय हो जायेगा। तुमने दण्डकी बात कही थी। कैसे जानूंगा भाभी कि वे क्या ...ो कैसा दण्ड देंगे? कभी उन्होंने दण्ड दिया नहीं, आज ... आगे वह और कुछ बोल न सका। दोनों हाथोंसे आंखें ... चुप हो रहा।

किरणमयीने कोई बात न की। दोनों आंखें फाडकर वह उसके मुँहकी ओर देखती रही। उसके भीतरकी हलचलको केवल अन्तर्यामी ही जान सके।

क्षणभर बाद दिवाकर अत्यन्त व्यथित कंठसे कहने लगा "कभी मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, आज भी मैं अपने मनकी बात तुमसे न कह सकूंगा। किन्तु तुमसे यह अनुरोध

करता हूं कि उनकी बात न छेड़ो। "शायद मुझे सब सह्य हो जायगा, किन्तु उनके विषयकी बातें कैसे सहूंगा? कुछ ठहरकर बोला" "दो दिनोंसे मैं केवल उन्हींकी बातें सोचता हूं जिस दिन हमलोग कलकत्तेसे आये, उस दिन उन्होंने एक बार मेरे घरके बाहर खड़े होकर पूछा था—"तूने अपनी किताबें जुटा लीं? मैंने कहा—'हां।' इसपर उन्होंने केवल यही कहा था—"सावधानीसे रहना- और जब जिस चीजकी जरूरत हो, मुझे लिखना--समझा।' कहकर ही मेरे पांवोंके पास नोटोंका एक बण्डल फेंककर वे चले गये थे।'

जरा चुप रहकर उसने फिर कहा—"केवल इसीसे मैं चिन्तित रहता हूं। मैंने जो दण्ड उनको दिया है, उसकी तुलनामें वे मुझे जितना और जैसा भी दण्ड देंगे, थोड़ा ही होगा।'

दिवाकरकी दोनों आंखोंसे टप्-टप् आंसू टपकने लगे। खिड़कीके साफ प्रकाशमें वे चमक उठे और किरणमयी पत्थरकी मूर्तिकी तरह चुपचाप देखती रही। क्षणभर बाद दिवाकरने कोटकी आस्तीनसे आंसू पोंछ डाले और गम्भीर स्वरसे कहा—"कल तुमने कहा था कि 'उपेन्द्र भैयाका सिर नीचा कर दूंगी'। उस रातको तुम लोगोंमें क्या बात हुई थी, [illegible] कही यह मैं अभीतक समझ न सका हूं। तुम्हारा अभिप्राय चाहे जो हो, किन्तु सिर नीचा करनेका दुःख कितना कठिन होता है, यह बात यदि तुम जानती होती

तो ऐसी बात मुँहसे भी न निकालती। इसके सिवा उनका सिर यदि नीचा हो जायगा, तो क्या इससे हम लोगोंके सिर ऊँचे रहेंगे? तुम वह चेष्टा न करो। जबतक वे स्वयं सर नीचाकर हमलोगोंकी ओर न देखें, तबतक उनका सर नीचा कर देनेकी क्षमता विधातामें भी नहीं है, आज मैं तुम्हें यह बात साफ ही बता दिया चाहता हूं।"

किन्तु कुछ भी बतलानेकी जरूरत न थी। किरणमयी स्वयं सब कुछ जानती थी, इसलिये अबतक वह मौन रहकर ध्यानसे उसकी बातें सुन रही थी। बात पूरी होते ही वह स्वप्नसे जगेकी तरह बोल बैठी— क्या तुम उनके प्रति सचमुच ऐसी भक्ति करते हो बाबू?"

भक्ति! यह कैसा अद्भुत प्रश्न है। दिवाकर हतबुद्धिकी तरह कुछ क्षण किरणमयीके चेहरेको ओर देखता रहा, फिर थ जोड़ और उनपर सिर झुकाकर धीरे-धीरे बोला—"भक्ति । उनकी सभी करते हैं।"

इसके बाद यहीं आलोचना बन्द हो गयी थी। समस्त तर्क वितर्क, वाग्वितण्डा, समाज और संसारकी भलाई-बुराई, व्यष्टि और समष्टिका अधिकार अपना और पराया सुख-दुख आदि सबका मानो एकाएक क्षणभरमें अन्त हो गया।

रातके उस मध्य भागमें ये दो प्रतिकूल प्रकृतियां अकस्मात किसी अदृश्य आकर्षणसे एक ऐसी जगह आ मिलीं, जहाँ विरोध न था, जहां बोलनेकी अपेक्षा सुनने और समझानेकी

अपेक्षा समझनेकी आकांक्षा ही प्रबल हो उठती है, जहां बुद्धि काम नहीं देती, अनुभव करना पड़ता है और जहां बोलते नहीं बनता, चुपचाप मनन करना पड़ता है। वहां जाकर दोनों हृदय लबालब भरकर स्थिर हो रहे और जिस सन्धिकी आशा इसके पहले नष्ट हो गयी थी उसका खयालकर दिवाकर मन-ही-मन दुःखित हो रहा था, वही सन्धि अपना दल-बल सब साथ लेकर किस सुनसान पथसे चुपचाप लौटकर आ विराजने लगी थी। दोनोंमें किसीका भी ध्यान इधर नहीं गया।

सवेरे नींद टूटनेपर दिवाकरने देखा, कि सोयी हुई किरणमयीका एक हाथ कलकी तरह आज भी उसकी छातीपर पड़ा हुआ है और यद्यपि वह पारिजातकी मालाका भ्रम पैदा न कर सका, तथापि वह कलकी भांति आज सर्पकी विभीषिका भी न पैदा कर सका, बल्कि उठकर बाहर आते वक्त वह उस हाथको अत्यन्त जतनसे, ममताके साथ, बिस्तरपर रख आया था।

सवेरे जिस वक्त दिवाकर बिछौनेसे उठ गया था, यह किरणमयी जान न सकी थी। इसीसे नींद टूटते ही वह दिवाकरके [illegible] थी। कल रातको बातों ही बातोंमें किरणमयी [illegible] थी। दिवाकर सचमुच कितना निस्स-[illegible] उसके लिये कितना [illegible] इससे किरणमयी निःसंशय रूपसे समझ सकी [illegible] अन्तस्तलमें जरा भी शान्ति [illegible] निर्मल सत्यवादी और सच्चरित्र युवकको

उसके जीवनके प्रारम्भमें ही विना कारण ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट कर देनेका अपराध निद्रावस्थामे भी उसे चुभता था। इसीसे नींद टूटते ही उसने नये स्नेहके साथ व्यथित चित्तसे उस निरपराध अभागेकी ओर पहले ही मुँह फेरा, पर दिवाकर नहीं था। बाहर ढूँढ़ा, पर वह दिखाई न दिया। जहाजके खलासीको बुलाकर ढूँढ़नेको कहा, पर उसे भो वह न मिला।

उसी समयसे किरणमयी उत्कण्ठाके साथ उसके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु आजकी इस उत्कण्ठामे बहुत दूरसे आयी हुई मृदु-मदिर गन्धकी तरह एक स्पष्ट आनन्दका आभास पा, उसका हृदय आनन्दसे पुलकित हो रहा था।

जिस तुच्छ दिवाकरने उससे किसी दिन प्रेम नहीं किया, जो किसी दिन मनसे प्यार नहीं कर सका, बुद्धि-विपर्ययके कारण उसीके साथ घर करना होगा ? प्रेमका अभिनय करना ।। ? जबसे वह जहाजपर चढ़ी है, तभीसे उसके मनके तारो । यह ग्लानि ठोकरें मार मारकर झंकृत कर रही है और इस ।कारको अन्तर्यामीके सिवा दूसरा कोई भी सुन नहीं सकता था।

परन्तु उस ग्लानिका यहीं अन्त नहीं था। इस बनावटी प्रेमका सूत्र एक-न-एक दिन टूटेगा ही, यह लुका-छिपी एक-न-एक दिन अत्यन्त अरुचिकर सिद्ध होगी। डाक्टर अनंगमोहनने इस बातकी शिक्षा उसे अच्छी तरह दी थी। उस बुरे दिनको उस बुरी सायतमे, घृणाकी जो फांसी उसके गलेमें धँसकर बैठ जायगी, उसे वह किस अस्त्रसे काटेगी, यह दुश्चिन्ता उसको

सोते-जागते उठते-बैठते दुःख दे रही थी। किन्तु कल अन्धेरी रातमें, उपेन्द्रके राजसिंहासनके नीचे बैठकर सन्धि-पत्रपर जब दोनोंके हस्ताक्षर हो गये, तब उसकी मानों नींद टूट गयी और इस नादान युवकके लिए करुण व्यथासे वह इधर जिस तरह व्यथित हो उठी थी, उसी तरह उधर अवश्यम्भावी घृणाकी विभीषिकासे मुक्ति पाकर वह एक लम्बी सांस भरकर शान्त भी हो गयी थी।

निर्जन कमरेमें बैठ ठंडी सांस छोड़ती हुई वह बारम्बार कहने लगी—"अब मुझे कोई डर नहीं। जिससे प्रेम न कर सकूंगी, प्यारके साथ कम-से-कम उसके मनकी कालिमा तो कुछ अंशोतक पोंछ अवश्य दे सकूंगी।" तथापि उसके मनमें एक भय होने लगा, वह यही कि यदि बादको दिवाकर अग्निका प्रलोभन सम्हाल न सके और पतंगकी तरह जल मरनेके लिये उठ खड़ा हो, तब क्या होगा? उसके रूपके आकर्षणमें कैसी जबर्दस्त शक्ति है, यह उसे मालूम था।

उसे मृत स्वामीकी बात याद आयी। वही शुष्क, कठोर, [illegible] मूर्तिमान अभिमान, जो विज्ञानकी मजबूत चहार-दीवार से अत्यन्त सावधानीके साथ दिन-रात अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करते रहते थे। उनके पास तो वह एक दिन भी न जा सकी [illegible] दिन कटते थे। लिखने-पढ़ने, रसोई बनाने, सासकी [illegible] करने, घरके काम-काज करनेमें ही दिन बीत जाता था, [illegible] विरुद्ध, आत्माके विरुद्ध लड़ाई लड़कर

नालिश-फर्यादकर, ग्लानि उगलकर और ताने मार-मारकर कमरेकी दीवारोंतकको गालियोंके जहरसे भरकर थक जानेपर किसी वक्त सो जाती, फिर सवेरा होता फिर रात आती, इस तरह महीनेपर महीने, सालपर साल बीत गये थे। कोई भिखारी भी कभी द्वारपर भीख मांगने न आया, किसी पडोसीने भी कभी नहीं पूछा कि कैसी हो? एक दिनके लिये भी सूर्यकी किरणोंने कभी उस मकानमे प्रकाश नहीं डाला, एक क्षणके लिये आकाशकी वायुने रास्ता भूलकर भी भीतर प्रवेश न किया। तब भी दस वर्ष बीत गये थे, माँ-बापकी बात तो याद नहीं आती, केवल स्मरण होता है, कि लडकपनमे कालनाके पास एक छोटे गावमे रहनेवाले दुःखित मामाके घरसे बहूके वेशमे निकल, उसने इस घरमे प्रवेश किया था। स्वामीने छोटीसी छात्रीकी तरह उसे ग्रहण किया था। उस समयसे ...ते समय तक गुरु-शिष्यका वह कठोर सम्बन्ध कभी टूटने ... पाया। स्वामीने एक दिन भी आकर नहीं किया, प्यार ... हैं या नहीं यह बात भी किसी दिन नहीं कही।

बंगला, संस्कृत, और अगरेजी पढ़ाते थे। पाठ कंठस्थ न करनेपर तिरस्कार करते थे, मारते भी थे। क्रोध या मान करने पर कभी मनाते न थे! रोते-रोते सो जानेपर किसी दिन खिलाते भी न थे, यही उसके वधू-जीवनका इतिहास है।

सासकी परीक्षा और भी कठोर थी। उनके निकट बहुत ही छोटी मामूली-सी गलतीके लिये भी क्षमा न थी। अघोरमय ने

रसोई घरकी कलछो और सँडसीसे लेकर जलती हुई लकड़ी तक का चिन्ह इस छोटी बहूकी देहमे अंकित कर दिया था। एक दिन एक अपराधके दण्ड-स्वरूप उसके सिरके सब बाल काट दिये थे। दुःख और अभिमानसे जब बहू रसोईघरके एक कोनेमे मुँह ढककर फूट-फूटकर रोने लगी तब पीठपर जलती लकड़ीसे मारकर चुप रहनेकी आज्ञा दी थी। पीठ जल गयी थी। घावके अच्छे होनेमे एक महीना लगा था।

इतने दिनों बाद आज एकाएक मानो वह घाव फिर ताजा हो आया किरणमयी कुछ क्षणके लिये चंचल हो फिर स्थिर होकर बैठ गयी।

कब किशोरावस्था पारकर उसने युवावस्थामे पाँव रखे, यह उसे याद नहीं आया। इसकी याद दिलानेके लिये कोई स्मृति अवशेष न रह गयी थी। शायद उषाकी तरह वह चुपचाप प्रभातके उज्ज्वल प्रकाशमे खिल उठी थी।

अज्ञात यौवनमे, जब शरीर सौंदर्य परिपूर्ण होने लगा तब वह गाम्भीर्यके साथ सूक्ष्म विचार करनेमे व्यस्त हो रही थी। कब उसकी किशोरावस्था पूरी हो गयी, क्यों वह गृहिणी हो गयी, यह बात एक बार भी सोचनेका उसे अवसर न मिला। [illegible] —सुख ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य है और सब उपलक्ष्यमात्र हैं। दया, धर्म पुण्य—ये सब उपलक्ष्य हैं! इस लोकका हो या परलोकका, अपना हो या पाच पंचोकी, स्वदेशका हो या विदेशका, जिस प्रकारसे सुखकी समष्टि

बढ़ाई जा सकती है, यही जीवका कर्म है, और जानकर हो या विना जाने, इसी चेष्टामें जीवका समस्त जीवन समाप्त होता है। यही एकमात्र ऐसा तुलादण्ड है, जिससे सब भले-बुरेका वजन किया जा सकता है, किरण, तुम इसे समझनेकी चेष्टा करना, कि इससे सुखकी मात्रा बढ़ती है या नहीं।"

किरणने कहा—"ठीक ऐसा ही करूंगी। किन्तु कैसे जानूंगी, कि मेरे कामोंसे लोगोंके सुखकी समिष्ट बढ़ती है? सबके निकट सुखका स्वरूप तो एक सरीखा नहीं होता?"

हारान अपनी ज्योतिहीन दृष्टिसे क्षणभर तक छतकी मैली, काली कड़ियोंकी ओर देखकर कहा करते—"टुकडे-टुकडे कर देखनेसे एक नहीं मालूम होता, किन्तु समग्रभावसे एक है। तुमको इसपर विचार करना चाहिये।"

किरणमयीके निकट सुखका कोई रूप ही सुस्पष्ट नहीं था। वह असहिष्णु होकर बोल उठती—"टुकड़े-टुकडे कर या ·· भावसे आदि शब्द केवल कहनेके ही लिये बने हैं। अपने कैसे सुख मिलता है, विशेषकर इतना ही मनुष्य समझ सकता वह भी सब समय और सब अवस्थाओंमें नहीं। जब अपने +व मे ही मनुष्य भूल सकता है, तब संसारभरकी जिम्मेदारी लेनेका जिसे साहस हो उसे हो, मुझे तो नहीं होता। उस पारके जूट-मिलवाले शायद सोचें कि यदि सम्भव हो तो काशीके सब मन्दिरोंको तोड़कर जूटकी मिलें खड़ी करनेसे मनुष्यका सुख बढ़ेगा, किन्तु क्या सब लोग ऐसा ही सोच सकते हैं?

सुख क्या चीज है यह जबतक तुम मुझे न समझा सकोगे, तबतक मैं कोई बात न सुनूँगी। यह कहकर किरणमयीको उठते देखकर हारान हाथ पकड़कर कहते थे—"जरा बैठो तो सही, तो पढ़-लिखकर भी यदि तुम इतनेमे ही नाराज हो गयी, तो सब व्यर्थ गया। देखो किरण, मैं तुमसे सच कहता हूं, सुख क्या चीज है, मुझे मालूम नहीं, किसो देशमें किसीको मालूम था, यह भी मुझे मालूम नहीं। शायद वह जाना ही नहीं जा सकता। हमारे देशमे बहुत पहले दुःख-निवृत्तिकी चेष्टा तीन प्रकारकी हुई है, उन तीनोंको अलग करनेपर जो बच रहता है, वही सुख है, कहनेसे भी काम नहीं चलता।"

किरणमयी इन बातोंको धैर्यपूर्वक सुन भी नहीं सकती थी वह अधीर होकर बोल उठती—"जब कुछ भी कहनेसे काम नहीं चलता है, तब किसीके सुखकी कल्पनाका परिहास करना जैसा असंगत है, साधारणभावसे संसारके सुखका परिमाण बढ़ाना भी वैसा ही पागलपन है। भला-बुरा तौलनेके पहले तुम्हारे तुलादण्डका ठीक होना आवश्यक है। उसे तुम किस आदर्शपर ठीक करोगे, मैं यह नहीं समझ पाती।"

हारान क्षणभर चुप रहकर कहते—"किरण, जानता हू, तुम्हारे मनकी गति किस ओर झुकी है। किन्तु जबतक तुम [illegible] आत्माकी कल्पना, ईश्वरकी कल्पना आदि इन सबोंको मनसे हटा न सकोगी, तबतक तुमको संशय रहेगा कि [illegible] सुख ही [illegible] चरम उद्देश्य है, सुखी होना ही जीवन-

किरणमयीने फिर मुस्कुराते हुए कहा—"सुबहसे अबतक कहां थे, बाबू ?"

दिवाकरने धीरेसे कहा—"नीचे।"

"नीचे ? इतनी देरतक नीचे क्यों बैठे रहे ? एक बार ऊपर आकर जरा कुछ खा-पी जानेकी भी फुर्सत नहीं मिली ?"

जवाबमे दिवाकर टकटकी बांधकर देखता रहा। मुँहसे एक शब्द भी न निकला।

किरणमयीने फिर पूछा—"हां, तो नीचे क्या करते थे ?"

उसके मुंहपर वही निर्मल स्नेहपूर्ण हास्य था, स्वरमे वहीं माधुर्य था, जिसे कलकत्तेमे आकर और पहले पहल पाकर दिवाकर कृतार्थ हो गया था। आनन्दसे उसकी आंखोंमे आंसू भर आये, पर उसने किसी तरह आंसुओंको रोककर कहा—"भाभी, नीचे एक बंगाली अपनी स्त्रीके साथ आराकान जा रहा है। वहीं उसका घर भी है।"

किरणमयीने उत्सुक होकर पूछा—"क्या कहा ?"

दिवाकरने कहा—"सच कहता हूं, वे लोग मुझे तो भले आदमी ही जान पड़ते हैं।"

किरणमयी आनन्दसे ही बोल उठी—"ऐसा हो, तो हम दोनों भी उनके घर जाकर ठहर सकते हैं, उस स्त्रीके साथ बातचीत करनेका मौका नहीं मिल सकता ?"

दिवाकरने खुश होकर कहा—'क्यों नहीं। मकानवाली भी उनसे मिलना चाहती थी।'

किरणमयीने विस्मित होकर पूछा—"मकान वाली कौन?"

दिवाकरने कामिनी दासीका संक्षिप्त परिचय देकर कहा—"हरीश बाबू अपनी स्त्रीको इसी नामसे पुकारते हैं, क्योंकि वहां उनका एक मकान भी है।"

सुनकर किरणमयी चुप हो रही; क्योंकि भाडेपर मकान देनेके कारण जो औरत मकानवाली कहलाती है, उसकी गणना अच्छे घरकी स्त्रियोंमें नहीं होती। इसीसे दिवाकर जब उसको साथ लानेके लिये तैयार हुआ, तब किरणमयीने मुस्कुराकर सन्दिग्ध भावसे पूछा—'वे भले आदमी तो हैं बाबू?"

दिवाकरने सिर हिलाकर उत्साहके साथ कहा—"हां-हां, अच्छे आदमी हैं। एक बार बातचीत करके ......

किरणमयी बोली—"नहीं, आज रहने दो और किसी दिन "

दिवाकर—"नहीं भाभी, तुम्हारे पांव पडता हूं, वह यहीं चाहती है। जब उसके घर जाकर ठहरना ही होगा तो बुला लाता हूं ....कहकर दिवाकर अधीर हो, उठ खडा। और साथ ही साथ उसकी आंख, मुंह और कंठस्वरके ... स्नेहभरी जिदने किरणमयीकी भूलको मानो आगमें तपायी हुई बर्छी बनाकर उसके हृदयको वेध दिया। उस प्रबल वेदनाकी लहर अङ्ग-अङ्गमें फैल गयी, किरणमयीने आंखोंमें आये हुए आंसुओंको छिपानेकी गरजसे मुंह घुमाकर दबी हुई आवाज में कहा—"अच्छा, तो जाओ।"

बात सच है, किसी अज्ञात-अपरिचित स्थानको जाते समय यदि कोई साथी मिल जाता है, तो बड़े सौभाग्यकी बात मानी जाती है। अन्तमें यही सोचकर शायद वह दिवाकरके आग्रहको टाल न सकी थी, किन्तु जब वह सचमुच ही उसे बुलानेके लिये जल्दी-जल्दी पांव बढ़ाता हुआ बाहर निकल गया, तो अपनी अवस्थाकी बात सोचकर किरणमयीके मनमें एक अजीब झमेला खड़ा हो गया। वह अब शीघ्र ही आ पहुंचेगी, बंगालकी स्त्री है, अवस्था प्रौढ़ है, शायद उसको आंखको धोखा न दिया जा सके। दिवाकर और मेरी उमरमें जितना अन्तर है, उतना अन्तर बंगाल समाजमें पति-पत्नीमें नहीं हुआ करता, क्या यह बात उसकी आंखोंमें खटके बिना रह सकेगी? इसी एक बातका ख्याल कर किरणमयी अत्यन्त कुण्ठित हो उठी।

शीघ्र ही दिवाकरके पीछे-पीछे वह मकानवाली आ उपस्थित हुई। उसकी ओर आंख उठाते ही किरणमयी समझ गयी कि यह भले घरकी स्त्री नहीं है। कलकत्तेमें मजूरिनका काम करनेके लिये जो स्त्रियां घूमती-फिरती हैं, यह उन्हींकी श्रेणीकी है। किरणमयीके हृदयपरसे एक बोझ सा उतर गया उसने मुस्कराते हुए कहा—"आओ बैठो।"

यह देखकर मकानवाली क्षणभर स्तब्ध हो, खड़ी रही [illegible] झुककर प्रणाम किया और दर- [illegible] कहा—"बाबूसे आपकी बात सुनकर मकान- [illegible] देवीजीको प्रणाम तो कर आ। आप बन्द-

मार्शोंके देशमें जाती हैं सही, किन्तु ऐसा कोई माका लाल नहीं जो कामिनी दासीके मकानमे तनिक भो छेड़छाड़ करे, कोई चूँ तक करेगा, तो झाड़ू मारकर उसका जहर उतार दूँगी ?" यों कह कर झाड़ूकी जगह उसने अपना हाथ ही ऊँचा उठाकर हिला दिया।

किरणमयी खुशी जाहिर करती हुई बोली—"अब निश्चिन्त हुई। नयी जगह जानेमें वास्तवमें बहुत भय मालूम होता था, हम दोनों इस विषयमें कितनी ही बाते सोच-विचार रहे थे।

मकानवालीने कहा—डर क्या है ? कामिनी दासीका मकान डक-साइडमें है। इतना सुनते ही यमराज भी रास्ता छोड देगा। वहीं चलो, तुमको कोई कष्ट न होगा। भाडा सिर्फ पाँच रुपया है, पर तुम चार ही रुपया देना। फिर बाबूकी नौकरी-चाकरी लग जानेपर देखा जातगा। और इसके ये कोई सोच न करो, बहू। मेरा मकानवाला जिस साहबको ?डेगा, वह फिर 'ना' नहीं कर सकेगा। तुम्हारे आशीर्वादसे लोग ऐसी-वैसी इज्जत नहीं रखते।" यह कह कामिनी, दासीने होंठ फैलाकर गर्दनको दाहिने-बायें हिलाया।

किरणमयीने एक लम्बी साँस भरकर कहा—"भगवान तुम लोगोंका भला करें।"

उसके चेहरेकी ओर मकानवालीकी तेज नजर पड़ी। वह देखकर बोली—"यह क्या बात है बहू। सिर ऐसा धोया है कि

मांगमें सिन्दूरका जरा चिन्ह भी न रह गया है ? सिन्दूरकी डब्बी दो, मांग भर दूं । सुहागिन स्त्रीको क्या यों रहना चाहिये ?'

किरणमयी इसके लिये सवेरेसे ही तैयार थी। बांया हाथ दिखाकर कहा—"सिर धोनेसे सिन्दूर नहीं धुला है। मेरा चढ़ाया हुआ सिन्दूर एक सालसे कालीजीके पैरोंमे बँधा हुआ है। उस साल बाबूके प्राणोंकी आशा न थी ? सिन्दूर चढ़ाकर इन चूड़ियोंकी रक्षा कर रही हूं। कहकर उसने एक लम्बी सांस ले, दिवाकरकी ओर कनखियोंसे देखा। उसका चेहरा लज्जासे बिल्कुल विवर्ण हो गया था।

"ओ ! यह बात है ?" कहकर मकानवालीने सहानुभूति प्रकट की। तो हमारे अराकानमे भी कालीजीका मन्दिर है। पहुंचते ही पूजा चढ़ाकर सिन्दूर बन्धकसे छुड़ा लेना बहू, नहीं तो [illegible] जाने कौन क्या सोचे क्या कहे। आराकान जैसी बुरी [illegible] तीनो लोकमे कहीं नहीं है। पर हमारे डरसे सभी [illegible] थरथर कांपते रहते हैं। नहीं तो · "

किरणमयीने मुस्कराते हुए कहा—'यही सब बातें तो [illegible] हो है रही। तुम लोगोंकी जितनी [illegible] सामने क्या कहूं। जबसे जहाजपर [illegible] डरके हमारे प्राण सूखे जा रहे हैं। [illegible]

[illegible] —[illegible] क्या है बहू।' कह और [illegible] अपनी नासिकाको भड़ी लगा

दी और देखते-देखते दोनोंकी घर-गृहस्थीकी, सुख-दुखकी कहानी ऐसी जमी, कि उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था, कि दस मिनट पहलेतक इन दोनोंका आपसमें परिचय तक न था।

दिवाकर आते ही पास ही कुर्सीपर बैठ गया था। किरणमयी कितनी झूठी बातें गढ़-गढ़कर बिना रुकावटके और कैसी ढिठाई और सफाईके साथ बोल सकती है, यह देख-सुनकर उसे काठ-सा मार गया। बहुत देरके बाद एकाएक मानो होशमें आकर वह बाहर जाने लगा। यह देखकर किरणमयी बोल उठी—'सारा दिन बीत गया अभीतक खाया पिया नहीं और फिर बाहर जाते हो?" जवाबमें दिवाकरने क्या कहा, सो उसने सुना भी नहीं, पर समझ गयी। किरणमयीने व्यस्त होकर कहा—'नहीं नहीं, यह न होगा। मैं अच्छी तरह जानती हूं, तुम बाहर जाओगे तो ...दी। न लौटोगे।" मकानवालीके चहरेकी ओर देखकर ...ाते हुए उसने कहा—"मेरे सास-ससुर नहीं है, इसीका ...ा दुःख है। खिलाने-पिलानेके लिये बहुत आरजू—मिन्नतें ...ी पड़ती है!" फिर कुछ रुककर मुस्कुराकर बोली—मैं ही ऐसी हूं कि जबर्दस्ती खिलापिला देती हूं, और कोई औरत होती तो इसके दिन रोते और उपास करतेही बीतते।'

दिवाकरका सिर लज्जासे एकबारगी झुक पड़ता।

मकानवाली हंसकर बोली—"हाँ बाबू, क्या इसी तरह दोनों विदेश जाकर गृहस्थी चलाओगे? किन्तु मेरे मकानमें रहकर

यह न हो सकेगा। वहूको तुम दुःख न दे सकोगे, यह मैं अभीसे बताये देती हूं।" किरणमयीके चेहरेकी ओर देखकर वह एकाएक पूछ बैठी—"बाबू शायद उमरमे तुमसे बड़े नहीं हैं, दोनोंकी उमर एक ही मालूम होती है?"

किरणमयीने सिर हिलाकर मुस्कुराते हुए कहा--"कुलीनका घर ठहरा। मैं उमरमें बडी नहीं हुई यही मेरा अहोभाग्य है। दोनों एकही उम्रके हैं। उनका जन्म वैशाखमे और मेरा जन्म आषाढ़में हुआ। यही दो महीनेकी छोटाई-बड़ाई है। पर बहुतसे लोग मुझीको उम्रमें बडी ठहराते हैं। कैसी लज्जाकी बात है।" कहकर किरणमयी मुंह बन्द कर हसने लगी।

पर मकानवालीने मुस्करानेमें उसका साथ नहीं दिया,

वहुत दूर हट गयी है, जिस किसीने उसे दो महीने पहले देखा है, उसीकी आखें यह वात अनायास वता सकती हैं।

जो मनुष्य अपनी इच्छासे निर्वासन ग्रहणकर इष्ट-मित्रोंसे रहित इस निर्जन स्थानमे अकेले रहनेके लिये आया है उसके हृदयमें सहसा वेश-भूषाके प्रति ऐसा अनुराग उत्पन्न होनेका कारण क्या है, और क्यों चिड़ियोंके गानकी जगह उसने अपनी यत्नसे रखी हुई गानेकी पुस्तके फिर वन्द पेटीके भीतरसे निकाली हैं ? सारंगी, सितार, वंशी आदि वाजे क्यों अपने-अपने अनादृत—उपेक्षित स्थान छोड़कर फिर पहलेकी तरह साफ-सुथरे होकर टेवुलपर आ जमा हुए, उसके चेहरेकी वह मलिन छाया कैसे सहसा तिरोहित हो गयी ? यह सब सोचनेकी वातें हैं।

वास्तवमें दो-तीन महीनोंके भीतर सतीशमे वहुत वडा अन्तर आ गया है। उसको पहचानना कठिन हो गया है। इस ६, परिवर्तनके कारणपर प्रकाश न डालनेसे भी काम चल त। था, परन्तु भय होता है कि कहीं संथाल परगनेकी सा।व। ५। आव-हवा अच्छी समझकर वहुतेरे नासमझ मनचले , उस ओर दौड न पड़ें। इसलिये इतना कह देना ही आव-२ ५ प्रतीत होता है, कि यद्यपि किसी ओरसे विवाहकी वात स्पष्ट रूपसे नहीं उठायी गयी है, तथापि आत्मीय-स्वजनोंके निकट सतीश-सरोजिनीके मनकी वात स्पष्ट होनेमे कुछ वाकी नहीं रह गया है।

सरोजिनीकी मां जगत्तारिणीका आग्रह ही इस विषयमें

सबसे प्रबल है, यह बात एक बरस पहले ही कलकत्तेमें मालूम हुई थी। किन्तु आग्रह और व्याकुलता सबसे अधिक होनेके कारण ही शायद सरोजिनीकी माताके मनमे इस संशयकी भी एक छाया पडी थी कि उनकी शिक्षाभिमानिनी कन्या पुराने समाज और संस्कारोको अच्छा न समझकर सतीशके साथ ब्याह करनेको राजी होगी या नहीं। हालमें जगत्तारिणी अपने मायके शान्तिपुर गयी हैं। लौटकर वे ही बात पक्की करेगी। शान्तिपुर जाते समय वे ऐसा इशारा कर गयी हैं।

सवेरे सतीश सारंगीपर नया तार चढ़ा रहा था। उसी समय बिहारीके साथ एक सज्जन भीतर आये। वह ज्योतिष बाबूके घरके एक मुनीम थे। जगत्तारिणीके साथ शान्तिपुर गये थे और उसीके साथ अब वापस आये हैं।

मुनीमने नमस्कारकर कहा—"मांजीने आज आपको निमन्त्रण दिया है। आज वहीं भोजन करना होगा।"

बात सुनकर सतीश चौंक उठा, पूछा—वे कब लौटीं ?"

मुनीमने कहा—"तीन चार दिन हुए।"

इधर प्राय एक सप्ताहसे सतीश उस ओर नहीं गया था

सतीशको निमन्त्रण भेजकर भी जगत्तारिणीने भोजनादिकी कोई व्यवस्था न की थी। कारण, वे समझती थीं कि सतीश शामको आयेगा। इस वक्त मुनीमके मुंहसे यह खबर सुनकर वे घबरायीं और कुछ नाराज भी हो उठीं।

आज एकादशी थी। उनको अपने लिये भोजनका कोई प्रबन्ध करनेकी जरूरत न थी और जो विधवा ब्राह्मणी उनकी रसोई बनाती थी, वह भी दो-तीन दिनोंसे शान्तिपुरमें ही मलेरिया ज्वरसे पीड़ित हो गयी थी।

उन्होंने बहुत झुंझलाकर मुनीमसे कहा "तुम इस वक्त निमन्त्रण देने क्यों गये? क्या बुद्धिसे कुछ भी सरोकार नहीं रखते?"

मुनीमने डरते-डरते कहा—"मैंने तो कहा नहीं, उन्होंने स्वयं इस वक्त आनेकी बात कही, फिर मैं क्या करता?"

यह सुन जगत्तारिणीने क्रोधके ही स्वरमें कहा—"अच्छी बात है, आपही जाइये और जहां भी बढ़िया मछली ले, ले आइये।"

आज सवेरेसे ही उनके नाराज रहनेका कारण था। सतीशको निमन्त्रण भेजनेके बाद ही उन्हें खबर मिली कि, कल रातको शशांकमोहन फिर आ पहुंचा है। उसके मतिचाले ढंग ढंगसे और खासकर जबसे उन्होंने सुना है कि वह सरोजिनीसे ब्याह करना चाहता है, तबसे तो वह उनकी आंखोंका शूल-सा बन गया है। कोई दस दिन पहले जब किसी बहानेसे वह कलकत्तासे गया

आया था तब जगत्तारिणीने एक प्रकारसे स्पष्ट शब्दोंमें ही कह दिया था कि उनकी कन्याके साथ उसका विवाह होना असम्भव है। तो भी वह वेहया विना बुलाये फिर आ पहुंचा है, यह सुनकर उनका मन बुरी तरह खिझला उठा। इसके सिवा यह खबर यदि कुछ देर पहले उन्हे मिल गयी होती तो शायद वे आज सतीशको निमन्त्रण ही न भेजतीं। क्यों यह खबर उन्हें पहले नहीं दी गयी, इसके लिये वे ज्योतिषसे लेकर घरके नौकरतक सबपर नाराज हो रही थीं। सरोजिनी बाहरके कमरे से किसी तरह मांकी आंखें बचाकर ऊपर जा रही थी—शशाङ्क-मोहनके आनेकी खबर उसे भी अबतक मालूम न थी। जगत्-तारिणीने उसे सिरसे पैरतक एकबार देखा और क्रोधको मनमें दबाकर कहा--"घूमना हो गया ? अब थोडी देरके लिये जूता-मोजा तो उतारो बेटी। सतीश आज यहीं भोजन करेगा, मैं स्वयं भोजन न बनाऊंगी तो वह तुम्हारे इस कृस्तानके घरमे पानी भी न पीयेगा। जाओ यह गाउन उतारकर मेरे रसोई-घरमे आओ। बूढ़ी मांको जरा मदद पहुचानेमे तुम्हारे ईसामसीह नाराज न होंगे बेटी।"

कहा—"पर तुम आकर ही क्या करोगी ? सत्रह-अठारह वर्षकी उम्र हुई, अबतक भात पकाना भी नहीं सीखा। मैं भी गरीबके घरकी लड़की न थी, किन्तु उस उम्रसे ही गृहस्थी चला रही हूं। बेचारी ब्राह्मणी (महराजिन) यदि आज चली जाये, तो मुझे भूखों मरना पड़े। जिस घरमे धर्म कर्म नहीं, उस घरमे लड़के बच्चे होना ही वृथा है।" मनके इस कठोर आशयको बहुत तीखे शब्दोंमे व्यक्त कर मुँह फुलाकर जगत्तारिणी स्वयं रसोई-घरमे गयीं। किन्तु अपने लड़के-लड़कीपर, अपने घरके आचार-व्यवहारपर क्यों उनको इतनी चिढ़ है यह बात उनके पूर्व-इतिहाससे बहुत कुछ समझमें आ जायेगी।

जगत्तारिणीके स्वर्गवासी स्वामी पारसनाथने वकालतकर बहुत सा धन पैदा किया, पर और भी अधिक धन पैदा करनेकी आशासे अधिक उम्र हो जानेपर भी जब उन्होंने बैरिस्टर बननेका सङ्कल्प किया, तब स्त्रीने रो-कलपकर, उपवासकर, सिर ...कर अनेक प्रकारसे बाधा पहुचानेकी चेष्टा की, पर उसमे ... न हो सकी। पारसनाथने उनकी एक न मानी। जगत्तारिणी, बारह वर्षके पुत्र ज्योतिष तथा छः वर्षकी कन्या सरोजिनीको घरमे छोड़, वे विलायत चले गये। पहले कई दिनोंतक जगत्तारिणी बिलकुल निराश रहीं, किन्तु पीछे धैर्य धारण कर मुनीम-गुमाश्तोंकी मददसे काम-काज संभालने लगीं। किन्तु स्वामीसे उनका जी सदाके लिये फट गया। कुछ दिन बाद पारसनाथ बैरिस्टर साहब बनकर लौट आये और आशासे

अधिक रुपया कमाने लगे। कलकत्तेमे अट्टालिका खड़ी करके नये ढंगसे घर-द्वार सजाने लगे, बेहरे-बावर्ची रखे गये; किन्तु जगत्तारिणी चुपचाप पृथक् हो रहीं, स्वामीके घरू काम-काज मे उन्होंने तनिक भी हाथ न बंटाया। इस प्रकार पति-पत्नीका विच्छेद दिन-दिन उग्र होता गया। बातचीत तो बन्द थी ही, पारस्परिक कुशल-मङ्गलकी पूछ-ताछ भी प्रायः बन्द हो गयी।

एक दिन ज्योतिषने उनके पास आकर कहा—"माँ बाबूजी मुझे विलायत भेजना चाहते हैं।'

माताको पहलेसे ही इस बातकी आशङ्का थी, उन्होंने अत्यन्त कठोर बनकर पूछा—"कब ?'

ज्योतिषने कहा—'शायद महीने दो महीनेके भीतर ही।'

मां 'अच्छा' कह, मुंहपर उदासी लाकर दूसरी ओर चली गयीं। विलायत-यात्राके दिन उन्होंने अपने कमरेका दरवाजा बंद-कर रखा, ज्योतिष बन्द दरवाजेके सामने खड़ा हो, प्रणामकर

आयी। पारसनाथने सरोजिनीको एक बोर्डिङ्ग हाउसमें रख दिया और सब काम काज छोड़कर सूने घरमें ऐसे काम करने शुरू किये जैसे कभी नहीं किये थे। जगन्तारिणी मायके में रहते हुए ही पतिके अधःपतनका सारा विवरण सुना, किन्तु बाधा देनेकी लेशमात्र चेष्टा न की। जिस स्वामीने उनको अपने समाजसे बाहर कर दिया है, उसपर जगनतारिणीके रोषका अन्त नहीं रह गया।

इसी प्रकार पांच लम्बे लम्बे वर्ष बीत गये। ज्योतिष लौट आया। मांको लाने गया, किन्तु मां अटल बनी रहीं, घर न लौटीं। रोकर बोलीं—"सब कुछ सुन चुकी हूं ज्योतिष, अब तुम लोग सुखसे रहो, किन्तु मुझे अब उस नरकमें न घसीटो। मैं वह सब न सह सकूँगी।"

ज्योतिषने कहा—"हम लोग अलग रहेंगे मा, तुमको उस घरकी छायामें भी न रहना पड़ेगा। मैं जो कमाऊँगा, उसीसे लोगोंकी गुजर-बसर हो जायगी। तुम चलो।"

बड़ी मुश्किलसे जगनतारिणी राजी हुईं; पुत्रको कलकत्तेमें ...। मकान बन्दोवस्त करनेके लिये कहकर कलकत्ते आने-की तैयारी करने लगीं। ज्योतिष यह कहकर मासे विदा हुआ, कि वह एक हफ्तेके भीतर मकानका इन्तजामकर लौट आयेगा। और उन्हें ले जायेगा। किन्तु इतनी देर न लगी। पांच ही दिन बाद वह लौट आया। किन्तु उसे नंगे पैर और शरीरपर एक शाल ओढ़े देख, जगन्तारिणी फूट-फूटकर रोने लगीं। ज्योतिष

जिस दिन लौटकर कलकत्ते पहुंचा था, उसके तीसरी रातको हो अकस्मात हृदयरोगसे पारसनाथकी मृत्यु हो गयी थी।

अत्यन्त ग्लानि होनेके कारण जगत्तारिणी एक दिन जिस घरको त्यागकर चली गयी थीं, पाच वर्ष वाद फिर रोते-रोते उसी घरमे लौट आयीं, किन्तु पतिसे भेंट न हुई।

लडकीको स्कूल छुडा घरमे ले आयीं और उसकी पहलेकी और अवकी चाल-ढालके परिवर्त्तनपर वारवार दृष्टि डालकर भय-विस्मयसे स्तब्ध हो रहीं। ज्योतिषको ओटमे बुलाकर कहा –"अव वहनका व्याह कैसे होगा वता तो सही ?"

ज्योतिप माके मनका भाव समझ गया, मुस्कुराकर बोला,—"इससे भी अधिक उम्रकी लड़कियोंका व्याह होता है, मा। तुम निश्चिन्त रहो।" जगत्तारिणी आश्चर्यसे आंखे उपर उठा कर कहा—"निश्चिन्त रहूं ? तेरे पिता जो कुछ कर गये हैं, उसका तो अव कोई उपाय रहा ही नहीं, किन्तु मैं अपने जीते-जी ब्राह्मणकी लडकी को मुसलमान या कृस्तानके हाथमे न सौंप सकूंगी चाहे लडकीका व्याह हो या न हो। तेरे लिये चिन्ता नहीं, प्रायश्चित्त कर डालनेसे काम चल सकता है इसका विधान मैं काशीके पाप से जान आयी हूं। किन्तु हजार प्रायश्चित्त करनेपर भी लडकीकी उम्र तो घटायी न जा सकेगी। इसका क्या उपाय होगा ?"

ज्योतिषने कहा–"मा, तुमको उम्र न घटानी पड़ेगी, किन्तु दो दिन सब्र करना होगा। मैं कुलीन ब्राह्मणका लड़का ला

दूँगा, तुमको मुसलमान क्रस्तानका घर ढूँढ़ते फिरना न पड़ेगा।"

जगत्तारिणीने नाराज होकर कहा—"ज्योतिष, तू अभी और सब्र करनेको कहता है?"

ज्योतिषने जवाब दिया—"माँ, इसमें मेरा तो दोष नहीं है, कि सब्र करनेकी बात कहनेसे अपराध लगे। दोष तो तुम्हारा और पिताजीका है। मैं तो विदेशमें था।"

जगत्तारिणी मन-ही-मन समझ गयी कि उसका कहना सच है किन्तु भले घरका, नेक ब्राह्मणका लड़का कहाँ और कैसे मिलेगा, यह बात उनके ध्यानमें न आयी। कहा—"जो अच्छा समझो करो, किन्तु बेटा। मैं किसी बातमें नहीं पड़ती, यह पहले ही बता देती हूँ।' कहकर हृदयपर एक भारी बोझका अनुभव करती हुई वे काम-काज करने चली गयीं।

प्रायश्चित्त करके ज्योतिषने पिताका श्राद्ध किया।

इसके कुछ ही दिन बाद पात्र मिल गया। वह विलायतसे लौटा हुआ बङ्गाली साहब था। बैरिस्टरी पास कर दो वर्ष हुए देश लौटा था।

शशांकमोहनका रंग तो देशी था, पर मिजाज बिलकुल ब्रिटिश था। वह बङ्गला शुद्ध बोलता था, अङ्गरेजीमें भूल करता था। थोड़े दिनमें ही उसका नियमित आना जाना अनियमित हो गया और सरोजिनीके प्रति उसके मनका भाव अस्पष्टसे स्पष्ट हो गया।

जगत्तारिणी पर्देकी ओटसे भावी जामाताको देखकर क्रोधसे जल भुन उठीं और उन्होंने वह गुस्सा उतारा लड़कीपर। उसको अकेलेमे बुलाकर डपटकर कहा—"तू जिस किसीके सामने वेश्याकी तरह क्यों बाहर निकल पडती है? लज्जा नहीं आती तुझे?"

सरोजिनी संकोचसे सिमटकर चुपचाप खड़ी हो रही, क्रुद्ध माता और कुछ न कह जल्दी-जल्दी कदम उठाती दूसरी तरफ चली गयीं। इसके बाद शशांकमोहन कितनी बार आया गया। पर जिसके लिये वह आता-जाता था, उसे देख न पाता था। माँ के हुक्मकी याद कर सरोजिनी सावधानीसे पर्देमे रहने लगी। ज्योतिषको यह बात खटकी। एक दिन उसने बहनसे कहा—"आजकल तू क्यो इस तरह भागी-भागी फिरती है?"

सरोजिनीने सिर नीचा कर अस्पष्ट स्वरमे कहा—'माँ' और कुछ कहना न पडा। ज्योतिष चुपचाप चला गया। उसके लिये यह एक अक्षर ही यथेष्ट था।

प्रायः दो महीने बाद शशांकमोहनकी ओरसे ज्योतिषने माँ के निकट बहिनके व्याहका प्रस्ताव उपस्थित किया, जिससे माकी फटकार खानी पड़ी।

लड़केको चुप रहते देख कर माँने कुछ नरम होकर कहा—"बेटा तू भी तो विलायत गया था, लेकिन क्या तू भी इस तरह हो गया था?"

ज्योतिषने धीरे-धीरे कहा—"माँ, सभी क्या समान होते

हैं ? किन्तु इसीसे क्या ऐसा वर हाथसे जाने देना अच्छा है ? शशांक वैरिस्टर होकर आया है, इसी बीचमें उसने अच्छा नाम भी पैदा कर लिया है। मैं नहीं समझता कि उसके साथ ब्याह होनेसे सरोजिनी बुरी जगह पड़ेगी। चाल-चलनमें जो थोडा फर्क आ गया है, यदि उसके लिये तुम माफ कर सको तो भविष्यमें भला ही होगा।"

माँने कहा—"बेटा मैं कहती हूं वह कभी न सुधरेगा। इसके अतिरिक्त विदेशमें जाकर जो विदेशी बन आता है, उसपर तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकती। बिहारमें जाकर बिहारी बन जाना काबुल जाकर काबुली बन जाना, कटक जाकर उड़िया बन जाना—भला यह भी कोई बात है ? नहीं नहीं, ज्योतिष, इसे विदा कर। वह मनुष्य नहीं, बन्दर है। बन्दरके हाथ में लड़की न सौंप सकूँगी।"

किसीके सम्बन्धमें मत प्रकट करनेमें जिस तरह जगत्-
[illegible]ीको देर नहीं लगती थी, उसी तरह उनके व्यक्त किये हुए
[illegible] लेश मात्र संशय न रहता था। इसके अतिरिक्त जिस अप-
[illegible]के कारण वे पति तकका परित्याग कर सकी थीं, वह
अपराध किसी प्रकारका प्रलोभन देनेपर भी वे क्षमा न कर सकेंगी, यह निश्चय समझ कर ज्योतिष चुपचाप चला गया। किन्तु कुछ ही देर बाद लौटकर उसने फिर कहा—"माँ, एक बात और है, उसपर तुम्हें सोच विचार करना चाहिये।"

माँने पूछा—"क्या बात है ?"

ज्योतिषने कहा—"सरोजिनीको तुम लोगोंने जैसी शिक्षा दी-दिलायी है, उसे देखते हुए बिना उसका मत लिये कोई काम करना क्या ठीक होगा? नहीं, ऐसा करना तो सबसे बुरा होगा। लड़कपनमें उसका भार तुमने अपने ऊपर नहीं लिया, विदेशी मेमोंको सौंप दिया। अब वह सयानी हो गयी। उसके मनका खिचाव किधर होगा, यह समझना कठिन नहीं है।"

जगत्तारिणी चुप रहीं।

इस बातको वे मन-ही-मन अस्वीकार न कर सकीं और खुलकर स्वीकार भी न कर सकीं।

कुछ देर मौन रहकर बोलीं—"अच्छा, तो ज्योतिष, तुम लोग अगर साहब-मेम होना चाहते हो तो जाओ, किन्तु इसके पहले मुझे काशी भेज दो! मैं जब सब कुछ सहन कर सकी हूं, तब इतना और भी सहन कर लूँगी!"

ज्योतिषने दौड़कर मांके चरणोंकी धूलि मस्तकपर चढ़ा, मुस्कराकर कहा—"तो मुझे भी काशी जाकर रहना होगा। मांको छोड़कर मैं कहां रह सकूँगा? यह तो विदेशसे लौटते ही मैंने पक्का कर लिया है।"

जगत्तारिणीने गर्दन सीधी कर उसकी ओर देखा। उनके मनकी [illegible] क्षणभरमें ही बुझकर ठण्डी हो गयी। कुछ देर [illegible] पुत्रका मुख देख, लम्बी सांस भरकर बोलीं—[illegible] मकान खाली करनेके लिये [illegible] तुम्हारे पास रहकर अपने मतके कारण

तुम लोगोंको कष्ट पहुंचाती रहूं, यह उचित नहीं, जरूरत भी नहीं।"

ज्योतिषने मुस्कुराकर कहा—"तो चलो, सभी काशीमें ही चलकर रहें।"

माता-पुत्रका उक्त कथोपकथन जिस दिन कलकत्तेके मकानमें हुआ था, उसके कुछ ही दिन बाद उपेन्द्र सतीशके साथ ज्योतिषके घर आ उपस्थित हुए थे। इसके बादकी सब घटनाएं पाठकोंको विदित ही हैं।

जगन्तारिणीने सतीशको देखा। उसके गलेपर मोटी जनेऊ पड़ी है, वह सन्ध्या-आह्निक करता है, वह मुसलमानकी छुई पांवरोटी-बिस्कुट नहीं खाता, वह रूपवान् है, निष्ठावान् है, उसके पिताके पास बहुत रुपये भी हैं, जगत्तारिणी एकबारगी मुग्ध हो गयीं। इसके बाद कई बातोंसे जब उन्होंने यह अनुभव किया कि सतीशने विलायत जाकर यद्यपि कुछ पास नहीं ... है, तथापि उसके प्रति लड़कीके मनमें अश्रद्धाका भाव ... है। शायद वह मन-ही-मन "...तबसे जगन्तारिणीकी ...में जो संशय घर किये हुए था, वह दूर हो गया और उनकी ... दिनोंकी सञ्चित वेदनाको भी सहज ही निकलनेका रास्ता मिल गया। सतीशके मुखसे 'मां' शब्द सुननेका सौभाग्य भी उन्हें प्राप्त हुआ।

किन्तु इसके बाद बहुत दिनोंतक सतीश दिखाई न दिया। पर तभीसे एक-एक दिन जगन्तारिणीके हृदयमें शूलकी भांति

गड़ने लगा। फिर भी उन्होंने स्वयं इस कामके लिये कोई रास्ता ढूँढ़ निकालनेका प्रयास नहीं किया। उनको वडा डर ा कि कहीं चेष्टा करनेपर निराशाजनक दुःसंवाद न सुनना ड़े।

वे मन-ही-मन अच्छी तरह जानती थीं कि उनकी कन्याकी राय और इच्छापर ही विवाह होना-न-होना निर्भर नहीं है। कारण, सतीशके मित्र उपेन्द्र यद्यपि इस काममें बाधा खड़ी नहीं करेंगे—वातो-ही-वातोंमे जगत्तारिणीने यह वात उपेन्द्रसे जान ली थी किन्तु उसके वृद्ध पिता अब भी जीवित हैं। इसके सिवा सतीश स्वयं विलायतसे लौटे हुए व्यक्तिकी कन्याका पाणिग्रहण करनेमे सशङ्कित हो मुंह न मोड़ेगा, इसका भी कोई विशेष निश्चय न था।

इस प्रकार बहुत दिन, वहुत दुःखों और दुश्चिन्ताओंमें विताकर सहसा जव उस दिन, उन्होंने वैद्यनाथमे आकर देखा कि सतीश बैठा बातें कर रहा है, तब उनकी आंखोंमे आनन्दके आंसू भर आये। सतीशने पास आकर प्रणाम किया और उनके चरणोंकी धूलि माथेपर चढ़ायी।

वह कलकत्ते से आकर यहां अज्ञातवास कर रहा था, सरोजिनीने अचानक उसे खोज निकाला, यह बात ज्योतिषने मां-को सुनायी। अपनी कन्यापर आयी हुई आकस्मिक विपत्तिसे छुटकारेका विवरण सुनकर उन्होंने सतीशके सिरपर हाथ फेरकर उसको असंख्य आशीर्वाद दिये और अँगरेजी सीखकर

अंगरेजोंकी नकल करनेकी बहुत शिकायतकर बोलीं--"बेटा सतीश, तुमने इस लड़कीका जो उपकार किया है उसकी तुलना नहीं हो सकती। तुम्हारे इस उपकारको कभी जीवनमें यह भूल नहीं सकेगी। किन्तु बेटा, तुम इस जंगलमें अकेले क्यों पड़े हुए हो? तुम हमारे अपने हो, जबतक हम यहां हैं, तबतक इसी घरमें आकर क्यों नहीं रहते?"

सतीशने मुस्कुराकर कहा—"अच्छी तरहसे हूं मां, मुझे वहां कोई कष्ट नहीं है।'

जगत्तारिणी बोलीं- 'कष्टकी बात मैं नहीं कहती, बेटा, अकेले रहनेमें कितनी ही विपत्तियां हैं। इस मकानमें बहुतसे कमरे खाली पड़े हैं, तुम चले आओ, यहीं आकर रहो।'

सरोजिनीने कहा -"इससे इनकी जाति चली जायेगी मा।'

जगत्तारिणी अबतक भीतरकी बातें न जानती थीं, मन-ही-मन बहुत कुढ़कर बोलीं "वाह! तू कैसी बातें कर रही है? क्यों, हम कौन हैं जो हमारे यहां रहनेसे जाति चली जायगी? नहीं बेटा तुम इसकी बातोंपर विश्वास न करो और यदि ऐसा ही होता, तो उपेन्द्र बाबू आज इतने दिन इन लोगोंके घरमें क्या रहता? क्या उसकी जाति चली गयी? नहीं, सरोजिनी! तू इस तरहकी वाहियात बातें मत बका कर।"

सरोजिनी मुंह फेरकर हंसने लगी, सतीशने कहा—"नहीं मां, जाति क्यों जायेगी? मैं तो प्रायः नित्य ही यहां आता हूं और रातको यहीं खाता-पीता भी हूं।'

यह सुनकर जगत्तारिणी प्रसन्न होकर कहने लगी—"हां, ऐसा ही कहो बेटा, यहीं आकर रहो। जबतक मैं यहां हूं तब-तक यहीं खाना पीना।" कहकर वे खानेका सामान ठीक करनेके लिये फौरन अन्यत्र चली गयीं। सरोजिनीने सतीशसे कहा—"तुमने मुझे गाना सिखानेको कहा था न?"

सतीश—"मैं तो प्रायः रोज ही यहां आता हूं सीखती क्यों नहीं?"

सरोजिनी—तुम्हारे आते ही बहुतेरे सज्जन तुम्हारा गाना सुननेको आ जुटते हैं, उस वक्त भला कैसे सीखा जा सकता है?"

सतीशने मुस्कुराकर कहा—"तो एडमिशनके लिये फाटक-पर दरवान क्यों नहीं बिठा देतीं?"

सरोजिनीने कहा—"इससे तो अच्छा यही है कि माकी बात मान लो। यहीं चले आओ। उस जङ्गलमें पड़े रहनेकी क्या जरूरत है?"

"जरूरत क्या है, यह बात किसी औरसे कही जा सकती है, पर सरोजिनीसे नहीं।" कहकर सतीश चुप हो रहा।

सरोजिनी फिर बोली—"मगर भैया कहते हैं कि वे पांच-सात दिन बाद एकबार कलकत्ते जायेंगे। उस-समय हम-लोगोंकी देख-भाल कौन करेगा?"

सतीशने पूछा—"कितने दिनके लिये जायँगे?"

सरोजिनीने कहा—"कमसे कम आठ-दस दिन उनको वहां रहना ही होगा।

सतीशने कहा—"यदि वास्तवमें उन्हें जाना ही होगा, तो इसकी भी व्यवस्था वे अवश्य ही कर जायेंगे।

सरोजिनीने मुस्कुराकर कहा—"कर जायेंगे तो ठीक ही है, नहीं तो तुम्हींको करना होगा।"

सतीशने भी मुस्कुराकर कहा—"किन्तु इतना डर ही किस बातका है? तुम लोग तो हमारे घरकी लड़कियोंकी तरह पर्दा-नशीन नहीं हो कि घरमें पुरुष न रहनेसे कठिनता पड़ेगी। बल्कि तुम लोग कितने ही पुरुषोंके—

सरोजिनीका चेहरा कुछ क्षणोंके लिये लाल हो उठा, बोली हां, हां, कह डालो। रुक क्यों गये? हम क्या करती हैं, पुरुषोंके कान काटती हैं? क्या हम हिन्दू घरकी लड़की नहीं हैं?"

सतीशने लज्जित हो, जल्दी जल्दी बातको उड़ानेके लिये मुंह ऊपर उठाते ही देखा, कि सामनेसे शशांकमोहनको लिये ज्योतिष आ रहे हैं। ज्योतिष स्टेशनकी ओर घूमने गये थे।

दिनोंकी तरह आज भी उन्होंने देखा, कि बैरिस्टर साहब क्लासके कमरेसे उतर रहे हैं।

कमरेके भीतर पांव रखते ही शशांकमोहनने जल्दीसे आगे सरोजिनीकी ओर हाथ बढ़ाकर हाथ मिलाते हुए कुशल पूछी और अपने इस प्रकार अचानक आनेकी कैफियत बिना पूछे ही दे डाली, बोले—"कलकत्तेमें मुझसे रहा न गया, क्यों कुछ भी सोचे-विचारे बिना स्टेशन पर आकर देवघरका फर्स्ट-क्लासका टिकट खरीद लिया, इसका कारण मैं खुद भी अबतक

न जान सका हूं।" इसके बाद एक कुर्सी पास खींचकर बैरिस्टर साहब बैठ गये और लगे लच्छेदार लेक्चर झाड़ने, किन्तु सरोजिनीके एकाएक पीले पड़े हुए मुँहसे दो-एक साधारण बातोंके सिवा और कोई भी बात न निकली।

कोई दस मिनट बाद सतीशको चुपचाप उठ जाते देख, शशांकमोहनकी दृष्टि उसपर पड़ी, उन्होंने जरा गरदन टेढ़ीकर सरोजिनीसे विस्मय भरे स्वरमें पूछा—"इनको कहीं देखा तो जरूर है, पर याद नहीं आता।"

सरोजिनीका पीला चेहरा चमक उठा। उसने कहा—"कह नहीं सकती, कहां देखा है?"

थोडी देर बाद जब जगत्तारिणीने खानेके लिये सतीशको बुला भेजा, तब मालूम हुआ कि वह बिना कहे-सुने ही चला गया है।

इसके बाद तीन दिन तक सतीश को न देखकर जगत्तारिणी मन-ही-मन क्रुद्ध और उद्विग्न हो उठीं। बेटेको एकान्तमें बुलाकर कड़ाईसे पूछा—"शशांक और कबतक यहां रहेगा? बल्कि मैं कहती हूं कि तुम साफ-साफ कह दो, कि यहां रहनेकी कोई जरूरत नहीं है।"

ज्योतिषने माताकी आज्ञाका पालन किस तरह किया, यह हम कह नहीं सकते, किन्तु प्रस्थान करनेके पहले शशांकमोहन स्पष्ट रूपसे जान गये कि जिसके लिये वे आते जाते हैं, उसके पानेकी आशा करना व्यर्थ है। सतीश ही वह भाग्यवान् पात्र है, यह भी उनको जानना बाकी न रहा।

साहबका चेहरा काला पड़ गया, किन्तु इस चोटको उन्होंने सभ्यतापूर्वक ही सहन किया और यहांतक, कि जाते वक्त उन्होंने सरोजिनीसे भेंटतक करनेकी चेष्टा न की।

ट्रेनपर चढ़ बिदा होनेके क्षणभर पूर्व उन्होंने अकस्मात् ज्योतिषसे पूछा—"सतीश बाबू कहीं डाक्टरी सीखते थे, सीख चुके ?"

ज्योतिषने सिर हिलाकर कहा—"शायद नहीं, किसी होमियोपैथिक स्कूलमें कुछ दिन पढ़े जरूर थे।"

"ओः होमियोपैथी स्कूलमें।" कहकर शशांकने दूसरी बात छेड़ी और गाड़ी छूटनेतक सतीशके सम्बन्धमें और कोई प्रश्न नहीं किया।

उन्हें बिदाकर ज्योतिष बड़े दुखित हृदयसे घर लौट आया। मन ही मन इस निराश प्रेमिकके असाधारण धैर्य और शिष्ट . . . भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा।

३७

सहसा भाईकी बीमारीका तार पाकर जगत्तारिणीको बड़ी शीघ्रतासे शान्तिपुर जाना पड़ा था। इसलिये सतीशके समीप प्रस्ताव पेश करनेका सुयोग उस समय न मिला। आज उसे अच्छी तरह खिला-पिलाकर बात चलायेंगी, मन-ही-मन यह संकल्प कर सवेरे उठते ही उन्होंने मुनीमको सतीशको भोजनके लिये निमन्त्रण दे आनेके लिये भेज दिया। इसी बीचमें यह घटना हो

गयी जिसकी किसीने कल्पना तक नहीं की थी। जिसका आना सबसे अधिक अखरनेवाला है वही शशांकमोहन सवेरेकी ट्रेन-से आ धमका है—सुनकर उनके रोषकी सीमा न रही। मनुष्यकी अत्यन्त ईप्सित वस्तुकी प्राप्तिमें बाधा पहुंचानेपर उसके सन्देहका ठिकाना नहीं रहता। इसलिये बाहरसे सरोजिनीको आते देखकर उनके सारे शरीरमें विषकी ज्वालासी फैल गयी और यह ख़याल पैदा हुआ कि शशांकका एकाएक फिर यों आना शायद इस हतभाग्य लड़कीके इशारेसे हुआ है। अपने बैरिस्टर लड़केका तो वे कभी पूर्णतया विश्वास ही नहीं करतीं। असलमें उन्हें भी दोष नहीं दिया जा सकता। उनके आचारभ्रष्ट बेटी-बेटे सतीशकी आचारनिष्ठाको प्रेमकी दृष्टिसे भी देख सकते हैं, इस बातपर वे पूर्ण विश्वास नहीं कर सकती थीं।

लडकीको खरी खोटी सुना, रसोईघरमें जाकर दासीको रसोईका सामान ठीक कर रखनेके लिये हुक्म देकर वे स्नान करने चली गयीं। किन्तु प्रायः घण्टे भर बाद आकर लड़कीकी ओर देख, माताकी दोनों आँखें जुड़ा गयीं। सरोजिनी इसी बीचमें स्नानकर रेशमी साडी पहन, माँके रसोई घरमें जा अनभ्यस्त हाथोंसे तरकारी सँवार रही थी और दासी पास ही बैठी बता रही थी।

जगत्तारिणीने क्षणभर चुप रहकर कहा—“ब्राह्मणकी लड़कीको इसके सिवा भला और कोई पोशाक अच्छी लगती है? बेटी तुझे देखकर इतना आनन्द मुझे और कभी नहीं हुआ।”

सरोजिनी लज्जासे सिर नीचाकर काम करने लगी। मा उसीको लक्ष्यकर व्यङ्गसे कहने लगी—"मैं सब समझती हूं बेटी सब समझती हूं। चाहे वह कितना ही पास करे, मैं उसे बन्दर- के सिवा और कुछ न कहूंगी। वह निर्लज चाहे किसीका इशा- रा पाकर फिर आये, मेरे जीते वह बात न होगी, यह मैं शपथ खाकर कहे देती हूं बेटी।"

जरा चुप रहकर फिर बोलीं— "ज्योतिष कहता है, कि लड- कपनमें जिसे जैसी शिक्षा मिलती है, उसके मनका खिचाव उसी ओर होता है, किन्तु यह बात मैं नहीं मानती। जो दिन रात हैट कोट पहने नहीं रहेगा वह पसन्द नहीं आयेगा, यह भला किस शास्त्रमें लिखा है?"

हैट, कोटकी बात किसी शास्त्रमें लिखी है या नहीं, सरो- जिनी न जानती थी। वह सिर झुकाये चुप रही।

सब समान सहेजकर जगत्तारिणी रसोई बनाने बैठी और एकबार बोलीं—मेरी मनोकामना यदि भगवान पूरी करें, तो तू देखेगी बेटी, कि उससे तेरा भला ही होगा।

सरोजिनी सिर झुकाये मांकी मनोकामनाको साफ-साफ सुननेकी आशासे कान लगाये रही, किन्तु जगत्तारिणीने उसे प्रकट नहीं किया, वे बड़ी लगनसे रसोई बनाने लगी। वे चुप- चाप मन-ही-मन क्या आलोचना करने लगीं, सरोजिनी यह म- समझ गयी और हैट-कोटधारी शशांकमोहनके सम्बन्धमें जिस लज्जाजनक अपवादका इशाराकर उन्होंने उसे बार-बार आघात

पहुंचाया, उसका प्रतिवाद करना भी कठिन न था, किन्तु अत्यन्त असहिष्णु स्वभाववाली जगत्तारिणीको कोई बात अन्ततक सुनायी नहीं जा सकती, यह सोचकर वह चुपचाप बैठी रही। दस बजेके लगभग मुनीम कहींसे खोज-खाजकर एक बहुत बड़ी रोहू मछली ले आया। जगत्तारिणीने रसोईघरसे झांककर मछली देख ली और खुश होकर बोलीं—"वाह! बड़ी अच्छी मछली है; लेकिन"

सरोजिनीने कहा—"सतीश बाबूके आनेमें अभी देर है माजी, अभी दस नहीं बजे हैं।"

जगत्तारिणीने मुस्कुराकर कहा—"बजने बजानेकी बात नहीं, आज एकादशी है, मैं तो मछली छुऊँगी नहीं? सोचती हूं कि क्या तुम्हारा रसोइया बना सकेगा? अच्छा, देख तो सुकेशी, उस घरकी रसोई कहांतक बन चुकी है?"

दासीके बाहर जाते ही सरोजिनीने शरमाते हुए धीरे धीरे कहा—"तुम बताती जाओगी तो क्या मैं न बना सकूँगी?"

जगत्तारिणीने आश्चर्यसे पूछा—"तू बना सकेगी?"

"बना सकूँगी मां। तुम केवल बतलाती जाना।"

दासी ठिठककर खड़ी रह गयी। ऐसी पुष्ट, बढ़िया मछली अनजानके हाथमें पड़कर खराब न हो जाय—इस आशंकासे वह डर गयी, बोली—नहीं, ऐसा करना क्या ठीक न होगा? अगर खराब हो गयी तो?"

जगत्तारिणी न मालूम क्या सोचती रही, फिर बोली "स-

तीश कुछ बाहरी आदमी तो है ही नहीं। वह हमारे घरका ही तो लड़का है। सुकेशी, तू खड़ी मत रह, उधरके चूल्हेको अच्छी तरह लीप-पोतकर मछली काट ला। और बेटी, तू एक काम कर। रेशमी साड़ी पहने तो सुविधा न होगी। अच्छा—रहने दे, आंचल को अच्छी तरह कमरमें लपेट ले।" मुस्कुराकर कहा—"आज मछली पकानेसे तेरी पाक-विद्याका श्री गणेश होता है, आशीर्वाद करती हूँ, आजके दिन तू हमेशा मछली ही पकाया करे*।

इस आशीर्वादसे सरोजिनीने मुँह और भी नीचा कर लिया। प्रायः घंटे भर बाद किसी कामसे ज्योतिष मांके निकट रसोई-घरके दरवाजेके पास आकर आश्चर्यसे देखने लगा। अच्छी तरह देखकर कहा—"कौन रसोई बनाती है मां, सरोजिनी है क्या ?

मांने जरा हँसकर कहा—"देख तो सही, पहचान सकता है या नहीं ?"

"बात तो कुछ ऐसी ही है, मां! पर क्या वह सचमुच ही बनाती है, या तुम जबरदस्ती उसके गलेमें ढोल बांध दो ?

मांने कहा—"रसोई बनानेका काम क्या हिन्दूकी लड़की को सीखना पड़ता है? यह तो हम जनमते ही सीख लेती हैं। लेकिन ....

"लेकिन क्या।"

---

*एकादशी के दिन मछली पकानेका अर्थ बंगालमें चिरसधवा या सदा सुहागिन बनी रहनेका है।

बेटेको जरा ओटमें ले जाकर जगत्तारिणीने कहा—"लेकिन चिन्ता इस बातकी है, कि सतीश यदि सुन लेगा तो उसके हाथका बनाया खायेगा या नहीं?"

ज्योतिषके हँसकर उठते ही सरोजिनी मुँह ऊपर उठाकर देखा। ज्योतिषने कहा—"मां, तुम सतीशको सचमुच मनु या पराशर समझती हो क्या?"

माने कहा—"पर वह तुम लोगोंसे तो अच्छा है?"

ज्योतिषने कहा—"क्या अच्छा है, जरा यह भी तो सुनूँ। उस रातको सरोजिनी ही तो भात-दाल बना आयी थी, नहीं तो बच्चूको उपवास ही करना पड़ता—कुछ जानती भी हो?"

मांने पुलकित चित्तसे विस्मय व्यग्र होकर पूछा—"कब-कब?"

ज्योतिषने उस रातकी सारी घटना विस्तारपूर्वक कह सुनायी। सुनकर उन्होंने आनन्दसे विह्वल हो, अनुरोधके स्वरमें बेटीसे कहा—"धन्य है बेटी तू, मैं कबसे सोचकर मर रही हूँ और तू चुप है?"

ज्योतिषने मुस्कुराकर कहा—"उसे क्या मालूम कि तुम मन-ही-मन चिन्ताकर मरी जा रही हो। किन्तु उस दिन तो मैं खा नहीं सका था। आज खाकर देखूँगा कि बिना शिक्षा पाये इसने रसोई बनानेकी कला कैसे सीख ली है।" यों कहकर ज्योतिष दूसरी ओर चला गया।

जगत्तारिणीने लड़कीके लज्जासे झुके हुए मुँहकी ओर ताककर

बड़े प्रेमसे कहा—"शर्मातीं क्या है बेटी, आत्मीय-स्वजनोंको रसोई बनाकर खिलायेगी, इससे अधिक सौभाग्यकी बात स्त्री-जातिके लिए और हो ही क्या सकती है। मैं तबतक पूजा कर आती हूँ"—कहकर कुछ क्षणके लिये वे बाहर चली गयीं।

इसके बाद सारा दिन बीत गया, किन्तु सतीशके दर्शन न हुए। न आनेका कारण भी किसीने आकर नहीं बताया। जगत्तारिणी दिनभर व्याकुलताके साथ उसकी प्रतीक्षा करती रहीं। सांझ होनेपर ज्योतिषको बुलाकर कहा—"हो-न-हो उसकी तबीयत कुछ खराब हो गयी है। किसीको उसकी खबर लेने क्यों नहीं भेज दिया?"

ज्योतिषने लापरवाहीके साथ जवाब दिया—"किसको उतनी दूर भेजने जाऊँ माँ!"

जगत्तारिणीने आश्चर्यसे पूछा—"क्यों, क्या दरवान एक नहीं जा सकता?"

"जरूरत क्या है?"

"तू कहता क्या है ज्योतिष? उसकी तबीयत ठीक है या नहीं, एक बार खबर तो लेनी चाहिये थी?"

"परन्तु इसकी जरूरत क्या है? वह हम लोगोंका न तो आत्मीय-स्वजन या नाते रिश्तेदार ही है और न कोई हित-मित्र ही है। इसीसे उसके लिये इतनी चिन्ताकर मरनेकी कोई जरूरत मैं नहीं समझता।" कहकर ज्योतिष बाहर चला गया।

सतीशके सम्बन्धमे लड़केके मुँहसे ऐसा जवाब सुनकर जगत्तारिणी हताश हो गयीं।

इतनी ही देरमें सतीश उनका कोई नहीं! उनके मुँहपर लड़केका ऐसा कोरा जवाब उनको दुःखस्वप्नकी तरह मालूम हुआ। वे उसी जगह काठकी पुतलीकी तरह खड़ी हो रहीं। कुछ ही देरमे उनके उपवाससे कमजोर दिमागमे कितनी ही लहरे हिलोरे दे-देकर चली गयीं, पर वे इस विषयमे कुछ निश्चय न कर सकीं।

धीरे-धीरे ऊपर जा, अपनी चारपाईपर लेट रही और सरोजिनीको बुला, उसके चेहरेकी ओर देखकर और भी डर सी गयीं। दीपकके धुँधले प्रकाशमें भी उन्होंने साफ देखा कि उसके चेहरे पर मानो किसीने स्याही पोत दी है। जरा देर चुप रहकर बोलीं —"सरोजिनी, सतीश क्यों नहीं आया, जानती है?"

सरोजिनीने कहा—"नहीं।"

कन्याके इस मुख्तसर जवाबसे जगत्तारिणी उठ बैठीं, बोलीं —"नही जानती तो आदमी भेजकर जाननेमें क्या हुआ था? यह भी क्या मेरे ही कहनेकी बात थी?"

सरोजिनीने धीरेसे कहा—"भैयाने कहा है, कि आदमी भेजनेकी जरूरत नहीं है।"

"क्यो जरूरत नहीं, यही मैं जानना चाहती हूं। जाओ अभी दरबानको भेज दो, उसकी खबर ले आवे।"

"वह नहीं है माँ, भैयाने उपेन्द्र बाबूको तार देनेके लिये उसे तार घर भेजा है।

"उपेन्द्र बाबूको ! एकाएक उनको तार क्यों देना पड़ा ?"

"मां, मैं सब बातें नहीं जानती, तुम भैयासे ही पूछो।" कह कर सरोजिनी मांकी एक प्रकारसे उपेक्षाकर दूसरी तरफ चली गयी। उसके जाते ही जगत्तारिणीके मनमें एकाएक यह खयाल पैदा हुआ कि सतीशको आनेके लिये अवश्य मना कर दिया गया है। इसका कारण क्या है, यह उनसे कोई प्रकट करना भले ही न चाहे, किन्तु कोई विशेष कारण अवश्य है। इस भीषण अनिष्टका मूल शशाकमोहन है और इसी दुरभिसन्धिको साथ लेकर वह फिर यहां आया है, इसमें उन्हें कोई सन्देह न रहा। किन्तु कारण चाहे कैसा हो भयानक क्यों न हो, उनके मौजूद रहते लड़के-लड़कीने उनकी आज्ञा लिये बिना चुपकेसे सतीशको आनेके लिये मना कर दिया है, यह खयाल करते हो उनका हृदय क्रोधसे भर गया।

उन्होंने फौरन सुकेशीकी मारफत ज्योतिषको बुलाकर कहा "सतीशको आनेके लिये मना कर दिया है ?"

ज्योतिषने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"नहीं पर यह तुमसे कहा किसने ?"

"सतीशके सम्बन्धमें तूने उपेन्द्रको तार भेजा है ?"

"हां।"

"क्यों ? सतीशने क्या किया है ?"

ज्योतिष जरा चुप रहकर बोला—"जो किया है, वह यदि सत्य हो तो उसके साथ हमलोगोंका कुछ भी सम्बन्ध नहीं।"

"तुझे यह खबर किसने दी, शशांकमोहनने ? वह दुष्ट है नीच है, उसकी बातोंका मैं तिलमात्र भी विश्वास नहीं करती।"

ज्योतिषने कहा, मैं विश्वास करता हूं, किन्तु उनकी यदि आधी बात भी सच्ची हो, तो मैं कहता हूं मां, कि सतीशकी छायासे भी घृणा करनी चाहिये।"

लड़केकी गरम बात सुनकर जगत्तारिणीने नरम होकर कहा—"अच्छा, मुझसे साफ-साफ बताता क्यों नहीं है। बेटा। क्या हुआ है ? सतीशने कोई चोरी-डाकेजनी भी नहीं की, खून खराबी करके भाग नहीं आया, कि उसकी छायासे भी तुम्हें घृणा करनी होगी ? जवान लड़का है, मनकी भूलसे शायद कुछ दोष उसने किया ही हो—कितने ही लोग तो ऐसा करते हैं—पर सुधरते क्या देर लगती है ?"

ज्योतिषने सिर हिलाकर कहा—"नहीं मां वे सब अपराध माफ नहीं किये जा सकते और कोई चाहे करे भी, पर सरोजिनी न कर सकेगी, यह मैं तुमसे निश्चय पूर्वक कहता हूं।"

जगत्तारिणी जरा सोचकर बोली—"मगर क्या अपराध किया है, कुछ सुनूं भी तो ?"

"कल सुनना मां। उपेन्द्रकी चिट्ठी न पाने तक इस आलोचनाकी जरूरत नहीं।" इतना कहकर ज्योतिष दुबारा सुननेके पहले ही कमरेसे बाहर चला गया।

इतनी देर जोशमें आकर जगत्तारिणी बिस्तरपर बैठी हुई थी, लड़केके चले जानेपर एकबारगी निर्जीवकी तरह लेट रहीं।

लम्बी सांस भरकर बोलीं—"भगवान! इस कलिकालमें तुमने किसीको भी विश्वास करने योग्य नहीं रखा?"

बातों और इशारोंसे वे बहुत कुछ अनुमान कर सकी थीं, यहां केवल सतीशके लिये नहीं, स्वामीकी बातें याद करके भी उनकी दोनों आंखोंसे आंसू बहने लगे।

रातमें एकबार लड़कीको बुला भेजा था, किन्तु सुकुशीने सरोजिनीकी आहट न पा, लौटकर कहा कि जीजी सो गयी हैं।

उन्होंने दोनों हाथोंसे सिर पीटकर मनमें कहा, जो लड़की ऐसी बुरी खबर सुनकर भी निश्चिन्त हो बेखबर सो सकती है, वह सतीशकी अपेक्षा मन-ही-मन उस बन्दरको अधिक पक्षपातिनी है, अब इसमें सन्देहको गुंजाइश नहीं रही। लड़कीके प्रति उनके क्रोध और क्षोभका अन्त न रहा।

दूसरे दिन तीन बजे फाटकके एक किनारे साइकिल रोक कर सतीशने बाहरके बैठकखानेमें प्रवेश किया।

सतीशके सूखे मुंह मैले रूखे बालोंने सबकी दृष्टि आकर्षित की। सरोजिनीने सिर उठाकर देखा, किन्तु कुछ बोली नहीं।

ज्योतिषने पूछा—"क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं है, सतीश बाबू?"

सतीशने जरा मुस्करानेकी चेष्टा करके कहा—"नहीं।"

पर सबके सब चुप हो रहे, कोई कुछ न बोला, यह देखकर सतीश मन-ही-मन विस्मित हुआ। वह सोचता हुआ आ रहा था कि आज उपस्थित होते ही मुझ पर भांति-भांतिके दोष आरो-

पित किये जायेंगे! इसीसे उसने उस समय घरमें भीतरकी ओर पैर बढ़ाकर स्वयं कहा—"मैं कलके अपराधके लिये पहले माँसे माफी माँग आता हूँ, पीछे और बातें होंगी।"

शशाङ्क अबतक तेज नजरोंसे सतीशकी ओर देख रहा था, वह बोला—"माँ इस समय सोयी हुई है, उनको जगाकर माफी मागनेकी इतनी जल्दी क्या पड़ी है? जरा बैठिये, आपके साथ कुछ बातें करनी हैं।

उसकी बातोंके ढंगसे सतीशने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—"मेरे साथ? कैसी बात है?"

शशाङ्कने कहा—"इच्छा न होनेपर भी कहनी ही पड़ेगी। ज्योतिषकी ओर उँगली उठा करके सतीशसे कहा—"आप जरूर जानते हैं—मैं इनका एक परम बन्धु हूँ। नहीं-नहीं, ज्योतिष बाबू आप उठे क्यों? आपके चले जानेसे कैसे काम चलेगा? अपनी फरियाद आप लोगोंके सामने ही करना चाहता हूँ। आप दोनों ही बैठिये",—कहकर उसने सरोजिनीकी ओर कनखियों-से देखा, किन्तु सरोजिनी इस तरह सिर झुकाये बैठी थी, कि उसने कुछ देखा ही नहीं।

शशाङ्कने सामनेकी मेजपर हाथ पटकते हुए कहा—"मेरा बचपनसे ही यह स्वभाव है, जिनसे प्रेम रखता हूं उनके सम्बन्धमें किसी तरह भी आँखें मूँदकर उदासीन नहीं रह सकता। इसीसे कल इनका गुप्त वृत्तान्त सुनकर मन-ही-मन कहा था, यह तो अच्छी बात नहीं है। सतीश बाबूके इस निर्जन-वास-

की खबर लेनी ही पड़ेगी। आप शायद नाराज होंगे सतीश बाबू, किन्तु मैं तो अपने स्वभावके विरुद्ध चल नहीं सकता। क्या कहते हैं ज्योतिष बाबू ?"

ज्योतिष सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। सतीश भी चुपचाप ताकता रहा।

सब श्रोताओंकी निःशब्दताके बीच शशाङ्ककी उत्तेजनाका वेग आप ही कम पड़ गया। उसने अपेक्षाकृत संयत कण्ठसे कहा—"ज्योतिष मेरे परम बन्धु हैं, इसलिये आपसे कुछ पूछनेका मुझे अधिकार है। आप तो जानते हैं⋯"

बीचमें ही सतीश सिर हिलाकर बोला—"नहीं, मैं बन्धुत्वकी बात कुछ भी नहीं जानता। यह बताइये कि आपका प्रश्न क्या है ?"

शशाङ्कने कण्ठको गीला करके कहा—"आप यहां क्यों आये हैं, यह मैं जानना चाहता हूं ?"

सतीशने कहा—"मेरी इच्छा, क्या आप कुछ और पूछना चाहते हैं ?"

कुछ कुण्ठित हो, ज्योतिषके मुंहकी ओर देखकर शशाङ्क कहने लगा—"सतीश बाबूका कलकत्तेका डेरा खोजनेमें मुझे कितना कष्ट उठाना पड़ा है, यह मैं आपसे क्या कहूं ? राखाल बाबूको आप जानते हैं, उन्होंने कहा है ⋯" सतीशकी दोनों आंखें अँगारेकी तरह जल उठीं, कहा—"जहन्नुममें जायं राखाल बाबू ! आप अपनी बात कहिये।"

इस बार ज्योतिषने सिर उठाकर कहा—"सतीश बाबू, शशाङ्क मेरे ही अनुरोधसे आपसे ये बातें पूछते हैं। आपकी इच्छा न हो तो जवाब न भी दे सकते हैं, किन्तु उनका अपमान न करें। हम लोगोंके साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसे देखते आपसे कोई भी बात पूछनेकी जरूरत न थी, केवल मांके कारण ही आपके अपने मुंहसे एक बार सुन लेनेकी जरूरत जान पड़ी। अच्छा मैं ही पूछता हूं, सावित्री कौन है? और उसके साथ आपका कैसा सम्बन्ध है?"

सतीश कुछ क्षण चुपचाप देखता रहा अनन्तर बोला—"सावित्री कौन है, यह मैं नहीं जानता ज्योतिष बाबू, और उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है. उसका उत्तर देनेकी मैं जरूरत नहीं समझता।"

क्यो?

"इसलिये कि कहनेसे भी आप लोग न समझ सकेंगे।"

किन्तु जैसे भी हो, हमलोगोको समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छा उसे कहा लाकर रखा है, यह बता देनेसे ही शायद हम समझ जायेंगे।"

सतीशने ज्योतिषकी ओर जलती आंखोकी टकटकी लगा, शान्त कण्ठसे कहा—"ज्योतिष बाबू, मैंने किसी दिन मिन्नत कर आप लोगोंके साथ घनिष्टता करनेकी चेष्टा नहीं की, और [illegible] ने अप्रिय वाद-विवाद करनेकी भी जरूरत नहीं समझता! मैं समझ गया हूं कि बात क्या है। इसलिये आप-

लोगोंको जितना जाननेकी जरूरत है, उतना मैं खुद बतलाता हूं। सावित्री कहाँ गयी, यह मुझे मालूम नहीं। यह आप क्यों जानना चाहते हैं? ये सब बातें बिलकुल अनावश्यक हैं। फिर भी, यह बात खूब सच्ची है कि सावित्री चाहे कोई हो, यदि अपनी इच्छासे वह मुझे छोड़कर चली न जाती, तो मैं जबतक जीता उसे अपने सिर-आँखोंपर रखता, यह बात आप लोगोंके ही सामने नहीं, समस्त संसारके सामने स्वीकार करनेमें मुझे लज्जा नहीं मालूम होती। आशा करता हूँ, अब और कुछ आप लोगोंको पूछना नहीं है। हो भी तो मैं जवाब नहीं दे सकता।"

सतीशका ऐसा स्पष्ट और अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर सुनकर सभी एक साथ टकटकी लगा, उसकी ओर देखते हुए पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह बैठे रह गये। सरोजिनीके आगे ही सतीशकी इस अमानुषिक हृदयहीन स्पर्द्धाने उसकी असीम निर्लज्जताको बहुत पीछे छोड़कर मानो आकस्मिक वज्राघातकी तरह सबके होश-हवास गायब कर दिये। बहुत देरतक स्तम्भितकी तरह बैठे रहकर ज्योतिषने बड़े चेष्टासे अपनेको सम्भाल, सिर हिलाकर कहा "नहीं, हम लोगोंको अब आपसे और कुछ पूछना नहीं है। जो कुछ था, उपेन्द्रके जवाबसे वह पूरा हो गया है।" इतना कह उसने लिफाफेसे तार निकालकर सतीशके आगे फेंक दिया।

"उपेन्द्र भैयाका तार है, कहाँ है देखूं।" कहकर सतीश ने व्यग्र हाथोंसे कागज उठा लिया। सब पढ़कर कागज वापस दे दिया और कुछ क्षण चुप रहा। इसके बाद एक लम्बी साँस

लेकर बोला—"सब सच है, मेरे उपेन्द्र भैया कभो झूठ नहीं बोलते, सचमुच ही मैं अच्छा आदमी नहीं हूँ। यथार्थमें ही मेरे साथ किसीको किसी तरहका सम्पर्क रखना उचित नहीं। शायद मैंने भी यह बात स्वयं सोची थी। इसीसे इस जङ्गलमें इस तरह एक दिन भाग आया था।" कहते-कहते मानो किसी मन्त्र-बलसे उसका कंठ आर्द्र हो आया और उसका कंठस्वर गद्‌गद हो गया। किन्तु किसीने कोई बात नहीं कही और सतीश स्वयं भी स्तब्ध हो बैठा रहा। किन्तु फिर तुरन्त ही फटी छातीकी एक लम्बी सांसके साथ उसे जान पड़ा, कि एक बहुत बड़ी जटिल समस्याकी आज विचित्र मीमांसा हो गयी। कल सवेरे जगत्तारिणीका निमंत्रण मिलनेके साथ-साथ कितनी ही चिन्ताएँ मनमें पैदा हुई थीं। सरोजिनीके हृदयको पानेकी लालसा एकाएक कब उसके अन्तःकरणमें पहले पहल जग उठी थी, वह उसे इस वक्त याद नहीं आता था, किन्तु अन्तःकरणमें गुप्त रीतिसे उसकी आकांक्षा तो मौजूद ही थी। परन्तु ऐसा हुआ क्योंकर? यह अमृत किस समुद्रको मथनेसे पैदा हुआ? और मैं विरोधी समाजके शासनमें यह अमृत लेकर क्या करूँगा, कहां रखूँगा, कैसे ग्रहण करूँगा, कैसे इस मथित समुद्रको शान्त करूँगा, बहुत दिनोंसे यह चिन्ता भीतर-ही भीतर मुझे क्यों पीड़ित कर रही थी? सावित्रीको खोते समय मैंने इस बातका पता लगा लिया था, कि किसी रमणीका मन पाना एक बात है, किन्तु उसका व्यवहार कर सकना दूसरी बात है। पानेकी क्रिया जब नर-

नारियोंके गुप्त हृदयमें छिपे-छिपे पूरी हो जाती है, तब बाहरवाले उसकी आहट नहीं पाते, परन्तु जिस दिन पानेवाला उसके सर्वथा अधीन हो जाता है, उसे जताये बिना—उसकी सम्मति लिये बिना, एक पांव भी वह आगे नहीं बढ सकता, दिन बड़ा ही दुःखद होता है। ऐसी वस्तुका पाना कितना कठिन है, बाहरके लोग इसका विचार नहीं करते। यह रत्न कितना दुर्लभ है, बाहरके लोगोंका इस ओर कभी ध्यान भी नहीं जाता। वे केवल शास्त्र, समाज और लोकाचार लेकर कोलाहल करते-फिरते हैं, बाधा देते हैं, हो-हल्ला करते हैं, मानों ऐसा करना उनके लिये परम आवश्यक है। यदि सरोजिनीको पानेकी उत्कट वासना सतीशके हृदयमें उत्पन्न न हुई होती, तो यह चिन्ता उसके मनमें शूलकी तरह आकर क्यों विद्ध होती ?"

जिसको प्रेम किया है, उसकी प्रतिष्ठा अपने किस श्रेष्ठ स्थानमें करूंगा, इस विषयमें किसीसे वाद-विवाद नहीं करना चाहिये था ; किन्तु जो समाज प्रतिकूल है, जो समाज मुझे नहीं चाहता, वह किस प्रलोभनसे सूईकी नोकके बराबर जगह भी मुझे देनेके लिये राजी होगा ?

कल भी वृद्ध पिताका चिन्तित मुख बार-बार याद आता था। उपेन्द्र भैयाके घरके भट्टाचार्य महाशयका रूखा-रूखा, तीव्र स्वर हजारों बार मेरे कानोंमें आकर बिंध गया था, मुहल्ले भरके शत्रु-मित्रोंका सिर हिलाना मेरे हृत्पिण्डपर बहुत बार धक्का मार गया था, तब भी इस विरोधी जगत्‌के सब लोगोंको सम्मिलित

अस्वीकृति और अपमानजनक व्यवहारोंके बीचमें केवल सरोजनी-का मौन लज्जानत मुख ही मुझे सबल-सतेज बनाये हुए था।

किन्तु आज अब मुझे कोई भय नहीं रहा। एक ही दिनमें अचिन्तनीय उपायोंसे सब गाँठें खुल गयीं; सब दुश्चिन्ताएँ दूर हो गयीं आफ़त टल गयी!

इन बातोंको सोचते-सोचते उसने चौंककर आँखें उठाकर देखा, सभी ठीक उसी तरह सिर नीचा किये चुपचाप बैठे हैं। सरोजिनीके मुँहकी ओर उसने आशाभरी आँखोंसे देखा, पर उससे कोई भाव प्रकट होता दिखाई न दिया। तब उसीको सम्बोधन कर उसने कहा,—"आप मेरे कलकत्तावाले घरमें जाकर एक दिन जिसकी साड़ी सूखनेके लिये फैलायी हुई देख आयी थीं, उसीका नाम सावित्री है। मैंने सोचा था, कि एक दिन स्वयं सब बातें आपको सुनाऊंगा, किन्तु किसी दिन वह सुयोग न मिला वैसा साहस भी न हुआ।"

वह उठ खड़ा हुआ, बोला—"ज्योतिष बाबू दोष मेरा है, यह मैं जानता था। इसीसे मेरे मनमें अशान्ति थी।" फिर जरा ठहरकर बोला—"मैंने किसी विषयमें किसीको धोखा नहीं दिया है। धोकेधड़ीसे मेरा कोई वास्ता नहीं है। बस, मुझे अब कुछ कहना नहीं है।"

ज्योतिषने मुँह ऊपर उठाकर कुछ कहना चाहा, किन्तु उसके मुँहसे कोई बात न निकली।

सतीशने भी एक लम्बी साँसको रोककर कहा—"मैं जात

हूँ, मेरा एक अनुरोध है। मेरी बातोंकी आलोचना कर आप लोग मन खराब न कीजियेगा। मैं कभी किसी बहानेसे आप लोगोंके सामने फिर न आऊंगा। आप लोग मुझे भूल जाइयेगा।" यह कहकर वह धीरे-धीरे बाहर हो गया।

ज्योतिषने बगलकी ओर डरते हुए देखा कि सरोजिनीका सिर बिलकुल उसके घुटनेके पास, झुक पड़ा है। सरोजिनी, सरोजिनी।" कहकर उसके चिल्ला उठते ही सरोजिनीकी ढीली मुट्ठियां कुरसीकी बांहसे अलग हो गयीं और वह नीचे दरीपर मूर्छित होकर गिर पड़ी।

अभिमान और अपमानके क्रोधसे ज्योतिषकी बुद्धिपर ऐसा पर्दा पड़ गया था कि उसे इस बातका जरा भी खयाल न था कि सरोजिनीके आगे सतीशका विदा होना उसे कैसा कठिन आघात पहुंचायेगा।

इसीसे बहुत देरकी सुश्रूषाके बाद सरोजिनी होशमें आ, कांपती और तलमलाती हुई अपने कमरेमें चली गयी, तब ज्योतिषके सिरपर मानो एकबारगी वज्र घहरा पड़ा।

बहनको वह केवल प्राणोंसे अधिक प्यार ही नहीं करता था, बल्कि अपनी सर्वाङ्ग-सुन्दरी, लावण्यमयी, शिक्षिता बहनके आत्ममर्य्यादा-ज्ञानपर भी उसे पूरा विश्वास था। किन्तु भीतर ही भीतर वह इतना प्रेम कर सकती है, अपने समस्त गुण-गौरवोंको भूल कर ऐसे चरित्रहीन लम्पटके पैरोंमें सब कुछ न्योछावरकर, होश-हवास गवांकर, सूखी घासकी तरह गिर पड़

सकती है, इसकी स्वप्नमें भी कभी उसने आशंका नहीं की थी। और उसके चेहरेपर व्यथाका जो चित्र अंकित हो गया था, वह व्यथा कितनी गहरी है, इसका निरूपण करनेकी शक्ति उसमें न थी; तथापि वह बहुत देरतक जड़की तरह बैठा रह गया। अनन्तर शशांकमोहनकी ओर देखकर बोला—"आप शायद आज ही रातकी गाड़ीसे कलकत्ते लौट जायँगे।"

शशांकने कहा—"नहीं, वहाँ, वैसा कोई जरूरी काम नहीं है।

ज्योतिषने और कोई प्रश्न न किया। वह उठकर भीतर चला गया, और अपने कमरेमें जा, दरवाजे बन्दकर लेट रहा। उस रातको शशांकमोहनको अकेले ही बैठकर भोजन करना पड़ा। कारण ज्योतिषकी आहट न मिली।

जगत्तारिणीने एक एककर सब बातें बेटेके मुँहसे सुनी वे गहरी सांस ले, बहुत देरतक स्तब्ध हो रहीं। अनन्तर बोलीं, "ज्योतिष, यह सब मेरे ही फूटे नसीबका फेर है।" अपने मरे हुए स्वामीका स्मरणकर उन्होंने कहा—"जब उनके रहते ही मैं जिन्दगीभर जलती-झुलसती रही तब फिर अबका तो कहना ही क्या है? तुम लोगोंके कारण यदि जलना न पड़ा, तो पापका पूरा प्रायश्चित्त ही कहाँ हुआ? अच्छा बेटा तुम्हें जो पसन्द हो, उसीके साथ इसका ब्याह कर दो। मैं अब कुछ न बोलूँगी इतना कहकर और एक लम्बी सांस भरकर बोली—"इसीसे एकाएक इसके आनेकी बात सुनकर उस दिन मेरा कलेजा धड़क उठा था।"

किन्तु ज्योतिषने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मन-ही-मन अच्छी तरह समझ गया था, कि यह काम ऐसा सहज नहीं है। इसलिये जो कुछ हो गया, वह हो गया—यों कहकर उपेक्षा करने और आँख मूंदकर बैठे रहनेसे काम न चलेगा। शायद किसी दिन इस चरित्रहीन के पास स्वयं मुझे जाना पड़ेगा। और उसे समझा-बुझाकर लौटा लाना पड़ेगा।

कल दिनभर उसने सरोजिनीको एक बार भी घरके बाहर आते नहीं देखा। आज शामको चाय पीनेके लिये बाहरके कमरे-में पैर रखते ही उसने देखा कि वह पहले ही से वहां आकर बैठी हुई है और शशांकमोहनसे धीरे-धीरे बातें कर रही है।

ज्योतिष पास आ, एक कुर्सी खींचकर चुपचाप बैठ गया। यद्यपि बहनके उतरे हुए चेहरेको देखकर उसे कुछ समझना बाकी न रहा तथापि उसकी छाती परसे मानो भारी बोझ हट गया।

चाय पीनेके बाद भी कुछ देरतक बहुत सी बातें हुईं, किन्तु दिनकी किसीने कोई चर्चा नहीं की। शामके बाद बहनको बहुत कुछ निश्चिन्त-सी देखकर ज्योतिषने सोचा कि उस दिन की घटनासे मैंने जैसा कुछ अनुमान किया था, बात वहांतक नहीं पहुंची है। मेरी धारणा गलत थी। सम्भवतः थोड़े ही दिनोंमें फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।

उस रातको बड़ी देरतक दोनों मित्रोंमें बातचीत होती रही। यहांतक कि ज्योतिषने अपनी आशाकी बात भी इशारेसे

जाहिर करनेमें कोई कसर न रखी।

सरोजिनी अपने आन्तरिक प्रेमके प्राथमिक थपेड़ेकी चोट संभाल लेनेके बाद सतीशके घृणित आचरणके साथ मन-ही-मन शशाङ्कमोहनकी तुलना अवश्य करेगी, इस बातपर दोनों एक प्रकारसे सहमत हो गये।

दूसरे दिन दोपहरको खाने-पीनेके बाद सरोजिनी अपने ऊपरवाले सोनेके कमरेमें खुली खिड़कीके सामने एक कुर्सीपर बैठ रास्तेकी ओर देख रही थी। सहसा मालूम हुआ कि कुछ दूरपर सामानसे लदी एक बैलगाडीके पीछे-पीछे दो आदमी छाते लगाये हुए चले आरहे हैं, उनमेसे एक बिहारी है। सरोजिनी सावधानीसे खिड़कीकी छड़ पकड़कर खड़ी हो गयी। गाडी धीरे-धीरे उसकी खिड़कीके सामने आ पहुंची और एक आदमी ने सिर ऊपर उठाकर खिडकीकी ओर देखा। देखते ही स्पष्ट मालूम हो गया, कि वह बिहारी है। सरोजिनीने हाथके इशारे-से उसे बुलाया। बिहारी अपने साथीको आगे चलनेके लिये कह छाता बन्दकर खिडकीके नीचे आ खड़ा हुआ। सरोजिनीने कहा—“बिहारी दरवाजेके पास ही सीढी है, ऊपर चले आओ।” उस समय सब लोग सो रहे थे। बिहारी फौरन सीढ़ीकी राहसे सरोजिनीके कमरेमें पहुंचा और उसे प्रणाम कर उसके पावोंकी धूल मुण्ड और मस्तकपर लगायी।

सरोजिनीने मन-ही मन उसे आशीर्वाद देकर कहा—“तुम लोगोंको तो गाड़ी रातको ग्यारह बजेके बाद मिलेगी अभी

वहुत वक्त है। रसोइया भी तो साथमें है, वह कुलीसे सामान उतरवाकर रखवा लेगा, तुम जरा वैठो। विना पूछे ही सरोजिनी समझ गयी थी कि सतीश यहाँसे कहीं अन्यत्र जा रहा है।

विहारी अपने दुपट्टेके छोरसे माथेका पसीना पोछ, चटाई पर वैठ गया।

सरोजिनी कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली,—"विहारी, तुम तो ब्राह्मणके आगे कभी झूठ नही बोलते।"

विहारी दाँतों तले जीभ दवाकर कहा—"ऐसा करनेसे क्या मेरा उद्धार होगा? सात जन्म काशीवास करनेपर भी पाप न छूटेगा।

सरोजिनीने स्निग्ध दृष्टिसे उस देहाती, धर्मभीरु वृद्धके चेहरेकी ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा—"यह तो जानती हूं विहारी कि तुम कभी झूठ नही वोलते। किन्तु म जो कुछ [illegible]ंगी, वह तुम किसीसे कहोगे तो नही?"

विहारीने कहा—"वहन, मुझे किसीसे कहनेकी क्या जरू- है।

सरोजिनीने रूखे कण्ठको गीला करके पूछा—"अच्छा, [illegible] कौन है विहारी?"

विहारीने सरोजिनीके मुहकी ओर देखकर कहा—"सावित्री, हमारी सावित्री? मैंने उन्हे वरावर अपनी कन्याकी तरह जाना है और माताकी तरह उसका आदर मान किया है। क्या तुम उन्हींकी वात पूछती हो वहन? आह! नहीं, जानना, वे किस

शापसे पृथ्वीमे जन्म लेकर इतना दुःख पाती है ? अहा, वे साक्षात लक्ष्मी स्वरूपा है ।"

वहुत दिन हुए, विहारीको सावित्रीका नाम लेनेका भी अवसर न मिला था। उसका नाम स्मरण करते ही विहारीका कंठ गद्गद हो गया, आँखोंमे आँसू भर आये।

सावित्रीका नाम सुनते ही उसकी यह अवस्था होती देख, सरोजिनी विस्मित हो गयी।

विहारी हाथसे आँखें पोंछकर वोला—"मेरी माई सावित्री जिस दिन राखाल वावूके मेसमे नौकरी करने आयी थी, उन्हें देखकर सव लोग अवाक् हो गये थे। एक स्वर्गीय प्रसन्नता उनके चेहरेपर सदा अठखेलियाँ करती रहती थी। राखाल वावू मैनेजर थे, मैं नौकर था, किन्तु माई सावित्रीके पास सव सामान थे— सवको वे सामान भावसे देखती थीं। एकादशीके दिन निराहार रहती थीं, पर कभी उनका मुँह सूखा नहीं देखा।"

वुड्ढा मानो हृदयके पूर्ण उच्छ्वाससे वातें कर रहा था इसीसे उसकी इस सच्ची भक्तिके वेगके आगे सरोजिनी मुग्ध हो गयी और उसकी ईर्ष्याकी ज्वाला भी मानो गलकर आधी ठण्डी पड़ गयी। विहारी कहने लगा—"वहन, शास्त्रमें लिखा है, कि लक्ष्मीजी एक वार किसी अपराधके कारण नारायणकी आज्ञासे दासीवृत्ति करनेको विवश हुई थीं, मेरी सावित्री भी वैसे ही किसी अपराधके कारण नौकरी करने आयी थीं, और नानाप्रकारके दुःख सहकर अन्तमें चली भी गयीं। जिस दिन गयीं,

वह दिन मेरे कलेजेके अन्दर आज भी मानो गुथा हुआ है ।"

सरोजिनीने धीरे-धीरे पूछा—"वे अब कहां है विहारी ?"

विहारीने इस प्रश्नका सहसा उत्तर नहीं दिया, मुंह ताकता चुप रहा ।

सरोजिनीने फिर पूछा—"क्या मालूम नहीं है, विहारी ?"

विहारीने इस वार सिर हिलाकर कहा—"ठीक ठीक मालूम नहीं है, लेकिन तो भी कुछ जानता हूं । किन्तु वह बात बतानेके लिये उन्होंने ही मना कर दिया है कैसे बताऊं ?"

सरोजिनीने पूछा—"क्यों मना किया ?"

क्यों मना किया, यह बात विहारीके लिये भी एक समस्या थी ; इस विषयमें वह बहुत कुछ सोचता, पर किसी निश्चयपर पहुंच नहीं पाता था । फिर भी इस निषेधको मानकर सदा ...ना, सावित्री कैसी है और कैसे जीवन बिता रही है, इसका ... भी पता न चलना, एक वार फिर आंखों देख न पाना, यह ...य विहारीके लिये कितना दुस्सह था, इसे वह स्वयं जानता ... । खासकर जब सतीश किसी बातमें सावित्रीके ऊपर व्यर्थका आक्षेप करता था तब सब बातें खोलकर कह देनेके लिये उसके मनमें आवेगोंका तूफान उठ खड़ा होता था, किन्तु बूढ़ेने आजतक सावित्रीकी दी हुई कसम नहीं तोड़ी, सतीशको उसका असली हाल नहीं बताया । यदि किसी दिन असह्य मालूम हुआ है, तो उसने वारम्बार इसी बातका स्मरण किया है, कि

सावित्री जब निरापराधीनी होकर भी इतना बड़ा कलंक चुप-चाप सह रही है, तब निश्चय ही इसके भीतर कोई विशेष बात है, जो उसकी समझमें नहीं आती। सावित्रीपर उसका अटल विश्वास था—अविचल श्रद्धा थी। किन्तु एक परम स्नेह-भाजन बालिका जब सब बातें जाननेके लिये उत्सुकता प्रकट करने लगी तब वह भी सब कुछ कहनेके लिये अकुला उठा। कुछ क्षण चुप रहकर बोला—"बता सकता हूँ, बहन! यदि तुम मेरे बाबूसे न कहो।"

सरोजिनी मन-ही-मन बहुत चकरायी। बिहारी जानता है और सतीश नहीं जनता और उसीसे कहनेके लिये सावित्रीका निषेध है, इसका क्या कारण है, वह कुछ समझ न सकी। बोली—"नहीं बिहारी, मैं किसीसे न कहूँगी, तुम बताओ।"

बिहारी थोडी देर चुप रहकर और शायद यह सोचकर कि इससे झूठ बोलनेका पाप तो नहीं लगेगा, धीरे-धीरे कहने लगा। डाक्टरी पढ़नेके लिये कलकत्ते जाकर सतीश जब पहले पहल राखाल बाबूके मेसमे ठहरा था, तबसे लेकर इस निर्जन स्थानमें आकर रहनेतकका सारा इतिहास उसने सुना दिया।

सावित्री सतीशको प्राणोसे अधिक प्यार करती थी, इसी कारण राखालने जलकर झगड़ा किया था और उसीने सतीश को मेस छोड़नेके लिये बाध्य किया था, सतीश कभी-कभी शराब भी पीता था, इत्यादि कोई भी बात बिहारीने सरोजिनी-से न छिपाई।

वह दिन मेरे कलेजेके अन्दर आज भी मानों गुथा हुआ है ।"

सरोजिनीने धीरे-धीरे पूछा—"वे अब कहां है बिहारी ?"

विहारीने इस प्रश्नका सहसा उत्तर नहीं दिया, मुंह ताकता चुप रहा ।

सरोजिनीने फिर पूछा—"क्या मालूम नहीं है, बिहारी ?"

बिहारीने इस बार सिर हिलाकर कहा—"ठीक ठीक मालूम नहीं है, लेकिन तो भी कुछ जानता हूं । किन्तु वह बात बतानेके लिये उन्होंने ही मना कर दिया है कैसे बताऊं ?"

सरोजिनीने पूछा—"क्यों मना किया ?"

क्यों मना किया, यह बात बिहारीके लिये भी एक समस्या थी ; इस विषयमें वह बहुत कुछ सोचता, पर किसी निश्चयपर पहुंच नहो पाता था । फिर भी इस निषेधको मानकर सदा चलना, सावित्री कैसी है और कैसे जीवन बिता रही है, इसका ५७ भी पता न चलना, एक बार फिर आंखों देख न पाना, यह सब बिहारीके लिये कितना दुस्सह था, इसे वह स्वयं जानता था । खासकर जब सतीश किसी बातमें सावित्रीके ऊपर व्यर्थका आक्षेप करता था तब सब बातें खोलकर कह देनेके लिये उसके मनमें आवेगोंका तूफान उठ खड़ा होता था, किन्तु बूढ़ेने आजतक सावित्रीकी दी हुई कसम नहीं तोड़ी, सतीशको उसका असली हाल नहीं बताया । यदि किसी दिन असह्य मालूम हुआ है, तो उसने बारम्बार इसी बातका स्मरण किया है, कि

सावित्री जब निरापराधीनी होकर भी इतना बडा कलंक चुप-चाप सह रही है, तब निश्चय ही इसके भीतर कोई विशेष बात है, जो उसकी समझमें नहीं आती। सावित्रीपर उसका अटल विश्वास था—अविचल श्रद्धा थी। किन्तु एक परम स्नेह-भाजन बालिका जब सब बातें जाननेके लिये उत्सुकता प्रकट करने लगी तब वह भी सब कुछ कहनेके लिये अकुला उठा। कुछ क्षण चुप रहकर बोला--"बता सकता हूँ, बहन। यदि तुम मेरे बाबूसे न कहो।"

सरोजिनी मन-ही-मन बहुत चकरायी। बिहारी जानता है और सतीश नहीं जनता और उसीसे कहनेके लिये सावित्रीका निषेध है, इसका क्या कारण है, वह कुछ समझ न सकी। बोली—"नहीं बिहारी, मैं किसीसे न कहूँगी, तुम बताओ।"

बिहारी थोडी देर चुप रहकर और शायद यह सोचकर कि इससे झूठ बोलनेका पाप तो नहीं लगेगा, धीरे-धीरे कहने लगा। डाक्टरी पढनेके लिये कलकत्ते जाकर सतीश जब पहले पहल राखाल बाबूके मेसमे ठहरा था, तबसे लेकर इस निर्जन स्थानमें आकर रहनेतकका सारा इतिहास उसने सुना दिया।

सावित्री सतीशको प्राणोंसे अधिक प्यार करती थी, इसी कारण राखालने जलकर झगडा किया था और उसीने सतीश को मेस छोडनेके लिये बाध्य किया था, सतीश कभी-कभी शराब भी पीता था, इत्यादि कोई भी बात बिहारीने सरोजिनी-से न छिपायी।

सरोजिनी मन्त्रमुग्धकी तरह सब कुछ सुनती रही। शायद ऐसे एकाग्र चित्तसे, ऐसे ध्यानसे और किसीने कभी किसीकी बातें नहीं सुनी होंगी। राखाल नामक जिस आदमीसे शशाङ्क-मोहनने सतीशके सम्बन्धमें कुछ बात जानी थीं, संयोगवश उस व्यक्तिका इतिहास भी आज सरोजिनीको मालूम हो गया।

सावित्रीका घर कहां है, उसके मायके या ससुरालवालोंका परिचय क्या है, ये बातें यद्यपि बिहारीको मालूम न थीं, किन्तु उसने बार-बार कहा—"ब्राह्मणकी लड़की हैं, विधवा हैं' सुन्दरी हैं, लिखना-पढ़ना जानती हैं, केवल किस्मत फूट जानेसे नौकरी करने आयी थीं।" यह बात बार-बार कहकर वह बोला—"बाबू उन्हें इतना प्यार करते थे, तो भी उनसे ऐसे डरते थे, जैसे बाघसे बकरी डरती है। शराब पीकर मेसमें उनको आनेका साहस न होता था। विपिन नामका बाबूका आवारा दोस्त था, उसके साथ मिलकर गाते बजाते थे एक बुरी जगहसे जाते-आते थे, यह खबर माईजीके कानमें पड़ते ही उनका वहां जाना एकबारगी बन्द हो गया। ऐसा साहस न हुआ, कि सावित्री माईकी बातकाटकर उस जगह जाते।" यह कहकर बिहारीने गर्वपूर्वक सरोजिनीके चेहरेकी ओर देखा।

सतीशके ऊपर एक स्त्रीके ऐसे बड़े अधिकारकी खबर सरोजिकी छातीमें शूलकी तरह गड़ गयी. तथापि उसने धीरे-धीरे पूछा—"अच्छा बिहारी, सतीश बाबूको उससे इतना

डरनेकी जरूरत क्या थी ?" इसके उत्तरमें बिहारीने कहा - "वे बडी तेजस्विनी थीं। केवल मेरे बाबू ही नहीं, मेस भरके लोग भीतर-ही-भीतर उनसे डरते थे। जिस दिन वे उस मेससे चली गयीं, उस दिन बाबूने कहींसे शराब पीकर शराबकी बोतल बगलमें दबाये घरमें घुसते ही ज्योंही सुना, कि सावित्री घरमें ही हैं, मारे डरके उन्होंने त्योंही शराबकी बोतल बाहर फेंक दी। उनके सिवा क्या और कोई बाबूको काबूसे ला सकेगा ?"

सरोजिनी कुछ क्षण चुप रहनेके बाद बोली "सतीश बाबू क्या अब भी शराब पीते हैं, बिहारी ?"

बिहारीने सिर हिलाकर कहा—"नही। किन्तु फिर शुरू करनेमें कितनी देर लगेगी ? पिछले दो दिनोंसे यही सोच रहा हू, कि इस दुस्समयमें यदि मेरी सावित्री माई एक बार आ जाती तो बडा अच्छा होता।"

सरोजिनीने उत्सुक होकर पूछा—"क्यों बिहारी, ऐसा क्यों सोच रहे हो ?',

बिहारीने कहा "मैं बहुत दिनोंसे देखता आता हूँ कि मन खराब होनेपर ही बाबू शराब पीना आरम्भ करते हैं। एक उपेन्द्र बाबूसे डरते थे, पर न मालूम उनके साथ भी क्या हो गया है। उस दिन रातको घरसे घुसते ही उनकी नजर सावित्रीपर पडी और वे उसी दम लौट गये। इसके बादसे कोई किसीका नाम नहीं लेता। अब तुम्हीं बताओ बहन, कि उनके सिवा बाबूको और कौन सम्भाल सकता है ?"

जरा ठहरकर विहारी फिर कहने लगा—"वीमारीकी खबर पाकर वावूने वे पांच छः दिन किस तरह विताये हैं, यह तो मैंने अपनी आंखों देखा है। परसों नींद खुलनेके साथ तारसे खबर पाते ही मुँह ढंककर जो चारपाईपर पड़े सो दिनभर पडे ही रहे। इसके वाद रातकी गाड़ीसे घर चले गये। मुझे केवल यही कह गये, कि "विहारी, तू सव चीज-वस्त लेकर घर चले आना"

सरजिनीने घवड़ाकर पूछा—"कौन वीमार है, विहारी?"

विहारीने आश्चर्यमें आकर कहा—"यहांसे जाते समय क्या वावू तुम लोगोंसे कुछ कह नहीं गये वहन?"

सरोजिनीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं। कौन वीमार है?"

विहारीने लम्बी सास लेकर कहा—"तो भूलसे सीधे चले गये हैं, इस घरमें नहीं आये। जिस दिन सवेरे निमन्त्रणमें यहां ` ` वात थी, उसी दिन घरसे चिट्ठी आयी कि उनके वाप ` र हैं। इसीसे खाने न आ सके। तार देकर दिनभर खुद ` ` ` खडे रहे, किन्तु खवर न आयी। इसके वाद परसों सवेरे आखिरी खवर आयी। रातको गाडीसे वावू घर चले गये।

सरोजिनी चौंक उठी—"सतीश वावूके वाप मर गये?"

विहारीने कहा—"हां वहन।"

"क्या वीमारी थी?"

"वहुत उम्र हो गयी थी, किसी साधारण वीमारीके वहानेसे

प्राण निकल गये !” कहकर विहारीने आंखें पोंछकर कहा—“और किसी बात लिये दुःख नहीं करता बहन ! चिन्ता सिर्फ इस बातकी है कि बापकी मृत्युसे बाबूकी अपना कहनेके लिये और कोई न रह गया। इसीसे दो दिनसे यही चिन्ता करता हूं, अबसे वे क्या करने लगेंगे, यह मा दुर्गा ही जानें”। कहकर बुड्ढेने दुपट्टेके छोरसे फिर एक बार दोनों सजल नेत्रोंको अच्छी तरह पोंछ डाला। सरोजिनीको अपनी आंखोंमें भी मानो आंसू भर आये। उसने कहा—“इस समयसे सतीश बाबू चाहें तो अच्छे भी हो सकते हैं, बुरी राह पकड़ लेंगे, यह डर तुम्हें क्यों है बिहारी ?”

बिहारी अनमना-सा होकर कहा—“क्या मालूम ?” इसके बाद सिर उठाकर बोला—“तुम्हारे मुंहमें घी-मिश्री पड़े बहन ! बाबू सच्चरित्र ही हों—और किसी बुरी ओर उनकी मति-गति न हो। किन्तु जाते वक्त गाड़ीपर चढ़कर कहा था, जाने दो, एक प्रकारसे रक्षा ही हुई, संसारमें अब किसीके लिये भावना-चिन्ता न करनी होगी। तुमसे सच कहती हूं बहन, जबसे यह बात सुनी है, तभी से छातीके भीतर बारम्बार घबराहट-सी पैदा होती है। अब हाथमें बेहिसाब धन आ जायगा। बाबू संगी-साथी भी अच्छे नहीं हैं। बुरे रास्तेपर चलनेसे अब कौन उन्हें रोकेगा ? सिर्फ वे ही रोक सकती हैं।” कहकर विहारीने मानो सिर एक बार सरोजिनीकी छातीमें गरम भाला भोंककर दोनों हाथ मिलाकर दे पटके।

सरोजिनीने आघात सहकर मृदुकठसे कहा—"तो विहारी, उनको आनेके लिये चिट्ठी क्यों नहीं लिख देते ?"

विहारी बोला—"पता तो मालूम नहीं है। यदि एक बार काशी जा सकता, तो जैसे होता पता लगाकर लौटा लाता, किन्तु मुझे तो वैसी सुविधा नहीं। बाबूको अकेले छोड जानेको दिल नहीं चाहता। इसके सिवा, मैं कभी काशी गया नहीं, उस शहरकी कुछ भी जानकारी मुझे नहीं है, कहकर उसने निरुपायकी तरह सरोजिनीके मुँहकी ओर देखा। उसकी उस दृष्टिसे यह बात साफ-साफ समझमें आ जाती थी कि यह परम हितैषी वृद्ध नौकर मालिककी अवश्यम्भावि अमंगलकी आशंकासे उद्विग्न होकर सरोजिनीसे आश्वासन पानेकी प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु सरोजिनीने उसे कोई सान्त्वना नहीं दी, वह केवल चुप रही।

"अच्छा, तो अब जाता हूं।" कहकर विहारीने उसके पावों तले माथा टेककर प्रणाम किया और कमरेसे बाहर निकल गया। किन्तु फिर उसी क्षण वह सहसा लौट पड़ा और हाथ जोडकर सामने आ खड़ा हुआ।

"क्या है विहारी ?"—सरोजिनीने पूछा।

"एक विन्ती करूं।"

सरोजिनीने बडे कष्टसे सूखे होठोंपर मुस्कुराहट लाकर कहा—"क्या है ?"

विहारीने उसी तरह हाथ जोड़े हुए करुण कंठसे कहा—"मैं

गंवार बेवकूफ ग्वाला हूँ, फिर भी बुड्ढा हूँ'। इतनी बातें करनेमें न जाने क्या-क्या गलतियां मैंने की हैं, यदि कोई कटुवचन कहा हो तो माफ करेगी।"

सरोजिनीकी आंखोंमें जल आ गया। किन्तु प्राणपणसे उसे रोकर उसने कहा -"अच्छा।"

उसके मुंहसे एक मात्र 'अच्छा' शब्द सुनकर मानो बिहारी का भय जाता रहा। यद्यपि उसने गंवार, बेवकूफ आदि शब्दोंसे अपनी बुद्धि-हीनताका परिचय दिया तथापि वह निर्बोध न था। सरोजिनीने सावित्रीकी बातें पूछनेके लिये क्यों रास्तेसे बुलाया था, क्यों उसने इतने ध्यान पूर्वक उसकी बातें सुनी—इन बातोंका अर्थ एक-बारगी अब उसकी समझमें स्पष्टरूपसे आ गया। उसके मनकी बात पहले न समझकर इतनी देरसे उसने इस तरुणीको जो मर्म-पीडा पहुचायी उसके लिये उसे बहुत ही पछतावा हुआ। इस बार बिहारीने बहुत ही करुण कंठसे कहा, "मैं समझता हूं, तुम्हारी बातोंको बाबू कभी उपेक्षा न कर सकेंगे। तुम भी इच्छा करनेपर असमयमें बाबूकी रक्षाकर सकती हो मा। किन्तु मेरा मन कहता है, तुमने उनको त्याग दिया है।

बिहारीने यही पहले-पहल सरोजिनीको 'मा' कहकर सम्बोधन किया। मा कहकर काम निकालनेका ढंग बूढा खूब जानता था। सरोजिनीके आंसु अब न रुक सके। दोनों आंखें आंसुओंमें डूब गयीं और बुड्ढेके सामने ही आसुओंकी बडी-बडी बूंदें टप-

करने लगीं। किन्तु शीघ्र ही उन्हें पोंछकर सरोजिनीने कहा—"नहीं बिहारी, मुझसे कुछ न होगा— मैं अब उनकी बातोंमें नहीं पड़ती।

बिहारीने सिर हिलाकर कहा—"मैं तुम्हारा सेवक हूं। उनसे जो कुछ अपराध हुआ हो, उसे मैं अपनी भूल मानता हूं।" कहकर फिर सरोजिनीके पावोंकी धूल माथेपर लगाकर बोला—"किन्तु तुम तो मेरे बाबूको जानती हो। इस विपत्तिके समयमें क्रोध करके-रोष करके तुम उनको मार डालोगी, और इसे मैं अपनी आंखों देखता रहूंगा? यह मुझसे न हो सकेगा।

सरोजिनीका सारा रोष मिट गया, उसका हृदय मोमकी तरह पिघल गया, वह सतीशको क्षमा करनेके लिये एक बार तैयार हो गयी, किन्तु साथ ही साथ बूढ़ेके मुंहसे सुनी हुई सावित्रीके सम्बन्धकी बातें उसे याद हो आयीं। और उसका द्रवित चित्त पलक मारते ही फिर सूखकर काठ हो गया। उसने सिर हिला धीरज धरकर कठोर स्वरसे कहा—"नहीं बिहारी, तुम डरो नहीं, सावित्रीके आ जाते ही सब कुछ ठीक हो जायगा। किन्तु मेरे द्वारा तुम लोगोंका कोई उपकार न होगा।"

बिहारीको उससे ऐसा निष्ठुर प्रत्युत्तर सुननेकी आशा न थी। अपने सर्वविजयी प्रेमके निकट यह शुष्क कंठस्वर उसे ऐसा कठिन मालूम हुआ, कि कुछ क्षणके लिये वह विह्वलकी तरह केवल चुपचाप देखता रह गया। इसके बाद और कुछ न कहकर वह एक बार फिर सरोजिनीको प्रणामकर धीरे-धीरे घरसे बाहर निकल गया।

३८

घर पहुंचकर सतीशने मनमें कहा—"पिताजी मर गये हैं, इस समय मुझे मान-अभिमान करना शोभा नहीं देता।" वह उपेन्द्रके घर जाकर पुकारने लगा—"उपेन्द्र भैया, उपेन्द्र भैया!"

महेश्वरी भंडार-घरमे थी। सतीशका कण्ठस्वर सुन, बाहर आ, उसके पिताकी मृत्युका स्मरण कर रोने लगीं। सतीश भी मुंह फिराकर आंखें पोंछने लगा।

बहुत देरतक बहुतेरे आंसू बहाकर सतीशके स्वर्गगत पिताका यश गाया। शान्त होनेपर सतीश ने पूछा—"उपेन्द्र भैया कहां हैं?"

महेश्वरीने रुंधे हुए स्वरसे कहा—"वह यहां नहीं है।"

सतीशने पूछा कहां गये हैं? कब लौटेंगे?'

महेश्वरीने जरा विस्मित होकर कहा—"क्या तुमने नहीं सुना है? छोटी बहूकी बीमारी बहुत बढ़ गयी है न, कविराज कहते हैं कि यक्ष्मा है, आज तीन दिन हुए उपेन्द्र उसको लेकर पहाड़पर गया है। यहां तो बीमारी घटनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया, यदि पहाड़की आबहवासे कुछ आराम हो तो हो, किन्तु आशा अधिक नहीं है।"

यह खबर सुनकर सतीश स्तम्भित हो रहा। छोटी बहूको यक्ष्मा हो गया है—बचनेकी आशा नहीं है। उसके मनमें मानो एक तूफान-सा बह गया।

सुरबालाके न बचनेसे उपेन्द्र भैयाका भविष्य जीवन कैसा हो जायगा, इसकी प्रत्येक घटना बायस्कोपकी भाँति उसकी मानसिक दृष्टिमें नाचने लगी।

महेश्वरी कहने लगीं—"पन्द्रह दिनके लिये मायके गयी थी, वहींसे न मालूम क्या रोग ले आयी, गृहस्थी एकबारगी नष्ट कर दी। फिर भी अभागिनी यदि पहले ही बता देती, तो कुछ उम्मीद भी होती। महीना डेढ़ महीनातक रोगको छिपाकर अन्तमें यह सर्वनाश किया है

सतीशने अचम्भेमे आकर कहा—उपेन्द्र भैयाको भी मालूम नहीं हुआ ?"

महेश्वरीने कहा—"नही। ज्वरकी बात तो वह बिलकुल ही छिपाये रही। करीब दस दिन हुए उसकी चोरी एकाएक पकडी गयी।' इतना कहकर वह फिर आँसू बहाने लगीं।

सतीशने कहा—"उनके साथ शायद दिवाकर भी गया है ?"

महेश्वरीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, कोई नहीं गया। दिवाकर कलकत्तेमें ही पढ़ता है। उसको शायद बीमारीकी खबरतक नहीं मिली है। सतीश, तू तो जानता ही है, उपेन्द्र सदासे हठी स्वभावका है। छूतकी बीमारी बताकर वह मुझे भी साथ नहीं ले गया। मैं विधवा हूँ, मेरे प्राणोंका मूल्य ही क्या ? फिर भी मुझे दूर रख, उसकी सेवासुश्रूषा अब अकेला ही करता है। जो होना था, वह हो चुका, अब उपेन्द्रकी चिन्तासे मुझे

खाना-पीना नहीं सुहाता। कहीं वह भी बीमार न हो जाये। हर घड़ी यही सोचती हूं॥"

सतीश जब उपेन्द्रके घरसे निकलकर रास्तेपर आया, तब उसका मन बहुत विकल हो गया था। लड़कपनसे वह हमेशा अपने उपेन्द्र भैयाकी विपत्तिका आधा भार अपने बलिष्ठ कन्धों-पर ढोता आ रहा था, कभी इसमे त्रुटि नहीं होने दी थी। आज भी महेश्वरीके मुँहसे उसकी इस घोर विपत्तिका समाचार सुन-कर अभ्यासवश उसने सोचा कि उपेन्द्र भैयाके पास जाकर इस विपत्तिमे हाथ बटावे, किन्तु उसी क्षण उसे ठिठककर स्मरण करना पडा, कि यह नहीं हो सकता। कारण भारीसे भारी संकटके समय भी उपेन्द्र भैयाके न्याय-अन्यायका मानदण्ड बाल बराबर भी न डिगेगा। एक बार जब उन्होंने मेरा सम्पर्क बुरा समझकर त्याग दिया है, तब किसी भी सुविधाके प्रलोभनसे पुन. ग्रहण नहीं करेंगे।

इसके अतिरिक्त संक्रामक रोग होनेसे जब उन्होंने दिवाकर-तकको खबर नहीं दी. महेश्वरीको भी साथ लेना उचित नहीं समझा. विपत्तिका सब भार जब स्वयं उठानेको तैयार हुए हैं, तब सतीशके सम्बन्धमे भी वे अपना संकल्प नहीं बदलेंगे। यह बात सतीशसे बढकर दूसरा कौन जान सकता है? उसे उपेन्द्र के पास जानेका कोई मार्ग दिखाई न दिया। किन्तु उसका पितृ-शोकातुर मन अपनी बीमार भाभीका स्मरण कर अनिष्टकी आ-शङ्कासे भीतर-ही-भीतर व्याकुल हो रोने लगा—तड़पने लगा।

रास्ता चलते-चलते उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानों उसके किसी महापापके कारण उसकी देहमें कलिने प्रवेश किया है। वह तो सावधान होकर रहना चाहता है, पर कहीं जाकर भी वह सुख शान्ति नहीं पाता। अपने हाथसे अपनी छातीमें भाला मार, सावित्रीसे अपना सारा सम्बन्ध तोड़कर, कलकत्तेका पहला मेस छोड़कर दूसरे घरमें रहने लगा। बहुत दिनों तक कोई खबर न मिली, बल्कि जिसे सावित्री प्यार करती है, उसके साथ वह यथेष्ट सुखसे दिन बिता रही है, यह खयालकर जब वह सब भावनाओं और वासनाओंको समूल नष्टकर एक प्रकारसे त्यागके आनन्दका उपभोग कर रहा था, ऐसे ही समयमें खोटे ग्रहकी भाँति न जाने कहाँसे सावित्री अचानक उस दिन आ उपस्थित हुई। वह दिन उसके लिये एकदम घातक सिद्ध हुआ। उपेन्द्रनाथ जैसे उसके सबसे बड़े मित्र और हितैषी उसे हमेशाके लिए छोड़ गये। भागकर उसने संथाल परगनेके एकान्त निर्जन [illegible]रमें आश्रय लिया, फिर वहाँ न जाने कहाँसे सरोजिनी [illegible]के सिरपर आ पड़ी। वहाँ—उस निर्जन प्रान्तमें भी वह इस [illegible] ग्रहसे छुटकारा न पा सका। इसके बहुत दिनों बाद जब [illegible] दारुण दुःख सावित्रीके हाथका आघात, एक और व्यक्तिके [illegible]रोंसे कुछ मुक्त हो चला, तब न जाने कहाँसे शशांकमोहन आकर उस हाथपर भी वज्र मारकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

घरके निकट पहुंच वह ठिठककर खड़ा हो गया। पिताके

श्राद्धके आयोजनके कारण उसका विस्तृत मकान आये हुए मनुष्योंसे भर गया था। अपने इस नितान्त पीड़ित, भाराक्रांत हृदयको लेकर सहसा अतिथि-अभ्यागतोंसे भरे हुए मकानमें प्रवेश करनेकी मानो उसे हिम्मत न पड़ी। जो पगडंडी गंगाके किनारेसे घूमती हुई स्कूलके मैदानमें आ मिली थी, वह उसी निर्जन पगडंडीको राहसे चल पड़ा। इच्छा थी कि एक बार अपने भाग्यकी शुरूसे अबतक शान्त चित्तसे आलोचना करे।

वह चलते-चलते उसी पुराने टूटे-फूटे घाटपर आ पहुंचा, जहां कुछ दिन पहले दिवाकर एक दिन कपड़े और जूते उतारकर चुपके-चुपके नारायणकी पूजा कर गया था। ईंटोंके उसी ढेरके ऊपर सतीश चुपचाप बैठ गया। सन्ध्याकी अस्पष्ट चांदनीसे उस समय सामनेकी गङ्गाने उज्ज्वल रूप धारण किया था। उस ओर देखकर सतीशने अपने आपसे पूछा—"मैंने किसके निकट ऐसा कौन सा अपराध किया है, जिसके अभिशापसे मैं सब प्रिय वस्तुओंसे एक-एककर वंचित होता जाता हूं?

सबकी अपेक्षा जहां उसे अधिक व्यथा थी, सबसे पहले उसका हाथ वहीं पहुंचा—उसे सावित्रीकी याद आयी। उसने जिस बातको सौ बार सौ तरहसे सोचा है, और कभी कोई मीमांसा नहीं कर सका है, फिर एक बार उसी बातको सोचने बैठा। किन्तु सोचे वह चाहे जिस प्रकारसे उसके सोचनेके ढंगसे एक विशेष ओर झुक जानेका अभ्यास हो गया था—अर्थात् अपने आपको सब बातोंमें बड़ा और सावित्रीको सब

तरहसे छोटा दिखानेका उसकी भावनाको अभ्यास हो गया था। हम सतीशको भी दोष नहीं देते, क्योंकि क्षुब्ध, अकारण व्यथित मानव-चित्तका शायद यही सनातन नियम है।

यह भी देखा जाता है कि दिन-रात चिन्ता करके, निरन्तर आंखे मलते रहने पर भी अन्धकारमें दिशाका लेशमात्र चिह्न नहीं सूझता, फिर किसी दिन अकारण और अनायास ही एक स्पष्ट पथकी रेखा दीख पड जाती है। सतीशको भी आज ऐसा ही हुआ। चांदनीके क्षीण प्रकाशमें उस पारके धुंधले बालुकायम तटकी ओर देखते-देखते सहसा उसकी वेदनाने चिन्ताके एक नये रास्ते पर कदम बढ़ाया। जिस समय वह महेश्वरीसे विदा हो, रास्ते पर आ पहुचा था, उस समय उसे महाराज श्रीवत्सकी दुर्दशाकी कहानी याद आ गयी थी। शायद उसीका प्रभाव धीरे धीरे इतनी देरतक उसके भीतर फैल रहा था, यह उसे मालूम नहीं हुआ। मुंहसे वह चाहे जो कहे, किन्तु देवता, भूत, प्रेत, ग्रह-उपग्रह आदि पर वह हमेशासे विश्वास रखता आया है, वह उनसे डरता है। इस समय अकस्मात उसे यह बात याद हो आयी कि महाराज श्रीवत्सके दुर्भाग्यसे भुनी हुई मछली भी जीवित होकर भाग गयी थी, यह क्या मछलीका स्वभाव था? नहीं, यह प्यास बुझानेवाले पानीका अपराध नहीं है, कि उसके होठोंसे लग-लगकर भी वह बारम्बार दूर हट जाता है?

इस समय इस नये पथसे आरम्भ करनेपर उसे जान पड़ा

कि वह व्यर्थ ही अबतक अपने अशेष दुःखोंके लिए दूसरेको दोषी ठहराता रहा है। असलमे सावित्रीका दोष नहीं, सरोजिनीका दोष नहीं, शशाङ्कमोहनका दोष नहीं, उपेन्द्रने जो बिना अपराधके उसका परित्याग कर दिया है, इसके लिये वह भी उत्तरदायी नहीं, यहा तक कि वह परम धूर्त और अकृतज्ञ विपिन भी उसकी आँखोंमे निरपराध दिखाई पड़ा।

"आह। मानों जानमे जान आयी।" कहकर सतीश उछल पडा। किसीने उसके निकट कोई अपराध नहीं किया वह भी किसीके निकट असलमे अपराधी नहीं है—यह केवल किसी क्रुद्ध देवताका कोप है—जिसके निकट उसने भूलसे अपराध किया है। किन्तु देवताका कोप तो चिरस्थायी नहीं होता, एक दिन तो वे प्रसन्न होगे हो। उस दिन सभी सबके अपराध भूलकर लौट आयेंगे, और वह शायद पहलेकी तरह फिर उनको पा जायेगा। वह जोशसे भर गया, अपनेको संभाल न सका, जलमें धमाकसे कूद पड़ा, और बहुत देर तक तैरते-तैरते डूबकियां लेते-लेते थक जानेपर किनारे आ खडा हुआ।

पर लौट आनेपर देखा, कि बिहारी पहुंच गया है। उससे मुस्कराते हुए पूछा—"कुछ खाया-पीया है? रास्तेमे कोई तकलीफ तो नहीं हुई? रसोइया कहां है वह अच्छी तरह है?"

बिहारी मालिकका भाव देखकर आश्चर्यमे आ गया। दो-तीन दिन पहले पिताकी मृत्युकी खबर पाकर जो मनुष्य बिलकुल मुर्देकी तरह पड़ा रहा, वह इतना शीघ्र शोकको दूरकर

कैसे प्रसन्न और शान्त हो सका, यह उसकी समझमें नहीं आया।

क्षणभरके लिये उसके मनमें यह बात आयी कि बड़े आदमी के लड़के हैं, बहुत धन पा जानेके आनन्दसे खुश हो गये हों।" किन्तु तत्क्षण ही दुःखित हो, अपनी जीभ दाँतोंसे दबा अपने-आपको रोककर मन-ही-मन बोला—"राम-राम। अपने ऐसे मालिकके सम्बन्धमें ऐसी बात सोचनेसे मुझे नरकमें भी ठौर न मिलेगा।" किन्तु इसका कारण समझ भी न सका।

सतीशने कहा—"बिहारी आते वक्त एकबार उनके घरसे क्यों न होता आया?"

बिहारीने पूछा "किसके घर बाबू?

सतीशने कहा—"ज्योतिषके घर। आते वक्त मैं जल्दीमें उन्हें खबर तक न दे सका। यदि थोड़ी अकल खर्च करके खबर दे आता तो कैसा अच्छा होता।"

बिहारीने दबी जबानसे कहा—'खबर तो दे आया हूं।"

"दे आया है? कौन-कौन थे उस वक्त? सुनकर उन लोगोंने क्या कहा? मा शायद खूब रोने लगी होंगी, क्यों बिहारी? बिहारी मन-ही-मन उद्विग्न हो उठा, कहा—"हाँ रोनेकी तो बात ही है बाबू।'

सतीश बात अच्छी तरह समझ न सका। खुश हो, सिर हिलाकर बोला—"ऐसी खबर सुनकर भला कौन रोये बिना रह सकता है?" हा, उस समय वहा कौन-कौन थे? किन लोगोंके सामने कहा है?"

विहारीने कहा दो पहरका समय था, और किसीसे भेंट न हुई, केवल सरोजिनी बहन थीं।

सतीशने अधिकतर उत्सुक होकर पूछा—"सरोजिनीने क्या कहा ?"

विहारीने संक्षेपमें कहा—"सुनकर दुःख करने लगीं।"

"केवल दुःख करने लगीं ? अच्छा मुझसे कुछ कहनेको नहीं कहा।"

विहारीने सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

सतीशका चेहरा उदास हो गया। जरा चुप रहकर बोला—"माँजीसे मिलकर उनको खबर दे आना, तुझे उचित था विहारी ! अफसोस। विना कहे अपनी बुद्धि खरचकर तू कोई काम भला क्यों करने लगा ? लोग अहीरकी बुद्धिकी जो हँसी उड़ाते हैं, वह ठीक ही करते हैं। तुझे यह अक्ल न हुई कि जाते वक्त बाबू खबर दी हो या न दी हो, इससे माँसे एक बार मिलकर खबर देता जाऊँ। गधा—मूर्ख कहींका ?" कहकर सतीश चला गया।

विहारीको मालिकसे सब आदर-अभ्यर्थना व्यञ्जक शब्द सुननेका अभ्यास था। वह शांत चित्तसे चिलम उठाकर आग लानेके लिये घरके भीतर गया। श्राद्ध-क्रिया निर्विघ्न समाप्त हो जानेपर सतीशने अपने भाईसे कहा—"देशका मकान नष्ट हुआ जाता है, मैं वहीं जाकर रहूँ तो कैसा हो ?"

सतीशके बड़े भाई स्त्री-बच्चों और वकालतके धन्धेमें ही

दिन रात व्यस्त रहते थे। सतीश या ओर किसीकी बातपर ध्यान देनेका उन्हें अवसर नहीं मिलता था, वे सहज ही राजी होकर बोले -"अच्छा तो है। तुम्हारे जानेपर कारिन्दे-गुमास्ते भी ठिकानेसे रहेंगे। यह तो अच्छी ही बात है।"

सतीश देशके मकानमे जाकर रहनेका बन्दोबस्त करने लगा। बिहारीने कहा —"बाबू सुनता हूं, वहा मलेरिया बहुत होता है, कलकत्ता या पश्चिममें कहीं जाकर रहना ठीक होगा ?"

इस बातने सतीशको मानो नयी उत्तेजना दी। वह जोरसे हँसकर बोला —"मलेरिया! इससे क्या होगा बिहारी, कालरा, चेचक, सन्निपात —क्या वहाँ ये सब नहीं हैं ?"

बिहारीने डरते हुए कहा —"तो फिर ?"

सतीशने कहा —"इसीलिये तो जा रहा हूं। क्या तू सोचता है, मैं जमींदारी देखने जा रहा हूं। मुझे इसकी क्या पडी है ? मैंने इतनी तकलीफ उठाकर जो डाक्टरी सीखी है वह क्या वृथा जायगी, इस बातको कभी मनमें भी न ला।" उसे सावित्री की बात याद आयी। उसने जब बहुत दिन हुए उसके निकट ...न। यह सङ्कल्प प्रकट किया था, तब सावित्री हृदयसे अनुमो-...न कर इस शुभ चेष्टामें उसे सफल करनेके लिये कितने ही ...किये थे। किन्तु आज सतीश सचमुच ही इस काममें लगने जा रहा है, तब सावित्री कहां है ?

सतीशको क्षणभर अनमना देखकर बिहारीको बोलनेका साहस हुआ। वह बोला —"इसीसे कहता हूं बाबू, ऐसी बीमा-

रियोंकी जगहोंमे क्या कोई शौकसे जाकर बसता है? उसकी अपेक्षा

सतीश बीचमे ही बोल उठा—"यही तो मैं भी चाहता हूं बिहारी। वहां बाहर हमारे दो बड़े-बड़े बैठकखाने हैं। मैं उन्हींमें डिस्पेन्सरी खोल दूंगा। बिल्कुल मुफ्त—किसीसे कुछ न लूंगा और केवल मैं ही चिकित्सा न करूंगा। एक अच्छा पास किया हुआ डाक्टर भी साथमे लिये जाऊंगा। वह रुपया-पैसा तो बेकार ही है बिहारी, जो दुखियोंके काम न आये? यदि जरूरत पड़ी तो नीचेके कमरोंमे मैं कुछ रोगियोंको रख भी सकूंगा।

सतीशकी बातोंसे बिहारीको उत्तेजना और शङ्का बढ़ती जा रही थी। सरमे दर्द हो जानेपर भी मारे भयके नींद नहीं आती है, अब उसे कहां रहना पड़ेगा? क्या मालूम वह कैसी जगह है? जमराजका दरवाजा वहांसे कितनी दूर है? इसके सिवा नाना प्रकारके रोगियोंको अपने हाथोंसे उठाना-बिठाना भी तो एक जबर्दस्त आफत ही है।

गरीब-दुखियापर बिहारीकी स्वाभाविक ममता थी, किन्तु मालिककी विपत्तिकी आशंकाके आगे वह किसीको कुछ न समझता था। वहां वह निष्ठुरकी तरह आंखें बन्दकर बिलकुल अंधा बन जाता था। सतीशके उत्तरसे वह कुछ क्रुध और उत्तेजित होकर बोला—"नहीं यह न होगा बाबू। रुपया है तो नौकर रख कर चाहे जितने अस्पताल बनवा दें, किन्तु रोगियोंके बीचमे मैं आपको किसी तरह रहने न दूंगा।"

सतीश आश्चर्यमें आकर बोला—"क्यों ? बता तो सही ? मैं न रहूंगा तो उनकी देख-रेख कौन करेगा ? केवल नौकरोंसे भला ..."

बिहारी बोल उठा—"न होगा, तो न सही। गरीब-दुखिये तो हमेशा ही बिना दवा-दारूके मरा करते हैं -वे मेरे बाप-दादेके देवता नहीं हैं, कि उन लोगोंके पीछे आपको वहां प्राण देनेके लिये मैं छोड़ आऊंगा ?"

उसके त्रास, उसकी उत्तेजनाकी अधिकताको अनुभव कर सतीश मुस्कुराया। उसका अतल स्पर्शी प्रेम भी सतीशसे छिपा न था। किन्तु कृत्रिम गम्भीर स्वरसे उसने कहा -"तू किसलिये इतना गर्म होता है, बिहारी ? क्या वहां जानेसे लोग मर जाते हैं "क्या वहा मनुष्य नहीं रहते ? पागल हुआ है क्या ?" बिहारी जरा भी संकुचित न होकर बोला—"मरते हैं या नहीं मरते, मुझे इसकी खोजसे क्या काम ? हम लोगोंको वहां जाना न होगा, बस !

सतीशने जरा चुप रहकर इसबार ठीक दवा दी। गम्भीर होकर कहा—"सच है बिहारी। मनुष्यकी मरने जीनेकी बात कही नहीं जा सकती, किन्तु मेरे कौन है, किसके लिये मैं प्राणों की माया करूंगा ? यदि मर ही जाऊं तो जिन लोगोंके लिये मरूंगा, वे लोग क्या मेरी सद्गतिका उपाय न करेंगे ? मुझे इसकी चिन्ता नहीं, किन्तु इसीसे कहता हूं मेरे साथ तेरे जानेकी जरूरत नहीं है। तू बुड्ढा भी हो गया है, बल्कि मैं तुझे कुछ

रुपये दिये देता हूँ, जा घर चला जा। अपने बाल-बच्चोंके साथ सुख-शान्तिसे जीनव बिता।"

बिहारी कुछ देर चुप रह, उसका मुँह ताककर बोला—"मैं नौकर हूं जो जीमे आवे, कहिये। आपको यमके मुँहमें डाल-कर मैं साठ वर्षकी इन सूखी हड्डियोंको बचानेके लिये रुपया लेकर घर चला जाऊँ? अच्छा यही उपाय ठीक है।"—कहकर वह आंखोंके आंसुओंको रोकते-रोकते बड़ी जल्दीसे बाहर चला गया।

३६

पांच-छः महीने नैनीतालमें रहकर तीन चार दिन हुए उपेन्द्र स्त्रीके अन्तिम इच्छानुसार उसे बक्सरवाले मकानमें ले आये हैं। उस दिन शामके बाद दीपकके प्रकाशकी ओर कुछ देरतक चुपचाप देखती रहकर धीरे-धीरे स्वामीके हाथके ऊपर अपना दाहिना हाथ रखकर उसने कहा—"तुम्हारी बातपर मुझे कभी सन्देह नहीं हुआ। आज मुझे एक बात सच-सच बताओगे? फुसलाओगे तो नहीं?"

उपेन्द्र मरणोन्मुख स्त्रीके मुँहके पास झुककर बोले,—"कौन-सी बात पशु?"

सुरबाला क्षणभर चुप रहकर बोली,—"मैं तुमको फिर पाऊंगी तो?"

उपेन्द्र स्त्रीके ललाटपरसे रूखे बालोंको हटाकर शान्ति-पूर्ण स्वरसे बोले—"क्यों नहीं पाओगी?"

"कब पाऊंगी ? मैं तो जल्दी ही बिदा होनेवाली हूँ ; किन्तु उतने दिन कहाँ बैठी तुम्हारी राह देखूंगी ?"

स्वर्गमें रहोगी। वहाँसे मुझे सदा देख पाओगी।"

"किन्तु अकेली कैसे रहूँगी ? अच्छा, सभी डाक्टरोंने जबाब दे दिया ? ऐसी क्या कोई दवा नहीं, जिससे मैं बच जाऊँ ? मेरे मर जानेसे तुम्हें शायद बहुत कष्ट होगा।"

आँसूकी एक बूंदको उपेन्द्र किसी तरह रोक न सके—वह टपसे सुरबालाके ललाटपर गिर पडी।

उसके समस्त हृदयको मथकर अभियोगका यह शब्द ध्वनित हो उठा,—"भगवन्! स्वामीके हृदयमें अनन्त प्रेम दिया है, किन्तु ऐसी जरा भी क्षमता नहीं दी, कि वे अपने स्नेह-भाजिनीको एक दिन भी अधिक रोक रख सकें ?"

सुरबालाने अपना दुबला हाथ उठाकर स्वामीकी आंखें पोंछ दीं, और बोली,—"तुम्हारा रोना मुझे सहन नहीं होता— मेरी और एक बात रखोगे ?"

उपेन्द्रने सिर हिलाकर कहा,—"हाँ, रखूंगा ?"

सुरबालाने कहा, "तो मेरी छोटी बहन शचीके साथ छोटे देवर (दिवाकर) का व्याह कर देना। मैंने बहुत दिनोंसे उनको देखा नहीं, दो-चार दिनमें पढाईमें ऐसी क्या हानि हो जायगी— एक बार कलकत्ते से आनेके लिये तार दे दो।"

उपेन्द्रकी छातीमें फिर एक बार बर्छी चुभ गयी। दिवाकर-को सुरबाला कितना चाहती है, यह वे जानते थे ; तथापि उस-

की अन्तिम इच्छा पूरी करनेका कोई उपाय नहीं था। उन्होंने अबतक दिवाकरकी काली करतूतोंका हाल पत्नीसे छिपा रखा था, आज भी उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया। तार देनेकी बातको उड़ाकर उन्होंने कहा,—"किन्तु उसके साथ शचीका व्याह करनेको तुम पहले तो राजी न थी, केवल मेरे कहनेसे अन्तमें राजी हो गयी थी। अब स्वयं मेरा मत बदल गया है, शचीके लिये बहुत अच्छा सम्बन्ध ठीक कर दूँगा, किन्तु इस सम्बन्ध की जरूरत नहीं पशु!"

सुरबालाने कहा,—'नहीं, यह न होगा। छोटे देवरके ही साथ शचीका व्याह कर देना होगा।'

उपेन्द्र आश्चर्यमें आकर बोले,—"क्यों, ऐसा आग्रह क्यों करती हो?

सुरबालाने कहा,—"तुम उसका मुँह देखते रहोगे, तो कभी हम लोगोंके लिये पराये न हो सकोगे। इसके सिवा वह घरमें रहेगी, तो तुम्हारी सेवा-टहल करती रहेगी।"

उपेन्द्रने अनमने होकर कहा,—"अच्छा, यदि असम्भव न होगा तो ऐसा ही करूँगा।"

इसके तीन दिन बाद महेश्वरी खबर पाकर उपेन्द्रके मना करनेपर भी वहाँ आ पहुंची। सुरबालाने उनकी गोदमें सिर रखकर कहा, "मेरे मर जानेपर उनपर जरा निगाह रखना, मैं जानती हूँ कि वे फिर व्याह न करेंगे, किन्तु इससे उन्हें बहुत कष्ट होगा। तुम सब उनकी देख-भाल करते रहना, यही तुम

लोगोंसे मेरी अन्तिम प्रार्थना है, इतना कहते ही उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

महेश्वरी भी उसकी छातीपर सिर झुकाकर रोने लगी—मुँहसे एक शब्द भी न निकाल सकी।

इस तरह और भी चार-पांच दिन कट गये। इसके बाद एक दिन सवेरे स्वामीकी गोदमे सिर रख, मुहल्ले भरके लोगोंको शोक-सागरमें डुबाकर वह सती-साध्वी स्वर्गको सिधार गयी।

उपेन्द्र धैर्य धारण कर स्थिर भावसे पत्नीका अन्तिम क्रिया-कर्म समाप्त कर महेश्वरीको साथ ले घर लौट आये। उपेन्द्रके पिता शिवप्रसाद बाबू पुत्रके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे, किन्तु अब पुत्रके लौट आनेपर वे भी बहुत कुछ निश्चिन्त हुए। उन्होंने मन-ही-मन कहा, "नहीं डरनेकी कोई बात नहीं थी।" और उन्होंने शीघ्र ही एक दूसरी सुन्दरी बहूको घरमें ले आनेकी आशाको भी हृदयमें जगह दी। परन्तु ओटमे रहकर न्तर्यामीने बेचारे बूढ़ेके इस विचारके लिये उस दिन ठण्डी ... भरी।

दूसरे दिन दोपहरके वक्त उपेन्द्रको सिरपर पगडी रख पहलेकी भाँति कचहरी जाते देख, शिवप्रसाद अत्यन्त प्रसन्न हुए। यहांतक कि आनन्दकी अधिकताके कारण कुछ क्षणके लिये पुत्रको पास बुलाकर संसारकी अनित्यताके सम्बन्धमें अनेक हितभरी बातें कहे बिना भी उनसे न रहा गया। अन्तमें उन्होंने कहा—"तुम स्वयं सब कुछ समझते-बूझते हो। तुम

संसारमें कुछ भी चिरस्थायी नहीं है—जो आज है, वह कल नहीं रहेगा, जो कल था, आज नहीं है—कोई किसीका नहीं, सब मिथ्या है, सब मायाका खेल है। इस बातको सदा स्मरण रखो बेटा, परलोकको कभी न बिगाड़ो। उन्नति करनेका यही समय है। कौन किसका है? शास्त्रमें लिखा है—'चलाचलमिदं सर्वं कीर्त्तियस्य सजीवति' अर्थात् मान-सम्भ्रम सब रुपयेसे होता है—रुपयेका ही यह सारा खेल है। रुपया कमाने पर ही सब कुछ निर्भर है। देखो, सतीशके बाप किस प्रकार रुपया छोड़ गये हैं।" इतना कहकर वे गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाने लगे। उपेन्द्र सिर झुकाये सब सुनते रहे और जो 'आज्ञा' कहकर कचहरी चले गये।

अदालतमे सतीशके भाईसे भेंट हुई। उन्होंने इस दुर्घटनापर अत्यन्त दुःख प्रकटकर अन्तमें सतीशकी बात छेड़ी। उपेन्द्रकी धारणा थी, कि पिताकी मृत्युके बादसे सतीश घरमे ही, आकर रहता है, पर अब मालूम हुआ कि वह है तो घरमें ही किन्तु यहां नहीं, देशमें है। 'टूना बाबूने हँसकर कहा,—"इन थोड़े दिनोंके अन्दर ही कोई तीस- चालीस हजार रुपये खर्च कर उसने दो बड़ी-बड़ी डिस्पेंसरियां खोली है, सौ रुपये महीनेपर एक डाक्टर रखा है, इसके सिवा घरको अस्पताल बना डाला है।"

उपेन्द्रने सहजभावसे कहा,—"हाँ, ऐसा करना तो वह बहुत दिनसे चाहता था, लेकिन रुपया न रहनेके कारण ही इतने दिन कुछ कर न सका था।"

टूना बाबूने व्यङ्गकर मुस्कुराते हुए कहा,—"यह तो मैं भी समझता हूं उपेन्द्र, पर यह बताओ कि केवल डिस्पेंसरी खोलने की ही बात तुम जानते हो या उसके साधन-भजनकी भी ?"

उपेन्द्रने आश्चर्यमें आकर पूछा,—"साधन-भजन क्या ?"

टूना बाबूने कहा,—"यही तन्त्रोक्त पञ्चमकार इत्यादि। केवल फिलन्थ्रापिस्ट ही नहीं, सतीश स्वामी अब एक ऊँचे दर्जेके साधक हो रहे हैं। गेरुआ कपड़ा है, बड़ी सी दाढ़ी और सरपर लम्बे बाल हैं, गलेमें रुद्राक्षकी माला है और ललाटपर सिन्दूरका टीका लगा रहता है। आंखें हमेशा घूमती रहती हैं। उसकी जरा टोह लेनेके लिये मैंने रासबिहारीको भेजा था, पर वह तो डरके मारे दो दिन उसके पास तक जानेका साहस न कर सका। यह चिट्ठी पढ़ देखो, बिहारीने मुझे लिखा है—जवाब अबतक नहीं दे सका, इसीसे पाकेटमें ही पड़ी है।" कहकर उन्होंने पीले रङ्गका, तह लगा हुआ, एक कागज निकालकर उपेन्द्रके हाथमें रख दिया।

निरुपाय होकर बिहारीने सतीशके बड़े भाईके पास एक पत्र [illegible] उपाय पूछा था, कि अब ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूं ? [illegible] सम्भव है, उसने गांवके किसी नादान बालकको पकड़कर पत्र लिखवाया हो, क्योंकि कोई जानकार आदमी ऐसा पत्र लिखनेका साहस न करेगा। आदिसे अन्ततक चिट्ठी न पढ़ी जा सकी, किन्तु जितना अंश पढ़ा जा सका, उतने से भी कुछ क्षणके लिये उपेन्द्रको स्तम्भित हो जाना पड़ा।

उसका बाल-बन्धु, उसका दाहिना हाथ, उसका छोटा भाई वही सतीश आज अधःपातके गढ़ेमें इतने नीचे उतर गया है! गांवमे खुले तौरसे उसी कुलटा दासीको साथमे रखकर यों कुत्सित कर्म करते उसे शर्म तो लगती नहीं, बल्कि धर्मसाधनका बहाना बनाकर आत्म विनोदका अनुभव कर रहा! इसके सिवा, बिहारीकी चिट्ठीसे यह भी मालूम होता है कि गांवके कई बेकार आदमी भी उसे साथी मिल गये हैं।

अनमने भावसे उपेन्द्र चिट्ठी जेबमे डाल, अदालतसे घर लौट आये, दूना बाबूको चिठ्ठी लौटाना भूल गये।

बिहारी चिट्ठीको डाकमें छोड़कर पहले कई दिनोंतक दूना बाबूके उत्तरकी राह देखता रहा बादको उत्तरके लिये अधीर होकर दिन काटने लगा। दिनके बाद दिन बीतने लगे, किन्तु बड़े बाबू न आये और न उनकी कोई चिट्ठी ही आयी!

खासकर 'खाकी बाबाके' ऊधमों और अत्याचारोसे बिहारी घबरा गया है! ये तान्त्रिक संन्यासी थे और सिद्ध पुरुष समझे जाते थे। सतीशके ये ही मन्त्रगुरु थे। इनका मिजाज आठोंपहर शराब और गांजेके प्रभावसे दुर्वासा ऋषिसे भी अधिक गरम रहता था। मुंह इतना खराब कि क्रोधावस्थाकी तो कोई बात ही नहीं, तबीयत खुश रहनेपर भी उनकी बात सुनकर कानोंमें ऊंगली डालनी पडती थी।

किन्तु तान्त्रिक सिद्धगुरुका शायद यही लक्षण होता हो, यही समझकर बिहारी चुपचाप सब कुछ सहता-सुनता था।

इसके सिवा वे सतीशके गुरु थे। उनके प्रति स्वयं विहारीकी भी भक्ति श्रद्धा कम न थी, किन्तु हम यह पहले ही लिख आये हैं, कि सतीशके किसी प्रकारके अनिष्टकी आशङ्का होते ही विहारीको भले बुरेका ज्ञान न रहता था।

गुरु महाराजकी शिक्षाके अनुसार सतीश और उसके दलके लोग आधी रातके समय एकान्तमे चक्रसाधन और उससे भी बढ़कर उसके जो गुप्त अनुषङ्गिक अनुष्ठानादि करते थे, इतने दिन विहारीने उन्हें किसी तरह सहन किया था, किन्तु जिस दिन उसने सतीशको बाबाजीका प्रसाद समझकर शराब और गांजेका सेवन करते देखा, उस दिन का दृश्य इस नौकरसे देखा नहीं गया, वह इसे किसी तरह बरदाश्त न कर सका। सतीशकी अनुपस्थितिमे उसने गुरुजीके कमरेमे घुसकर गुरुजीको प्रणाम किया और भक्तिपूर्ण स्वरसे हाथ जोडकर बोला—"आप अब कभी दिनमे बाबूको शराब या गांजा न पिलाये"

आगमें घृतकी आहुति पड़ी। बाबा तत्क्षण सप्तम स्वरसे [illegible] उठे—"साला, तू शराब कहता है!!"

विहारीने विनीत स्वरसे कहा—"क्या जानूँ महाराज, मेरे यहाँ तो इसे शराब ही कहते हैं।"

बाबा ने कहा,—फिर शराब कहता है? किन्तु साले, तेरा क्या आता-जाता है? तू बोलनेवाला होता कौन है?"

विहारीको भी बाबाजीकी बातें असह्य हो रही थीं। उसने दृढ़ स्वरसे कहा—"मैं बाबूका नौकर हूं।"

"नौकरका इतना दिमाग !" कहकर बाबाजी सड़ी-गली गालियां बकते और दांत पीसते हुए बोले,—"किन्तु मैं तेरे मालिकका भी मालिक हूं—गुरु हूं। तेरे बापका भी बाबा हूं, जानता है ?"

बिहारी बैठा था, झटसे उठा और चिल्लाकर बोला—"खबरदार, मेरे सामने ऐसी बहकी हुई बातें न बकिये, जता देता हूं।"

बाबाजी तो यों ही दिन रात अपने आपेसे बाहर रहा करते थे, बिहारीके तिरस्कारसे एकबारगी आग हो उठे। कड़कते हुए बोले,-"साला, तू क्या जता देता है ? तू मेरा क्या करेगा ?" कह, सामने पडी खड़ाऊँको उठाकर बिहारीका सिर ताककर फेंका। बिहारीकी नाकसे खूनकी धारा बह चली। साथ-ही साथ उसके हृदयके किसी अज्ञात स्थानसे चालीस वर्ष पहलेका गरम रक्त एकबारगी मगजमें चढ़ गया। पलक मारते कमरेके कोनेसे वह बाबाजीका चार हाथ लम्बा त्रिशूल उठाकर बाबाजी की ओर लपका। बाबाजी डरसे दोनों हाथ ऊपर उठाकर कुत्तेकी तरह चिल्ला उठे। उस अमानुषिक चीत्कारसे बिहारी संभल गया। उसने त्रिशूल वहीं रख दिया और नाकका रक्त पोंछते-पोंछते बाहर चला गया। उसने सब हाल सतीशसे कहा सतीशने पूछा,—"सच ?"

बिहारीने कहा,—"हां।" किन्तु उसने अपनी चोटका जिक्र तक नहीं किया।

सतीश क्षणमात्र चुप रहकर बोला—"तुझे अब इस घरमें और न रख सकूँगा, किन्तु तुझे जवाब भी न दूँगा। दो सौ रुपये ले और सीधा घर चला जा, तेरी तनख्वाह में महीने-महीने तेरे घर भेज दिया करूँगा।"

बिहारी सिर नीचा करके बोला,—"जो आज्ञा।'

उसने दुःख प्रकट नहीं किया, क्षमा भी न मागी, दो सौ रुपये दुपट्टेके छोरमें बांध, प्रणाम कर, प्रभुके पांवोंकी धूलि माथेपर चढ़ा, शाम होनेसे पहले ही गाव छोड़कर चला गया।

वह जबतक दिखाई देता रहा, सतीश ऊपरके बरामदेसे उसकी ओर ताकता रहा। जब वह विधुपालकी दूकानकी ओटमें छिप गया, तब वह एक लम्बी सास भरकर बोला—"बस, यह भी गया, बिहारी भी इतने दिन बाद चला गया।'

इस बार आश्विनके प्रथम सप्ताहमें ही देवीपूजा है। अब भी उसमें विलम्ब है, किन्तु सतीशकी बन्धुमण्डलीमें इसकी ही आलोचना चल रही है, कि इस बार कालीपूजाके अवसर पर ा-क्या करना चाहिए? महाष्टमीके लिए अभीसे तैयार होना चाहिए। किन्तु भादोंके मध्यमें मलेरियाका प्रकोप बेतरह बढ़ गया, यहा तक कि दो-चार सान्निपातिक ज्वरके कारण डाक्टरकी दौड़-धूप आरम्भ हो गयी है।

आज कई दिनोंसे सतीशकी तबीयत अच्छी नहीं है। एकादशीके कारण ऐसा मालूम हुआ होगा, यह सोचकर दूसरे दिन सवेरे उसने ज्वरको चुटकीपर उड़ा देना चाहा, किन्तु वह ऐसा

वैसा ज्वर न था, जो इस तरह सहजमें उड़ाया जा सके : दिन भर उसको मानना ही पड़ा कि उसका शरीर स्वस्थ नहीं है।

तीन दिनके बाद पूर्व प्रथाके अनुसार आज चतुर्दशीकी रातमें बड़ी धूम-धामसे पूजाका आयोजन हुआ था, किन्तु सतीशने इस बार स्वयं शरीक होना अस्वीकार किया। दोपहरके बाद बाबाजीने आकर सतीशके मस्तकपर शान्तिका जल छिड़क, कमण्डल दिखाकर मुस्कुराते हुए कहा—"बेटा इसपर तो यमका अधिकार नहीं है, इसके सिवा, तुम्हीं तो मूलाधार हो, तुम्हीं सब कुछ हो, तुम्हारे न रहनेसे सब व्यर्थ है।"

गुरुजीकी बातोंको सतीश टालता नहीं था, इसीसे इच्छा न रहते भी राजी हो गया। असलमें विहारीको बिदा करनेके बाद उसे अपनी वर्त्तमान स्थितिपर विचार करना पड़ा और तभीसे यह सब उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता था। यद्यपि किसी तरह उसे यह विश्वास नहीं होता था, कि विहारी सदाके लिए उसके पाससे चला गया है, अब कभी न आवेगा, तथा जितना शीघ्र हो, उसको फिरसे पानेके लिये उसके प्राण अत्यन्त व्याकुल हो उठे थे। इसके सिवा एक और चिन्ता भी भीतर-ही-भीतर उसे दुःख दे रही थी। क्या मालूम, विहारी अपने घर गया या हमलोगोंके पश्चिमवाले घर पर गया है। ऐसा न हो, कि वहां जाकर सब बातें प्रकट कर कोई बखेड़ा खड़ा करे। जो हो, उसे एकबार फिर आंखोंसे देखे बिना सतीशको किसी तरह चैन न था।

शामके कुछ पहले दुमंजिले मकानके कमरेमें सबके साथ एकत्र होकर सतीशने एक-दो प्याले पिये थे और तबसे सतीशके मनका वह निर्जीव भाव भी कुछ अंशोंमें दूर हो गया था। किन्तु फिर भी हृदयकी पीड़ा और ग्लानि उसको भीतर-ही-भीतर दुःख दे रही थी। ठीक इसी समय पासके कमरेमें बिहारीकी आवाज सुनकर सतीश पुलकित हो, विस्मयसे चौंक पड़ा। जोरसे पुकारा—"कौन है? बिहारी है क्या?"

बिहारी दरवाजेके पास आकर अदबसे खड़ा होकर बोला—"जी हाँ, क्या हुक्म होता है?"

गुरुजीका मुँह काला पड़ गया। उन्होंने कहा,—"यह बादमाश फिर आ गया? साला, तू इस कमरेमें क्यों पैर रखता है?"

इसी कमरेमें उनके 'निशीथ-चक्र' का आयोजन हो रहा था।

सतीशने इन सब बातोंका उत्तर न देकर बिहारीसे पूछा—"घर नहीं गया क्या?"

बिहारीने कहा,—"नहीं, मैं काशी गया था।"

"काशी? काशी क्यों गया था?"

"माईजीको छोड़ने गया था।"

सतीश चौंक पड़ा। बिहारी 'माईजी किसे कहता है, यह सतीश जानता था। उसने पूछा,—'वह क्या काशीमें रहती है?"

"जी हाँ।"

"क्या तुझे उसका पता मालूम था ?"

बिहारीने कहा 'नहीं, किन्तु मैं जानता था ... रहा है तो विश्वनाथके मन्दिरमें ... हो ही जायेगी।"

"भेंट हुई थी ?"

"जी हाँ।"

सतीशके कलेजेके भीतर एक तूफान-सा मचने ... कुछ क्षण शान्त रहकर अपनेको सँभालकर ... "किन्तु मुझे खबर दिये बिना तू वहाँ क्यों चला ... अच्छा नहीं किया। ऐसी औरतोंको मान-मर्यादा ... शर्म नहीं होती। तेरे जैसे अहमकको पाकर यदि ... चली आती तो आज तू कैसी आफतमें फँसता ...

बिहारी चुप खड़ा रहा।

सतीश आप-ही-आप कहने लगा—'घरमें ... ही न देता- फाटकके बाहरसे ही दरबानसे निकलवा ... उसे लाकर आज रातको कैसी मुश्किलमें पड़ जाना ... सोच तो सही। क्या लोग तुझे बिना कारण गँवार कहते हैं ... अच्छा, जा, खाना-पीना कर। कालीचरण, जरा ... देना तो भैया।"

हुक्म पाते ही कालीचरणने ... एक प्याला दिया।

विहारीने मृदु कण्ठसे कहा—"माईजी आपको एक बार बुलाती हैं। सतीश प्यालेको मुंहसे लगाने के जा रहा था—चौंक पड़ा। बोला,—कौन बुलाता है?"

विहारीने कहा—"माईजी।"

सतीश घबड़ाकर हाथके प्यालेको पीकदानीमें उड़ेलकर बोला,—"तेरे साथ आयी है क्या? तो पहले क्यों नहीं बताया?"

विहारीने इस सवालका जवाब न देकर फिर कहा—"वे अभी इसी क्षण आपको बुलाती हैं।"

सतीशने धीरेसे कहा—"तू जाकर कह दे विहारी, कि बाबूको ज्वर आ गया है, उनके इष्ट-मित्र देखने आये हैं, आध घण्टे बाद मिलेंगे। जा, कह दे।"

विहारीने अपने हाथके पासके दरवाजेकी ओर आंखोंसे इशारा कर धीरेसे कहा,—"वे तो यहीं खड़ी हैं, जरा चले .लिये।"

सतीशने चकित होकर उंगलीके इशारेसे पूछा—"इसी कमरेमें?"

विहारीने सिर हिलाकर जवाब दिया,—"हां, इसी कमरेमें।"

सतीश चटपट दो-चार लौंग-इलायची मुंहमें डाल, धीरे-धीरे बाहर आया। देखा, उसके पासके दरवाजेकी आड़में हो सावित्रीके आंचलका छोर दिखाई दे रहा है। उसने अभी अपने कानोंसे सब बातें सुनी हैं, इसमें उसे कोई सन्देह न रह गया।

उसकी इच्छा हो ही रही थी कि मूर्ख विहारीके गालोंपर कसकर दो चपत जड़ दें कि इसी समय सावित्रीने झांक-कर चुपके-चुपके कहा,—"भीतर आओ।"

इस कण्ठस्वरसे सतीशके हृदयके मानो सब तार बँधे थे, सब एक साथ ही बज उठे। उस कमरेमे पैर रखते ही सावित्रीने कहा,—"कहते थे ज्वर चढ़ा है।"

सतीशने सिर हिलाकर कहा—"हां, ज्वर आ गया है।"

"देखूँ ?" कहकर सावित्रीने पास आकर हाथ बढ़ाकर सतीशके ललाटपर रखा। हाथ रखते ही वह ज्वरके उत्तापको अनुभवकर चौंक पड़ी। बोली,—"हां, सचमुच ही ज्वर चढ़ आया है, तापसे देह जल रही है। आओ चलो, मैं बिस्तरा बिछा देती हूं, कमरेमें चलकर लेट रहो। विहारी, बाबूके कमरे-मे जा बत्ती जला दे।" कहकर सावित्री तीसरे मंजिलकी सीढ़ियोंकी ओर चढ़ी। उसने घरके भीतर पैर रखते ही बाबूका शयनागृह विहारीसे पूछ लिया था।

पलंगपर बिस्तरा बिछा ही हुआ था। सावित्रीके उसे केवल आंचलसे झाड़ देते ही सतीश सीधे-सादे सुशील लडके-की तरह आंखे बन्दकर लेट रहा। सिर और पैरकी ओरकी खिड़कियां बन्दकर उसने विहारीसे पूछा—"साधू बाबा किस कमरेमे रहते हैं ?"

विहारीने पासका कमरा दिखा दिया। सावित्रीने कहा,—"यहां रक्खी जो कुछ चीज हो, सब नीचे उतार दो। बाहर

मालूम कितने ही कमरे खाली पड़े हैं। उन्हींमेंसे किसी एकमें वे आरामसे रह सकेंगे।"

बिहारी जा रहा था, सावित्रीने पुकारकर कहा,—"बाबूको जो लोग देखने आये थे, उन्हें भी घर जानेको कह देना, बिहारी! बाबूको ज्वर अधिक चढ़ा है, अब नीचे न उतर सकेंगे।"

सतीश ओढ़नेमे मुँह छिपाकर लेट रहा।

बिहारी तीरकी तरह दर्पपूर्वक आज्ञा पालन करने चला। बिहारीके चले जानेपर सावित्रीने कहा—"अब उठना नहीं। मैं खाने पीनेका इन्तजाम ठीक कर आती हूं।" कहकर दरवाजा बन्दकर दबे पांव चली गयी।

उसे भय था कि बाबाजी शायद नीचे रहनेके लिये राजी न होंगे, इसीसे वह किवाडकी ओटमें आ खडी हुई थी।

इसी समय उधरके दरवाजेसे बिहारीने प्रवेशकर जोरसे ,—"माईजीने कहा है कि आप लोग घर चले जायें। बाबू ज्वर अधिक चढ आया है, वे आज नीचे न आ सकेंगे।"

... बाद उसने बाबाजी महाराजकी ओर देखकर कहा—महाराजजी, आपकी चीज-वस्त मैं निवारणके कमरेके बगलवाले कमरेमें रख आया हूं आपको जो कुछ पूछना हो, उसीसे पूछ लीजियेगा। सब कुछ बता देगा।"

बिहारीकी ये बातें सुनकर भी बाबाजीमें उग्रता न प्रकट हुई। उन्होंने शान्त भावसे पूछा,—"ये कौन हैं बिहारी?"

बिहारीने बिगड़कर जवाब दिया,—"कोई हों, इससे आपको क्या मतलब ? इस छानबीनसे आपको क्या काम है ? जो कहता हूं, चुपचाप सुन लीजिये और नीचे चले जाइये।"

उसने मन-ही-मन कहा, मेरे मालिकका धन शराब गाँजामें उड़ाने और मुझे खड़ाऊं मारनेका बदला मैं कल निकाल लूंगा।

बिहारीकी बात सुन, सब एक दूसरेका मुँह देखने लगे और वहांसे चलनेकी तैयारी करने लगे। कोई कुछ समझ न सका, किन्तु हुक्म जब सच्चे हुक्मके रूपमें दृढ़ताके साथ बाहर निकलता है, तब वह किसीके मुँहसे निकले, मनुष्य न मालूम किस तरह जान लेता है कि इसे मान लेनेके सिवा कोई और चारा नहीं है।

बिहारीने रसोई घरमें आकर देखा, कि सावित्री रसोइयेसे दूध गरम करा रही है, उसने कहा,—"रात हो गयी, तुमने तो अब तक स्नान-ध्यान भी नहीं किया, माँ दिन भर गाड़ीमें रहीं, एक बूंद पानी तक न पिया। चलो, तुमको स्नानकी जगह दिखाऊं, तबतक बाबूके लिये दूध गरम हो जायगा।" इस प्रकार कहकर बिहारी सावित्रीको एक प्रकार बलपूर्वक उधरसे ले गया।

इसके बाद बिहारी, बाबूके लिये चिलम भरकर गुड़गुड़ी लेकर, चुपकेसे किवाड़ खोलकर भीतर पहुंचा। सतीश जागकर पड़ा था, आंखें मलकर बोला,—"कौन, बिहारी? "

"जी हाँ, बाबू, तम्बाकू भर लाया हूं।"

"ला, वह कहाँ है रे?"

बिहारी कहा,—"सवेरेसे अबतक उन्होंने एक बूंद पानी मुंहमें नही दिया है, इसीसे उन्हें जबर्दस्ती स्नान करनेके लिये भेजकर तब आया हूं।"

सतीशने कहा,—"अच्छा किया। किन्तु मैं तुझे खोजता था, बिहारी।"

बिहारीने घबडाकर पूछा,—क्यों बाबू? तबीयत कैसी है?"

सतीशने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी नहीं है बिहारी। इसीसे मैं तुझे खोज रहा था। दरवाजेपर साकल चढाकर जरा मेरे पास आकर बैठ।"

बिहारी दरवाजा बन्दकर सङ्कित चित्तसे मालिकके पावोंके पास जमीनपर घुटनेके बल बैठ गया।

सतीशने पूछा,—"बिहारी, तू ग्रहदोष मानता है?"

बिहारीने विस्मयके साथ कहा,—"ग्रहदोष क्यों नहीं मानता? पोथी-पत्राका लिखा क्या झूठ हो सकता है?"

सतीश जरा चुप रहकर बोला, "इस बार मेरा एक ग्रह बहुत खराब है।"

बिहारी कांप उठा, बोला—"नहीं-नहीं ऐसी बात न कहिये, बाबू।" सतीशने दो बार सिर हिलाकर बिहारीसे कहा,—"मुझे मालूम होता है बिहारी, कि यही ज्वर मेरा आखिरी ज्वर है। इस बार मैं न बचूंगा।"

विहारी मालिकके दोनों पांव पकड कर बोल उठा,—'ऐसी बात मुहमें न लाइये बाबू! आपके सब रोग-भोग लेकर मैं मरूँ। मेरी आयु लेकर आप जीवित रहें। नहीं तो बाबू हम सबके सब मर जायेंगे एक प्राणी भी न बचेगा।" कहकर विहारी सिसक-सिसककर रोने लगा।

सतीशने गम्भीरतापूर्वक कहा,—"मरना जीना तो अपने हाथकी बात नहीं है, क्यों विहारी। शायद मैं न बचूं, इसलिये तुमसे एक बात पूछता हूं, सच-सच बतायेगा तो?"

विहारीने रोते-रोते कहा,—"आपके पाव छू कसम खाकर कहता हूँ बाबू, क्या पूछते हैं, पूछिये, झूठ क्यों बोलूँगा?

"कुछ छिपायेगा तो नहीं।"

"नहीं, बाबू, एक भी बात न छिपाऊँगा।"

"अच्छा, बैठ जा।"

विहारी जब आखें पोंछकर अपनी जगहपर बैठ गया, तब सतीशने पूछा,—'अच्छा बता, सावित्री तुझे कहां मिली?"

"यह तो मैं कह चुका हूं—काशीमे।"

"वहां विपिन बाबूसे तेरी भेंट हुई थी?"

विहारी जीभ दबाकर घृणाके साथ बोल उठा,—"राम! राम! वह हरामजादा हम लोगोंका कौन है, जो उससे भेंट करता बाबू!

सतीशने कहा,—"किन्तु तूने अपनी आंखोंसे सावित्रीके [illegible]

बिहारी, दोनों हाथ उठाकर सतीशकी बात पूरी होनेके पहले ही सहसा अत्यन्त उत्तेजित होकर अपने गालपर तड़ातड़ चपते जड़कर कहने लगा—"उसका दण्ड यही है। यही! फिर भी बिना जाने-सुने कहा था, इसीसे यहां पांच आदमियोंके सामने मुंह दिखा सकता हूं, नहीं तो अब तक मेरी यह जीभ गलकर गिर गयी होती।"

सतीश आश्चर्यमें आकर उठ बैठा, बोला, "क्या बक रहा है?"

तब बिहारी लज्जित होकर बैठ गया और एक-एक कर सब बातें कहने लगा। उसने न तो कुछ बढ़ाया और न कुछ छिपाया ही। वह स्वयं जो कुछ जानता था, मोक्षदा और चक्रवर्तीसे जो कुछ सुना था, सावित्रीकी जबानी जो कुछ जान सका था, सब उसने एक-एक कर कह सुनाया।

सतीश पत्थरकी मूर्तिकी तरह निश्चल बैठा रहा। बिहारीको कुछ कहना शेष न रहा।

बहुत देरके बाद सतीशने एक लम्बी सांस भरकर कहा 'तो अबतक ये सब बातें तूने मुझसे कही क्यों नहीं, बिहारी"

बिहारीने कहा,—"कहनेके लिये कबसे मेरा पेट फट रहा था बाबू, किन्तु किसी तरह मुंह न खोल सकता था।'

"क्यों?"

"मुझे उन्होंने ही कसम देकर मना कर दिया था।"

सतीश फिर जरा चुप रहकर बोला,—"अच्छा, जाने दो

विहारी, किन्तु उस दिन रातको सावित्री अपने मुँहसे ही कह गयी थी कि विपिन वावूके सिवा और किसीको नहीं चाहती वह उनके ही साथ चली जा रही है। इसका क्या मतलब था ? कुछ बतला सकता है।

विहारी बोला,—"इसका मतलब तो मैं भी नहीं समझ सकता वावू ! फिर भी मैं इतना निश्चय रूपसे जानता हूँ, कि यह झूठ है—बिल्कुल झूठ है। यदि यह झूठ न हो, तो मेरा एक भी लड़का न बचे, वावू! माईजीके जाते समय मैंने रोककर कहा था, "क्यों मिथ्या कलंककी यह टोकरी व्यर्थमें अपने हाथोंसे अपने सिरपर रख ली है ?" तो भी उन्होंने मुझे प्रकट करनेकी आज्ञा नहीं दी। फिर भी उन्होंने रोते-रोते कहा, "विहारी मेरे सिरकी कसम है, वावूसे यह सब बाते न कहना। वे मुझसे घृणा करें, और कभी मेरा मुँह न देखे, यह भी मेरे लिये वहुत अच्छा है, फिर भी उनसे कहना मत कि मैं अपने ही हाथोंसे अपने पांवोंपर कुल्हाड़ी मारकर चली गयी हूँ।" कहते-कहते विहारीको उस रातकी सब बाते याद आ जानेसे बड़ी व्यथा हुई। उसकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे।

किन्तु मालिककी आंखोंसे भी निरन्तर जो आंसू गिर रहे थे, उनकी ओर वृद्ध विहारीकी दृष्टि नहीं गयी।

बड़ी देरके बाद सतीशने चुपकेसे आँखोंके आसू पोंछकर कहा,—"तू नहीं समझ सकता विहारी, किन्तु मैं समझ गया

हूँ कि क्यों उसने अपने पाँवोंपर आपही कुल्हाडी मारी थी। किन्तु मूठको जीत नहीं होती बिहारी

वाहरसे किवाड़पर हाथका आघात पड़ा -"यह क्या? दरवाजा वन्दकर सो गये क्या? जरा चटखनी खोल दो।'

बिहारीने मालिकके मुंहकी ओर ताका, किन्तु वे चुपचाप आँखें वन्दकर जल्दीसे लेट रहे।

वाहरसे फिर आवाज आयी—"दरवाजा खोल दो, हाथ जल रहा है।"

बिहारीने उठकर दरवाजा खोल दिया और चुपचाप उसके पाससे वाहर निकल गया।

४०

गरम दूधका कटोरा हाथमें लिये सावित्रीने कमरेमें प्रवेश किया और जल्दीसे पासकी तिपाईपर रख दिया। सफेद रेशमी साड़ी उसके शरीरपर शोभित थी, भीगे हुए लम्बे वाल पीठपर . . . नीचेकी ओर लटक रहे थे, कुछ छोटे-छोटे वाल मुखपर . . गालोंपर आ पड़े थे, सतीशने कनखियोंसे देखा। उसे स मालूम हुआ, मानो उसने सावित्रीको आज पहले ही पहल . ख हो।

किन्तु सावित्री सतीशके सजल नेत्रोंको दीपकके क्षीण प्रकाशमें न देख सकी। जरा पास आ, मुस्कुराकर बोली "किवाड वन्दकर मालिक-नौकरमें क्या बातें हो रही थीं? यह

बेहया, आफतकी परकाला किस तरह फाटकके बाहर कर दी जाये, यही न ?'

सतीश कुछ बोल न सका। कहीं बोलनेसे कण्ठस्वरमे भीतरकी दुर्बलता प्रकट न हो जाये, इसी भयसे वह चुप हो रहा।

सावित्री बोली,—"लड़कपनमे, बिल्लीके गलेमें घण्टी बांधनेवाली चूहोंकी कहानी तो तुमने जरूर पढ़ी होगी। मैं भी देखना चाहती हूं कि यहा घण्टा बांधने कौन आगे बढ़ता है - तुम स्वयं या तुम्हारे बाबाजी ?"

फिर भी सतीशने मुंह न खोला जैसे चुप पड़ा था वैसे ही पड़ा रहा।

एक कुर्सी खिसकाकर सावित्री पास बैठ गई, किन्तु इस बार उसका परिहास चंचल कण्ठस्वर गम्भीर हो गया। उसने कहा,—'दिल्लगी जाने दो, बात क्या है, मुझे समझा दे सकते हो ? उपेन्द्र भैयाके साथ झगड़ा किया, अन्तमें शायद सरोजिनीतकसे झगडाकर चले आये ? झगड़ा एक दिन मिट जायेगा, किन्तु यह सब क्या हो रहा है ? तुमने मेरा शरीर छूकर कसम खायी थी, कि तुम शराब न छुओगे, शराब तो शायद- गांजा तक पीने लगे ? और वह भी साधारण रूपसे, छुप-छिपकर नहीं, इन आवारा हालोंको बटोरकर गेरुआ वस्त्र पहनकर और तन्त्र-मन्त्रका ढोल पीटकर खुल्लमखुल्ला छाती ठोककर पीते हो ?"

सावित्रीके मुँहसे सरोजिनीका नाम सुनकर सतीशका शरीर जल उठा। वह समझ गया, कि बिहारीने सब कुछ कह दिया है। एकबार उसके होठोंपर यह बात आ गयी कि तेरे ही कारण मेरा सर्वनाश हुआ है, तू ही मेरे लिये शनिग्रह है। किन्तु यह सब बात दबाकर उसने केवल धीर गम्भीर स्वरसे थोड़ेमें कहा,—"छाती फुलाकर शराब या गांजा पीनेमें दोष क्या है?"

"क्या, दोष क्या है, यह तुम नहीं जानते?"

"नहीं।"

"अच्छा, यदि नहीं जानते, तो इतना तो जानते हो, कि मेरा शरीर छूकर प्रतिज्ञा की थी, कि अब कभी न पीयेंगे।'

"तुम मेरी कौन होती हो? कभी जबर्दस्ती कसम खिला ली थी, क्या यही एक बड़ी भारी बाधा हो गयी?

सावित्री किसी तरह हँसी दबा, सिर हिलाकर बोली,—"मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं? सच कहते हो, कोई नहीं हू?"

सतीशने भी सिर हिलाकर कहा—'कोई नहीं।"

फिर शराबका गिलास पीकदानीमें उडेलकर लायची चबाते हुए क्यों आये थे?"

'केवल इसी भयसे कि तुम हल्ला मचाओगी।"

सावित्रीने हंसकर कहा,—"फिर भी सावित्री कोई नहीं है? अच्छा, अब जरा दूध पीकर सो जाओ।" यह कहकर वह उठ कर दूधका कटोरा हाथमें ले, सतीशके सामने आ खड़ी हुई।

सतीशने कोई आपत्ति न की। वह उठ बैठा और सब दूध पीकर सो रहा।

सावित्री हाथमें कटोरा लिये लौटी जा रही थी, कि तीशने पुकार कर पूछा—"तुम नहा-धो चुकी ?"

सावित्रीने घूमकर कहा,—"हाँ।"

"क्या खाया ?"

"अभी खाया नहीं। अब जाकर खालूँगी।"

"सोओगी कहाँ ?"

"देखूँगी, फाटकके बाहर कहीं जगह है या नहीं, न होगी तो पेड़के नीचे सो रहूँगी। कहकर वह आप-ही-आप हसकर बोली,—"अच्छा, यह बात मुँहसे निकालते तुम्हे कष्ट नहीं होता। धन्य हो तुम।" कहकर बड़े स्नेहसे सतीशके ललाट पर लटके हुए बालोंको हाथसे हटाते हुए उसके ललाटका ताप देखकर सावित्री चौंक पड़ी। बिहारीने कमरेके भीतर पाव रखकर पूछा, "माईजी तुम्हारा बिछौना……

सावित्रीने पासकी कोठरीकी ओर हाथसे इशाराकर कहा—"इसी कोठरीमे। बाबूको ज्वर कुछ अधिक मालूम होता है। मैं इसी बगलवाली कोठरीमे सोऊंगी बीचका दरवाजा खुला रहेगा। तुमको भी आज इसी घरकी फर्शपर सोना होगा।"

सतीशसे कहा,—"अब और अधिक जगे मत रहो, जरा सोनेकी चेष्टा करो।" इसके बाद वह धीरे-धीरे किवाड़ बन्द कर नीचे चली गयी।

सावित्री थोड़ासा कुछ खा-पीकर थोडी देरके बाद लौट आयी और पासकी कोठरीमे ही एक चटाई बिछाकर लेट रही। उसकी दोनों थकी आंखे गम्भीर नींदसे बन्द हो गयीं।

बहुत तडके नींद टूटते ही सावित्री अकचकाकर उठ बैठी और उस कमरेमे जाकर देखा कि बिस्तरपर सतीश छटपटा रहा है। सिर पर हाथ रखकर देखा, तो तापसे जला जा रहा था। उसके ठंडे हाथोंके स्पर्शसे सतीशने आंखे खोलीं दोनों आंख उड़हुलके फूलकी तरह लाल थीं। ज्वरकी तीव्र ज्वालाका अनुभवकर सावित्री मारे डरके उसी बिस्तरपर बैठ गयी। कुछ पूछने तककी शक्ति उसमे न रही।

सतीश उसका हाथ खींच, अपने जलते हुए ललाटपर रखकर बोला,—"कल ही मैंने विहारीसे कहा था, कि यही ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है, इस बार अब मैं न बचूंगा।"

तेज बुखारकी झोंकमे उसने इस तरह यह बात हांफते हुए कही, कि सावित्री उसे धैर्य दिलानेकी भी शक्ति गंवा बैठी, और आ जानेके कारण उसका अपना ही कण्ठ बन्द हो गया, ० सारी रात निश्चिन्त होकर क्यों सोती रही, इस अनुपातसे मे यही इच्छा होने लगी कि सर फोडकर यहीं जान दे दूं।

सतीशने कहा,—"पर तुम मेरे पास हो, मुझे केवल यही एक भरोसा है।" कहकर वह करवट बदलकर लेट गया।

कल रातको जिसे उसने अभिमानकी स्पर्द्धासे कहा था, तुम मेरी कौन हो, आज वही सबसे अधिक अवलम्ब है।

क्षणभर सावित्रीमे यह भी शक्ति न रही, कि वह बिहारी-को पुकारकर डाक्टर बुला लानेको कहे। केवल सतीशके माथेपर हाथ रख, वह पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रही।

कुछ देर बाद ही फिर सतीशने करवट बदली। फिर सावित्रीके हाथको खींच, अपने मस्तकपर रखकर उसने कहा—"मैंने भी कुछ डाक्टरी पढ़ी है, मैं निश्चय जानता हू, कि मुझे शाम तक इतना होश भी न रहेगा, किन्तु इस समय मुझमें पूरी चेतना मौजूद है। यदि इतना ज्ञान मुझमें फिर कभी लौट न आये तो उपेन्द्र भैयासे कहना कि इस दराजमें मेरा वसीयत-नामा है। मैं जानता हूँ वे मेरा मुंह न देखेंगे किन्तु मैं यह भी जानता हू कि मेरे मरनेके बाद मेरी अन्तिम इच्छाका वे अप-मान न करेंगे। सावित्री तुम्हारे बाद संसारमे उनके सिवा और कोई मेरा विशेष आत्मीय नहीं है।"

वसीयत नामेकी चर्चाने सावित्रीको आत्मविस्मृत कर दिया और इतने दिनोंके संयमका बांध आज उसके क्षणभरके आवेशमें ही टूट गया, सतीशकी छातीपर सिर रखकर वह बच्चेकी तरह रोने लगी।

बिहारी प्राय. सारी रात जगकर प्रातःकाल सो गया था, वह चौंककर उठ बैठा और हकबकाकर ताकता रहा।

सतीशने अपने दोनों हाथोंसे सावित्रीके मुंहको ऊपर उठाया. क्षणभर वह उसकी ओर एकटक देखता रहा और उसकी दोनों आंखोंसे बहते हुए आंसुओंके स्रोतको अपने अग्नि

सावित्री थोडासा कुछ खा-पीकर थोड़ी देरके वाद लौट आयी और पासकी कोठरीमे ही एक चटाई विछाकर लेट रही। उसकी दोनों थकी आखे गम्भीर नींदसे वन्द हो गयीं।

वहुत तड़के नींद टूटते ही सावित्री अकचकाकर उठ वैठी और उस कमरेमें जाकर देखा कि विस्तरपर सतीश छटपटा रहा है। सिर पर हाथ रखकर देखा, तो तापसे जला जा रहा था। उसके ठंडे हाथोंके स्पर्शसे सतीशने आँखें खोलीं--दोनों आंख उड़हुलके फूलकी तरह लाल थीं। ज्वरकी तीव्र ज्वालाका अनुभवकर सावित्री मारे डरके उसी विस्तरपर बैठ गयी। कुछ पूछने तककी शक्ति उसमें न रही।

सतीश उसका हाथ खींच, अपने जलते हुए ललाटपर रखकर बोला,—"कल ही मैंने विहारीसे कहा था, कि यही ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है, इस वार अब मैं न वचूंगा।"

तेज वुखारकी झोंकमें उसने इस तरह यह वात हांफते हुए कही, कि सावित्री उसे धैर्य दिलानेकी भी शक्ति गंवा वैठी, रुलाई आ जानेके कारण उसका अपना ही कण्ठ वन्द हो गया, वह सारी रात निश्चिन्त होकर क्यों सोती रही, इस अनुपातसे उसे यही इच्छा होने लगी कि सर फोड़कर यहीं जान दे दूं।

सतीशने कहा,—"पर तुम मेरे पास हो, मुझे केवल यही एक भरोसा है।" कहकर वह करवट वदलकर लेट गया।

कल रातको जिसे उसने अभिमानकी स्पर्द्धासे कहा था, तुम मेरी कौन हो, आज वही सवसे अधिक अवलम्ब है।

क्षणभर सावित्रीमे यह भी शक्ति न रही, कि वह बिहारी-को पुकारकर डाक्टर बुला लानेको कहे। केवल सतीशको ओढ़कर हाथ रख, वह पत्थरकी मूर्तिकी तरह वैठी रही।

कुछ देर वाद ही फिर सतीशने करवट बदली। फिर सावित्रीके हाथको खींच, अपने मस्तकपर रखकर उसने कहा—"मैंने भी कुछ डाक्टरी पढ़ी है, मैं निश्चय जानता हूं, कि मुझे शाम तक इतना होश भी न रहेगा, किन्तु इस समय मुझमे पूरी चेतना मोजूद है। यदि इतना ज्ञान मुझमे फिर कभी लौट न आये तो उपेन्द्र भैयासे कहना कि इस दराजमें मेरा वसायत-नामा है। मैं जानता हूँ वे मेरा मुंह न देखेंगे किन्तु मैं यह भी जानता हू कि मेरे मरनेके वाद मेरी अन्तिम इच्छाका वे अप-मान न करेंगे। सावित्री तुम्हारे वाद संसारमे उनके सिवा और कोई मेरा विशेष आत्मीय नहीं है।"

वसीयत नामेकी चर्चाने सावित्रीको आत्मविस्मृत कर दिया और इतने दिनोके संयमका वाध आज उसके क्षणभरके आवेशमे ही टूट गया; सतीशकी छातीपर सिर रखकर वह वच्चेकी तरह रोने लगी।

बिहारी प्रायः सारी रात जगकर प्रातःकाल सो गया था, वह चौंककर उठ बैठा और हकवकाकर ताकता रहा।

सतीशने अपने दोनों हाथोंसे सावित्रीके मुँहको ऊपर उठाया। क्षणभर वह उसकी ओर एकटक देखता रहा और उसकी दोनो आंखोसे बहते हुए आंसुओंके स्रोतको अपने अग्नि

जैसे गरम होठोंसे खींचकर चुपचाप पड़ा रहा। उसका मुँह, उसकी ठोढ़ी, उसका गाल, सबको सावित्रीकी दोनो आंखोके अश्रुप्रवाहने डुबो दिया और उसमे यों डूबनेके कारण ज्वरजनित प्रबल प्रवाह भी बहुत कुछ शीतल हुआ। यद्यपि अन्तर्यामीसे छिपा न रहा, तथापि संसारमे बूढ़े बिहारीके विस्मय विमुग्ध-विह्वल नेत्रोंके सिवा उस दृश्यका अन्य कोई भी साक्षी न रहा।

बाहर शरद्‌का स्निग्ध प्रभात दिनके प्रकाशमे प्रस्फुटित हो रहा था। सावित्री अपनेको संभालकर उठ बैठी और आंचल से अपनी आंखें पोंछ, उसने प्रियतमके मुखसे आसूके सब चिन्ह सावधानीसे पोंछे और उठकर सब दरवाजे और खिड़किया खोल दीं। दरवाजे और खिड़किया खुलते ही सूर्यकी सुनहरी किरणोंसे कमरा भर गया।

बिहारीकी आंखोंसे उस समय आसुओंकी बड़ी-बड़ी बूंदें टपक रही थीं, सावित्री अपने मुंहकी बातको सम्भालकर सहज शान्त कण्ठसे बोली,—"डरनेकी कोई बात नही है बिहारी। मेरे ...े इनका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता, बाबू अच्छे हो जायेंगे। मैं बापूका बिछौना बदल देती हूँ, तबतक तुम डाक्टरको बुला लाओ।" कहकर वह फिर सतीशके बिछौनेपर आ बैठी।

डिस्पेंसरीके डाक्टर आकर अच्छी तरहसे सतीशकी जांच कर मुंह बिगाड़कर बोले,—"लक्षण तो निमोनियाके देखता हूँ। पर डरनेका काम नहीं, रोग अब भी बढ़ नहीं सका है।"

आशा भरोसा देकर डाक्टर अपने हाथसे दवा तैयार करने के लिए नीचे चले गये। सतीशने हंसनेकी चेष्टा करते हुए सावित्रीके चेहरेकी ओर देखकर कहा, "मैं मृत्युसे जरा भी नहीं डरता।' कहकर तकियेके नीचेसे चाबियोंका एक गुच्छा बाहर निकालकर और दिखाकर कहा,—"इसे पहचानती हो, सावित्री ?" स्वयं, इच्छापूर्वक जिसे किसी दिन आंचलमें बांधे रहती थी, आज मैं ही उसे तुम्हारे आंचलमें बांध देता हूं। कहकर सतीशने सावित्रीके आंसुओंसे भीगे आंचलको खींच कर धीरे-धीरे अपनी चाबियोंका गुच्छा बांध दिया और सिर-से कोई भारी बोझ उतर जानेकी तरह लम्बी सांस लेकर करवट बदली।

सावित्रीपर बिहारीका अखण्ड विश्वास था। उसके ढाढ़स दिलानेसे वह पहले तो खुश हो उठा; लेकिन वह कुछ लड़का तो था नहीं, अतः कुछ ही दिनोंके बाद सावित्रीके चेहरेकी उदासी देखकर मन-ही-मन डर गया। वह स्पष्ट देखता था, कि इस अपूर्व धर्मनिष्ठ, सहिष्णु रमणीके शान्त मुखपर पीलेपनकी छाया क्रमशः गहरी होती जाती है।

आठ-दस दिन बाद उसने सावित्रीको एकान्तमें पाकर गद्-गद् कण्ठसे कहा, "माई, इस बूढ़ेको भुलानेमें क्यों रखती तुम्हारा कोमल हृदय जो कुछ सह सकेगा वह क्या कठोर होकर न सह सकेगी ? तुम सब बातें मुझसे कह दो देवि, कोई उपाय मेरा किया हो सकता है ..."

सावित्रीने जरा स्थिर रहकर कहा;—“तुमसे अबतक नहीं कहा था विहारी, किन्तु तुम्हारे नामसे आज सवेरे उपेन्द्र बाबूको मैंने एक चिट्ठी लिख भेजी है। दो दिन तक राह देखती हूं, यदि वे न आये, तो तुमको स्वयं एक बार उनके पास जाना होगा।”

विहारी उत्कण्ठित होकर बोल उठा—“मुझसे पूछे विना यह काम क्यों किया ?”

“क्यों विहारी, क्या वे न आयेंगे ?’

विहारीने सिर हिलाकर धीरे-धीरे कहा—“आ भी सकते हैं, किन्तु एक बार मुझसे पूछा क्यों नहीं ?”

‘क्यों विहारी ?”

विहारी संकोचसे चुप हो रहा। कहना जरूरी था, किन्तु वह अत्यन्त अपमानसूचक बात उसके मुंहसे सहसा बाहर न निकल सकी।

सावित्रीने कहा, “इस समय उनका आना बहुत जरूरी है, [illegible]।”

विहारीने बहुत कष्टसे संकोच दूरकर कहा,—“यह तो जानता हूँ, किन्तु तुम्हारे पास न रहनेपर संसारके सब लोग यदि बाबूका बिछौना घेरे रहें; तो भी वे उनको नहीं बचा सकेंगे, यह बात तो तुम जानती हो, फिर उसपर क्यों नहीं विचार करती ?”

सावित्रीने कहा,—“सब कुछ सोच-विचार चुकी हूं,

बिहारी ! मैं घरमें कहीं छिपि रहकर अपना काम करती रहूँगी, किन्तु उपेन्द्र बाबूके आये बिना काम न चलेगा। इसके सिवा मैं औरत हूं, इस विपत्तिके समय भला बुरा क्या समझूँगी ? नहीं बिहारी उनका आना ही अच्छा है।"

बिहारीने कहा,—"मैं उपेन्द्र बाबूकी बात नहीं जानता; किन्तु अपने बाबूकी बात जानता हूं। मैं मूर्ख हूं सही, किन्तु साठ वर्षोंसे दुनियाको तो देखा है। कितने पुरुष तुम्हारी अपेक्षा किसी बातकी भलाई-बुराईको अधिक समझते हैं? यह सब छोड़ो, तुम्हारे हट जानेसे बाबू इस बार आराम न हो सकेंगे, यह बात मैं तुम्हारे पांव तक छूकर शपथ खाकर कह सकता हूँ। ऐसा काम न करो तुम मेरे बाबूको छोड़कर कहीं न जाओ।"

यह बात बिहारीकी अपेक्षा सावित्री कुछ कम जानती हो, ऐसी बात न थी, फिर भी वह चुप हो रही। उसके पास न रहने पर सतीशकी व्याकुलता कितनी बढ़ जायेगी, यह सतीश ही जाने किन्तु ऐसी भयानक बीमारीकी हालतमें सावित्रीही सतीशको अपनी आंखोंसे ओट कर कैसे रह सकेगी? यह बात उसे मालूम थी, कि उससे और सतीशसे उपेन्द्र घृणा करते हैं। उनके आनेपर उसे अपने आपको छिपाना ही पड़ेगा; इन सब बातों पर सावित्रीने खूब विचार करके देखा था; जिसके कारण अबतक उसने इतने दुःखोंका सामना किया है, उसके कारण यह दुःख भी सहेगी, ऐसा स्थिर कर उसने बीमारीका सब विवरण उपेन्द्रको खोलकर लिख भेजा था और आनेके लिये

अनुरोध भी किया था। सावित्रीने दृढ कण्ठसे कहा, "नहीं विहारी; यह न होने दूँगी। यदि वे परसों तक न आये; तो तुमको स्वयं जाकर उनको बुला लाना होगा।"

विहारीने उदासीन भावसे कहा,—"ऐसा क्यों कहती हो माई, मैं तुम्हारा नौकर हूं, मुझे जो हुक्म दोगी, वह मुझे करना ही होगा, किन्तु मैं भी मनुष्य हूँ। तुम्हारा छिपकर रहना यदि किसी दिन सह न सकूं, तो मुझे गाली न देना, यह पहले ही बता देता हूं।" यह कहकर वह मुँह उदास किये चला गया।

किन्तु सावित्रीकी वह चिट्ठी उपेन्द्रको मिली ही नहीं। पिता और महेश्वरीके बार-बार अनुरोध करनेसे अपनी बिलकुल इच्छा न रहते भी, वे प्रायः एक महीना हुआ, हवा-पानी बदलनेके लिये घरसे पुरी चले गये थे। वहां किसीसे परिचय न होनेके कारण पहली रातको उन्हें एक छोटेसे भोजनालयमें ठहरना पड़ा था। उनकी इच्छा थी, कि दूसरे दिन सवेरे कोई अच्छी जगह ढूंढ लेंगे, किन्तु भोजनालयके मालिक भुवन [illegible]ने उनकी पूरी खातिरदारी की, और उन्हें किसी बातका कष्ट न हो, इसपर विशेष ध्यान रखा। एक अलग कोठरीमें बिछौना बिछवा दिया और विश्वास दिलाया कि जब तक चाहें, यहां रहें, सेवा सुश्रुषामें कोई त्रुटि न होने पायेगी।

सवेरे एक प्रौढा स्त्री कमरेमें झाड़ू देने आयी और उपेन्द्रको बार-बार देखकर अन्तमें झाड़ू फेंक पांव तले गिरकर प्रणाम

किया और पूछा —'आपको क्या कोई बीमारी हो गयी है? बहुत कमजोर मालूम होते हैं। अब न तो वह पहलेका सा चेहरा है और न शरीरकी कान्ति ही वैसी है।'

उपेन्द्रने अचम्भेके साथ पूछा, - "क्या तुम मुझे पहचानती हो?'

स्त्रीने कहा,—"बाबू, मैं आपकी दासी मोक्षदा हूं। आपको पहचानती नहीं?"

उपेन्द्रको याद आया, कि वही मोक्षदा है, जो बहुत दिन पहले सतीश आदिके निवासस्थानमें नौकरी करती थी। पूछा,— 'शायद तुम नौकरी करती हो।"

मोक्षदाने कुछ शरमाते हुए कहा,—"नहीं, लेकिन हां, एक तरहसे नौकरी ही करती हूं। मुखोपाध्याय महाशयने कहा— "कलकत्ते मे क्या पडी हुई हो? चलो, किसी तीर्थस्थानमें चलकर रहो। और कुछ न होगा तो एक होटल-ओटल खोलकर ।

उपेन्द्र बीचमे बोल उठे, - "होटल अच्छी तरह चलता तो है?" उसकी बाते सुननेकी जो अनिच्छा उपेन्द्रमे उत्पन्न हुई, वह मोक्षदाने उनके चेहरेसे ही ताड लिया। उसनेकहा, - "योंही चला जा रहा है। बाबू, इस उमरमे अब मुझसे नौकरी नहीं होती और न मुखोपाध्यायका आश्रय ही छोड़ सकती हूं। दइर्दी रख जानेपर मैंने ही उसे एक प्रकारसे पाला-पोसा। वह मुझे मौसी कहती थी। अपनी ही लडकीकी तरह मैंने उसे छातीसे लगा रखा था, वह न जाने कौन थी? सावित्री कहती

थी, मौसी, मुझसे यह सब न होगा। वही सही। मैंने बाबू लोगोंके मेसमें नौकरी लगा दी। बाबू लोग उसे नौकरनी नहीं समझते थे, घरकी मालकिन-सी मानते थे। न वह जाती और न मुझे आज यह सब करना पडता, किन्तु बाबू सांचको आंच क्या, छोटे बाबूके कारण ही हमलोगोंको आज इतना दुःख सहना पड़ता है।"

उपेन्द्रने उत्सुक होकर पूछा, "छोटे बाबू कौन ? सतीश ?'

मोक्षदाने कहा, "हाँ।" उस छोकरीने न जाने किन आंखोंसे छोटे बाबूको देखा, कि उन्होंने उसके लिये अपना सर्वस्व त्याग दिया। पर इतना करनेपर भी क्या उसने छोटे बाबूको कभी अपना बदन तक छूने दिया ? कभी नहीं। विपिन बाबू जैसे लखपती जमींदारने मेरे दरवाजे आ आकर पांवोंके तलवे घिस डाले, सोने चांदीके जड़ाऊ गहनोंके लिये दस हजार रुपया देना चाहा, किन्तु छोकरीने उनकी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखा। छोकरीके चेहरेपर एक अपूर्व तेज था। दस-दस हजार रुपयेकी भेंटको तुच्छ समझकर घृणाके साथ पांवों ठुकराकर घर-द्वार, चीज-वस्त सब कुछ छोडकर सिर्फ एक साडी पहने चली गयी और चेतलाके किसी ब्राह्मणके घर छः महीने तक नौकरी की। काम करते-करते बेचारीकी देहकी हड्डी-पसली तक निकल आयी। अन्तमें कहां चली गयी, मां दुर्गा ही जानें। बेचारी मर गयी या जीती है, यह भी पता नहीं। कहते-कहते मोक्षदाकी आंखोंसे आंसू निकल आये।

उपेन्द्र चुपचाप उसकी ओर ताकते रहे।

मोक्षदाने आँखें पोंछकर रुलाई-भरे स्वरमे पूछा,—"बाबू, अब छोटे बाबू कहां है? एकबार भेंट होती, तो पूछती कि वे उसकी कुछ खोज-खबर रखते हैं या नहीं?"

उपेन्द्रने मृदुस्वरसे कहा, "सतीश इस समय कहां है, यह मैं भी ठीक ठीक नहीं जानता। सुना है, अपने देश चला गया है। अच्छा, यह सावित्री कौन है मोक्षदा?"

मोक्षदा क्रोधसे जलकर बोली—"कौन है? कुलीन ब्राह्मणकी लड़की है। नौ वर्षकी उम्रमे विधवा होकर घरमें रहती थी, वही मुंह-जला मर्द—"ब्याह करूंगा, राजरानी बनाऊँगा" कहकर उसे फुसलाकर निकाल लाया और बादको फूटी हांड़ीकी तरह पटककर भाग गया। मैं ही ऐसी औरत हूं, जो इनका साथ निबाह रही हूं, यह ब्राह्मण नहीं चमार है। चमारके हाथका पानी पी ले, पर इसके हाथका नहीं।"

उपेन्द्र इन बातोंको ठीक-ठीक समझ न सका, उसके पूछा,—"किसकी बात कहती हो मोक्षदा?"

मोक्षदाने आंख-नाक नचाकर उद्धत भावसे कहा, "यही मुँहजला मुरन मुखोपाध्याय। दूसरा ऐसा चमार तीनों लोकमें कौन है? वही उसकी बड़ी बहनका पति है, इसका यह धर्म! राम! राम!"

उपेन्द्रने अत्यन्त आश्चर्यमें आकर पूछा,—"जिनका यह होटल है?"

मोक्षदाने कहा,—"हाँ, बाबू हाँ, वही कंगाल— वही मनहूस।" इसके बाद अनुपस्थित भुवन मुकर्जीका नाम ले लेकर कहने लगा,—"तू उसका क्या कर सका? अथाह समुद्रमें डुबा दिया। इसके सिवा क्या कभी उसका शरीरतक छू सका। ले आनेपर आज नहीं कल करके जब महीने भरका समय टालकर तूने कहा कि 'व्याह नहीं होगा'— उसी दिन तेरे मुंहपर उसने लात मार दी। छोकरी थी, थोड़ी बुद्धि थी, तोभी क्या उसके घरका चौखट तक तू कभी लाघ सका? वह मोक्षदा नहीं थी, कि दो-चार बाते कहनेसे ही फन्देमे आ जाती। वह थी सावित्री, जिसने दस हजार रुपयेके जडाऊ गहनोंको भी घृणाके साथ लात मार दी है।"

उपेन्द्रने कुछ क्षण मौन रहकर कहा,- "अपने मुखोपाध्याय महाशयको ज़रा बुला सकती हो, उनसे दो बातें पूछूंगा।"

मोक्षदाने कहा,—"अभी वह बाजार गया है।' जरा ठहरकर फिर बोली,- "इस बीचमे एक दिन रास्तेमे चक्रवर्त्तीसे ेंट हो गयी। चक्रवर्ती रोता था और कहता था— "उसे सब कोई चाहता था जैसा रूप था, वैसा ही गुण था और वेसी ही दया-माया भी उसमें थी।"

उपेन्द्रने पूछा,- चक्रवर्त्ती कौन?"

मोक्षदाने कहा —"वे बाबू लोगोंके मेसमे रसोईदार थे, सब बातें जानते थे। विहारीके मुंहसे सुनकर उसने मुझसे कहा— "चेतलाके किसी ब्राह्मणके यहा काम करते समय बीमार पड़कर

बेचारी लड़कीने छुट्टी मांगी, तो उसने बडी निर्दयतासे कहा, "तुम्हारी दवा-दारू और पथ्य पानीमें सात रुपये खर्च हुए हैं, देकर चली जाओ।' क्या ब्राह्मणमात्र ही ऐसे निष्ठुर होते हैं ? जो हो, रुपये चुकानेकी गरजसे सावित्री सतीश बाबूके घर तक पैदल ही गयी। बाबूका मिजाज इधर खूब ऊँचा हो गया था, रुपया पैसा चाहे जितना कोई मागे, कभी नाहीं नहीं करते थे। किन्तु उसका ऐसा दुर्भाग्य कि उसी रातको बाबूका एक नासमझ दोस्त परिवारके साथ आया। दिनभरके बाद स्नानकर बेचारी ज्योंही घरमे गयी, त्योंही वे लोग आ पहुंचे। दोस्त थे, आये थे, तो रात भर ठहर सकते थे, सो नहीं; उसे देखते ही वे मारे क्रोधके उसी दम अपनी स्त्रीका हाथ पकड़ उलटे पांवों लौट गये। छोटे बाबू तो हक्के-बक्केसे हो गये। किन्तु मेरी सावित्री बड़ी अभिमानिनी लडकी है, वह क्या यह अपमान सह सकी। उसने जलतक न पीया, फौरन वहासे चली गयी। तबसे उसकी कुछ खबर नहीं मिली।

उपेन्द्र स्तब्ध हो बैठे रहे। उस रातका निष्ठुर इतिहास उनकी आखोंमें नाचने लगा और बार-बार यह प्रश्न मनमे उठने लगा, कि यदि मोक्षदाकी आधी बात भी सच हुई, तो जिसके नाम तकसे मैं घृणा करता आ रहा हूं, वह कैसी विचित्र स्त्री है।

मोक्षदा अपने कमपर चली गयी, किन्तु उपेन्द्र उसी जगह दुर्वार सोचमें पडे बैठे रहे। छः महीने पहले वे ये सब बातें सुनते भी न थे। जो असत् है, मिथ्या है, जिसका लेशमात्र

गिनी सुरबालाके निकट जानेके लिये अग्रसर करता था। इस बातको वे भीतर ही भीतर अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार समुद्र-तटके इस निर्जन स्थानमें इस लोककी अवधि जब नित्य ही निकटसे निकटतर आने लगी, तब एक दिन सवेरेकी डाकसे विहारीकी चिट्ठी घरसे लौटकर उनके हाथ आ पड़ी।

जिसकी याद आतेही उनकी छातीमें सुई गड़नेकीसी पीड़ा होने लगती है, और जिसे विना विचारे अपमान पूर्वक त्याग देनेकी ग्लानि उनके हृदयके भीतर नित्य-प्रति किस तेजीसे बढ़ रही है, यह केवल अन्तर्यामी ही देख रहे थे, पर आज जब बाल बन्धुकी भयंकर बीमारीकी खबर लेकर विहारीके पत्रने चिकित्सा और ठीक समयपर पथ्य-पानी न होनेकी बात प्रकट की, तब अनेक दिनोंके बाद उपेन्द्रके सूखे होठोंपर हँसीकी एक हल्की झलक दिखाई दी। वह बेचारा तो जानता नहीं, कि जिनके दिन भी अब गिनतीपर आ ठहरे हैं, उन्हींके हाथ वह और मनुष्यकी सेवाका गुरु-भार सौंपना चाहता है। जो हो, उपेन्द्रने उसी दिन अपना सामान बांध पुरीसे प्रस्थान किया।

४१

ज्योतिषने हाईकोर्टसे वापस आ, घरमें पांव रखते ही देखा, कि सामने बरामदेमें दो आराम कुर्सियोंपर शशांक और सरोजिनी आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं।

"उसके सम्बन्धमें जो कुछ जानते हो, मुझसे कह सकोगे ?"

"क्यों नहीं ?" कहकर उस निर्लज्जने अपने गम्भीर अपराधका इतिहास एक एककर प्रकट किया। अन्तमें कहा,—"मैं भी भले आदमीका लड़का हूं बाबू, किन्तु पहले यदि उसे पहचान सकता, तो इस रास्तेपर पांव भी न रखता और न आज मुझे विदेशमें होटल खोलकर रसोईदारका काम करके ही दिन काटने पड़ते। मेरी तो यही धारणा है, कि उसके शरीरमें प्राण रहते उसे कोई नष्ट न कर सकेगा।"

उपेन्द्रने पूछा,—"तुम्हारी इस धारणासे उसे क्या ?"

मुखोपाध्यायने कहा,—"तो भी परलोकमें जवाब दे सकूंगा, कि वह नष्ट नहीं हुई है।"

उसे विदाकर उपेन्द्र पूर्ववत् मूर्त्तिकी तरह बैठे रहे, केवल उनका मन बारम्बार उन्हें यह कहकर अंकुश मारने लगा—"अच्छा नहीं किया उपेन्द्र, अच्छा नहीं किया। जो निरुपाय-नारी ऐसे बड़े प्रलोभनोंको अनायास ही जीतकर चली जा सकती है, उसे अपमानित करनेका तुम्हें अधिकार नहीं था।

उसी दिन शामको उपेन्द्र, भुवन मुखोपाध्यायका भोजनालय छोड़कर अन्यत्र चले गये।

किन्तु समुद्र किनारेकी आबहवा उन्हें स्वस्थ न कर सकी। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जाता था त्यों-त्यों उनकी आंख-नाककी ज्वाला बढ़ती जाती थी और ज्वर भी चढ़ता जाता था। दिन-दिन यह ज्वर उन्हें तिल-तिलकर परलोकवासिनी पति वियो-

तो अनेक बार कह चुकी हूं, कि मुझे अब कोई भी आपत्ति नहीं। तू अच्छा समझे तो उसीके साथ सरोजिनीका व्याह कर दे।"

ज्योतिषने कहा, दोषहीन कोई मनुष्य नहीं है मां, किन्तु मैंने अनेक प्रकारसे सोच-विचार करके देखा है, कि सरोजिनी इस विवाहसे दुःखी न होगी। इसके सिवा वह-बड़ी हो चुकी है, उसकी मर्जीके बिना काम करना भी उचित नहीं है।" इसी समय उसने देखा कि सरोजिनी आ रही है। थोड़ी ही देरमें वह धीरे-धीरे भाईके पास आ खड़ी हुई।

मां भण्डारघरके भीतरसे बातें कर रही थीं, इसलिये कन्याका आना उन्हें मालूम न हुआ। ज्योतिषकी बातके जवाबमें वे झुँझलाकर बोलीं, "यह बात तो मैंने कभी नहीं कही ज्योतिष, कि इस सयानी लड़कीका व्याह उसकी मंजूरीके बिना हो। मेरी जो अभिलाषा थी वह जब तुम दोनों भाई-बहनोंने मिलकर पूरी न होने दी, क्या मैंने तभी लड़कीके मनका नहीं समझ लिया था? बेटा! मैं सब समझती हूं, करके ही मुँह बन्द किये बैठी हूँ। अब मुझे झूठा इलजाम देकर...." इतना कहकर वे जलपानकी चीजें लेकर बाहर आने लगीं। लज्जाके मारे सरोजिनी मिट्टीमें गड़-सी गयी। किन्तु मांको कुछ मालूम न हुआ, ज्योतिषके जवाब देनेके पहले ही अपनी बातके सिलसिलेमें फिर बोल उठीं, —"जिसको पानेसे तुम्हारी बहन खुश हो उसीको दो बेटा। मेरा मत

शशांक उठ खड़ा हुआ और मुस्कुराता हुआ बोला,—"आज काम-काज जल्दीसे पूरा हो गया; सोचा, यहींसे चाय पीकर एक साथ क्लब जायेंगे।

'ठीक! बहुत ठीक।" कहकर ज्योतिष हँसी दबाकर घरके भीतर चला गया।

सरोजिनी भाईके साथ भीतर जानेकी तैयारी करने लगी। यह देखकर ज्योतिष घूमकर खड़ा हो गया और बनावटी डांट दिखाते हुए कहा,—"अतिथिको अकेले छोड़कर तू......तेरी बुद्धि क्या हो गयी है, सरोजिनी?"

सरोजिनी फिर कुर्सीपर बैठ गयी। उसके चेहरेपर लाली दौड़ गयी। बहनको यह लज्जा ज्योतिषकी आंखोंसे छिपी न रही।

मांके आज्ञानुसार उसे अदालतसे लौट आनेपर कपड़े बदल, हाथ-मुँह धोकर जलपान करना पड़ता था। मांसे मिलते ही बोला,—'शशांक मोहन आये हैं, आज जलपानकी चीजें बाहर भेज दो मां।"

मांने कहा,—"अच्छा। शायद सरोजिनी बाहर ही है?'

ज्योतिषने सिर हिलाकर प्रकट किया कि "हां है" फिर जरा चुप रहकर बोला,—"अच्छा मां, तुम जानती हो, ऐसा मनुष्य नहीं है, जिसमें कोई दोष न हो, केवल गुण-ही-गुण हो?"

जगत्तारिणीको यह प्रश्न अच्छा न लगा। उन्होंने कहा,—"क्यों तू मुझसे बारम्बार ऐसी बात पूछता है, ज्योतिष? मैं

सरोजिनी धीरे-धीरे अपनी कोठरीमें चली गयी।

रविवारको सवेरे ज्योतिषका बैठकखाना इष्ट-मित्रोंसे भरता जा रहा था। नव-दम्पतिके विवाहकी बात पक्की हो जानेपर वहीं दोपहरको खाने-पीनेका भी प्रबन्ध किया गया था। आज शशांकके केवल वेश-विन्यासमें ही विशेषता नहीं दिखाई देती थी, वरन् उसके मुखमण्डलपर भी हंसी विराज रहा थी, जिससे वह सुन्दर दिखाई दे रहा था। कई स्त्रियां भी उपस्थित थीं, किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह थी कि सरोजिनी स्वयं उपस्थित न थी। बेहरेको बुलानेके लिये भेजनेके बाद ज्योतिष स्वयं भी जाकर उसके कमरेके दरवाजेपर धक्के दे, उससे शीघ्र आनेके लिये अनुरोध कर आया था और किसी दिन उसका ऐसा काम अपराधमें गिना जा सकता था; किन्तु आज उसे क्षमा पानेका अधिकार है। यह जानकर अभ्यागत-गण सस्नेह कौतुकसे केवल ज्योतिषको डांट रहे थे।

इसके बाद अनेक बार बुलाहट जानेके अनन्तर जब नौ बजे [illegible] उपस्थित हुई, तब उसका चेहरा देखकर सब [illegible]ोंको आश्चर्य हुआ। उसका मुँह पीला हो रहा था, आंखोंके [illegible] स्याही आ गयी थी, मानो रातभर उसे नींद न आयी हो। ज्योतिष स्थिर दृष्टिसे केवल बहनके चेहरेकी ओर ताकता रहा--चेहरा देख वह हतबुद्धि हो रहा।

किन्तु इसकी अपेक्षा भी सौगुना अधिक विस्मय कुछ क्षण बाद ही उसे होनेवाला था, वह यह न जानता था। वह प्रचण्ड

अब बार-बार जाननेकी क्या जरूरत है ? यही मेरा मत है, मैं स्पष्ट रूपसे कहे देती हूं।"

बहनके अत्यन्त संकोचमें पड़ जानेसे ज्योतिषको स्वयं भी बड़ा संकोच हो रहा था, तथापि अपने मनके आवेगको दबाकर मुस्कुराकर उसने कहा,—"लेकिन मत प्रसन्न मनसे देना चाहिये मां !"

जगत्तारिणीने कहा,—"प्रसन्न मनसे ही मत देती हूँ बेटा, प्रसन्न मनसे ही देती हूँ। मुझे अब तुम लोग और तंग न किया करो।

ज्योतिषने ज़रा चुप रह, सोचकर निश्चय किया कि बात जब यहांतक पहुंच गयी है, तो मांके ऊब जानेपर भी आज मीमांसा कर लेना ही उचित है। कारण, क्लब और लायब्रेरीमें आजकल इसी बातकी प्रायः सर्वत्र आलोचना हो रही है। पर यह समझमें नहीं आता कि अन्तमें होगा क्या ? घरमें यह बात प्रायः उठती है, किन्तु इसी तरह रुक जाती है, आगे नहीं बढ़ पाती। शशांकको भी इस प्रकार डांवाडोल हालतमें बहुत दिनों तक उलझा रखना ठीक नहीं। इसलिये वर कन्याकी सुनिश्चित इच्छाके विरुद्ध माताकी स्पष्ट अनिच्छाको शिरोधार्यकर इस समय कुछ निश्चय कर डालनेके लिये ज्योतिष बोला,—"तो मैं सोचता हूं कि दो-चार इष्ट-मित्रोंके आगे परसों रविवारको ही बात पक्की हो जावे—क्या कहती हो मां !"

मांने कहा,—"अच्छा तो है।"

कमरेमें चलो !" सरोजिनीने सिर हिलाकर थोड़ेमें कहा, "आज ठहर जाओ।"

ज्योतिषने आश्चर्यमें आकर कहा, "ठहरूं कैसे ?"

सरोजिनीने उसी तरह सिर हिलाकर कहा,- "नहीं भैया, आज ठहर जाओ।"

जगत्तारिणीने खबर पाकर कमरेमें आ, रोती आवाजमें कहा,—"कैसे यों बीमार पड़ गया बेटा ? किन्तु अब कहीं अन्यत्र तुम्हारा रहना न होगा उपेन्द्र ! मेरे यहां रहकर डाक्टरसे दिखाना होगा ; नहीं तो यह रोग दूर न होगा।

सरोजिनीने जोर देकर कहा, "हां उपेन्द्र भैया, तुमको हम लोगोंके ही यहां रहना होगा। उसने भी आज ही पहले-पहल उपेन्द्रको भाई कहकर पुकारा। उपेन्द्र इलाज करानेके लिये पुरी से चले आये हैं, यह बात पूछे बिना ही सब लोग समझ गये थे।

उपेन्द्रने मुस्कुरा कर कहा,—"फिर लौटकर न होगा तो लोगोंके ही यहां रहूंगा ; लेकिन आज मुझे एक घंटेके भीतर छोड़ दीजिये।

जगत्तारिणीने विस्मित होकर पूछा,—"आज ही ? इसी ? क्यों ?"

उपेन्द्रने सतीशकी कठिन बीमारीका जिक्र कर उसके दातव्य-चिकित्सालयका हाल, जो कुछ मालूम था, सुनाकर, जेबसे बिहारीकी लिखी चिट्ठी सरोजिनीके हाथपर रखकर कहा,—

विस्मय मानो उपेन्द्रकी छाया लेकर, सामनेका परदा हटाकर घरके भीतर आ उपस्थित हुआ। ज्योतिष चौंककर बोला,—"यह कौन ? उपेन्द्र ?"

सरोजिनी बोल उठी,—"उपेन्द्र बाबू !"

वस्तुतः यदि दिनका वक्त न होता तो शायद ये लोग उपेन्द्र-को पहचान नहीं सकते। सहसा अपनी आंखोंको ही मानो विश्वास नहीं होता, यह भी ख्याल नहीं किया जा सकता, कि मनुष्यका चेहरा इतना बदल सकता है। उपेन्द्र एक कुर्सीपर बैठकर बोले,—"शरीर वैसा अच्छा नहीं—पुरीसे चला आ रहा हूँ। आज यह सब क्या हो रहा है ?"

सरोजिनीने आकर और उपेन्द्रका हाथ अपने हाथोंमें लेकर उनके मुँहकी ओर ताककर कहा,—"क्या बीमारी हो गयी थी उपेन्द्र बाबू ? कहते ही उसकी दोनों आंखें डबडबा आयीं। उपेन्द्र ने अपने सूखे-मुर्झाये होठोंपर किसी तरह मुस्कुराहट लाकर कहा,—"बीमारी तो एक भी नहीं है बहन !"

उपेन्द्रने आज ही पहले-पहल सरोजिनीको बहन कहकर सम्बोधन किया। सरोजिनी जल्दी-जल्दी आंखोंके आँसू पोंछ-कर बोली.—"चलिये, उस कमरेमें चलकर बैठें ? कहती हुई वह उनका हाथ पकड़कर उस कमरेसे धीरे-धीरे बाहर चली गयी। साथ ही साथ इस कमरेका आनन्दोत्सव मानो एक-बारगी शान्त हो गया। ज्योतिषने आकर जब सरोजिनीसे कहा,—उपेन्द्र थोड़ी देरतक विश्राम करें, तुम एक बार उस

सरोजिनीने जोरसे सिर हिलाया—"नहीं—मैं जरूर जाऊँगी।" कहकर चली गयी।

ज्योतिष आफिसके कमरेमें कुर्सीपर बैठा एकान्तमें शशाङ्क से बातें कर रहा था, शायद सरोजिनीकी ही बातें चल रही थीं। इसी समय सरोजिनीने धीरे-धीरे जाकर भाईके पीछे खड़ी हो उसकी पीठपर हाथ रखा। ज्योतिष चौंक उठा और मुँह फेर कर बोला,—क्या है सरोजिनी?"

सरोजिनीने भाईके कानके पास मुँह ले जाकर मृदु-कण्ठसे कहा,—"सतीश बाबू बहुत बीमार हैं।"

ज्योतिषने दुःखित होकर कहा,—'हां, मैंने भी अभी सुना है। तो क्या उपेन्द्र इसी ग्यारह बजेकी ट्रेनसे जा रहे हैं?"

सरोजिनीने कहा,—हां, मैं भी उनके साथ जाऊंगी।"

ज्योतिष चौंककर बोला,—"तु जायेगी? कहां जायेगी?"

सरोजिनीने कहा,—"वहां।"

ज्योतिष सरोजिनीकी ओर मुड़कर बैठा, कुछ देर चुप रह बोला,—"वहांके क्या माने? क्या सतीशके घर?"

सरोजिनीने कहा,—"हां"

शशांक विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर ताकता गया। ज्योतिषने उत्तेजित स्वरसे कहा, 'तू पागल हो गयी है क्या, बता तो सही? वह बीमार है तो तेरा क्या? तू क्यों जायेगी?"

सरोजिनीने शान्तिपूर्वक दृढ़ कंठसे कहा,—"मैं न जाऊंगी

"साढ़े ग्यारह बजे गाड़ी मिलेगी। जो हो, थोड़ा-सा खा-पीकर मुझे उसीके पास जाना पड़ेगा। यदि लौटकर आ सका, तो आप लोगोंके ही आश्रयमें रहूँगा।"

जगत्तारिणीका मातृ-हृदय दहल उठा, उनकी आँखोंमें फिर आँसू उमड़ आये। सतीशको वे मन-ही-मन बहुत प्यार करती थीं—वह सतीश आज बीमार है; किन्तु उपेन्द्र यह रोगी शरीर लेकर उसकी सेवा करने चला है, जानकर उनकी छाती फटने लगी। वे आँखें पोंछती-पोंछती उपेन्द्रके खाने-पीनेका सामान ठीक करनेके लिये वहांसे उठकर चली गयीं।

सरोजिनीने चिट्ठीको दो-तीन बार आदिसे अन्त तक पढ़ा और फिर उसे वापसकर कुछ क्षण स्तब्ध भावसे बैठी रही, इसके बाद बोली,—"भैया, तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगी।"

उपेन्द्रने कहा,—"इस वक्त व्यर्थ स्टेशन जाकर क्या करोगी बहन?"

सरोजिनीने कहा,—"स्टेशन नहीं, सतीश बाबूके घर। मुझे साथ लेते चलो, उपेन्द्र भैया!"

उपेन्द्रने क्षुब्ध होकर कहा—"पागल हुई हो क्या? तुम कैसे जाओगी?"

"तुम्हारे साथ जाऊँगी।"

उपेन्द्रने कहा,—छिः! भला यह भी हो सकता है? ये लोग तुमको कैसे जाने देंगे, और तुम ही क्यों जाओगी?"

स्टेशनपर उतरकर उपेन्द्रने जिस सज्जन युवकसे सतीशके गाँवका रास्ता पूछा, भाग्यसे वह उसीकी डिस्पेंसरीका कम्पाउण्डर था, अपने किसी कामसे स्टेशन आया था। अपने मालिकके घर जानेकी वात सुनकर वह वहुत दौड़-धूप कर केवल सरोजिनीके लिये एक पालकीका इन्तजाम कर सका और उपेन्द्रसे वोला—यही वो महेशपुर दिखाई देता है, चलिये न बातें करते-करते पैदल ही चले चलें—जानेमें आध घंटा भी न लगेगा। वैलगाड़ीके सिवा कोइ दूसरी सवारी नहीं मिलेगी; लेकिन उसपर जानेसे वहुत देर लगेगी ?"

उपेन्द्रकी ऐसी अवस्था न थी कि पैदल चल सकें तं भी वैलगाड़ीके भयसे पैदल चलना ही उन्होंने मंजूर किया।

सरोजिनीको पालकीमें बैठा; दासी और दरवानको साथ कर उपेन्द्र उस नवयुवकके साथ चल पड़े। उसकी अवस्था सत्रह-अठारह वर्षसे अधिक न थी; खूब चुस्त-चालाक जान पड़ा। नाम रामदीन था। उसे आशा थी कि एक दो साल और किसी तरह अपने पास किये डाक्टर वावूके साथ रह सकनेपर वह भी अलग प्रैक्टिस कर सकेगा। वह समझता था, कि डाक्टरी कोई चीज़ नहीं, केवल हाथमें यश होना चाहिये। जिसे वचना है, वही वचता है, जिसे मरना है वह किसी तरह नहीं वचता।

उपेन्द्र इसमें कुछ भी मतभेद प्रकट नहीं किया, पूछा -"तुम्हारे वावू अव कैसे हैं ?"

तो कौन जायगा ? नहीं भैया, वे सख्त बीमार हैं, मुझे जाना ही……इसके आगे वह बोल न सकी। कण्ठ रुद्ध हो जानेके कारण वह भाईके कन्धेपर मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

ज्योतिषकी आंखोंपरसे बहुत दिनोंका एक काला पर्दा मानो प्रचण्ड बवण्डरमें पलक मारते फटकर उड़ गया, वज्राहतकी तरह कुछ क्षण वह चुप बैठा रहा; फिर बहनके सिरपर हाथ रख, धीरे-धीरे पुचकारते हुए उसने कहा—"अच्छा जा। साथमें दासी और दरवान भी जायं। वह जैसा रहे जाते ही तार देना, ताकि मैं कल या परसों डाक्टर रमणीरमणको साथ ले, वहाँ पहुंच जाऊँ।" कहकर उसने उसको सामने खड़ी करनेकी चेष्टा की; सरोजिनी लजाकर दोनों हाथोंसे मुँह ढक कमरेसे तेजीसे भाग गयी।

शशांकने बेवकूफकी तरह देखते रहकर फिर वही प्रश्न किया, "सतीश बाबू बीमार हैं तो ये क्यों जायंगी, यह मेरी समझमें नहीं आया; ज्योतिष बाबू! यह सब क्या बात है?"

ज्योतिषके कानोंतक यह प्रश्न पहुंचा या नहीं कहना कठिन है। स्वप्न देखकर एकाएक जग उठनेवाले मनुष्यकी तरह यह कहता हुआ वह बाहर चला गया—"उसके लिये यह इतनी व्याकुल हो उठेगी, यह तो कभी स्वप्नमें भी मैंने नहीं सोचा था! यह कहती कुछ है, करती कुछ और ही है। यह सब क्या मामला है, कुछ समझमें नहीं आता।"

उपेन्द्र—"उनको तुमने देखा है ?"

रामदीन—"हां, कुछ-कुछ देखा है।"

उपेन्द्र—उनकी उम्र क्या होगी, बतला सकते हो ?"

रामदीनने जरा सोचकर कहा,—"शायद चालीस-पचास वर्षकी होगी; वे न आतीं तो बाबूपर भला कोई रोक-थाम लगा सकता था ? डाक्टर साहब तो कहते हैं कि वे न आतीं तो बस खातमा ही था।"

रामदीनके साथ जब उपेन्द्र सतीशके घर पहुंचा, तब सूर्यास्त हो रहा था। सरोजिनी पहले ही पहुंच गयी थी। फाटकके बाहर, बड़के पेड़के नीचे, उसकी पालकी रखवाकर दरबान उपेन्द्रकी बाट जोह रहा था। सामने ही खैराती दवा-खाना था, वहां लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़ लगी हुई थी।

रामदीन सबको साथ लिये नीचेके बैठकखानेमें पहुंचा और उनको वहां बिठा, बिहारीको बुलाने चला, पर बिहारीसे भेंट न हुई। डाक्टर साहब रोगियोंको देखनेके लिये बाहर गये हु थे, उपस्थित लोग उन्हींकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

उपेन्द्रको इन माईजीके सम्बन्धमें अधिक संशय था। इसलिये सरोजिनीको वहीं ठहरनेके लिये कहकर वे सीधे सामनेकी सीढ़ियोंपरसे ऊपर चढ़ गये।

सतीश पलंगपर सो रहा था। उसके सिरके पास बैठी सावित्री ध्यानसे नुसखा देख रही थी। खुली खिड़कीसे सूर्यास्त-समयका लाल प्रकाश दीवारपर पड़ रहा था।

रामदीनने कहा, - "बाबू ? आज बाईस दिन हुए, वे तो अब अच्छे हो गये हैं। महाशय, सब दवा मैंने ही दी है।' कहकर उसने कई बार अपनी छाती आप ही ठोंकी।

उपेन्द्रने बहुत कुछ निश्चिन्त होकर पूछा,—"बीमारी क्या बहुत बढ़ गयी थी, रामदीन बाबू ?"

रामदीनने कहा,—"बहुत बढ़ गयी थी! वे तो एक प्रकार-से मर ही गये थे। ऐन मौकेपर यदि माईजी न आ पहुंचतीं तो आराम होना दुस्साध्य था। बीमारी क्यों न हो, आप ही कहिये, दिन-रात खाकीबाबाके साथ शराब और गांजा पीना। भला, इससे देवी सिद्ध होती है! खाक होती है! इन सब बातोंका क्या हम डाक्टर लोग विश्वास करते हैं महाशय ? माईने आते ही खाकी बाबाका बाबापन दूर कर दिया, आसन, झोली, त्रिशूल-फिशूल सब फेंक-फांक बाहर कर दिया। धूर्त सालेने कुछ दिन क्या कम आफत ढायी है ? मानों वही बाबू हो। कभी इसको मारा, कभी उसको पीटा, कभी किसीको गाली ही दे दी। एक दिन एक बिल्कुल मामूली बातके लिये मुझपर ऐसा कटकटा उठा, कि क्या बताऊँ। मैं किसीसे लड़ना-झगड़ना पसन्द नहीं करता, दूसरा कोई होता, तो सच कहता हूँ, सालेका उस दिन सर फोड़ डालता।"

उपेन्द्रने पूछा,—"ये माईजी कौन हैं ?"

रामदीनने कहा,—"यह मालूम नहीं। सब उन्हें माईजी कहते हैं। मैं भी कहता हूँ।"

उपेन्द्रने थोड़ी देरतक चुप रहकर कहा,– तुमसे मैं उम्रमें बड़ा हूँ ! मैं तुमको सावित्री कहूँगा; तुम मुझे भाई कहना। आजसे तुम मेरी छोटी बहन हो।"

सावित्रीने चुपचाप उठकर उपेन्द्रके पांवोंमें झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ बढ़ाकर उपेन्द्रके जूतेका फीता खोलते-खोलते सिर नवाये हुए पूछा,—"आपके आनेमें इतनी देर क्यों हुई ? क्या चिट्ठी वक्तपर नहीं मिली ?

उपेन्द्रने सावित्रीके काममें बाधा नहीं दी, उसने सहज भावसे कहा,– "नहीं। परसों पुरीमें तुम्हारी चिट्ठी पाकर चला आ रहा हूँ। किन्तु तुम्हें एक बहुत ही कठिन काम करना बाकी है बहन ! ....

इतना कहनेके बाद ही उपेन्द्रका मुँह बन्द हो गया।

सावित्रीने जूते खोलकर एक ओर रख दिये और मोजे उतारती हुई बोली,—"कौन-सा काम है ?"

फिर भी उपेन्द्रका मुँह न खुला। इसके बाद मानों बलपूर्वक भीतरका संकोच दूरकर उन्होंने कहा,—'किन्तु तुम्हारे सिवा ऐसा काम और कोई नहीं कर सकता। एक और थी, जो कर सकती थी और वह थी सुरबाला।"

सावित्री चुपचाप खड़ी उनकी बातें सुन रही थी, यह देखकर उपेन्द्रने पूछा,—"सरोजिनीका नाम सुना है ?"

सावित्रीने कहा, –"सुना है।"

"शायद अब सुना है ?"

इसी समय दरवाजेका भारी पर्दा हटानेकी आवाज सुनकर सावित्रीने मुँह उठाकर एक अपरिचित भले आदमीको देखा।

उसे जल्दीसे मुँहपर घूँघट डाल, उठ खड़ी होनेकी चेष्टा करते देख, आगन्तुकने पास आकर कहा,—"उठनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं उपेन्द्र हूं। आप सावित्री हैं न ?"

सावित्रीने सिर हिलाकर वतलाया,—"हां।" किन्तु भय, लज्जा और संकोचसे वह मानो एकवारगी धरतीमें मिल गयी।

उपेन्द्रने पूछा,—"सतीश सो रहा है ? अव उसकी तवीयत कैसी है ?"

सावित्रीने पहलेकी ही तरह सिर हिलाकर जाहिर किया,—"अच्छे हैं।"

उपेन्द्र धीरे-धीरे आकर पलंगके एक कोनेमें बैठ गये। अपना कर्त्तव्य उन्होंने पहले ही स्थिर कर लिया था, कहा—"मुझे वह चिट्ठी आपने ही लिखी थी, यह मैं अव समझ रहा हूं। मुझे आनेके लिये लिखकर आपने अपने सुख-दुःख और भले-बुरेको कितना तुच्छ समझा था, यह न समझिये, कि मैं इन बातोंको नहीं जानता। यही तो उचित था ! यही आत्मीयताका सच्चा परिचय है।"

सावित्रीको ऐसा जान पड़ा, मानो वह स्वप्न देख रही हो और ये कोई और ही उपेन्द्र बाबू हैं। ये शायद सतीशके वे उपेन्द्र जैसा नहीं हैं !

परिचय दोगी, उससे कह देना कि हम दोनों भाई-वहनने आज तक संसारमें कभी कोई खोटा काम नहीं किया है।"

सावित्री चली गयी। उपेन्द्रने सोये हुए सतीशकी ओर देखकर पुकारा,— "सतीश, ओ सतीश!"

सतीशकी नींद टूट गयी। वह जल्दीसे उठ बैठा और आंखें मलकर चुपचाप ताकने लगा।

"तेरा उपेन्द्र भैया हूं, मुझे पहचान नहीं सकता?"

"उपेन्द्र भैया!" सतीश विफल नेत्रोंसे उन्हें निहारता रहा।

"क्या अब भी मुझे पहचान नहीं सका?"

सतीशने नींदकी खुमारीमें, जो शायद अब भी दूर नहीं हुई थी, अलसाती हुई आंखोंसे देखकर कहा,--"हां पहचाना, तुम आये हो उपेन्द्र भैया?"

"हां, भाई, मैं ही आया हूं।"

"तो जरा पांवोंको एक वार ऊपर उठाओ उपेन्द्र भैया, वहुत दिनोंसे तुम्हारे पांवोंकी धूल सिरपर नहीं चढ़ा सका हूं।"

उपेन्द्रने दोनों हाथ वढ़ाकर अपने सदाके बन्धुको छातीसे लगा लिया। कुछ देर तक दोनों अचेतन मूर्तिकी तरह एक-दूसरेकी छातीसे लगे रहे। अनन्तर उपेन्द्रने धीरे-धीरे कहा,— "और देरी न कर सतीश, शीघ्र चंगा हो जा, मेरे वहुतेरे काम तेरे लिये पड़े हैं।"

"कौन काम उपेन्द्र भैया?" कहकर सतीशने पीछेकी ओर किसीके पांवोंकी आहट सुन, मुड़कर देखा। देखकर एकबारगी

सावित्रीने सिर हिलाकर जाहिर किया कि उसे सब कुछ मालूम है।

तब उपेन्द्र धीरे-धीरे कहा—"सतीशकी बीमारीकी बात सुनकर वह किसी तरह रोके न रुकी, मेरे साथ वह भी आयी है, नीचेके कमरेमें बैठी प्रतीक्षा कर रही है। उसका कोई उपाय करो बहन।"

सावित्री कुछ व्यस्तताके साथ उठ खड़ी हुई और बोली,—"वे आयी हैं! मैं अभी जाकर ...... किन्तु क्या मैं उनके पास जा सकती हूं?"

इस इशारेको उपेन्द्र अनायास समझ गये, दोनों आंखें फैलाकर मुक्तकण्ठसे बोल उठे,—"तुम जा नहीं सकती? मेरी छोटी बहन क्या संसारकी किसी स्त्रीसे हेय है, कि उसे कहीं किसीके आगे अपना सर ऊँचा किये रहनेमें संकोच होगा? मेरी बहन होना क्या पृथ्वीमें साधारण परिचय है?

सावित्री और न सह सकी, पलक मारते उसका सिर उपेन्द्रके दोनों पांवोंपर एकबारगी गिर पड़ा। बार बार उन दुबले-पतले पांवोंकी धूल माथेपर चढ़ाकर जब वह सीधी खड़ी हुई, उस समय उसका मुँह घूँघटकी ओटमें न था, दोनों आंखोंसे आंसू बरस रहे थे। उपेन्द्र आंसुओंसे भीगे उस मुखमण्डलपर नारी-चरित्रकी महती महिमा एकटक देखने लगे।

आंखें पोंछकर जब सावित्री घरसे बाहर निकल आयी, तब उपेन्द्रने पीछेसे कहा,—"जाओ बहन, जिसे बहन कहकर अपना

सतीश ! आज मेरी इस बहनको तुझे माफ करना ही होगा। इसके हृदयके भीतरके बहुत दिनोंके संचित दुःखोंने आज तेरी सेवाके लिये ही मेरे साथ इसको भेज दिया है, किन्तु बहन सावित्री, तुम यदि इस तरह मुँह लटकाये खड़ी रहोगी, तो काम न चलेगा। तुम्हारे इस मरणोन्मुख भाईके कितने ही उत्पातों और गुरुतर भारोंको आजसे तुम्हें अपने कन्धोंपर उठाना होगा। आओ, बहन ! मेरे पास आकर बैठो।"

सावित्रीका नाम सुनकर सरोजिनी लज्जा, संकोच, दुःख, क्षोभ सब कुछ भूलकर मुँह ऊपर उठाकर खड़ी हो गयी। इतनी देरतक सरोजिनी सावित्रीको उपेन्द्रकी कोई आत्मीया समझ रही थी।

सावित्री चुपचाप उपेन्द्रके पांवोंके पास आकर बैठ गयी, उपेन्द्रने उसके सिरपर हाथ रखकर कहा—"तुम यह मत समझना बहन, कि मैं तुमसे माफी मांगकर तुम्हारी अमर्यादा करूँगा, किन्तु भाई सतीश तू मुझे माफ कर। तेरा जो कुछ अपमान, जो कुछ अनिष्ट मैंने किया है, वह सब भूल जा।"

सतीश क्या कहता ? उसकी समझमें कुछ न आया। वह अवाक् हो, टकटकी लगाये देखता रहा !

उपेन्द्रने उदासी भरी हँसी हँसकर कहा,—मैं समझता हूँ, सतीश, कि तुम लोग क्या सोच रहे हो ? सोच रहे हो, कि वही गम्भीर उपेन्द्र भैया लड़कोंकी तरह क्यों बक रहे हैं, किन्तु तुम लोग तो जानते नहीं भाई, कि कबसे तुम्हारे उपेन्द्र

स्तम्भित हो रहा। सावित्रीका हाथ पकड़े सरोजिनी चली आ रही थी।

वह एक वार उपेन्द्रकी ओर देखकर और एक वार अच्छी तरहसे आंखोंको मलकर इन दोनों रमणियोंके मुंहकी ओर चुपचाप ताकता रहा. उसे अपनी आंखोंपर विश्वास करनेका साहस नहीं होता है, यह वात उपेन्द्र और सावित्री दोनोंने समझ ली।

सरोजिनी कुछ काल तक सतीशके जीर्ण-शीर्ण पीले चेहरेकी ओर देखकर जल्दीसे पांव वढ़ा, सतीशके पांवोंके पास बिछौने पर मुँह रख, रोदनके आवेगको दबानेकी चेष्टा करने लगी! किसीने कुछ न कहा, किन्तु इस रोनेके भीतर कितनी वेदना और क्षमा-प्रार्थना भरी थी, वह किसीको समझानेको बाकी न रहा। सतीश चुपचाप कठपुतलीकी तरह वैठा रहा, उसके हृदयका एक भाग जिस प्रकार अव्यक्त आनन्दकी तरंगसे लहराने लगा, दूसरा भाग कठिन समस्याके घात-प्रतिघातसे उसी प्रकार भीत और संक्षुब्ध हो उठा। वहुत देरतक किसीके मुँहसे कोई वात न निकली, गोधूलि-वेलाके अन्धकारपूर्ण, नीरव, शान्त कमरेके अन्दर केवल सरोजिनीके दुर्निवार-क्रन्दनका वेग उसके प्राणपणसे रोकनेके कारण और भी उच्छ्वसित होने लगा। उपेन्द्रके कंठस्वरने यह निस्तब्धता भंग की। उन्होंने सरोजिनीके मस्तकपर धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ रखकर कहा,—"अपराध चाहे जिसका हो, उसका विचार न कर

भैया, हमारी भाभी अच्छी है न ? उनको बीमारीकी हालतमें ही मैं यहां चला आया था।"

उपेन्द्र कुछ देरके लिये दांतोंसे होठोंको जोरसे दबाया। इसके बाद अपने अभ्यासके अनुसार एक बार ऊपरकी ओर देखकर कहा,–"नहीं, वह अब नहीं है, मर गयी।"

सरोजिनी चिल्ला उठी;–"सुरबाला भाभी नहीं है ?"

उपेन्द्रने कहा;–"नहीं !"

सतीश मोटे तकियेके सहारे मूर्च्छाहतकी तरह शून्य-दृष्टिसे देखता बैठा रहा।

"सुरबाला नहीं है; वह मर गयी" यह बात बड़ी आसानीके साथ उपेन्द्रके मुंहसे बाहर निकल पड़ी; किन्तु यह नहीं रहना क्या है, यह मरना क्या है; इसे सतीशसे अधिक और कौन समझ सकता है ! सरोजिनीकी अपेक्षा किसने अधिक देखा है, सावित्रीकी अपेक्षा किसने अधिक सुना है !

तथापि सुरबाला नहीं है–वह मर चुकी है। सतीशके मुंह-की ओर देखकर उपेन्द्रने ज़रा मुस्कुराकर कहा,–"भगवानने उसे ले लिया, उसकी फिर फरयाद क्या ! किन्तु इस समय यदि दिवाकर पास होता ! उसके मां-बाप नहीं हैं, बचपनसे पाल-पोसकर मैंने इतना बड़ा किया, न मालूम कहां चला गया ? नहीं जानता, मरनेके पहले उसे एक बार देख पाऊंगा या नहीं।"

सतीशने उसी प्रकार मूर्च्छितकी तरह रहकर पूछा;–"दिवाकरका क्या हुआ, उपेन्द्र भैया ?"

भैयाका यह मुख बिलकुल बन्द हो रहा था। इसीसे जितनी बात मनमें इकट्ठी हुई थीं आज सब अकुलाकर निकलती आती हैं। किसे रोकूँ,—किसे दबाऊँ ?"

उपेन्द्रकी बातोंके ढंगसे सतीशका हृदय किसी अज्ञात आशंकासे जोर-जोरसे धड़कने लगा। एक बात उसने जाननी चाही, किन्तु प्रश्नका ठीक-ठीक ढांचा वह न बना सका और न उसके मुंहसे कोई शब्द ही निकल सका। वह जैसे ताक रहा था, वैसे ही ताकता रहा।

उपेन्द्रने सरोजिनीके मुँहकी ओर देखकर सतीशसे कहा,—"तुम अच्छे हो जाओ, आशीर्वाद करता हूं तुम सुखसे रहो। मैं अपनी इस बहनको लेकर चला जाऊँगा।" कहकर उपेन्द्रने धीरे-धीरे सावित्रीके सिरको उँगलियोंसे स्पर्श करके कहा,—"तुम्हारे सिवा भार लेनेवाला और कोई नहीं है। बीमारी टेढ़ी है, इससे किसीको पास बुलानेका साहस नहीं होता, होना उचित भी नहीं। केवल तुम्हारी सी बहनके हाथमें, जो दूसरेके उपकारके लिये ही जीवित है, अपनेको सौंप दे सकता हूँ। चलोगी मेरे साथ ? सतीशको छोड़ जानेमें कष्ट होगा, तो हो। इसकी अपेक्षा कितना अधिक दुःख कष्ट सहाकर भगवान मनुष्यको ज्ञानी बना देते हैं।

सतीशके मनके भीतर वही प्रश्न, जिसकी रूप-रेखा वह मन ही मन अंकित नहीं कर सकता था मानों बिजलीकी तरह आंखों के सामने उद्भासित हो आया। वह सहसा बोल उठा,—"उपेन्द्र

उसने उपेन्द्रके पांवोंपर हाथ फेरते हुए कहा,—"भैयाजी, मैं समझती हूं, कि ऐसी बीमारीमें तुम्हारे लिये पहाड़की हवा अच्छी होगी ?"

उपेन्द्रने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा,—"हां, बहन ! यही तो डाक्टर लोग भी कहते हैं, किन्तु भगवान्‌का बुलावा जिसके लिये आ जाता है, उसे कोई कुछ फायदा नहीं पहुंचा सकता।"

सावित्रीने कहा,—"होने दीजिये, किन्तु हम लोग पहाड़पर ही चलकर रहेंगे।"

उपेन्द्रने हँसकर कहा,—"अच्छा, ऐसा ही होगा।"

भगवतकी पूजा निकट आ गयी और सतीशके बिलकुल स्वस्थ होनेके पहले ही बंगालियोंके सर्वश्रेष्ठ आनन्दोत्सवके दिन सुख-स्वप्नकी तरह बीत गये। और भी कुछ दिन यहां रहनेकी बात थी; किन्तु उपेन्द्रके शरीरकी अवस्था देखकर सावित्रीने त्रयोदसीके दिन यात्रा करनेका निश्चय किया। उपेन्द्रके आपत्ति करनेपर उसने आग्रहपूर्वक कहा,—"भैया यह न होगा। सतीश बाबूको अब बिमारी नहीं है, उनका शरीर बलवान् हो जानेतक यदि तुम प्रतीक्षा करोगे; तो तुम्हारे इस नित्य-प्रति छीजते हुए शरीरको मैं खोजे भी न पाऊँगी। परसों हमलोगोंको यहांसे जाना ही होगा। तुम अस्वीकार न करो; भैया।"

उपेन्द्रने मुस्कुराकर कहा—"अच्छा, देखा जायगा; किन्तु ऐसा होनेसे ही क्या तुम मुझको रोक रखोगी ?'

सावित्री बहस न करके काम करने चली गयी। उपेन्द्रके

उपेन्द्रने कहा,—"क्या मालूम उसका क्या हुआ! कलकत्ते में हारान वावूके घरमें रहकर पढ़नेको कहा था—यह लज्जाकी वात किसीसे कही भो नहीं जाती—कहनेकी इच्छा भी नहीं होती। घरवाले अव भी यही जानते हैं कि वह कलकत्ते में पढ़ता है। सुरवाला उसको वहुत चाहती थी। उस वेचारीने मरनेके पहले उसे देखना चाहा था। किन्तु उसकी वह लालसा पूरी न कर सका! हारान वावूकी स्त्रीके साथ वह न जाने कहाँ चला गया है, उसका कुछ भी पता नहीं है।"

तीनों ही स्रोता एक साथ अव्यक्त कण्ठसे क्या कहकर चिल्ला उठे, यह स्पष्ट रूपसे जाना न जा सका।

इसके वाद सव चुप हो गये। कमरेमें जन-शून्य श्मशानकी तरह सन्नाटा छा गया।

कोई उपेन्द्रके मुँहकी ओर ताक भी न सका, किन्तु सवके मनमें यह मालूम होने लगा, कि उन लोगोंका इतने दिनोंका दुःख कष्ट, मान-अभिमान सव इस अभ्रभेदी वेदनारूपी हिमलाय के निकट एक वारगी कुहासेकी तरह तुच्छ हो गया है।

सावित्री सतीशसे सव वातें सुन चुकी थी वह सोचने लगी, इस मनुष्यने ऐसी शून्यताको किस वस्तुसे भर रखा है, इस व्यथाको वह किस तरह अपने नित्यकी जीवन-यात्रामें ऐसी सुगमतासे लिये फिरता है? जिसकी छातीके भीतर इतना घोर हाहाकार है, उसके वाहर कुछ भी आक्षेप नहीं? इसने क्या रिससे पाया है? इसके सुख-दुःखोंको ऐसा सुसह्य वना दिया है?

तेरा शरीर वैसा स्वस्थ क्यों नहीं मालूम होता ? कलसे तू बहुत उदास दिखाई देता है।"

सतीशने उदास कण्ठसे कहा, -"नहीं स्वास्थ्य तो अब बहुत ठीक है, कोई खास शिकायत नहीं है।"

उपेन्द्रके चले जानेपर सावित्री घरके भीतर आयी। उसकी दोनों आँखें लाल थीं, पलकें भींगकर भारी हो गयी थीं, यह बात उसकी ओर ताकते स्पष्ट मालूम हो गयी। सिरकी कसम दिलाकर सावित्रीने पूछा — 'बात रखोगे ?"

सतीश बोला,—"रखूँगा।"

"शराब गांजा कभी हाथसे भी न छूओगे ?"

"नहीं।"

मुझसे पूछे बिना तन्त्र-मन्त्रको ओर भी नहीं जाओगे ?"

"नहीं।'

"जब तक शरीर बिल्कुल आरोग्य न होगा, तब तक दो दिनके अन्तरसे चिट्ठी लिखा करोगे ?"

"लिखूँगा।"

'उसमें कोई बात छिपाओगे तो नहीं ?"

"नहीं।"

"तो अब जाती हूं।" कहकर सावित्री झटपट हाथ जोड़; सिर नवा, बाहर चली गयी।

सतीश बिछौनेपर बैठा था, लेट रहा। विदा करनेके लिये नीचे उतरनेकी चेष्टा भी उसने नहीं की।

दिन यहाँ शान्तिसे कटते थे, इसीसे जानेके लिये उनको जल्द न थी, और यात्राका दिन इतना निकट है, इसपर भी शायद उन्होंने विश्वास नहीं किया। किन्तु सतीशका मुँह सूख गया। कारण, सावित्रीके हठके साथ उसका घनिष्ट परिचय था। वह कोई बाधा नहीं मानती, और जो कोई इसकी छायामें आता है, उसे अन्ततक दबकर रहना पड़ता है, यह वह अच्छी तरहसे जानता था। अतः त्रयंदशीकी तिथि किसी तरह न टलेगी, इसमें उसे तनिक भी सन्देह न रहा; किन्तु उसने कोई बात नहीं कही। दूसरे दिन भी वह इस सम्बन्धमें कुछ न बोला। उसके सामने ही बिहारीने सावित्रीसे जब सजल नेत्रोंसे पूछा,-"अब कब दर्शन दोगी माँ" तब भी सतीश चुप रहा।

सावित्रीने सतीशके मुँहकी ओर कनखियोंसे ताककर गम्भीरताके साथ कहा,—"बिहारी, तुम्हारे बाबूका जब विवाह होगा, तब फिर भेंट होगी। अवश्य ही यदि तुम्हारे बाबू दया-कर बुलावेंगे, तभी······

कोई दस दिन पहले सरोजिनीको ले जानेके लिये ज्योतिष स्वयं आये थे, पर उसी समय उपेन्द्रकी मध्यस्थतामें विवाहकी बातचीत पक्की हो चुकी थी।

सतीशने कुछ भी आपत्ति नहीं की। वह स्थिर हो रहा। उसकी मरणाशौचकी अवधि बीत जानेपर ही विवाह होगा। सावित्री भी मौन रही।

जानेके दिन उपेन्द्रने जरा चिन्तित होकर पूछा,—"सतीश

कहा,—"छिः यह तुम कैसी बात कह रहे हो? वे तो मुझे बलपूर्वक नहीं लिये जाते, उनकी स्त्री नहीं, भाई नहीं, तुम नहीं—ऐसी बड़ी सांघातिक बीमारीमें सेवा करनेवाला कोई भी नहीं है; इसीसे तो वे मुझे तुमसे मांगकर लिये जाते हैं? इसको क्या जबर्दस्ती करना कहते हैं?"

सतीशने बड़े जोरसे सिर हिलाकर कहा "यह झूठी बात है—फुसलाना है। वे अपने बन्धु ज्योतिष बाबूका मुँह देखकर ही तुम्हें मेरे पाससे हटा लेना चाहते हैं। पिछले दो दिनों तक लगातार सोच-विचार करते रहनेके बाद मैं इसी निष्कर्षपर पहुंचा हूँ, कि जो चुपचाप जितना ही सहन करता है, सब उसीपर अत्याचार करते हैं। इसका कारण चाहे जो हो, मैं तुमको जाने न दूँगा। जाने दो, इस बातको लेकर तर्क-वितर्क करके माथा गरम करना मैं नहीं चाहता। बिहारीसे नीचे कहला भेजो, कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहा ....

सावित्रीने झटपट अपने हाथसे उसका मुँह दबाकर कहा,—"क्या तुम पागल हो गये हो? अच्छा, मान लो, उनका मतलब अच्छा न हो, किन्तु तुम्हीं मुझे लेकर क्या करोगे—बताओ तो सही।"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला,' 'यदि कहूँ कि मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूंगा!"

सावित्री बोली,- "और यदि मैं कहूं कि इस बातसे मैं ...

बाहर दो पालकियाँ तैयार थीं। पास खड़े होकर उपेन्द्र डाक्टर साहबसे धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। सावित्री मोटी चादरसे सारा शरीर ढककर धीरे-धीरे आकर ज्योंही दूसरे कमरेमें प्रवेश करने लगी, त्योंही बिहारीने दौड़ते हुए आकर चुपकेसे कहा,—"ज़रा लौट चलो। ई; बाबू किसी जरूरी कामके लिये बुला रहे हैं।"

सावित्री लौट गयी। उपेन्द्र यद्यपि उधर बातें कर रहे थे, पर उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुए बिना न रहा। सावित्री पहलेसे ही मनमें डर रही थी, कि कहीं सतीश अन्तिम समय कोई विघ्न न खड़ा करे। सतीशके कमरेके अन्दर जाकर उसने देखा कि सतीश दूसरी ओर मुँह किये लेटा है। चारपाईके पास पहुंच, सावित्रीने हँसते हुए कहा,—"बात क्या है? क्या हमलोगोंको इस ट्रेनसे जाने न दोगे?" सतीशने झट सावित्रीकी ओर मुँह फेर हाथ बढ़ाकर उसकी चादरको जोरसे पकड़कर कहा, "बैठो। मैं तुम्हें जाने न दूंगा। यह मेरा गाँव है, मेरा घर है, मेरी इच्छाके विरुद्ध तुमको जबर्दस्ती ले जा सके, यह ताकत दस उपेन्द्रोंमें भी नहीं है।"

सावित्री भौंचकसी हो रही। उसने देखा, सतीशकी आँखें हिंसासे पूर्ण हो रही हैं, उसकी वह दृष्टि उसके स्वभावके बिलकुल विपरीत थी।

सावित्री समझ गयी कि जोर-जबर्दस्तीसे काम न चलेगा। उसने चारपाईके एक किनारे बैठ, स्नेह और भर्त्सनाभरे स्वरसे

कहा,—"छिः यह तुम कैसी बात कह रहे हो ? वे तो मुझे बल-पूर्वक नहीं लिये जाते, उनकी स्त्री नहीं, भाई नहीं, तुम नहीं—ऐसी बड़ी सांघातिक बीमारीमें सेवा करनेवाला कोई भी नहीं है ; इसीसे तो वे मुझे तुमसे मांगकर लिये जाते हैं ? इसको क्या जबर्दस्ती करना कहते हैं ?"

सतीशने बड़े जोरसे सिर हिलाकर कहा "यह झूठी बात है—फुसलाना है। वे अपने बन्धु ज्योतिष बाबूका मुंह देखकर ही तुम्हें मेरे पाससे हटा लेना चाहते हैं। पिछले दो दिनों तक लगातार सोच-विचार करते रहनेके बाद मैं इसी निष्कर्षपर पहुंचा हूँ, कि जो चुपचाप जितना ही सहन करता है, सब उसीपर अत्याचार करते हैं। इसका कारण चाहे जो हो, मैं तुमको जाने न दूँगा। जाने दो, इस बातको लेकर तर्क-वितर्क करके माथा गरम करना मैं नहीं चाहता। बिहारीसे नीचे कहला भेजो, कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहा ......

सावित्रीने झटपट अपने हाथसे उसका मुंह दबाकर कहा,—"क्या तुम पागल हो गये हो ? अच्छा, मान लो, उनका मतलब अच्छा न हो, किन्तु तुम्हीं मुझे लेकर क्या करोगे—बताओ तो सही ।"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला,' 'यदि कहूँ कि मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूंगा !"

सावित्री बोली,—"और यदि मैं कहूं कि इस बातसे मैं सहमत नहीं।"

सतीशने कहा,—"तुम्हारे सहमत होने-न-होनेसे कुछ भी आता जाता नहीं है।"

सावित्री डरती हुई मुस्कुराकर बोली,—तो क्या मेरे साथ जबर्दस्ती व्याह करोगे?" कहकर मुस्कुराहटको गम्भीरतामें परिणतकर सतीशके ललाटपरसे रूखे बालोंको गहरे स्नेहसे धीरे-धीरे हटाती हुई बोली,—"छिः! ऐसी बात भूलकर भी मनमें न लाओ। मैं विधवा हूँ, कुल-त्यागिनी हूँ, मैं समाजमें लांछिता हूँ, मुझसे व्याह करनेमें कितना बड़ा दुःख है, यह तुम नहीं समझते, किन्तु जो आजन्म शुद्ध है, अतलस्पर्शी शोककी आगने जिन्हें जलाकर हीरेकी तरह निर्मल बना दिया है, वे समझ-बूझकर ही इस हतभागिनीको आश्रय देनेके लिये अपने साथ लिये जाते हैं। अत्यधिक आवेशमें रहनेके कारण, उनकी मंगल-कामना आज तुम्हारे मनमें न आयेगी। इसीसे उनपर झूठ-मूठ दोषा-रोपण कर अपनेको हीन न बनाओ। भगवानके चरणोंमें अपराधी न बनो।" कहते-कहते उसकी आंखोंसे आंसू टपक पड़े।

आंखोंके ये आंसू आज सतीशको शान्त न कर सके, बल्कि वह अधिकतर उत्तेजित हो उठे, बोला,—"सब झूठ है। तुमने इसी तरह अपनेको मुझसे अलग रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन्द्र भैयाने ही कहा है, कि तुम संसारमें किसीकी अपेक्षा हीन नहीं हो, यह सच बात है।"

सावित्रीने कहा,—'नहीं, यह बात नहीं है। भैयाजी अब

समाजसे बाहर हैं, इस लोकसे बाहर हैं, इसीसे उनके मुँहकी सच्ची बात भी, दूसरेके लिये दूसरेकी भिन्न भावनाके कारण सच नहीं है। तुम कहोगे कि सच हो या झूठ मैं समाजको नहीं चाहता, तुमको चाहता हूँ, किन्तु मैं तो यह नहीं कह सकती। समाज मुझे नहीं चाहता, मुझे नहीं मानता, यह मैं जानती हूँ; किन्तु मैं तो समाजको चाहती हूँ, मैं तो उसे मानती हूँ? मैं जानती हूँ कि श्रद्धाके सामने प्रेम टिक नहीं सकता। समाज जिस स्त्रीको उसके सम्मानका आसन नहीं देता; किसी स्वामीकी मजाल नहीं, कि जबर्दस्ती उसे वह आसन दे सके। देखो, इस असाध्य साधनकी चेष्टा न करो।"

सतीश दोनों हाथोंसे सावित्रीके दोनों हाथ जोरसे दबाकर बोल उठा,—"सावित्री, ये सब बात सुननेके लिये आज मुझमें धैर्य नहीं, समझनेकी शक्ति नहीं। आज केवल मुझे छूकर तुम इस सच बातको सीधे तौरसे कहो, कि तुम मुझसे प्रेम करती हो या ?" कहकर वह मानो अपनी सब ज्ञानेन्द्रियोंको उन्मुखकर सावित्रीके मुँहकी ओर उत्तर पानेकी प्रतिक्षामें देखता रहा।

उसकी दोनों व्यथित, व्यग्र आंखोंकी ओर देखकर सावित्रीकी आंखोंसे फिर आंसू गिरने लगे। उसने कहा,—"प्रेम नहीं करती होती, तो किस बलसे तुमपर मेरा इतना ज़ोर है? किसके कारण मुझे इतना सुख है, इतना बड़ा दुःख है? देखो, इसीसे मैंने बहुत दिनोंसे तुमको इतना दुःख दिया; किन्तु किसी तरह अपनी यह देह तुमको सौंप न सकी!' कहकर आंचलसे अपनी

सतीशने कहा,—"तुम्हारे सहमत होने-न-होनेसे कुछ भी आता जाता नहीं है।"

सावित्री डरती हुई मुस्कुराकर बोली,—तो क्या मेरे साथ जबर्दस्ती ब्याह करोगे ?" कहकर मुस्कुराहटको गम्भीरतामें परिणतकर सतीशके ललाटपरसे रूखे बालोंको गहरे स्नेहसे धीरे-धीरे हटाती हुई बोली,—"छिः ! ऐसी बात भूलकर भी मनमें न लाओ। मैं विधवा हूँ, कुल-त्यागिनी हूँ, मैं समाजमें लांछिता हूँ, मुझसे ब्याह करनेमें कितना बड़ा दुःख है, यह तुम नहीं समझते, किन्तु जो आजन्म शुद्ध है, अतलस्पर्शी शोककी आगने जिन्हें जलाकर हीरेकी तरह निर्मल बना दिया है, वे समझ-बूझकर ही इस हतभागिनीको आश्रय देनेके लिये अपने साथ लिये जाते हैं। अत्यधिक आवेशमें रहनेके कारण, उनकी मंगल-कामना आज तुम्हारे मनमें न आयेगी। इसीसे उनपर झूठ-मूठ दोपा-रोपण कर अपनेको हीन न बनाओ। भगवानके चरणोंमें अपराधी न बनो।" कहते-कहते उसकी आंखोंसे आंसू टपक पड़े।

आंखोंके वे आंसू आज सतीशको शान्त न कर सके, बल्कि वह अधिकतर उत्तेजित हो उठे, बोला,—"सब झूठ है। तुमने इसी तरह अपनेको मुझसे अलग रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन्द्र भैयाने ही कहा है, कि तुम संसारमें किसीकी अपेक्षा हीन नहीं हो, यह सच बात है।"

सावित्रीने कहा,—"नहीं, यह बात नहीं है। भैयाजी अब

इसी समय विहारीने दरवाज़ाके बाहरसे पुकारकर कहा—"माईजी; बाबू कहते हैं; कि अब समय नहीं है।"

"चलो आती हूं।" कहकर सावित्री उठने लगी। सतीशने उसे जोरसे पकड़ लिया; कहा- "तुमसे कुछ नहीं चाहता; आज जाते वक्त मुझे एक भिक्षा देती जाओ।"

"मेरे पास क्या है; जो तुम्हें दूंगी; किन्तु क्या चाहते हो; कहो भी तो?"

सतीशने कहा;—मैं यही भिक्षा चाहता हूं; कि यदि कोई कभी हम दोनोंके सम्बन्धकी बात पूछे; तो मेरा स्वामित्व स्वीकार करोगी न? बोलो।"

सावित्री ठीक यही आशंका करती थी; तथापि इस अद्भुत अनुरोधपर उसे हंसी आ गयी। उसने कहा;- "ऐसी प्रतिज्ञा क्यों कराना चाहते हो? गवाहोंके बलसे अन्तमें जबर्दस्ती मुझे अपने घरमें डाल तो नहीं लोगे?"

सतीशने कहा;—"तुम्हारे हृदयमें रहनेवाले अन्तर्यामी ही म दोनोंके गवाह हैं; दूसरे गवाहको मुझे जरूरत नहीं। बाहरके ।।ोंके बलसे अन्तमें तुम्हें घरमें डाल लूंगा, इसीका तुम्हें डर हो रहा है? किन्तु यदि अपने बलसे आज ही मैं तुमको घरमें डाल लूं, तो कौन मुझे रोकनेवाला है?"

सावित्री चुप हो रही। सतीशने कहा;- ' 'तुम्हारा जहां-तहां अपनी मर्जीके अनुसार रहना मुझे पसन्द नहीं। इससे मेरी मर्य्यादा नष्ट होती है।"

ांख पोंछकर पुनः बोली,—"आज तुमसे मैं कोई बात न छिपाऊँगी। मेरी यह देह अबतक दूषित नहीं हुई है; लेकिन इसे तुम्हारे पांवोंमें अर्पित कर देनेकी सामर्थ्य भी तो मुझमें नहीं है। इस देहसे जो मैंने जान बूझकर बहुतोंका मन मोहित किया है, वह तो मैं किसी तरह भूल न सकूँगी। इससे चाहे जिसकी सेवा हो, पर तुम्हारी पूजा तो किसी तरह नहीं हो सकती। देखो यदि तुमसे इतना प्रेम न करती, तो इस तरह तुमको छोड़कर मुझे न जाना पड़ता।" कहकर सावित्रीने बारम्बार आंखें पोंछीं।

सतीश स्तब्ध भावसे कुछ क्षण पड़ा रहकर अकस्मात् बोल उठा;—"तो मैं तुम्हारी देह नहीं चाहता; चाहता हूँ सिर्फ तुम्हारा मन; उससे तो तुमने कभी किसीको मोहित नहीं किया? वह तो मेरा है।"

सावित्रीने तत्क्षण कहा,—"उसने किसी दिन किसीको भुलाना नहीं चाहा—वह तुम्हारा ही है। उसपर चिरकालसे तुम्हारा ही अधिकार है।" कहकर उसने छातीपर हाथ रखकर कहा;—"अन्तर्यामी जानते हैं, जबतक जीऊँगी चाहे कहीं किसी भी भावसे रहूँगी, तुम्हारी ही हमेशा दासी बनी रहूँगी।"

सतीश जल्दीसे उसके हाथको अपने दाहिने हाथमें लेकर बोला;—"तुम्हारी आजकी यह स्वीकारोक्ति ही मेरे लिये यथेष्ट है। इससे अधिक और कुछ नहीं चाहता।"

उसकी बातोंके भावसे सावित्री मन-ही-मन शंकित हुई।

लकड़ी, कंडा, पानीकी बालटी आदि पास-ही-पास रखी हुई है।

दिवाकरके पाँवोंकी आहट पा, पासकी एक कोठरीसे बाड़ी वालीने बाहर निकलकर स्वरको जरा तेज करके कहा,—"आ गये ? बाबू; तुमलोग यह सब क्या करते हो ? रसोई नहीं होती; नहाना-खाना नहीं होता -केवल रात-दिन झगड़ा; किचकिच, दांत पीसना—यह हमलोगोंको कंगाल बनानेका उपाय कर रहे हो क्या ?" दिवाकरने अपने उदास मुँहको नीचेकी ओर झुका लिया। वह दोपहरके वक्त खाना खाने आकर किरणमयीसे झगड़ाकर बिना कुछ खाये-पिये कामपर चला गया था। अब छुट्टी होनेपर लौटा है। किन्तु उसकी अवस्था देखकर मकानवालीका गुस्सा शान्त न हुआ। उसने फिर कहा;—"वह तो तुम्हारी व्याही बहू नहीं है बाबू; जो उसपर इतना जोर-जुल्म करते हो ? निकालकर जैसे लाये हो; वैसे ही उसने भी धरम रखा है। ये चार-पांच महीने जेवर-गहने बेचकर जिस तरह हो सका, तुमको खिलाया-पिलाया है; घरका भाड़ा दिया। अब तुम्हारी भी नौकरी लग गयी है; तुम उसका साथ न भा सको, तो अलग जाकर रहो। क्यों उस बेचारीको नाहक दुःख देते हो ? ऐसी सुन्दर जवान औरत खाये-पहने बिना सूख-कर लकड़ी हो गयी !" जरा चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया—'तुम न होते; तुमने उसे यों बांध न रखा होता; तो उसे अपने लिये क्या चिन्ता थी ? उस मोड़पर रहनेवाले सेठजी

सावित्रीका चेहरा उत्तरोत्तर पीला पड़ता जा रहा था, किन्तु इस अवस्थामें सतीशके उत्तेजित हो जानेके भयसे वह चुप हो रही। सतीश बोला,- 'उपेन्द्र भैया पत्थरके देवता हैं; यदि रक्त-मांसके स्वर्गके देवता होते; तो मैं साथ न भेजता। अच्छा; आज जाओ; पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि अधिक दिनों तक तुम्हारे वहां रहनेसे मुझे सुविधा न होगी।'

"तुम्हारी जैसी इच्छा।' कहकर सावित्री सिर नवाकर बाहर चली गयी।

४२

शामको साढ़े पांच बजे लकड़ीके कारखानेकी छुट्टी होनेपर दिवाकर आराकानके एक रास्तेसे जा रहा है। धूल, धुएं और लकड़ीके बुरादेसे उसका सारा शरीर मैला हो रहा है। शरीरपर एक मैला-पुराना कुरता है; वह भी कई जगहोंसे सिला हुआ, धोती भी करीब करीब वैसी ही है। दाहिने पांवके जूतेका एँड़ा टूट जानेसे वह बिलकुल चट्टी बन गया है। पांवका अंगूठा जूतेके बाहर निकलकर दिखाई दे रहा है। दिवाकर अब वह दिवाकर नहीं है। देखनेसे वह जल्दी पहचाना नहीं जाता। दिन-भरसे पेटमें अन्न नहीं गया—इसी अवस्थामें वह हांफता-हांफता कामिनी दासीके घर आ उपस्थित हुआ। निचले तल्लेमें चार रुपये माहवारी किरायेपर **एक कोठरी** लेकर रहता हूं। छोटे बरामदेमें एक ओर **रसोई**

करकी छातीके भीतरसे आज वासनाका जो राक्षस वाहर निकल आया है, उससे आत्मरक्षा करनेके लिये उसके साथ दिन-रात लड़ते-लड़ते किरणमयी अब जर्जर हो पड़ी है।

उसके सिरके वाल रूखे और विखरे हुए वस्त्र मैला और फटा-पुराना है। मुखपर एक प्रकारको शुष्क क्षुधा मानों अधीरता चरम सीमापर पहुंच गयी है, अंगोंकी कुत्सित श्रीहीनता देखकर आंखोंको दुःख पहुंचता है। मूर्तिमती अलक्ष्मीकी तरह वह धीरे-धीरे आकर बरामदेके खंभेके सहारे खड़ी होकर दोनोंकी ओर चुपचाप देखने लगी।

उसको देखते ही दिवाकर घायल भेड़ियेकी तरह कूदकर चिल्ला उठा।

आह! निर्लज्जता चरम सीमाको पहुंच चुकी थी। वही मुँह चोर दिवाकर आज मकान भरके लोगोंके आगे ऐसी-ऐसी वातें चिल्लाकर कह सकता है, यह विश्वास करनेको भी जी नहीं चाहता। परन्तु वास्तवमें उसने चिल्लाकर कहा, "क्यों [illegible] यही वात है? अब मारवाड़ी, मुसलमान, वर्मा, [illegible] इनकी जरूरत है? ओः इसीसे दिन-रात झगड़ा! इसीसे मैं आंखोंकी किरकिरी हो गया हूं?"

किरणमयी एकाएक पहले कुछ समझ न सकी, वह चुपचाप उसका मुँह ताकती रही। किन्तु उसका जवाब दिया मकानवालीने। उसने एक पांव आगे बढ़ाकर, हाथ हिलाकर और आंखें मटकाकर कहा,—"क्यों न जरूरत हो? हम कुछ गृहस्थ-

र पास रोज ही आदमी भेजते हैं। कहते हैं, सारा शरीर सोनेसे ड़ दूँगा। औरतको क्या चिन्ता है, बाबू? चावल बिखेरने-लेको-कौओंकी क्या कमी, बाबू साहब! जाओ, अब चले ाओ। मेरी बात मानो, कितने दिनोंसे कह रही हूँ। अबतक ो हुआ सो हुआ, अब तुम दोनोंमें मेल न होगा।"

दिवाकरने उसे जल्दीसे रोककर कहा,—"ठहरो-ठहरो, मुझसे बहुत कुछ कहनेकी जरूरत नहीं; किन्तु उनका मन क्या है? ज़रा यह भी तो जान लें। तुम तो ठहरी उनकी सलाहकार!"

ठीक इसी समय किरणमयी अपनी कोठरीसे बाहर निकली। अवस्थाके बदल जानेसे मनुष्यमें दैहिक, मानसिक सर्व प्रकारका परिवर्त्तन कितना शीघ्र और किस विचित्र ढंगसे हो जाता है, यह देखकर आश्चर्य चकित हो रहना पड़ता है।

आज उसकी ओर देखकर सहसा कौन कहेगा कि यह वही सौन्दर्य्यकी मूर्ति किरणमयी है!

छः महीने पहले यही एक दिन समाज और धर्मका तिरस्कारकर, मनुष्यत्वको पैरों कुचलकर, एक अबोध, अपरिणामदर्शी युवकको रूप और प्रेमके मिथ्या मोहमें फांसकर सब प्रकारकी सार्थकताओंसे वंचित कर यहां लायी थी, आज उस धोखे-धड़ीकी फांसीको किरणमयी स्वयं अपने ही गलेमें लगा बैठी है!

पापके साथ निष्फल क्रीड़ा करते रहनेके फलस्वरूप दिवा-

"अच्छा निकलता हूं!" कहकर, उसने हाथ लगाकर दांत पीसते हुए पागलकी तरह दौड़कर किरणमयीके गलेमें हाथ लगाकर ज़ोरसे ढकेल दिया। दिनभरकी भूखी-प्यासी, थकी किरणमयी धक्का न सह सकी; पहले तो वह रंगकी एक खाली बाल्टीपर गिरी और वहांसे लुढ़ककर कंडों ऊपर मुंहके बल जा गिरी।

उन्मत्त दिवाकरने उसकी पीठपर लात मारकर कहा--"चलो, निकलो! कौन तुम्हारा मारवाड़ी है, दूर हो!" कहकर घरके भीतर जा घुसा।

मकानवाली विकट रूपसे चिल्ला उठी। कारखानेसे अभी-अभी लौटे हुए लोग, जो अपने हाथ-मुँह धो रहे थे, जोरकी चिल्लाहट सुन चकित हो, साबुन फेंक कर दौड़ आये। मकान वाली नकिया-नकियाकर नालीश करने लगी--'अरे बेचारी बहूको मार डाला रे! मार डाला! अभागे छोकरेको तुम लोग मारते मारते निकाल बाहर करो--अब मेरे घर न आये!"

मकानवालीकी फर्याद सुन, वे जमा होकर कोठरीके भीतर [illegible] तैयार हुए। इतनेमें किरणमयी उठ खड़ी हुई और उसने घूंघट डालकर कठोर स्वरमें कहा, "लड़ाई-झगड़ा किसके घर नहीं होता? मुझको मारा है, तो तुम लोगोंका क्या बिगड़ा? चलो, तुम लोग अपने घर जाओ!" यह कहकर जल्दीसे कोठरीके भीतर जाकर उसने किवाड़ बन्द कर लिये।

लोग अपनी बहादुरी दिखानेका सुयोग खोकर उदास हो

की बहू तो हैं नहीं, कि एकके पास ही जिन्दगी बिता देंगी ? हम हैं सुखकी पंछी, स्वतन्त्र घूमनेवाली, जहां जिसके पास सुख मिलेगा, जहां सोना-दाना मिलेगा, उसीके पास जायेंगी। इसमें शर्म क्या है ?"

दिवाकरने क्रोधसे जलकर उसको धमकाकर कहा,—"चुप रह हरामजादी! जिससे पूछता हूं, जो कहना होगा वही कहेगी। तू क्या चिल्लाती है ?"

इस बार मकानवाली भी बारूदकी तरह भड़क उठी, मारनेको तैयार होकर बोली,—"क्यों रे! मेरे ही घरमें रहता है और मुझे ही हरामजादी कहता है ? निकलजा, अभी मेरे घरसे!"

दिवाकर भी क्रुद्ध हो गया। छः महीने पहले बुरे-से-बुरे स्वप्नमें भी शायद यह कल्पना करना सम्भव न होता कि दिवाकर एक अछूत जातिकी गणिकाके मुँहसे इतने अपमानकी बात सुनकर भी कमर कसकर उसके साथ यों वाद-विवाद करेगा! किन्तु वह तो अब उपेन्द्रकी सुरबालाके स्नेह और आदर यत्नमें लालित-पालित होनेवाला दिवाकर नहीं रह गया है। इसीसे वह भी आंख-मुंह लालकर गरज उठा,—"मैं क्यों निकलूँ ? क्या तू भाड़ा नहीं लेती ?"

मकानवालीने भी धमकाकर कहा,—"वाह रे भाड़ा देनेवाला! औरतकी कमाई पर इतना दिमाग ? धिक्कार है तुझे! डूब मरनेके लिये चुल्लूभर पानी भी नहीं मिलता ? निकल जा यहांसे। नहीं तो झाड़ू मारकर निकाल बाहर करूंगी।"

इसके उत्तरमें दिवाकर हुंकारी भी न भर सका। वह दुःख और आत्मग्लानिसे जल रहा था। वह सचमुच ही किरणमयीको हृदयसे चाहने लगा था।

जबसे यहाँ आया तबसे बहुत दिनोंतक बाहर किसीके कुछ न जाननेपर भी दोनोंमें अत्यन्त गुप्त भावसे आसक्ति और विरक्तिका जो निर्मम संग्राम नित्यप्रति हुआ करता था, उसकी सभी चोटें दिवाकर चुपचाप सहता आता था।

कुछ दिनोंसे यह संघर्ष प्रकाश्य और अत्यन्त दुर्निवार होनेपर भी ऐसी उत्तेजनाकी आग बहुत बार भड़की थी, किन्तु आजसे पहले उसने किसी दिन इस प्रकार आत्मविस्मृत हो, ऐसा पाशविक आचरण नहीं किया था। किस कारणसे, किस अत्याचारके फलसे वह किरणमयीपर हाथ उठा सकता है और यह जो पहले पहल अभी उसने उठाया है, वस्तुतः इसे वह ठीक तौरसे नहीं समझ सका था। पहले तो वह बिलकुल बदहवासोकी तरह घरके भीतर घुस, खाटपर आ बैठा था, किन्तु जब किरणमयीने स्वयं ही अपनी सब लाञ्छनाओंको स्वेच्छासे झाड़कर दौड़कर आये हुए लोगोंके आक्रमण और निर्यातनसे उसे बचा कर कोठरीके द्वार भीतरसे बन्द कर लिये, तब मानों उसे होश हो आया और वह आप ही अपने कियेपर पछताने लगा। अब किरणमयीका अनुरोध शेष होते-न-होते वह उसके पांवोंपर इस तरह लोट गया, जैसे पहाड़की जड़पर लहरें टकराती हैं। वह किरणमयीके दोनों पांवोंपर अपना मुँह रखकर सिसकियाँ भर-

लौट गये। बाहर खड़ी मकानवाली गालपर हाथ रख अपने आप ही बोली,---"कैसी विचित्र लीला है!"

दरवाजा बन्दकर किरणमयीने दियासलाई निकाल, बत्ती जलायी। लकड़ीका घर बहुत अच्छा न होनेपर भी लम्बा है। एक ओर रस्सीकी बुनी खटियापर दिवाकरको बिस्तर लगा है; दूसरो ओर चौकीपर किरणमयीका बिस्तर लपेटा रखा है। पांवकी ओर कुछ मिट्टीके बर्तन एकके ऊपर एक धरे हुए हैं, और उसी कोनेमें लकड़ीके सींकचेपर हांड़ी, कड़ाही, कलछी आदि रखो हुई हैं। यही इन दोनोंकी गृहस्थीका सारा सामान है।

बत्ती जलाकर किरणमयी दरवाजेके पास स्थिर होकर बैठी। किसीके मुंहसे कोई बात न निकली--खाटपर दिवाकर सिर झुकाये चुप बैठ गया। इस प्रकार बहुत देरतक दोनों चुपचाप बैठे रहे। अनन्तर किरणमयी उठकर धीरे-धीरे सामने आयी और सहज भावसे बोली,--"हांड़ीमें भात रखा है. परोस देती हूं, चलो, खा लो।"

दिवाकरने रुंधे हुए कण्ठसे कहा,--"नहीं।"

उसके कण्ठस्वरसे मालूम हुआ, कि वह अबतक रो रहा था।

किरणमयी बोली, -"नहीं क्यों? दिनभर कुछ खाया नहीं, आज न खाओ, कल तो खाना ही होगा। भोजन-वस्त्रपर मान करनेसे गुज़र नहीं। हाथ-मुंह धो आओ जो मनमें आये, थोड़ा खा लो, मैं भात परोस देती हूं।"

मुँह धोकर घरके भीतर लौटा, तो कुछ विस्मित होकर देखा, कि किरणमयीने उसका विछौना लपेटकर चारपाईके नीचे रख दिया है। उसने पूछा,—"मेरा विछौना नीचे क्यों रखा है?"

किरणमयीने निश्चितरूपसे कहा,—"पहले कहती तो शायद तुम न खाते-पीते। आजसे हम दोनोंमें भेंट-मुलाकात न होगी। रात अभी बहुत न बीती है, आज कालीजीके मन्दिरमें जाकर सो रहो, कल अपना गुजरके लायक कोई जगह ढूँढ़ लेना। और यदि इस देशमें रहना न चाहो, तो परसों स्टीमर जायेगा, मैं रुपये दे दूँगी; घर लौट जाना। बात यही है, अब जो तुम्हारे मनमें आवे करो, मेरे साथ अब तुम्हारा रत्तीभर भी सम्पर्क न रहेगा।"

दिवाकर हत-बुद्धि होकर सब बातें सुन रहा था। उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो किरणमयीके ममताहीन शब्द कठिन पत्थरके टुकड़ोंकी तरह उन दोनोंके बीच सदाके लिये
५८ अभेद दीवार खड़ी कर रहे हैं।

उसकी बातें पूरी होनेपर उसने मानों स्वप्नसे जगकर कहा,—"और तुम?"

किरणमयीने कहा,—"मेरी बात सुननेमें तुम्हें कुछ लाभ नहीं; फिर भी यदि इस देशमें रहोगे तो कल-परसोंतक सुन ही लोगे।"

दिवाकरने कहा,—"तो मकानवालीकी ही बात सच है? वही असभ्य सेठ……

भरकर रोने लगा। रोते रोते उसने कहा,—"मैं पशु हूं, मुझे माफ करो भाभी।"

किरणमयीने स्थिर, निर्विकार भावसे क्षणभर चुप रहकर पूर्ववत् स्वाभाविक स्वरसे कहा,—"तुम्हारा कुछ दोष नहीं - मनुष्यमात्रको ही ये सब काम पशु बना देते हैं। मुझे भी पशु बनानेमें तिलमात्रकी कसर नहीं रखी है।

दिवाकरने जोरसे सिर हिलाकर कहा,—"नहीं, नहीं, और किसीसे मुझे काम नहीं भाभी, किन्तु आजके मेरे अपराधका प्रायश्चित कैसे होगा, मुझे बता दो। प्राण देकर भी मैं इसकी प्रायश्चित करूंगा।"

किरणमयीने कहा, तुमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है? सुनते नहीं, क्रोधसे मनुष्य मनुष्यका खून कर डालता है। तुमने तो मुझे सिर्फ एक लात मारी है। और मैंने क्या कोई अपराध नहीं किया है बाबू! सब क्या तुम्हारा ही दोष है? जाने दो यह सब सारे अभियोग-अनुयोगका आज अन्त हो गया—इससे भविष्यमें तुमको भी जरूरत न होगी और मुझे भी नहीं। अब आओ, हाथ-मुँह धोकर भात खाने बैठो। मुझसे अब खड़ा भी नहीं रहा जाता।"

दिवाकर धीरे-धीरे उठ बैठा। किरणमयीके कण्ठस्वरसे इसने समझा था, कि वह और बातें करना भी नहीं चाहती।

दिनभरके उपवासके बाद दिवाकर पेटभर खाकर बाहर मुंह धोने गया। इसके मनकी ग्लानि भी प्रायः दूर हो गयी थी।

ऊपर ही शायद मेरी छाती फट जाती और मर जाता ; किन्तु एक बात किसी तरह समझमें नहीं आती। आज तुम जिसके पास जाओगी, उससे भी तो प्रेम नहीं है। शायद पहचानती भी नहीं, तो फिर मुझे छोड़कर उसके पास जाना क्यों चाहती हो ? मैंने तो कभी तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया ! किन्तु क्या तुम सचमुच ही किसी औरके पास चली जाओगी ?"

किरणमयीने सिर हिलाकर कहा—"हां, जाऊँगी।" इसके बाद बहुत देरतक जमीनकी ओर चुपचाप ताकती रही, पीछे सिर उठाकर बोली,—"नहीं, आज अब कुछ भी न छिपाऊँगी। मैं भगवानको नहीं मानती, आत्माको नहीं मानती, जन्मान्तरको नहीं मानती, स्वर्ग-नरक यह सब भी कुछ नहीं मानती—यह सब मेरे निकट असार हैं, बिल्कुल मिथ्या हैं। मानती हूँ केवल इस संसार और इस देहको। इस जिन्दगीमें केवल एक व्यक्तिके निकट एक दिन मुझे हार मानकर सिर नीचा कर लेना पड़ा था और वह थी सुरवाला ; किन्तु जाने दो बातको। हां, मैं केवल इस संसार और इस देहको मानती हूँ। इस जीवनमें इस जले शरीरने और कुछ भी नहीं चाहा, चाहा केवल प्रेम ! इसकी यह भिक्षा किसी तरह पूर्ण न हो सकी और न अब पूर्ण हो ही सकेगी। पर मैं अपने अहङ्कारको, अतिक्रम नहीं कर सकती ! इसीसे डाक्टर अनङ्गको भी एक दिन मैंने फँसाना चाहा था। यह भी किस्मतकी मार थी।" कहकर एक छोटी-सी सांस छोड़कर किरणमयी चुप हो रही।

किरणमयीने शान्त किन्तु कठोर स्वरसे उत्तर दिया,--"हो भी सकता है। और चाहे कुछ हो, तुम्हारे कंधोंके सहारे नीच मार्गमें उतरी थी, तो क्या अन्ततक तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर चलना होगा ? इसका कोई अर्थ नहीं है। मेरी तबियत ठीक नहीं है, सोने जाती हूं। अब तुम नाहक देर मत करो, जाओ। कल सवेरे तुम्हारी सब चीजें तुम्हारे पास भेज दूँगी।"

दिवाकरने कहा,—"इतनी जल्दी ! आज रातको भी तुम मुझे यहां रहने न दोगी ?"

किरणमयीने कहा,—"नहीं।"

दिवाकरने क्षणभर स्थिर रहकर कहा,—"तो केवल मेरा सर्वनाश करनेके लिये ही मुझे इस रास्तेपर खींच लायी थी ? कभी प्यार तक नहीं किया ?"

किरणमयीने कहा,—"नहीं, किन्तु तुम्हारा नहीं, एक और मनुष्यका सर्वनाश करनेका निश्चय करके ही मैंने तुम्हारा सर्व-नाश किया है। और मेरा ? जाने दो मेरी बात। किन्तु मुझसे आदिसे अन्त तक सभी भूलें हुईं और इन भूलोंके लिये ही मैं आज तुम्हारे पांव पड़कर तुमसे माफी मांगती हूं।"

उस निर्विकार प्रस्तर-मूर्तिके समान चेहरेकी ओर देखकर दिवाकरने लम्बी सांस भरकर कहा,—"मेरे सर्वनाशकी तुम कल्पना तक नहीं कर सकती हो, इसीसे तुम इतनी आसानीसे माफी मांग सकी हो। किन्तु इस सर्वनाशकी अपेक्षा भी मेरा प्रेम बहुत बड़ा है, इसीसे अबतक जीवित हूं, नहीं तो जहाजके

तुमको मेरे हाथ सौंप गये थे, उस दिनसे मैंने छोटे भाईकी तरह अपने बच्चेकी तरह तुम्हें प्यार किया था! इसीसे तो इन छः महीनोंसे एक घरमें रहनेपर भी तुमको यह देह नष्ट करनेके लिये न दे सकी, इसीसे तो तुम्हारी आंखोंकी भूखसे; तुम्हारे मुँहकी प्रेम-प्रार्थना सुननेसे मेरी सारी देह घृणा और लज्जासे कांप उठती है। इसीसे तुम्हारी लात खाकर आज मेरा समग्र मन इस प्रकार विरक्त हो उठा है। जाओ दिवाकर, चले जाओ! मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न होगा; किन्तु इस देहपर जा तुम्हारी लुब्ध दृष्टि गड़ी है, वह तुमको नरकके अन्धकूपमें जन्म-जन्मान्तर तक डुबा रखेगी, यह आज मुझे मालूम हो रहा है।" कहते-कहते उसकी दोनों आंखें किसी तीव्र ज्वालासे मानों अकस्मात् प्रज्वलित हो उठीं और दिवाकर वेत खाये हुए कुत्ते की तरह सङ्कुचित हो दरवाजेके पास सरक गया।

किरणमयीने बिछौना उठाकर दिवाकरके आगे फेंक दिया और कहा,—"अब तुमपर मेरा विश्वास नहीं रहा। मेरा एक छोटा भाई आज भी जीवित है। उसी सतोशका मुँह देखकर मुझे सदा तुमसे आत्मरक्षा करनी पड़ेगी। तुम जाओ।"

दिवाकरने और कुछ न कहकर विस्तर उठा लिया और अन्धेरेमें निकल गया।

४३

सवेरे किरणमयी सुस्ती और थकावटके साथ काम-काज कर रहीं थीं। कामिनी दासी आकर चौखटपर खड़ी हो, मुस्कु-

थोड़ी देर चुप रहकर मानो उसने सहसा जगकर कहा,—"इसके बाद एक दिन—जिस दिन मैंने सचमुच ही प्रेम किया, उसी दिन मैं समझ गयी कि क्यों मेरा सारा शरीर इतने दिनों तक इसके लिये तीव्र उत्कण्ठाके साथ प्रतीक्षा कर रहा था।"

दिवाकरने व्यग्र होकर पूछा,—"किसके लिये ?"

किरणमयी मुस्कुराकर मानो अपने मनमें कहने लगी—"सोचा था, मेरे इस प्रेमकी तुलना शायद तुम्हारे संसारमें नहीं है, किन्तु मेरा वह गर्व टिक न सका। उस दिन परलोकके विषयमें तर्क-वितर्क कर जिस स्त्रीसे हार आयी थी, फिर उसीसे हारना पड़ा। इस लोकके प्रेमके द्वन्द्वमें भी उसके आगे सिर नीचाकर मुझे लौट आना पड़ा। मोहका पर्दा फट गया, स्पष्ट देखा, कि मेरी जैसी करोड़ों रूपवती नारियोंमें ऐसी शक्ति नहीं, कि उसको ठग सकें।"

दिवाकरको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसकी आँखोंके आगे से एक गाढ़ा काला पर्दा धीरे-धीरे दूर हटता चला जा रहा हो।

किरणमयी कहने लगी,—"उस स्त्रीके निकट एक बात सीखनेका मुझे बड़ा लाभ हुआ था—अपने स्वामीसे प्रेम करना शायद सीख भी सकती; किन्तु इस जले भाग्यके दोषसे वह रास्ता भी दो ही दिनमें बन्द हो गया। हाँ तो क्या पूछा था तुमने ? यही न, कि तुमसे प्रेम क्यों नहीं करती हूँ कौन कहता है, कि प्रेम नहीं करती ? प्रेम जरूर किया था ? किन्तु मैं तुमसे उम्रमें बड़ी हूँ, इसीसे जिस दिन तुम्हारे उपेन्द्र भैया

तुमको मेरे हाथ सौंप गये थे, उस दिनसे मैंने छोटे भाईकी तरह अपने बच्चेकी तरह तुम्हें प्यार किया था! इसीसे तो इन छः महीनोंसे एक घरमें रहनेपर भी तुमको यह देह नष्ट करनेके लिये न दे सकी, इसीसे तो तुम्हारी आँखोंकी भूखसे; तुम्हारे मुँहकी प्रेम-प्रार्थना सुननेसे मेरी सारी देह घृणा और लज्जासे काँप उठती है। इसीसे तुम्हारो लात खाकर आज मेरा समग्र मन इस प्रकार विरक्त हो उठा है। जाओ दिवाकर, चले जाओ! मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न होगा; किन्तु इस देहपर जा तुम्हारी लुब्ध दृष्टि गड़ी है, वह तुमको नरकके अन्धकूपमें जन्म-जन्मान्तर तक डुबा रखेगी, यह आज मुझे मालूम हो रहा है।" कहते-कहते उसकी दोनों आँखें किसी तीव्र ज्वालासे मानों अकस्मात् प्रज्वलित हो उठीं और दिवाकर बेत खाये हुए कुत्तेकी तरह सङ्कुचित हो दरवाजेके पास सरक गया।

किरणमयीने बिछौना उठाकर दिवाकरके आगे फेंक दिया और कहा,—"अब तुमपर मेरा विश्वास नहीं रहा। मेरा एक छोटा भाई आज भी जीवित है। उसी सतीशका मुँह देखकर मुझे सदा तुमसे आत्मरक्षा करनी पड़ेगी। तुम जाओ।"

दिवाकरने और कुछ न कहकर विस्तर उठा लिया और अन्धेरेमें निकल गया।

४३

सवेरे किरणमयी सुस्ती और थकावटके साथ काम-काज कर रही थी। कामिनी दासी आकर चौखटपर खड़ी हो, मुस्कु-

राकर बोली,—"छोकरा गया, बला टली ! कल मुझे मारनेको तैयार था ! अरे उसका काम है औरत रखना ? बकरे ही यदि नाजके दाने पाँवोंसे कुचलकर निकाल सकते तो, लोग बैल क्यों पालते ?"

किरणमयीने मुँह ऊपर उठाकर पूछा,—"किसने कहा कि वह चला गया ?"

मकानवालीने मुस्कुराकर, आँखें मटकाकर कहा,—"लो, अब मुझसे नखरे करने लगी ? किसने कहा ? मैं ठहरी मकान-वाली, मुझसे दूसरा कौन कहने आयेगा ? मैंने अपने कानोंसे ही सब कुछ सुना है। अगर इतनी भी खबर न रखती तो अब-तक यह मकान न जाने कबका मेरे हाथोंसे छीनकर पाँच भूतोंने हड़प लिया होता।"

किरणमयी चुपचाप घरका काम करने लगी। जवाब न पाने पर मकानवाली स्वयं कहने लगी,—"मैं तो कभीसे कहती थी बहू, कि इस आफतको निकाल बाहर करो। नहीं रहने दो, कहाँ जायेगा ? अरे, कहाँ जायेगा, यह मैं क्या जानूँ ! इतनी चिन्ता करनेसे तो दुनियाका काम नहीं चलता। खाओ, पहनो, अतर-फुलेल लगाओ, सोना-दाना शरीरपर चढ़ाओ और साथ-ही-साथ प्रीति भी करो, सो नहीं, देहके गहने जेवर मरदुएको खिलाओगी, पहनाओगी, भला प्रीति करनेका यह भी कोई ढङ्ग है बहू ?"

किरणमयीने एक बार सिर ऊपर उठाकर फिर आँखें नीची

कर लीं। मकानवालीने समझा, कि उसकी बहुदर्शिताके उपदेश काम कर रहे हैं। अतः वह फिर उत्तेजित होकर कहने लगी, और यह क्या बहू? क्या प्रीति करनेका यही वक्त है? अभी तुम जवान हो, इस समय तो दोनों हाथोंसे लूटोगी। इसके बाद दो पैसे हो जानेपर आरामसे बैठना, अधिक उम्रमें प्रीति करना, फिर कौन तुम्हें रोकता-टोकता है! हाथमें पैसे, आ जानेपर छोकरोंका क्या अभाव? पैसा हाथमें रहेगा तो जो चाहोगी, शौकसे कर सकोगी।"

किरणमयी अन्यमनस्क थी—क्या मालूम, सब बातें उसने सुनीं या नहीं; किन्तु उसने कोई जवाब नहीं दिया।

मकानवालीको इस समय अपने घरका काम-धन्धा करना भी बाकी था। इससे वह और ठहर न सकी, दोपहरको फिर आनेकी इच्छा प्रकटकर चली गयी।

इस घरके रहनेवाले प्रायः सब लोग कारखानेमें काम करते हैं। सवेरे कामपर जाते हैं, दोपहरको खानेकी छुट्टी पानेपर घर आते हैं तथा नहा-धो और खाकर फिर कामपर चले जाते हैं। शाम होनेके कुछ देर पहले छुट्टी पाते हैं।

आज भी सबके कामपर चले जानेके बाद, करीब दो-ढाई बजे मकानवाली फिर किरणमयीके कमरेके दरवाजेके पास आ खड़ी हुई। स्निग्धकण्ठसे बोली,—"खा-पी चुकीं बहू? क्या बनाया था?"

किरणमयीने आज चूल्हेमें आगतक न सुलगायी थी, तथापि

ाकर बोली,—"छोकरा गया, बला टली! कल मुझे मारनेको तैयार था! अरे उसका काम है औरत रखना? बकरे ही यदि नाजके दाने पांवोंसे कुचलकर निकाल सकते तो, लोग बैल क्यों पालते?"

किरणमयीने मुँह ऊपर उठाकर पूछा,—"किसने कहा कि वह चला गया?"

मकानवालीने मुस्कुराकर, आँखें मटकाकर कहा,—"लो, अब मुझसे नखरे करने लगी? किसने कहा? मैं ठहरी मकान-वाली, मुझसे दूसरा कौन कहने आयेगा? मैंने अपने कानोंसे ही सब कुछ सुना है। अगर इतनी भी खबर न रखती तो अब-तक यह मकान न जाने कबका मेरे हाथोंसे छीनकर पांच भूतोंने हड़प लिया होता।"

किरणमयी चुपचाप घरका काम करने लगी। जवाब न पाने पर मकानवाली स्वयं कहने लगी,—"मैं तो कभीसे कहती थी बहू, कि इस आफतको निकाल बाहर करो। नहीं रहने दो, कहाँ जायेगा? अरे, कहाँ जायेगा, यह मैं क्या जानूँ! इतनी चिन्ता करनेसे तो दुनियाका काम नहीं चलता। खाओ, पहनो, अतर-फुलेल लगाओ, सोना-दाना शरीरपर चढ़ाओ और साथ-ही-साथ प्रीति भी करो, सो नहीं, देहके गहने जेवर मरदुएको खिलाओगी, पहनाओगी, भला प्रीति करनेका यह भी कोई ढङ्ग है बहू?"

किरणमयीने एक बार सिर ऊपर उठाकर फिर आँखें नीची

कहला भेजा है, कि लोगोंके कामपर चले जानेपर दोपहरको आऊँगा। शायद वह इसी समय आ पहुंचे ......

किरणमयी डरकर बोली,—"यहाँ क्यों आयेगा ?"

कामिनीको किरणमयीकी यह बात सुनकर हँसी आ गयी; पर उसने बनावटी क्रोधका भाव दिखाते हुए कहा,—"मर छोकरी, वह न आयेगा तो क्या तू वहां जायेगी ? तेरी बात सुनकर तो मालूम होता है कि हँसते-हँसते मेरी आँत टूटे बिना न रहेंगी।" इस प्रकार कहती और सूखी हँसीका ढोंग रचती हुई वह किरणमयीकी देहपर जा गिरी।

किरणमयी, कुछ न बोली, केवल जरा सरक कर बैठ गयी। कामिनी दासीने आत्मीयताके आवेशमें आज पहले-पहल किरणमयीको 'तू' कहकर सम्बोधन किया।

किन्तु सखीत्वका—आत्यन्तिक घनिष्ठताका यह सम्बोधन उस ओछी औरतके मुँहसे निकल, किरणमयीके कानोंमें पहुंच, उसे तीरकी तरह लगा। उसके हृदयमें आज भी जो महिला मूर्च्छाहतकी तरह पड़ी थी उसको नींद इस एक शब्दके पदाघातसे ही टूट गयी और एक ही क्षणमें कुलवधूकी लुप्त मर्यादा उसके मनमें उदीप्त हो उठी। किन्तु वह अपने आपको संभालकर चुप हो रही।

कामिनी दासीने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह अपनी धुनमें बकने लगी,—"तू सोचती नहीं बहू, छः महीनेके अन्दर अगर तेरा भाग्य न पलट दूँ, तो मेरा कामिनी नाम नहीं।

मकानवालीके पूछनेपर सिर हिलाकर उसने कहा,—"हां, खापी चुकी। आओ, बैठो।"

मकानवाली दरवाजेके पास बैठ गयी। वह कोठरीके भीतर पैर रखते ही समझ गयी थी कि किरणमयीका मन इस समय ठीक नहीं है। इसीसे सहानुभूतिके स्वरसे बोली,—"यह तो होता ही है वहू, दो चार दिनोंतक मन खराब रहता ही है। पाले हुए पशु-पक्षीके चले जानेपर भी मन उदास हो जाता है, वह तो मनुष्य था। छः सात महीने तक उसके साथ रह चुकी हो। इससे ऐसी उदासीका आना स्वाभाविक है। पर जहां दो-चार दिन वीत गये, कि फिर उसका नाम भी याद नहीं रहेगा। कितनीही वार ऐसा होते देखा है।"

किरणमयीने अनिच्छापूर्वक मुस्कुराकर कहा,—"यह तो तुम ठीक ही कह रही हो।"

कामिनी दासीने आंख-मुँह नचाकर कहा,—"सच नहीं? तुम ही वताओ न वेटी सच नहीं? वह गया, तो गया, नया आदमी आवे, नये ढङ्गसे आमोद-प्रमोद करो। वस, मनकी सारी उदासी हवा हो जायेगी। क्या कहती हो; ठीक है न?"

किरणमयीने सिर हिलाकर सहानुभूति प्रकट की; किन्तु इन बहकानेवाली वातोंसे उसका चित्त घवराने लगा।

कामिनी दासीने आंखें सिकोड़कर धीरे-धीरे कहा,—"खूब याद आया बहू! उस आदमीको सवेरे ही मैंने खबर भेज दी थी। वह तुमसे मिलनेको वेतरह व्याकुल हो रहा है।"

कामिनी दासीने क्षुब्ध होकर कहा,—"तू तो किसीकी कुलवन्ती—ब्याहता बहू नहीं है। बाबू लोग मेरे घर आयेंगे, बैठेंगे, इसमें डर किसका है? तू ठहरी वेश्या।"

किरणमयी चिल्ला उठी,—"मैं कौन हूं? मैं वेश्या हूं?"

उसे मालूम हुआ जैसे बिजलीकी तेज धारा उसके तलुवोंसे घुसकर उसके मस्तकको फाड़ती हुई बाहर निकल गयी।

उसकी लाल आँखें और तीव्र कण्ठस्वरसे कामिनी दासीने विस्मित होकर, खीजकर, चिढ़कर कहा,—"और नहीं तो क्या? तेरे ये नखरे देखकर मेरी देहमें आग लग रही है! अब जिस रूपमें हमलोग हैं, उसी रूपमें तू है। बेचारा भलामानस आता है, तो आने दे, आदरसे घरमें बिठा।"

इस भलेमानससे मकानवालीने रुपये पाये थे और अब भी कुछ पानेकी आशा रखती है। वह दरवाजेके पास आ खड़ा हुआ और दांत दिखा, हँसकर बोला,—"क्यों मकानवाली कुशल तो है?"

मकानवालीने किरणमयीके हाथोंसे आंचल खींचकर विनयके साथ कहा,—"तुमलोगोंकी मेहरबानी है बाबू! जाओ, भीतर बैठो, मैं पान लगा लाती हूं।" जरा मुस्कुराकर बोली,—"यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही है बाबूजी; पर इसे अच्छी तरह जाना होगा, यह मैं पहले ही बताये देती हूं।"

"अच्छा, अच्छा! सब हो जायेगा। कहकर वह मनुष्य जरा भी सङ्कोच न कर घरमें घुस, खाटपर बैठने चला।

तू केवल मेरे कहे मुताबिक चलती रह; बस मैं और कुछ नहीं चाहती।"

किरणमयीको मालूम होने लगा, कि वह स्त्री मानों उसके कानोंकी सूक्ष्म स्नायु-तन्तुओंको गरम सँड़सीसे पकड़कर खींच रही है, तो भी वह उसे रोक न सकी, चुपचाप उसकी बातें सुनती रही।

कामिनी दासीने कहा,--"बहुत बड़ा सेठ है, धनकी कोई कमी नहीं है। जोशमें आ गया है, इस मौकेपर दोनों हाथोंसे दुहले, और जाने दे जहन्नुममें। फिर कितने ही आ मिलेंगे। तू यों दुःखमें पड़ी हुई है, इसीसे; नहीं तो तेरा रूप क्या साधारण रूप है बहू!"

इसी समय बाहरके बरामदेके कोनेसे किसीने टूटे हुए स्वरमें पुकारा,—"मकानवाली!"

"लो मैं जाती हूं।"कहकर कामिनी दासी जाने लगी। यह देख किरणमयीने दोनों हाथ बढ़ाकर उसका आंचल जोरसे पकड़ लिया और कहा,—"नहीं-नहीं, यह किसी तरह नहीं, इस घरमें कोई आने न पावे तुम यहीं रहो।"

कामिनी दासीने चौंककर, आश्चर्यमें आकर पूछा,—"क्यों? यहां कोई है क्या?"

किरणमयीने दृढ़ कंठसे कहा,—"कोई हो या न हो; यहांसे न जाओ, किसी तरह नहीं ....

बुलानेवालेके पांवोंकी आहट क्रमशः निकट आने लगी।

उसके दाहिने हाथकी उंगलीकी अंगूठीका बड़ा सा हीरा सूर्यकी किरणोंमें चमक उठा। कामिनी दासीने अदबके साथ खड़ी होकर पूछा—"किसको खोजते हैं?"

"दिवाकर यहां रहता है?"

"नहीं।"

"मेरी भाभी किरणमयी किस कमरे में रहती है?"

कामिनी दासीके साथ-साथ और भी दो-चार स्त्रियां ध्यान-से उस नवयुवकको देख रही थीं। एकने कहा,—"वे तो मूर्च्छित पड़ी हैं।"

"मूर्च्छित हैं! कहां? देखूँ!" कहकर वह कोठरीके भीतर आ पहुंचा।

किरणमयी उस समय भी बेहोश जमीनपर पड़ी थी। सारा अङ्ग पसीनेसे ।र है, आंखें मुंदी हैं, चेहरा पीला पड़ा हुआ है, ७ भीगे और बिखरे हुए हैं, शरीरका कपड़ा खिसक गया। आगन्तुक सतीश था। उसकी आंखें सेठजी पर जा पड़ीं। समय वह पास आकर टकटकी लगा किरणमयीकी ओर ५ रहा था। सतीशने विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध होकर—"अरे, तुम कौन हो?"

उसकी ओरसे मकानवालीने जवाब दिया,—"ये हमारे सेठजी हैं? ये यहीं..."

किन्तु परिचय देनेके पूर्व ही सतीशने उस आदमीको दरवाजा दिखाकर इशारेसे कहा,—"बाहर जाओ।"

किरणमयीकी धमनियोंमें फौलादकीसी सहनशीलता थी, इसीसे अवतक वह यह सब बरदाश्तकर सकी थी; किन्तु अब और बरदाश्त न कर सकी। उसके रूप-यौवनके ग्राहक इस अपरिचित व्यक्तिके कमरेमें पैर रखते ही वह मूर्च्छित हो, आंधीसे उखड़े हुए पेड़की तरह जमीनपर लोट गयी।

उस पुरुषने चौंककर देखा और इस आकस्मिक विपत्तिसे हतबुद्धि हो रहा। मकानवालीकी चिल्लाहटसे मकानकी सब स्त्रियोंकी कच्ची नींद टूट गयी और वे उसी क्षण दौड़ आयीं। कोई जल ले आयी और कोई पंखा। सब बड़ी मुस्तैदीसे उस बेचारी अभागिनीकी शुश्रुषा करने लगीं।

कामिनी दासी चौखटपर बैठकर ऊंचे स्वरसे लगातार बकने लगी,—"इसी काममें बाल पका दिये, किन्तु अबतक ऐसा नखरा न सीख सकी। आये हुए यारको देखकर कभी यों दाँती लगानेका ढोंग रचना नहीं सीखा।"

इसी समय बाहरसे फिर किसीके बुलानेकी आवाज आयी। सदर दरवाजेपर कोई अपरिचित बाबू साहब दिवाकर और किरणमयीके नाम ले-लेकर बड़ा शोर-गुल मचा रहे हैं। नौ[illegible]ने आकर भीतर यह खबर सुनायी।

नौकरसे मकानवाली इन बाबूसाहबका [illegible]
रही थी, इतनेमें ही एक लम्बे-तगड़े नौजवानने [illegible]
हाथमें लिये स्वच्छन्दता-पूर्वक सामने [illegible]
पुकारा,—"भाभी!"

जैसा कपड़ा है, वैसा ही चेहरा-मोहरा! कौन कहेगा कि ये सतीशकी भाभी हैं? मानों कहींकी एक अनाथ पगली हो। लड़कपन तो बहुत किया। अब कलके जहाजसे घर चलो।" उन स्त्रियोंकी ओर देखकर बोला,—"अब तुम लोगोंको जरूरत नहीं, तुम लोग घर जाओ।"

किरणमयी निश्चल पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह सिर नीचा किये बैठी रही। उसके अन्दरकी बात अन्तर्यामी ही जानें किन्तु बाहर कोई बात प्रकट न हुई। औरतोंके बाहर जानेपर सतीशने कहा,—"वह सूअर कहां है भाभी?"

किरणमयीने सिर नीचा किये हुए ही कहा,—"अबतक तो इसी घरमें था; कल रातको अन्यत्र चला गया है।"

"क्यों?"

"मैंने ही चले जानेको कहा था, इसीसे।"

"किन्तु बुलानेसे क्या एक बार आयेगा भी नहीं?"

"बुलाकर देखती हूं।" कहकर किरणमयी बाहर गयी और नौकरको काली-मन्दिर भेजकर फिर लौट आयी। बोली,—"तुम आओगे, यह आशा स्वप्नमें भी न थी।"

सतीशने कहा,—"मेरा आना क्या मेरे भी स्वप्नसे बाहर नहीं था भाभी?"

"यह तो ठीक ही है कहकर किरणमयीने फिर गर्दन नीची कर ली। उसे अनेक बातें जाननी थीं। सतीश घरकी दासीसे पता पूछकर यहां आ पहुंचा है, यह समझना कठिन न था;

सेठजी रुपयेवाले हैं, वे नवीन प्रेमिक हैं, विशेषतः इतनी स्त्रियोंके सामने वे हीन भी नहीं हो सकते, इसलिये साहस कर बोले—"क्यों ?"

सतीश इस तर्क-वितर्कके लिये बिलकुल तैयार न था। असहिष्णुतासे उसने तख्तेपर ज़ोरसे पैर पटक धमकाकर कहा,—"बाहर जा उल्लू!"

सब लोगोंके साथ मानो सारा मकान चौंक पड़ा और सेठजी बिना कुछ कहे बाहर चले गये।

सतीश किरणमयीके शरीरको खिसकी हुई साड़ीसे ढँककर स्वयं एक पंखा लेकर जोरसे हवा करने लगा और उन दोनोंको घेरकर उपस्थित स्त्रियोंका झुण्ड विचित्र कोलाहल करने लगा। इनकी आपसकी बातोंसे ही सतीशने थोड़े देरमें बहुत-सी बातें जान लीं। कामिनी दासी अत्यन्त क्षोभ और विस्मय प्रकट कर बार-बार कहने लगी,—"मेरी इतनी बड़ी उमर हो गयी, पर मैंने आज तक ऐसी अजीब औरत न देखी। भला यह कैसी बात है, कि वेश्याको वेश्या कहनेसे वह आँखें उलटकर चट दाँती लगाकर गिर पड़े!"

लगभग बीस मिनटके बाद किरणमयीको होश हो आया और वह कपड़ा संभालकर उठ बैठी। क्षणभर एक टक देखती रहकर धीमे स्वरसे बोली,—"छोटे बाबू!"

सतीश प्रणामकर पांवोंकी धूल सिरपर चढ़ाकर बोला,—"हाँ भाभी, मैं ही हूं। किन्तु बात क्या है, बताओ तो सही,

पहले ही ऐसे भले-बुरेका हमेशाके लिये निश्चय हो चुका है। यह बात उस दिनकी है, जिस दिन तुमने छोटा भाई कहकर मुझे पुकारा था। यदि कोई अन्याय तुमने किया होगा, तो उसका जवाब तुम दोगी, किन्तु मेरा जवाब यही है, कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं; तुम्हारा विचार करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है।"

सतीशकी ये बातें सुनकर किरणमयीके मनमें आया; कि कहीं भागकर—छिपकर एक वार जी भर रो लें; किन्तु उस आवेगको रोककर वह बोली;—"किन्तु समाज

सतीश बीचमें ही बोल उठा,—"नहीं नहीं, जिसके पास रुपया है, जिसके शरीरमें बल है, उसके विरुद्ध समाज कुछ नहीं कर सकता। ये दोनों ही चीजें मुझे अच्छी तरह प्राप्त हैं भाभी!"

यह बात कहनेकी उसकी भंगी देख, किरणमयीको हँसी गयी। जरा चुप रहकर बोली,—"बाबू रुपया और शरीरके ़ तुम समाजको भले ही मना लो; किन्तु अपनी श्रद्धासे पापिष्टकी रक्षा कैसे करोगे?"

सतीश अधीर होकर बोल उठा,—मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है, मैं गंवार, मूर्ख मनुष्य हूं, सब बातोंका जवाब भी नहीं दे सकता, इतनी बारीकीसे लोगोंके भले-बुरेका विचार करना भी मैं नहीं जानता। क्या यह सत्य युग है, जो उपेन्द्र भैयाके समान सभी युधिष्ठिर बन बैठेंगे? यह है कलिकाल, अन्याय या

किन्तु अकस्मात् इतने दिनोंके बाद पता लगाकर इतनी दूर आने और लौटा ले जानेका यथार्थ कारण अनुमान करना अवश्य ही कठिन था।

अस्तु; आनेका कारण स्वयं सतीशने ही क्रमशः प्रकट किया। उसने कहा,—"कल जहाज जायेगा; मैं केवल तुम लोगोंको लिवा ले जानेके लिये आया हूं।"

किरणमयीने सिर ऊपर उठाकर कहा;—"क्या उपेन्द्र बाबूने भेजा है? अच्छा, तो दिवाकर ले जाओ। हाथ जोड़ती हूं; उसे जरूर ले जाओ।"

सतीशने कहा;—'केवल दूसरेकी आज्ञाका पालन करने लिये इतनी दूर नहीं आया हूं, भाभी! उससे भी बढ़कर मुझे खुद इस बातकी बड़ी चिन्ता थी। तुम कहोगी, कि इतने दिनोंके बाद क्यों? पर बात यह है, कि बहुत खोज करने पर भी पता नहीं लगा कि तुम कहां हो। फिर पिताकी मृत्यु हो गयी, मैं भी जानेकी तैयारी कर चुका था; शायद भेंट भी न होती।"

किरणमयीने सिर उठाकर देखा। उसकी दोनों आंखोंसे मानों संसारका सब स्नेह सतीशके सारे शरीर पर बरस गया। क्षणभरके बाद करुण कण्ठसे बोली;—"मैं किसके पास जाऊँगी बाबू! दुनियामें मेरा अपना कौन है?"

"मेरे पास चलोगी भाभी—मैं हूँ।"

"किन्तु मुझे आश्रय देना ठीक होगा?"

सतीशने कहा,—"क्या तुम्हें याद नहीं है भाभी! बहुत दिन

tion to watch me can be as strenuous Perhaps he'll relent just what I want.

lk about your new tuk?

the story. A ten- mine is the germ bout a man who uncle of the disappeared 35 e of 18 for no he girl doesn't at her man logist,

never sure whether he is an impostor or not. Ultimately he moves on to Australia. I won't tell you any more than that.

Do you make an anti-nuclear statement?

Agantuk definitely questions certain urban values and what the civilised world is doing in the name of civilisation, and how the simplicity of the tribals contrasts with that. The film emerged very suddenly. My son (Sandip) was supposed to be filming a Hindi film about bonded labour in Bihar, a Doordarshan-NFDC co- produc-

papers have rep ernment asked script. But my o nas not appeare Bengal's minist and Public R should allow th they aren't fac now. There was days ago beca blocked a cro Now they're wo sets, it should

You wouldn' on the scrip

No, I would that the script h